CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सं० 8६६

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान सम्पादक जगत नारायण | अगस्त, 1983 [पृष्ठ 433—888] | सम्पादक पूरन सिंह कर्नबाल

Rec'd 5/9/84

[1983] 3 उम० नि० प०

विधि साहित्य प्रकाशन

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मन्त्रालय (विधायी विभाग) भारत सरकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्णय-सूची

[1983] 3 उम० नि० प०

पृष्ठ संख्या

आजाद सिंह और अन्य बनाम बरकतुल्ला खां और अन्य
(Azad Singh and Others *v*. Barkat Ullah Khan and Others). 691

ए० जनार्धन बनाम भारत संघ और अन्य
(A. Janardhana *v*. Union of India and Others). 705

एच० एम० एम० लिमिटेड बनाम प्रवेश कर निदेशक, पश्चिमी बंगाल और अन्य
(H. M. M. Ltd. *v*. Director of Entry Tax, West Bengal and Others). 433

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड
(M/s. M. Ramnarain Private Limited and Another *v*. The State Trading Corporation of India Limited). 846

एम० जी० ब्रदर्स लारी सर्विस बनाम मैसर्स प्रसाद टैक्सटाइल्स
(M/s. M. G. Brothers Lorry Service *v*. M/s. Prasad Taxtiles). 803

गनेन्द्र प्रसाद सेनगुप्ता बराम भारत संघ और अन्य
(Ganendra Prasad Sengupta *v*. Union of India and Others). 831

दिल्ली नगर निगम और अन्य बनाम मोहम्मद यासीन
(The Municipal Corporation of Delhi and Others *v*. Mohd. Yasin). 789

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवकी नन्दन प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य
(Devaki Nandan Prasad *v.* State of Bihar and Others). 649

नायब सिंह पुत्र मक्खन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य
(Naib Singh S/o Makhan Singh *v.* State of Punjab and Others). 453

पटेल सुरेशभाई जशभाई बनाम पटेल सतभाई माथुरभाई
(Patel Sureshbhai Jashbhai *v.* Patel Satbhai Mathurbhai). 778

पंजाब इंजीनियरिंग कालेज, चण्डीगढ़ (उसके प्रधानाचार्य की मार्फत) बनाम संजय गुलाटी और अन्य
(Punjab Engineering College, Chandigarh through its Prlncipal *v.* Sanjay Gulati and Others). 637

बिशन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य
(Bishan Singh and Others *v.* State of Punjab). 839

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य
(State of Bihar *v.* Sri Radha Krishna Singh and Others). 492

मनोहर नाथ कौल बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य
(Manohar Nath Kaul *v.* State of Jammu & Kashmir). 480

महाराष्ट्र राज्य बनाम व्यासेन्द्र
(State of Maharashtra *v.* Vyasendra). 824

मालवा बस सर्विस (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य
(The Malwa Bus Service (Private) Limited and Others *v.* State of Punjab and Others). 750

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रंजन द्विवेदी बनाम भारत संघ
(Ranjan Dwivedi v. Union of India). 675

रामजी द्विवेदी (डा०) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
(Dr. Ramji Dwivedi v. State of Uttar Pradesh and Others). 659

विजय कुमार कथूरिया (डा०) बनाम हरियाणा राज्य और अन्य
(Dr. Vijay Kumar Kathuria v. The State of Haryana and Others). 819

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय-सूची

[1983] 3 उम० नि० प०

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 (1951 का उ० प्र० अधिनियम सं० 1)

—धारा 12—आनुवंशिक अभिधारी—1 मई, 1950 को कतिपय भूमि का ठेकेदार के कब्जे में होना—अन्य अभिधारियों से लगान संगृहीत करने जैसे किसी कर्तव्य के बिना उस भूमि पर उसके द्वारा खुदकाश्त का किया जाना—जब ठेका उस भूमि पर अनन्य रूप से खुदकाश्त करने की दृष्टि से सृष्ट किया जाता है, तो ठेकेदार आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत अर्जित कर लेता है—यदि उसे उक्त तारीख के बाद बेदखल किया गया हो, तो वह सम्बन्धित भूमि का कब्जा पुनः प्राप्त कर लेता है।

आजाद सिंह और अन्य बनाम बरकतुल्ला खां और अन्य 691

उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था (अनुपूरक) अधिनियम, 1952 (1952 का उ० प्र० अधिनियम सं० 31)

—धारा 3—"खेती के सम्बन्ध में कब्जा"—विधिपूर्ण भूमि-कब्जा—ऐसा कोई अतिचारी जो किसी भूमि में बलात् प्रवेश करता है, यह दावा नहीं कर सकता कि वह भूमि खेती करने के सम्बन्ध में (उसके) कब्जे में है—जहां कि ऐसे ठेकेदार ने 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 के अधीन सन् 1359-फसली तक आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत अर्जित कर ली है, वहां जमींदार को यह अधिकार नहीं होता कि वह ठेकेदार को बेकब्जा करके किसी ऐसे पट्टेदार को उसका कब्जा दे जिसका कब्जा ठेकेदार के विरुद्ध अविधिपूर्ण है।

आजाद सिंह और अन्य बनाम बरकतुल्ला खां और अन्य 691

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

—धारा 197(1)—लोक सेवक द्वारा विनिमय आदेशों के बदले में हवाई जहाज के टिकट प्राप्त करना—टिकटों की कीमत निदेशालय के खाते में न डालना यथा उस खर्चे को यात्रा भत्ते के बिलों में डालना तथा उसका भुगतान प्राप्त करना—भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन उसका छल के अपराध के लिए अभियोजन किया जाना—अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करना अथवा कार्य करने के लिए तात्पर्यित होना अभिव्यक्ति में छल का अपराध करना सम्मिलित नहीं है—अतः ऐसे अपराध के अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है ।

मनोहर नाथ कौल बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य 480

दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 (1957 का 66)

—दिनांक 31-1-1968 की अधिसूचना—बूचड़खानों में पशुओं का वध करने के लिए फीस में वृद्धि—'कर' और 'फीस' में प्रभेद के सिद्धान्तों का कथन—तथ्यों के आधार पर भिन्न-भिन्न कोटियों के पशुओं को काटने में फीस की वृद्धि सर्वथा न्यायोचित है ।

दिल्ली नगर निगम और अन्य बनाम मोहम्मद यासीन 789

पद्धति और प्रक्रिया

—अपील—आदेश या डिक्री के विरुद्ध अपील—यदि आदेश के विरुद्ध की गई अपील के लिए अपेक्षित न्यायालय-फीस का संदाय कर दिया जाता है, तो उससे यह उपदर्शित होगा कि अपील आदेश के विरुद्ध की गई थी, न कि डिक्री के विरुद्ध ।

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मेसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड 846

प्रतिप्रेषण—जहां अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री मौजूद हो वहां न्यायालय मामले का विनिश्चय कर सकता है और निचले न्यायालय अथवा अधिकरण को मामला वापस भेजने की बजाय समुचित निदेश जारी कर सकता है ।

पटेल सुरेशभाई जशभाई बनाम पटेल सतमाई माथुरभाई 778

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पंजाब मोटर व्हीकल्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1924 (1924 का 4)

—धारा 3(1) (1981 वाले अधिनियम सं० 13 द्वारा यथा-संशोधित) [सपठित संविधान का अनुच्छेद 14]—वर्गीकरण—युक्तियुक्त वर्गीकरण—तारीख 19-3-1981 वाली अधिसूचना के अधीन मंजिली गाड़ियों पर अभिवृद्धि कर लगाया जाना—मंजिली गाड़ियों और सार्वजनिक वाहकों पर कर की भिन्न-भिन्न दरें नियत की जानी—यदि विधान मण्डल कर दायित्व अधिरोपित करने में व्यक्तियों और वस्तुओं का युक्तियुक्त वर्गीकरण करके, भिन्न-भिन्न मदों पर कर की भिन्न-भिन्न दरें अधिरोपित करता है, तो ऐसे कराधान को विभेदक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उससे अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होता।

मालवा बस सर्विस (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य ... 750

—धारा 3(1) (1981 वाले अधिनियम सं० 13 द्वारा यथा-संशोधित) और धारा 3क (1981 में यथा-अन्तःस्थापित) [सपठित संविधान का अनुच्छेद 19(1) (छ), 301, 304(ख) और अनुसूची 7 की सूची 2 की प्रविष्टि 57]—प्रतिकरात्मक स्वरूप का कराधान—कराधान में अभिवृद्धि—तारीख 19-3-1981 वाली अधिसूचना के अधीन मंजिली गाड़ियों पर लगाए गए कर में अभिवृद्धि की जानी—यदि कोई धन सम्बन्धी प्रभार जो प्रतिकरात्मक प्रकृति का है, कर के तौर पर अधिरोपित किया जाता है, तो वह व्यापार और वाणिज्य के स्वातन्त्र्य की संकल्पना से असंगत नहीं होता तथा इसी कारण उससे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ), 301 और 304(ख) का उल्लंघन भी नहीं होता।

मालवा बस सर्विस (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य ... 750

बन्दी अधिनियम, 1900 (1900 का 3)

—धारा 32—राज्य सरकार द्वारा आजीवन कारावास के निष्पादन का स्थान नियत न करना—आजीवन कारावास जेल में निष्पाद्य है तथा राज्य सरकार दण्डादेश के निष्पादन के लिए किसी स्थानीय जेल को "स्थान" के रूप में नियत कर सकती है।

नायब सिंह पुत्र मक्खन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य ... 453

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (1948 का 67)

—धारा 32 पी पी—उक्त धारा के अधीन आवेदन—भू-स्वामी ऐसे अभिधारी की प्रास्थिति पर आक्षेप कर सकता है जहां कि अभिधारी विधि की दृष्टि से हाजिर न होने के पश्चात् कब्जा लेने में असफल रहता है ।

पटेल सुरेशभाई जसभाई बनाम पटेल सतभाई माथुरभाई 778

—धारा 32-पी पी (i) और 32जी—अभिधारी के रूप में प्रास्थिति—अभिधारी द्वारा भूमि का क्रय किया जाना—हाजिर होने में अभिधारी का असफल रहना उक्त क्रय को निष्प्रभावी बना देता है ।

पटेल सुरेशभाई जशभाई बनाम पटेल सतभाई माथुरभाई 778

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45)

—धारा 53—द्वितीय धारा 53क, 55 और 58 (निरसन से पूर्व)—पिटीशनर को मृत्यु दण्डादेश के बदले आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित किया जाना—पिटीशनर द्वारा चौदह वर्षों से अधिक का दण्ड भुगतना तथा जेल में अपने सतत् निरोध को चुनौती दिया जाना—यदि दण्ड का पूर्णतः परिहार नहीं किया जाता और उसे चौदह वर्षों तक की अन्यून कालावधि तक लघूकृत नहीं किया जाता तो पूरा जीवन कारावास भुगतना होगा और आजीवन कारावास से कठिन कारावास अभिप्रेत है ।

नायब सिंह पुत्र मक्खन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य 453

—धारा 300, 302, 34 और 308 [सपठित आयुक्त अधिनियम, 1959 की धारा 25]—हत्या—चार अभियुक्तों द्वारा मृतक के सम्पूर्ण परिवार को समाप्त करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार से शस्त्रों से लैस होकर जाना—अपीलार्थी का बिना शस्त्र के उनके साथ चलना—यह अभिकथित किया जाना कि अपीलार्थी को बंदूक के साथ देखा गया था और घटना-स्थल पर गोलियों का मिलना—अपीलार्थी के बारे में युक्तियुक्त संदेह से परे हत्या में भाग लेने का सबूत न मिलना—ऐसे मामले में अपीलार्थी दोषमुक्ति का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हकदार है और भारतीय दंड संहिता की धारा 308 तथा आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन उसकी दोषसिद्धि अपास्त की जानी चाहिए।

बिशन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य 839

—धारा 302 और 53—हत्या—मृत्यु दंडादेश—परिशमनकारी परिस्थितियां—दंडादेश का लघूकरण—मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यदि किसी मामले को दुर्लभ से दुर्लभतम नहीं कहा जा सकता तो अभियुक्त पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में रूपांतरित कर दिया जाना चाहिए।

बिशन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य 839

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9)

—धारा 23 और 28—[सपठित वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 6, 8 और 10]—विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करार—परेषिती को क्षतिग्रस्त परेषण का प्रदाय किए जाने पर परेषक द्वारा क्षतिपूर्ति के लिए वाहक के विरुद्ध दावा किया जाना—परेषण के सम्बन्ध में मार्ग-पत्रक में शर्तों का विहित होना—वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 के उपबन्धों को विफल करते हुए वाद संस्थित करने के पूर्व नोटिस के लिए परिसीमा की विशेष कालावधि उपबन्धित करने वाला करार शून्य है।

एम० जी० ब्रदर्स लारी सर्विस बनाम मैसर्स प्रसाद टैक्सटाइल्स 803

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

—धारा 5 और 35—दस्तावेज की ग्राह्यता तथा उसका साक्ष्यिक मूल्य—दो अलग-अलग बातें हैं और उन्हें एक दूसरे के साथ मिलाया नहीं जा सकता।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

—धारा 13 और 32(5)—कुटुम्ब के वंशानुक्रम से संबंधित साक्ष्य का मूल्यांकन—उक्त साक्ष्य के मूल्यांकन को विचारगत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करना होगा जिससे कि किसी हितबद्ध व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत मिथ्या या कूटरचित वंशावली के भ्रमजाल से बचा जा सके।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

—धारा 13 और 40 से 43—केवल सर्वबन्धी निर्णयों का ग्राह्य होना चाहे वे पक्षकारों के बीच हों या नहीं—ऐसे व्यक्तिबंधी निर्णयों के साक्ष्य का मूल्य जो पक्षकारों के बीच है—यदि निर्णय न तो धारा 40 और न ही धारा 42 के अन्तर्गत आता है और न धारा 43 की अध्यपेक्षा को पूरा करता है, तो वह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होगा और धारा 13 के आधार पर ग्राह्य नहीं बन जाएगा।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

—धारा 32(5), 50, 59 और 60—वंशानुक्रम की बाबत मौखिक साक्ष्य—ऐसे साक्ष्य का मूल्यांकन करने के सम्बन्ध में न्यायालय की प्रणाली—न्यायालय को विशिष्ट सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए उत्तराधिकार का निर्धारण करना होगा।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

—धारा 35—उक्त धारा के अधीन दस्तावेज की ग्राह्यता के बारे में शर्तें पूरी की जानी चाहिएं।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

—धारा 35, 75 और 90—वंशानुक्रम को दर्शित करने वाला पुराना प्राइवेट दस्तावेज—उक्त दस्तावेज में दस्तावेज को लिखने वाले, उसकी प्रणाली, समय तथा उन परिस्थितियों का दर्शित न किया जाना जिनमें कि दस्तावेज तैयार किया गया था—परीक्षित दस्तावेज में वर्णित विभिन्न वारिसों के बारे में ऐसे किन्हीं व्यक्तियों का उल्लेख न होना जिन्हें ऐसी समस्त जानकारी थी—उक्त दस्तावेज संदेहास्पद होने के कारण उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

—धारा 61 और 62—कानूनों का निर्वचन—जहां विशिष्ट उपबन्ध उपलभ्य हो वहां धारा 13 जैसे उपबन्धों के प्रति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्देश नहीं किया जा सकता—राजगामी संपत्ति (एस्चीट) को उक्त सिद्धांत के लागू होने के बारे में सबूत का भार सरकार पर होगा।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

महाराष्ट्र एग्रीकल्चरल लैण्ड्स (सीलिंग आन होल्डिंग्स) ऐक्ट, 1961 [महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा) अधिनियम, 1961] (1961 का अधि० सं० 27)

—धारा 4(1) और स्पष्टीकरण (क)—"कौटुम्बिक एकक" —अधिकतम सीमा का अवधारण—पत्नी द्वारा पृथक् सम्पत्ति या स्त्रीधन के रूप में भूमि का धारण किया जाना—अधिकतम भूमि निर्धारित करते समय उक्त भूमि को "कौटुम्बिक एकक" द्वारा धृत भूमि में शामिल कर लिए जाने पर निर्धारिती द्वारा आक्षेप किया जाना—वास्तव में, कौटुम्बिक एकक के अधिकतम क्षेत्र का अवधारण करने के लिए यह तथ्य महत्वहीन है और यदि यह उपधारणा कर ली जाए, तो भी अधिकतम सीमा का अवधारण करते समय पत्नी की उक्त सम्पत्ति 'कौटुम्बिक एकक' की सम्पत्ति में जोड़ दी जाएगी।

महाराष्ट्र राज्य बनाम व्यासेन्द्र 824

मिलिटरी इंजीनियर सर्विस क्लास 1 [रिक्रूटमेंट, प्रमोशन एंड सीनियोरिटी] रूल्स, 1949 के परिशिष्ट 5 का पैरा 3 एवं नियम 3 और 4 [सपठित मिलिटरी इंजीनियर सर्विस क्लास 1 रिक्रूटमेंट रूल्स, 1953 के परिशिष्ट 5 का पैरा 3 तथा मिलिटरी इंजीनियर सर्विस क्लास 1 रूल्स, 1961 और 1962 के परिशिष्ट 4 का पैरा 3]—ज्येष्ठता का अवधारण—ज्येष्ठता सूची को चुनौती दिया जाना—संघ लोक सेवा आयोग द्वारा साक्षात्कार किए जाने के पश्चात् सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त व्यक्तियों की और विभागीय प्रोन्नति के आधार पर नियुक्त व्यक्तियों की स्थायी पदों पर पुष्टि करने में ज्येष्ठता का प्रश्न—कोटा नियम में एक बार छूट दे देने पर स्थायीकरण के लिए अनुक्रम समाप्त हो जाता है तथा सतत रूप से पद धारण करना पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए एकमात्र नियम है। प्रत्येक वर्ग के कोटे के अनुसार नियुक्तियां करना और स्थायी पदों पर उनकी पुष्टि करना वैध है।

ए० जनार्धन बनाम भारत संघ और अन्य 705

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यू० पी० इण्टरमीडिएट एजूकेशन ऐक्ट, 1921 (1921 का यू० पी० अधिनियम सं० 2)

—धारा 9(4) और 16-ङ—नियुक्ति—प्रभावी होने का समय—गैर सरकारी सहायता-प्राप्त संस्था की प्रबन्ध समिति द्वारा प्रधानाचार्य की नियुक्ति उस समय की जानी जब कि उत्तर प्रदेश सरकार ने विनियम द्वारा प्रदत्त नियुक्ति की शक्ति निलम्बित कर दी थी—चूंकि धारा 9(4) के अधीन विद्यमान विनिमय को उपातंरित या विखंडित करने वाला आदेश विधिमान्य है, इसलिए ऐसी नियुक्ति अप्रभावी है, यद्यपि वह अविधिमान्य नहीं है—अतः ऐसी नियुक्ति रद्द करने के पूर्व धारा 16-ङ(10) के अधीन सुनवाई का अवसर दिया जाना अपेक्षित नहीं है यद्यपि नियुक्त व्यक्ति उस अवधि के लिए वेतन पाने का हकदार है जिसके दौरान उसने प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया था।

रामजी द्विवेदी (डा०) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और और 659

वेस्ट बंगाल टेक्सिज आन एन्ट्री आफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया ऐक्ट, 1972 (1972 का 5)

—धारा 37(2) [सपठित टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया रूल्स, 1970 का नियम 12(2)] —1972 वाले अधिनियम के अधीन माल के मूल्य का विनिश्चय—यहां 1970 की नियमावली लागू होगी।

एच० एम० एम० लिमिटेड बनाम प्रवेश कर निदेशक, पश्चिमी बंगाल और अन्य 433

वेस्ट बंगाल टैक्सिज ऑन एन्ट्री आफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया रूल्स, 1970

—नियम 12(2)—"सर्वोत्तम निर्णय" की वैधता का विनिश्चय—यदि उक्त निर्धारण पक्षपातरहित रीति से और सदभावपूर्वक किया गया है तो वह वैध माना जाएगा।

एच० एम० एम० लिमिटेड बनाम प्रवेश कर निदेशक, पश्चिमी बंगाल और अन्य 433

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शब्द और पद

—"कर", "फीस", "तत्प्रतितत्" शब्दों का निर्वचन।

दिल्ली नगर निगम और अन्य बनाम मोहम्मद यासीन 789

संविधान, 1950

—अनुच्छेद 19(1)(छ), 265 और 301—फीसों की अवधारणा—फीस और कर की तुलना—तत्प्रतितत् (क्विड-प्रो-क्वो) का तत्व—उक्त तत्व की अध्यपेक्षा—सेवा प्रदान करने में राज्य द्वारा उपगत व्यय का अभिनिश्चय—जिस मद के लिए फीस उद्गृहीत की जाती है, उसके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से उपगत व्यय के अलावा अन्य संबद्ध व्यय भी कुल व्यय को अभिनिश्चित करते समय गिना जाना चाहिए।

दिल्ली नगर निगम और अन्य बनाम मोहम्मद यासीन 789

—अनुच्छेद 22(1)—उक्त अनुच्छेद के अधीन "अपनी पसन्द के विधि व्यवसायी द्वारा प्रतिरक्षा किए जाने का अधिकार"—उक्त अधिकार अभियुक्त के सांविधानिक अधिकारों के अन्तर्गत विधि-व्यवसायी प्रदान किए जाने को अन्तर्विष्ट नहीं करता है—इस विषय में परमादेश का रिट जारी नहीं किया जा सकता।

रंजन द्विवेदी बनाम भारत संघ 675

—अनुच्छेद 32 और 300-क [सपठित बिहार पेंशन रूल्स, 1950 का नियम 5 और नियम 5 की अनुसूची की मद सं० 3]—4 मई, 1971 में ही संविधान न्यायपीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना कि पेंशन का अधिकार सम्पत्ति का अधिकार है और सरकार कार्यपालक आदेश निकालकर उस आदेश को छीन नहीं सकती—राज्य सरकार का उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के उक्त निदेश का अनुपालन करने में किया गया विलम्ब अनुचित है, अतः वह पेंशन और उपदान की रकम का संदाय निश्चित तारीख तक करने के लिए बाध्य है।

देवकी नन्दन प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य 649

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—अनुच्छेद 32(2)—परमादेश जारी करना—सिविल सेवा—ज्येष्ठता और प्रोन्नति—अपीलार्थी की प्रोन्नति के बारे में कुछ कालावधि की गोपनीय रिपोर्ट की अनुपलब्धता के कारण विनिश्चय स्थगित रखना—रिपोर्ट की प्राप्ति पर प्रोन्नति समिति द्वारा अपीलार्थी की सेवा के अभिलेखों के आधार पर केवल यह संकल्प करना कि उसका मामला पुनः प्रारम्भ नहीं किया जा सकता—रिपोर्ट की प्राप्ति पर प्रोन्नति समिति को अपीलार्थी की प्रोन्नति के लिए उपयुक्तता का विनिश्चय करना चाहिए था ऐसा न करके समिति ने विधि के अनुसरण में कार्य नहीं किया। मामले का पुनः प्रारम्भ उस दशा में होता है जहां मामले पर विचार किया गया हो और कोई विनिश्चय कर लिया गया हो।

गनेन्द्र प्रसाद सेनगुप्ता बनाम भारत संघ और अन्य 831

—अनुच्छेद 136, 226 और 32—विशेष इजाज़त विषयक पिटीशन—मिथ्या अभ्यावेदन—पिटीशनरों द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष मिथ्या अभ्यावेदन के आधार पर उससे यथा-पूर्व-स्थिति सम्बन्धी आदेश अभिप्राप्त किया जाना—ऐसी स्थिति में, पिटीशनर कोई अनुतोष प्राप्त करने के लिए निर्रहित हैं—उनका और उनके काउन्सेल का आचरण निन्दनीय है जिसकी भर्त्सना करना न्यायसंगत है।

विजय कुमार कथूरिया (डा०) बनाम हरियाणा राज्य और अन्य 819

—अनुच्छेद 226—शिक्षण-संस्थाएं—छात्रों का प्रवेश—शिक्षण-संस्था में असंगत बातों के आधार पर और नियमों का अतिक्रमण करते हुए 'मौके पर प्रवेश' किया जाना—जिन छात्रों को नियमों का अतिलंघन करके गलत ढंग से प्रवेश दिया गया है, उन्हें संस्था से निकाल दिया जाना चाहिए और जिन छात्रों के नाम अन्यायोचित रीति से चयन किए गए छात्रों की सूची में से अपवर्जित किए गए हैं, उन्हें प्रवेश मिलना ही चाहिए—किन्तु वर्तमान परिस्थिति में चिकित्सा-महाविद्यालय में छात्रों के उतने स्थान बढ़ा देना न्यायोचित है, जितने छात्रों को गलत ढंग से प्रवेश किया गया था—दोनों वर्ग के छात्रों के बीच साम्या अपेक्षित है।

पंजाब इंजीनियरिंग कालेज, चण्डीगढ़ (उसके प्रधानाचार्य की मार्फत) बनाम संजय गुलाटी और अन्य 637

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—अनुच्छेद 226—शिक्षण-संस्थाएं—छात्रों का प्रवेश—न्यायालय द्वारा यह घोषित किया जाना कि कतिपय छात्रों को अन्यायोचित रीति से प्रवेश दिया गया है—गुणागुण को ध्यान में लाए बिना, केवल उन्हीं को प्रवेश के लिए अधिमानता नहीं दी जा सकती जिन्होंने अन्यायोचित रीति से प्रवेश पा लिया था—अतः ऐसे सभी अभ्यर्थियों के मामलों पर भी, जिन्होंने रिट पिटीशन फाइल किया था या नहीं, किन्तु जिन्होंने प्रवेश के लिए आवेदन किया था, गुणागुण के आधार पर विचार किया जाना चाहिए ।

पंजाब इंजीनियरिंग कालेज, चण्डीगढ़ (उसके प्रधानाचार्य की मार्फत) बनाम संजय गुलाटी और अन्य 637

—अनुच्छेद 296—राजगामी संपत्ति का दावा—राजगामी संपत्ति के सिद्धांत के लागू होने के विषय में शर्तें पूरी हो जाने पर सबूत का भार सरकार पर रहता है और यह मात्र इस कारण प्रतिवर्तित नहीं होता कि दावेदार द्वारा सम्पत्ति के बारे में हक और स्वामित्व को साबित करने में असफलता रही है ।

बिहार राज्य बनाम श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य 492

—अनुच्छेद 301 और 304(ख)—प्रतिकरात्मक कर—राज्य द्वारा जनता को सुविधाएं देने की दृष्टि से व्यय किया जाना—ऐसे व्यय की कुल रकम का अभिनिश्चयन—वसूल किए गए कर की ऐसी रकम व्यय की उस रकम से अननुपातिक रूप से अधिक नहीं होनी चाहिए जो राज्य जनता को सुविधाएं देने के लिए उपगत करता है, यदि ऐसे कर से हुई आय का पर्याप्त भाग सुविधाएं देने में खर्च किया जाता है, तो प्राप्ति और व्यय के बीच छोटा-मोटा अन्तर महत्वहीन है ।

मालवा बस सर्विस (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य 750

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

—धारा 96 और 105 तथा आदेश 20, नियम 11—[सपठित बाम्बे उच्च न्यायालय का लैटर्स पैटेण्ट, खण्ड 15]—आदेश के विरुद्ध की गई अपील का सक्षम न होना—तथ्यों के आधार पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किस्तों में संदाय करने सम्बन्धी निदेश की बाबत यह समझा जाएगा कि वह तब तक आदेश की कोटि में रहेगा जब तक कि नियम 11 के अधीन उस आदेश को समाविष्ट करने वाली डिक्री लिपिबद्ध न कर दी जाए—ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती।

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड 846

—धारा 96 और आदेश 23, नियम 1 [सपठित भारत का संविधान—अनुच्छेद 133 और 136]—अपील—उचित अपील फाइल करने के अधिकार पर इस तथ्य का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता कि पूर्वतर अक्षम अपील वापस ले ली गई है।

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड 846

—धारा 96 और आदेश 41—अपील का अधिकार—अपील करने का अधिकार विधि के किसी उपबंध के अधीन होना आवश्यक है—यदि अपीलार्थी जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील का अधिकार है, परिसीमा की अवधि के भीतर अपील फाइल कर देता है, तो उसकी अपील सक्षम है।

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड 846

—आदेश 2, नियम 2—केवल वादों को लागू होना, न कि अपीलों को—जहां पश्चात्‌वर्ती अपील का वाद-हेतुक पूर्वतर अपील के वाद-हेतुक से भिन्न हो, वहां नियम 2 में निहित सिद्धान्त भी लागू नहीं होगा।

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड 846

—आदेश 41, नियम 1—अपील—अपील डिक्री के बिना फाइल की जा सकती है किन्तु उसे परिसीमा अवधि के भीतर ही प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए—यदि ऐसा नहीं होता तो अपील सक्षम नहीं होगी।

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इण्डिया लिमिटेड 846

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अगस्त, 1983

तुलनात्मक सारणी

क्रम सं०	निर्णय तथा दिनांक	एस० सी० आर०	ए० आई० आर०	एस० सी० सी०	एस० सी० जे०
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1.	एच० एम० एम० लिमिटेड बनाम प्रवेश कर निदेशक; पश्चिमी बंगाल और अन्य (15-4-83)	—	1983 जुलाई, 586	—	—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
2.	नायब सिंह पुत्र मक्खन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य (19-4-83)	—	1983 सितम्बर, 855	(1983) 2 जून, 454	—
3.	मनोहर नाथ कौल बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (19-4-83)	—	1983 जुलाई; 610	—	—
4.	बिहार राज्य बनाम राधाकृष्ण सिंह (20-4-83)	—	1983 अगस्त, 684	(1983) 3 जुलाई, 118	—
5.	पंजाब इंजीनियरिंग कालेज; चण्डीगढ़ (उसके प्रधानाचार्य की मार्फत) बनाम संजय गुलाटी और अन्य (20-4-83)	—	1983 जुलाई; 580	—	(1983) 2 जुलाई 26
6.	देवकी नन्दन प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य (22-4-83)	—	1983 नवम्बर 1134	—	—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
7.	रामजी द्विवेदी (डा०) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (26-4-83)	—	—	(1983) 3 जुलाई 52	—
8.	रंजन द्विवेदी बनाम भारत संघ (26-4-83)	—	1983 जुलाई 624	(1983) 3 अगस्त 307	—
9.	आजाद सिंह और अन्य बनाम बरकतुल्ला खां और अन्य (26-4-83)	—	—	(1983) 3 जुलाई 111	—
10.	ए० जनार्धन बनाम भारत संघ और अन्य (26-4-83)	—	1983 अगस्त 769	(1983) 3 सितम्बर 601	—
11.	मालवा बस सर्विस (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (28-4-83)	—	1983 जुलाई 634	(1983) 3 अगस्त 237	—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
12.	पटेल सुरेश भाई जश भाई बनाम पटेल सतभाई माथुर भाई (28-4-83)	—	1983 जुलाई 648	(1983) 3 अगस्त 294	—
13.	दिल्ली नगर निगम और अन्य बनाम मोहम्मद यासीन (28-4-83)	—	1983 जुलाई 617	(1983) 3 अगस्त 229	—
14.	एम० जी० ब्रदर्स लारी सर्विस बनाम मैसर्स प्रसाद टैक्सटाइल्स (28-4-83)	—	—	—	—
15.	विजय कुमार कथूरिया बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (29-4-83)	—	1983 जुलाई 622	(1983) 3 अगस्त 333	—
16.	महाराष्ट्र राज्य बनाम व्यासेन्द्र (3-5-83)	—	1983 जुलाई 632	(1983) 3 जुलाई 70	—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
17.	गनेन्द्र प्रसाद सेन गुप्ता बनाम भारत संघ और अन्य (3-5-83)	—	—	(1983) 3 अगस्त 303	—
18.	बिशन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य (3-5-83)	—	1983 अगस्त 748	—	—
19.	एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य बनाम दि स्टेट कारपोरेशन आफ इण्डिया (5-5-83)	—	1983 अगस्त 786	(1983) 3 जुलाई 75	—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एच० एम० एम० लिमिटेड

बनाम

प्रवेश कर निदेशक, पश्चिमी बंगाल और अन्य

(H. M. M. Limited

v.

Director of Entry Tax, West Bengal & Others)

(15 अप्रैल, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति ए० वरदराजन और ए० एन० सेन)

वेस्ट बंगाल टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया ऐक्ट, 1972 (1972 का 5)—धारा 37(2) [सपठित टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया रूल्स, 1970 का नियम 12(2)]—1972 वाले अधिनियम के अधीन माल के मूल्य का विनिश्चय—यहां 1970 की नियमावली लागू होगी।

वेस्ट बंगाल टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया रूल्स, 1970—नियम 12 (2)—"सर्वोत्तम निर्णय" की वैधता का विनिश्चय—यदि उक्त निर्धारण पक्षपातरहित रीति से और सद्भावपूर्वक किया गया है तो वह वैध माना जाएगा।

इस मामले में अपीलार्थी का उत्पाद (हार्लिक्स पाउडर) पंजाब तथा आन्ध्रप्रदेश में लगाए गए कारखानों में किया जाता है। तत्पश्चात् उत्पाद का परिवहन बड़े-बड़े आधान पात्रों में किया जाता है। माल के मूल्य के बारे में विवाद उत्पन्न हो गया जिसका मुख्य आधार यह था कि क्या लागत के अन्तर्गत केवल निर्माण की लागत शामिल होगी अथवा उसके अन्तर्गत बीजक, भाड़ा, बीमा आदि भी अन्तर्विष्ट होंगे। द्वितीय प्रत्यर्थी के समक्ष अपील में इस बारे में बहस की गई और यह दलील दी गई कि कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में 1970 वाले नियम अधिकारातीत थे। इस त्रुटि पर भी जोर दिया गया कि दस्तावेज़ों पर जो प्रति दिखलाई गई थी वह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुप्रमाणित प्रति नहीं थी और न ही मूल दस्तावेज दिखाया गया था। इस प्रकार सहायक निदेशक के टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया ऐक्ट 1972 के अधीन अपील फाइल की गई। सहायक निदेशक के निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में की गई अपील तथा रिट पिटीशन को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—सेन्ट्रल एक्साइज रेगूलेशन्स को ध्यान में रखते हुए नाभा अथवा राजामुन्द्री से सीधे माल के निर्यात की दशा में बीजक मूल्य पर उत्पाद शुल्क के संदाय पर निकासी की जाती है और इसके अतिरिक्त विनिर्माण की लागत तथा लाभ शामिल रहते हैं। विक्रय उपयोग अथवा उपभोग के लिए कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में लाए गए हॉलिक्स पाउडर पर प्रवेश कर उद्ग्रहणीय हो जाता है। 1978 वाला अधिनियम 16 नवम्बर, 1970 को या उसके आस-पास प्रवृत्त हुआ था। 1970 वाला नियम 1970 के अधिनियम की धारा 34 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित किया गया था, और उसे टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया आर्डिनेंस, 1972 22 मार्च 1972 को प्रतिस्थापित करके प्रख्यापित किया गया था। 1972 वाला अध्यादेश 1972 के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। 1972 वाला यह अधिनियम 1970 के नियम के निरंतर प्रवर्तन के लिए किसी उपबन्ध को अन्तर्विष्ट नहीं करता। (पैरा 5)

यह स्पष्ट है कि 1970 वाली नियमावली के नियमों को अध्यादेश की धारा 1(3) के उपबन्धों तथा 1972 के अधिनियम की धारा 37(2) द्वारा सजीव रखा गया है और यह कि प्रवेश कर अधिकारी को इस बात की स्वतंत्रता है कि वह नियम 12(2) के अधीन माल के मूल्य को अभिनिश्चित करने के लिए "सर्वोत्तम निर्णय" की पद्धति का आश्रय ले परन्तु यह तब जब कि उसकी अपेक्षा पूरी होती हो अर्थात् यह कि उक्त मूल्य विपत्र या बीजक या पारेषण पत्र उपलभ्य न होने या पेश न किए जाने के कारण अभिनिश्चेय नहीं है जिसे कि पारेषक द्वारा जारी किया गया था और न ही समस्त प्रकृति के अन्य दस्तावेजों द्वारा या यह दर्शित करने वाले अन्य दस्तावेजों द्वारा उपलभ्य नहीं है जोकि अन्य प्रभारों, शुल्कों तथा फीस को दर्शित करता हो अथवा अपेक्षित हो और निर्धारण अधिकारी का व्यवहारी द्वारा दर्शित अथवा घोषित मूल्य की युक्तियुक्तता के बारे में समाधान न हुआ हो। (पैरा 12)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्धारण अधिकारी ने यह अभिनिर्धारित किया कि उत्पाद शुल्क का संदाय नाभा स्थित कारखाने में से माल के हटाए जाने के समय संदत्त नहीं किया गया था। अपीलार्थी की यह दलील है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विनियमों पर ध्यान देते हुए केवल नाभा या राजमुन्द्री से सीधे माल के निर्यात के मामले में ही बीजक मूल्य के आधार पर उत्पाद शुल्क का संदाय किए जाने पर कारखाने में से माल की निकासी प्रभावशील होती है और इस मूल्य के अन्तर्गत निर्माता की लागत तथा उसका लाभ सम्मिलित है। किन्तु जो प्रति पेश की गई थी, वह प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं थी और न ही मूल "गेट पास" पेश किया गया था इसलिए यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि निर्धारण अधिकारी उस प्रति को नामंजूर करने हेतु न्यायोचित नहीं था और उसके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना कि उत्पाद शुल्क नाभा स्थित कारखाने में से सम्बद्ध सम्प्रेक्षण के हटाए जाने के समय संदत्त नहीं किया गया था, यथापूर्व न्यायोचित नहीं था। (पैरा 13)

वर्तमान मामले में ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके बारे में यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि निर्धारण अधिकारी अपीलार्थी के विरुद्ध कोई पक्षपात रखता था अथवा यह कि माल के निर्धार्य मूल्य का उसका प्राक्कलन सद्भावपूर्वक प्राक्कलन नहीं था या फिर उसका कोई वैवेकिक आधार नहीं था। न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि निर्धारण अधिकारी के समक्ष माल के मूल्य की बाबत अपीलार्थी की घोषणा को स्वीकार न करने के लिए पर्याप्त कारण था और यह कि "सर्वोत्तम निर्णय" के आधार पर विक्रय मूल्य का उसका निर्धारण वैवेकिक है और वह कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में अपीलार्थी की स्वयं अपने अभिकर्ता की दर सूची पर आधारित है। (पैरा 15)

	निर्दिष्ट निर्णय	पैरा
[1974]	1 एस० सी० आर० 25 : हाजी लाल मोहम्मद बीड़ी वर्क्स, इलाहाबाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य Haji Lal Mohd. Biri Works, Allahabad *v.* The State of U. P. and others);	15
[1970]	76 आई० टी० आर० 719 : आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल बनाम पदमचन्द रामगोपाल (Commissioner of Income-tax, West Bengal-1 *v.* Padamchand Ramgopal).	15

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिविल अपीली अधिकारिता : 1980 की सिविल अपील सं० 861 (एन)

अपील मामला संख्या 3970 एच/1976-77 में सहायक निदेशक प्रवेश कर, पश्चिमी बंगाल सरकार के तारीख 25 सितम्बर, 1979 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी/पिटीशनर की ओर से : सर्वश्री शंकर घोष, ए० सी० गुलाटी, बी० बी० साहनी और बी० पी० घोष।

प्रत्यर्थी की ओर से : सर्वश्री डी० एन० मुखर्जी, डी० पी० मुखर्जी, जी० एस० चैटर्जी और पी० के० चैटर्जी।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ए० वरदराजन ने दिया।

न्यायाधिपति वरदराजन—

विशेष इजाजत लेकर की गई यह सिविल अपील द्वितीय प्रत्यर्थी, सहायक निदेशक, प्रवेश कर, पश्चिमी बंगाल के तारीख 25 सितम्बर, 1979 वाले आदेश के विरुद्ध है जिसमें कि अपीलार्थी हिन्दुस्तान मिल्क फूड मैन्युफैक्चरर्स लिमिटेड के मामले को अपील संख्या 3970 एच/1976-77 वाले अपील मामले में अपीलार्थी के मामले को खारिज कर दिया गया। यह अपील टैक्सिज़ ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया ऐक्ट, 1972 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 1972 का अधिनियम कहा गया है) की धारा 27 के अधीन "सर्वोत्तम निर्णय निर्धारण के आधार पर 18 इस्पात ड्रमों में अन्तर्विष्ट 8736 किलोग्राम हार्लिक्स पाउडर की बाबत हुसेनाबाद रोड चुंगी-चौकी में प्ररूप 5 सं० डी-98,3001 में किए गए प्रवेश कर के निर्धारण के विरुद्ध फाइल किया गया था। इसका सम्बन्ध कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र के अन्तर्गत उत्पाद की विक्रय कीमत के प्रति निर्देश से था। अपीलार्थी एक सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी है जो कि कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन निगमित की गई है और जिसका रजिस्ट्रीकृत कार्यालय पटियाला रोड, नाभा में स्थित है। यह कम्पनी दूध के उत्पादों के निर्माण तथा विक्रय में लगी हुई है जिनके अन्तर्गत वह दुग्ध खाद्य भी शामिल हैं जो कि हार्लिक्स के नाम से प्रसिद्ध है। अपीलार्थी का उत्पाद पंजाब में नाभा में स्थित तथा आन्ध्र प्रदेश में राजामुन्द्री के कारखानों में किया जाता है। यह उत्पाद विभिन्न इस्पात ड्रमों में जिनमें से प्रत्येक में 182 किलोग्राम पाउडर आता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है, परिवहन किया जाता है। अपीलार्थी ने 1,22,304-00 रुपये के रूप में हुसैनाबाद चुंगी-चौकी के स्थल पर कलकत्ता में आयात किया गया। पूर्वोक्त 8,736 किलोग्राम पाउडर का मूल्य 14 रुपये प्रति किलोग्राम के हिसाब से दर्शित किया। अपीलार्थी की दलील यह थी कि स्टाक अन्तरण बीजक के अनुसार मूल्य 5.9891 रुपए प्रति किलोग्राम है और परिदत्त लागत जिसमें कि माल भाड़ा तथा बीमा भी शामिल है, कलकत्ता में 7.694 रुपए प्रति किलोग्राम बनता है, यह कि अपीलार्थी द्वारा मूल्य, भाड़े तथा बीमे की बाबत घोषणा तथा दस्तावेज ऐसे थे कि निर्धारण अधिकारियों को हुसैनाबाद रोड चुंगी-चौकी पर स्वीकार कर लेना चाहिए था और यह कि जी० पी० 1 प्रवेश कर के निर्धारण के प्रयोजनार्थ विसंगत था और इसे प्रवेश के स्थल पर उत्पाद के मूल्य के निर्धारण के लिए आधार नहीं माना जाना चाहिए था। तारीख 11-8-1976 का प्रवेश कर अधिकारी जो कि सम्बद्ध चुंगी चौकी में तैनात था। ज्ञापन सं० 779/ई० टी० ओ/एच०-76 में निर्धारण अधिकारियों के अधीन अन्तर्विष्ट हैं जिनमें कि ऊपर वर्णित प्रपत्र 5 में दर्शित निर्धारण मूल्य को निकालने के लिए उन्होंने अपने कारण भी बतलाए हैं। बार-बार भेजे गए स्मरण-पत्रों के बावजूद, निर्धारण अधिकारियों के समक्ष मूल दस्तावेज पेश नहीं किए गए। परिणामस्वरूप, निर्धारण "सर्वोत्तम निर्णय" के आधार पर कर दिया गया।

2. द्वितीय प्रत्यर्थी के समक्ष अपील में अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई थी कि टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया ऐक्ट, 1970 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1970 का अधिनियम" कहा गया है) टैक्सिज ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया रूल्स, 1970 [जिसे इसमें इसके पश्चात् "1970 का नियम" कहा गया है] इस आधार पर अधिकारातीत थे कि वे 1970 वाले अधिनियम की धारा 34 के अधीन विरचित किए गए थे और उन्हें 1972 वाले अधिनियम के प्रयोजनार्थ लागू नहीं किया जा सकता है। अपीलार्थी की ओर से यह भी दलील दी गई थी कि जहां कोई घोषणा-पत्र पेश किया जाता है और निर्धारण अधिकारी को व्यवहारी द्वारा दस्तावेज दर्शित किए जाते हैं तो निर्धारण अधिकारी को चाहिए था कि वह 1972 वाले अधिनियम की धारा 14(1) के अनुसार कार्यवाही करता और यह कि व्यवहारी की ओर से न तो कोई लोप किया गया था और न ही कोई असफलता दर्शित की गई थी और इसलिए जैसा कि 1970 वाली नियमावली के नियम 12(2) में उपबन्धित है "सर्वोत्तम निर्णयानुसार"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्पाद के मूल्य का अवधारण करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। 1972 वाले अध्यादेश द्वारा 1970 के अधिनियम को प्रतिस्थापित कर दिया गया। द्वितीय प्रत्यर्थी के अनुसार, अध्यादेश की धारा 1(3) तथा 1972 वाले अधिनियम की धारा 37(2) में 1970 के नियमों के प्रावधान को जारी रखने के लिए उपबन्ध किया गया है और यह भी कि वे उपबंध 1972 के वर्तमान अधिनियम के अधीन विधिमान्य रूप से लागू किए जा सकते हैं। अपीलार्थी द्वारा जो मूल्य संबंधी घोषणा की गई थी तथा उस मूल्य से भी अत्यधिक न्यूनतर थी जो कि उत्पाद शुल्क अधिकारियों द्वारा जी० पी-1 में उस समय टैरिफ मूल्य के रूप में स्वीकार की गई थी जब कि पूर्वोक्त उत्पाद नाभा में निष्कासित किया गया था और उसे इस कारणवश निर्धारण अधिकारी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था जो कि तारीख 11 अक्तूबर, 1976 वाले पूर्वोक्त ज्ञापन में उसके द्वारा बतलाया गया था और इसलिए उसने अपीलार्थी के विक्रेता अभिकर्ता द्वारा प्रचालित माल की मूल्य सूची के प्रति निर्देश से कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में माल के लगभग विक्रय मूल्य के आधार पर मूल्य का निर्धारण किया था जैसा करने के लिए वह 1970 वाले नियमावली के नियम 12(2) के अधीन करने के लिए प्राधिकृत है, यदि उसका समाधान हो जाता है कि निर्धारिती द्वारा जो मूल्य वर्णित किया गया था उसके बारे में यह प्रतीत नहीं होता है कि वह युक्तियुक्त है।

3. उत्पाद शुल्क "गेट पास", जो कि निर्धारण प्राधिकारी के समक्ष पेश किया गया था और जो मूल्य को दर्शित करता था, वह भी उसी माल तथा व्यवहारी से संबंधित था। अपीलार्थी द्वारा जो प्रति पेश की गई थी उसके बारे में यह तात्पर्यित था कि वह अधीक्षक के उत्पाद शुल्क तथा सीमा शुल्क, पटियाला के तारीख 5 दिसम्बर, 1970 वाले सी० नं० सीई/20/बी० पी० ई/70 के रूप में तात्पर्यित थी और अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई थी कि उत्पाद शुल्क का संदाय नाभा में नहीं किया गया था। किन्तु यह प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं थी और न ही उसकी मूल प्रति पेश की गई थी और इसलिए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह साबित नहीं हुआ है कि नाभा में कारखाने में से माल को ले जाए जाते समय उत्पाद शुल्क का संदाय नहीं किया गया था। इन परिस्थितियों में, द्वितीय प्रत्यर्थी ने यह अभिनिर्धारित किया कि निर्धारण अधिकारी ने उस सामग्री पर विचार किया था जो कि उसे उपलभ्य की गई थी और उसने अपने समक्ष रखे गए मामले के विभिन्न पहलुओं की भी जांच की थी, यह कि उसके द्वारा जो विक्रय मूल्य अभिनिश्चित किया गया था वह थोक कीमत के रूप में है, न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि उत्पाद की खुदरा विक्रय कीमत के तौर पर और यह कि निर्धारण अधिकारी द्वारा अभिनिश्चित मूल्य के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह मनमाना है। मामले को इस दृष्टिकोण से देखते हुए उसने अपील को खारिज कर दिया तथा प्रवेश कर अधिकारी द्वारा प्रविष्ट किए गए कर के निर्धारण की पुष्टि कर दी।

4. उपर्युक्त सिविल अपील में अपीलार्थी द्वारा रिट पिटीशन फाइल किया गया है और उक्त अपीलार्थी के अंशधारी तथा अटर्नी ने रिट पिटीशन के उपाबन्ध 3, 5 और 6 को अभिखण्डित करने के लिए तथा प्रत्यर्थी (प्रवेश कर निदेशक तथा पश्चिमी बंगाल सरकार और अन्य) और जब तक 1972 वाले अधिनियम की धारा 17 के निबन्धनों में विहित प्रक्रिया को अपनाया जाता है और यदि कोई त्रुटिपूर्वक कथन घोषित मूल्य के बारे में किया गया है और समाधानप्रद रूप से स्पष्ट नहीं कर दिया जाता तब तक कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र के अन्तर्गत प्रवेश स्थल पर पिटीशनरों द्वारा घोषित हार्लिक्स पाउडर के मूल्य से भिन्न किसी आधार पर प्रवेश कर को उद्गृहीत करने अथवा उसकी मनमानी से अवरुद्ध रखा जाए। उपाबन्ध III तारीख 20 जुलाई, 1976 वाला नोटिस है जो कि पिटीशनरों को उस समय जारी किया गया था जब उनकी सुनवाई तारीख 13 जून, 1976 वाले उच्च न्यायालय पर विचार करते हुए प्रवेश करके नये सिरे से निर्धारण के लिए सुनवाई हेतु नियत किया गया था और जिसमें तारीख 30 जून, 1974 वाले संख्या 228479 को प्ररूप 5 में निर्धारण आदेश को अपास्त कर दिया गया था और यह निदेश दिया गया था कि पिटीशनरों को कार्यवाही का युक्तियुक्त अवसर दिए जाने के पश्चात् तीन मास के भीतर नये सिरे से निर्धारण कराया जाए। उपाबन्ध 5 सहायक निदेशक, प्रवेश कर, पश्चिम बंगाल का आदेश है जो कि पूर्वोक्त सिविल अपील में द्वितीय प्रत्यर्थी था और इस सिविल अपील में आक्षेप किया गया है। उपाबन्ध 6 तारीख 24/31-5-1979 वाले प्रवेश कर अधिकारी की सूचना में जिसमें कि पिटीशनरों से यह मांग की गई है कि वे 12 जून, 1979 को उसके समक्ष हाजिर हों और बही-खाते तथा अन्य दस्तावेज पेश करें जिससे कि इस बात का अवधारण किया जा सके कि 14 जुलाई, 1974 को प्रवेश शुल्क के निर्धारण में जो न्यून उद्ग्रहण किया गया था अभिनिश्चित किया जा सके और उसके संबंध में प्ररूप सं० 5 सं० सी-240284 के भाग 2 में संदाय के लिए मांग पिटीशनरों के नाम जारी की गई है।

5. रिट पिटीशन में पिटीशनरों का मामला नाभा और राजामुन्द्री

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में स्थित कारखानों में पिटीशनरों द्वारा विनिर्मित पाउडर का परिवहन अन्य स्थानों के साथ-साथ विभिन्न पैकिंग स्थानों पर, जिनमें हावड़ा भी शामिल है, बड़े-बड़े इस्पात के ड्रमों में किया जाता है जिनसे प्रत्येक ड्रम में 182 किलोग्राम हार्लिक्स पाउडर अन्तर्विष्ट होता है। कलकत्ता में प्रवेश करने वाला माल नगरपालिका क्षेत्र के बाहर स्थित चुंगी-चौकी से होकर गुजरता है। कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में हार्लिक्स पाउडर के प्रविष्ट किए जाने के पश्चात् पाउडर बोतलों में पैक किया जाता है जिससे कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में नगर अधिनियम के अधीन निकासी हेतु विपणन किया जा सके। तत्पश्चात् लगभग आधी मात्रा कलकत्ता में विक्रयार्थ प्रतिधारित की जाती है और शेष का आयात कलकत्ता से बाहर विक्रय के लिए किया जाता है। पिटीशनरों के कथनानुसार, चुंगी-चौकी पर आने वाला माल विनिर्माण, भाड़े और बीमा प्रभारों की लागत धारण करता है और उसका कोई अन्य मूल्य नहीं होता और केवल जब कि ड्रमों में भरा हुआ हार्लिक्स पाउडर कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में प्रविष्ट होता है, बोतलों में भरने की लागत, बोतलों का खर्च तथा विनिर्मित करने के लाभ, उसमें जोड़ दिए जाते हैं और उत्पाद शुल्क का निर्धारण किया जाता है और कुल मूल्य पर इसका संदाय होता है। पैकिंग के स्थानों से बाहर निकाले जाने के पश्चात्, माल विक्रयार्थ मण्डी में भेजे जाते हैं और उनके अन्तर्गत विक्रय-कर जैसे करों के अलावा थोक व्यापारियों तथा खुदरा व्यापारियों के कारबार के लाभों का दायित्व भी शामिल होता है। सेन्ट्रल एक्साईज़ रेगूलेशन्स को ध्यान में रखते हुए नाभा अथवा राजामुन्द्री से सीधे माल के निर्यात की दशा में बीजक मूल्य पर उत्पाद शुल्क के संदाय पर निकासी की जाती है और इसके अतिरिक्त विनिर्माण की लागत तथा लाभ शामिल रहते हैं। विक्रय उपयोग अथवा उपभोग के लिए कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में लाए गए हार्लिक्स पाउडर पर प्रवेश कर उद्ग्रहणीय हो जाता है। 1976 वाला अधिनियम 16 नवम्बर, 1970 को या उसके आस-पास प्रवृत्त हुआ था। 1970 वाला नियम 1970 के अधिनियम की धारा 34 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित किया गया था, जैसाकि पहले वर्णित किया जा चुका है, उसे टैक्सिज़ ऑन एन्ट्री ऑफ गुड्स इन्टु कलकत्ता मैट्रोपोलिटन एरिया आर्डिनेन्स, 1972 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 1972 का अध्यादेश कहा गया है) 22 मार्च, 1972 को प्रतिस्थापित करके प्रख्यापित किया गया था। 1972 वाला अध्यादेश 1972 के अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। 1972 वाला यह अधिनियम 1970 के नियम के निरंतर प्रवर्तन के लिए किसी उपबंध को अन्तर्विष्ट नहीं करता। पिटीशनरों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने सुसंगत दस्तावेजों सहित, जिनमें कि सम्प्रेक्षक का प्रमाणपत्र तथा पिटीशनरों के संपरीक्षित लेखा अन्तर्विष्ट हैं, पिटीशनरों द्वारा घोषित पिटीशनरों के माल के परेषणों की लागत पर ध्यान न देते हुए कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र के भीतर उत्पाद की विक्रय-कीमत के प्रति निर्देश से "सर्वोत्तम निर्णय" के आधार पर लगाए गए प्रवेश कर की वैधता, विधिमान्यता तथा आक्षेपकृत उद्ग्रहण अधिकारिता एवं प्रवेश कर की वसूली पर आक्षेप किया है।

6. नाभा स्थित कारखाने से कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में आयात किए गए हार्लिक्स पाउडर के परेषण की बाबत पिटीशनर सं० 1 ने निरंतर रूप से विहित प्रारूप में अध्यपेक्षित घोषणा प्रस्तुत की जिसके साथ सुसंगत दस्तावेज जैसे कि बीजक, परेषण टिप्पण, बीमा आवरण भी भेजे गए जिनकी कल्पना नियम 12 में की गई है एवं लागत कागज-पत्र भी प्रस्तुत किए गए जोकि लेखा परीक्षक मैसर्स ए० एफ० फर्गूसन एण्ड कम्पनी द्वारा सम्यक् रूप से प्रमाणित किया गया था और जिनमें कलकत्ता में हार्लिक्स पाउडर की परिदत्त लागत प्रकट की गई थी जिसके अन्तर्गत निर्माण की लागत बीमा तथा भाड़ा 1970-71 में 4.9093 रुपये प्रति किलोग्राम और 1971-72 में 4.6922 रुपये प्रति किलोग्राम एवं 1972-73 में 4.9913 रुपये प्रति किलोग्राम के रूप में दर्शित थे। बड़े-बड़े आधान पात्रों में कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में लाए गए हार्लिक्स पाउडर के लिए घोषित मूल्य 5.9891 रुपए प्रति किलोग्राम था जिसके लिए बीमा आवरण अभिप्राप्त किया गया था। यह मूल्य प्रथमतया कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में माल के प्रवेश के समय स्वीकार किया गया था। किन्तु अप्रैल के पश्चात्वर्ती भाग में तथा मई, 1974 के पूर्ववर्ती भाग में प्रत्यर्थियों ने 1972 के अधिनियम की धारा 21 के अधीन परिवहन पार-पत्र जारी करने से इंकार कर दिया जैसा कि ऐसे हार्लिक्स पाउडर की बाबत जारी किए जाने की मांग की गई थी जोकि कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र के अन्तर्गत विक्रय, उपयोग अथवा उपभोग के लिए आशयित नहीं था और उसने उसके ऊपर प्रवेश कर उद्गृहीत करने की ईप्सा की। इसलिए पिटीशनरों ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में 1974 का रिट पिटीशन संख्या 155 फाइल किया और 6 मई, 1974 को अन्तरिम व्यादेश अभिप्राप्त किया। इसके बदले में चुंगी-चौकी में प्रवेश कर अधिकारी ने पिटीशनरों द्वारा माल के घोषित मूल्य को स्वीकार करने से इंकार कर दिया और 1970 वाले नियम के नियम 12(2) के अधीन "सर्वोत्तम निर्णय" के आधार पर प्रवेश कर का निर्धारण, उद्ग्रहण तथा मांग तात्पर्यित किया। पिटीशनरों ने माल के अधिहरण से बचने के लिए मांगा गया प्रवेश कर संदत्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर दिया और तत्पश्चात् कलकत्ता उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन संख्या 4133/1974 के अधीन 10 परेषणों की बाबत निर्धारण तथा विहित प्रारूप में पिटीशनरों द्वारा घोषित मूल्य के ग्रहण न किए जाने पर आक्षेप किया जिसका मूल्य समर्थन सुसंगत दस्तावेजों द्वारा किया गया था। रिट पिटीशन को तारीख 13 मई, 1976 वाले संक्षिप्त आदेश द्वारा निपटा दिया गया और उसमें यह निदेश दिया गया कि विधि के अनुसार नये सिरे से निर्धारण संबंधी आक्षेप के पिटीशनरों के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना पिटीशनरों को अवसर प्रदान करने के पश्चात् नवीन निर्धारण का निदेश दिया जाएगा।

तदनुसार प्रत्यर्थी सं० 4 ने 11 अगस्त, 1976 को नये सिरे से निर्धारण नहीं किया। तारीख 11 अगस्त, 1976 के उक्त नवीन निर्धारण से तथा उसके आधार पर पश्चात्वर्ती निर्धारणों से भी व्यथित होकर पिटीशनरों ने लगभग 250 अपीलें फाइल कीं जिनमें से 201 को प्रत्यर्थी सं० 2 द्वारा 1976-77 की अपील संख्या 3870 एच में तारीख 25 सितम्बर, 1979 वाले आदेश के निबंधनों के अनुसार निपटा दिया गया और ऐसा करते समय बंगला देश को निर्यात के दौरान नाभा स्थित कारखाने में से हार्लिक्स पाउडर के परेषण की बाबत उत्पाद शुल्क के प्रयोजनों के लिए प्रारूप जी० पी०-1 में विद्यमान मूल्य दर सूची का जोरदार रूप से अवलम्ब लिया गया और इस तथ्य की उपेक्षा कर दी गई कि उत्पाद-शुल्क का संदाय नाभा में केवल उस परेषण की बाबत किया गया था जिसकी निकासी निर्यात के दौरान की गई थी और अन्य सभी मामलों में ये संदाय केवल तभी किए गए थे जबकि माल को बाजार में भेजने योग्य अवस्था में रखा गया था और उन्हें भली भांति कलकत्ता में अलग आदान पात्रों में पैक किया गया था। प्रत्यर्थी सं० 2 और 4 ने उन दस्तावेजों को नामंजूर कर दिया जोकि पिटीशनरों द्वारा 1970 वाली नियमावली के नियम 22(1) के अधीन निर्धारण के प्रयोजनों के लिए पेश किया गया था और उक्त नियमावली के नियम 12(2) के अधीन "सर्वोत्तम निर्णय निर्धारण" का आश्रय लिया गया था तथा करादेय मूल्य का निर्धारण कलकत्ता में स्थानीय मार्ग में 450 ग्राम वाली प्रत्येक बोतल की खुदरा विक्रय कीमत के आधार पर किया गया था। हालांकि पिटीशनरों का कदापि यह आशय नहीं था कि वे विक्रय करेंगे और उन्होंने कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में अथवा अन्यत्र बड़े-बड़े आदान पात्रों में हार्लिक्स पाउडर को नहीं भेजा है। बड़े-बड़े आदान पात्रों में हार्लिक्स पाउडर का निर्धार्य मूल्य निकालने के लिए कोई न्यायौचित्य नहीं था, जोकि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिटीशनरों को प्रवेश चुंगी-चौकी "पाउडर की परिदत्त लागत से भिन्न हो" प्रत्यर्थी सं० 2, 4 द्वारा जो आधार अपनाया गया है वह 1972 वाले अधिनियम की धारा 13 और 14 के अधिकारातीत है। आक्षेपकृत आदेशों/मांगों का संबंध 1974 से प्रारंभ होता है और यहां इस बात की ईप्सा की गई है कि पिटीशनरों को उनकी सम्मति से विधि के किसी प्राधिकार के बिना वंचित किया जाए और यह संविधान के अनुच्छेद 19(1) (च) तथा अनुच्छेद 31 (जो अब निरसित हो चुका है) तथा अनुच्छेद 300 का उल्लंघन है। ऐसी परिस्थितियों में पिटीशनर के कथनानुसार तारीख 25 सितम्बर, 1979 वाला आक्षेपकृत अपील आदेश, तारीख 11 अगस्त, 1976 वाला निर्धारण आदेश तथा पश्चात्वर्ती निर्धारण आदेश एवं उस पर आधारित मांगें भ्रांती हैं एवं अधिकारातीत से बाह्य हैं और उन्हें अपास्त कर दिया जाना चाहिए।

7. इन रिट पिटीशनरों में कोई प्रतिशपथपत्र फाइल नहीं किया गया है जिसकी सुनवाई उपर्युक्त सिविल अपील के साथ-साथ की गई है।

8. अपीलार्थी/रिट पिटीशनर पंजाब में, नाभा में तथा आन्ध्र प्रदेश में राजामुन्द्री में स्थित कारखाने में हार्लिक्स पाउडर बनाते हैं और इस हार्लिक्स पाउडर का प्रवेश इस्पात के ड्रमों में जिनमें से प्रत्येक में 182 किलोग्राम पाउडर होता है मार्केट में भेजने के प्रयोजन के लिए विभिन्न केन्द्रों को कराते हैं। अपील तथा रिट पिटीशन में हमारा संबंध 8736 किलोग्राम हार्लिक्स पाउडर से है जिसका निर्यात कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में 1974 में अपीलार्थियों के कारखाने में से जो नाभा में स्थित है ऐसे ही बड़े-बड़े आदान पात्रों में किया गया था। इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि हार्लिक्स पाउडर करादेय है जोकि "1972 के अधिनियम की अनुसूची की क्रम सं० 4 (7) में वर्णित" अनन्य रूप से शिशुओं के लिए अभिप्रेत खाद्य के सिवाय परिरक्षित उपबंधों के अन्तर्गत आता है, जोकि 6 प्रतिशत मूल्यानुसार प्रवेश कर के अध्यधीन है। 1972 वाले अधिनियम की धारा 6(1) भारण धारा है जिसमें यह अधिकथित किया गया है कि अध्याय 3 में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, जिसमें कि वह धारा विद्यमान है, 'जैसे कि राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे अनुसूची के स्तम्भ 3 में तत्स्थानी प्रवेश में विनिर्दिष्ट दर का अतिरेक न करते हुए ऐसी दर पर उस क्षेत्र से बाहर किसी भी स्थान से कलकत्ता नगरपालिका क्षेत्र में उपभोग, उपयोग अथवा विक्रय हेतु अन्य विनिर्दिष्ट माल के प्रवेश पर कर...... ......उद्गृहीत तथा संगृहीत किया जाएगा। 1972 वाले अधिनियम की धारा 6(1) वही धारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है जोकि 1970 वाले अधिनियम की धारा 6(1) है जिसमें कि अनुसूची की क्रम सं० 4(7) "परिरक्षित उपबंध हैं जिन पर कि समान रूप से 6 प्रतिशत मूल्यानुसार दर प्रवेश कर के रूप में प्रभार्य होगा।

9. 1970 वाले अधिनियम की धारा 13 के अधीन एवं 1972 वाले अधिनियम के अध्यादेश के अधीन जो कि समरूप हैं, विनिर्दिष्ट माल को प्रत्येक व्यवहारी कलकत्ता नगरपालिक क्षेत्र में ऐसे माल के प्रविष्ट किए जाने पर अथवा तत्पूर्व विहित प्राधिकार को ऐसे प्रारूप और ऐसे स्वरूप में उनका परिदान करेगा और जिसमें ऐसी विशिष्टियां अन्तर्दिष्ट होंगी जैसी कि ऐसे माल के सम्बन्ध में विहित होती हैं, सिवाय उस माल के जिसे यथास्थिति उक्त अधिनियम अथवा अध्यादेश के अधीन किसी कर के संदाय से धारा 6(2), धारा 7 और धारा 8 द्वारा छूट दी गई हो। उक्त अधिनियम तथा अध्यादेश की धारा 14 (1) के अधीन जो कि समरूप हैं, जहां व्यवहारी द्वारा ऐसी घोषणा की गई हो, जैसी की धारा 13 द्वारा अध्यपेक्षित है, विहित प्राधिकारी, माल का ऐसा सत्यापन करने के पश्चात् जैसा कि वह आवश्यक समझे कलकत्ता नगरपालिक क्षेत्र में ऐसे माल के प्रवेश पर उद्ग्रहणीय कर का निर्धारण करेगा।

10. 1970 वाली नियमावली, 1970 के अधिनियम की धारा 34 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित की गई है। जहां अधिनियम के अधीन मूल्यानुसार उद्ग्रहीत किया जाता है वहां माल के मूल्य का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए नियम 12 (1) के अधीन प्रत्येक व्यवहारी नियम 16 में विनिर्दिष्ट प्ररूप 4 में उसके मूल्य को घोषित करेगा और ऐसे माल के अन्तर्गत : (क) ऐसे माल की लागत कीमत, जैसी कि विपत्र अथवा बीजक या परेषण टिप्पण में दी गई है, जो कि परेषक द्वारा जारी किया गया हो अथवा प्रवृत्ति के किन्हीं अन्य दस्तावेजों में विद्यमान हो : (ख) पोतयान दस्तावेजें, (ग) बीमा, (घ) उत्पाद शुल्क, तथा (ङ) विक्रय कर और ऐसी घोषणा समुचित निर्धारण अधिकारी को सुसंगत विपत्र, बीजक अथवा परेषण टिप्पण की एक-एक प्रति सहित पेश की जानी चाहिए, जो कि अन्य प्रभारों, करों तथा फीसों के समर्थन में हों और ऐसे विपत्र, बीजक, परेषण टिप्पण तथा अन्य दस्तावेजों पर ऐसे व्यवहारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाने चाहिएं। नियम 12 (2) में यह अधिकथित किया गया है कि यदि निर्धारण अधिकारी का व्यवहारी की ओर से पेश की गई दस्तावेजों में उद्धृत मूल्य की युक्तियुक्तता के बारे में समाधान हो जाता है, तो वह उसे स्वीकार कर लेगा और तदनुसार कर उद्ग्रहीत करेगा एवं यदि मूल्य अन्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रभारों, करों तथा फीसों को दर्शित करने वाले अन्य दस्तावेजों अथवा पेश न किए जाने के कारण अभिनिश्चित नहीं किया जा सकता है या ऐसे निर्धारण अधिकारी का समाधान उक्त व्यवहारी द्वारा दर्शित या घोषित मूल्य की युक्तियुक्तता के बारे में समाधान नहीं होता है तो ऐसा निर्धारण अधिकारी अपने सर्वोत्तम निर्णयानुसार कलकत्ता नगरपालिक क्षेत्र में ऐसे मूल्य के लगभग समान मूल्य का अवधारण करेगा और तदनुसार अधिकारी का उद्ग्रहण करेगा। 1972 वाले अध्यादेश की धारा 36 राज्य सरकार को इस बात के लिए समर्थ बनाती है कि पूर्ववर्ती प्रकाशन की शर्त के अधीन रहते हुए, अध्यादेश के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाए। 1972 वाले अध्यादेश की धारा 1 (3) जो कि 1970 वाले अधिनियम के प्रवर्तन की समाप्ति पर कर लगाने हेतु तुरन्त प्रवृत्त हो गई थी और उसमें यह कथन किया गया था कि 1970 वाले अधिनियम के उपबन्धों में से किसी भी उपबन्ध के अधीन बनाया गया कोई नियम अथवा आदेश, जारी की गई कोई अधिसूचना, दिया गया कोई निदेश, की गई कोई बात अथवा कार्यवाही उक्त अधिनियम के प्रवर्तन की समाप्ति पर प्रवृत्त बनी रहेगी और उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह अध्यादेश के तत्स्थानी उपबन्धों के अधीन बनाया गया, जारी किया गया, दिया गया, किया गया अथवा सम्पन्न किया गया है। 1972 वाले अधिनियम की धारा 36 में राज्य सरकार के लिए, पूर्ववर्ती प्रकाशन की शर्त के अधीन रहते हुए यह शक्ति उपबन्धित की गई है कि वह उक्त अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सके। 1972 के अधिनियम की धारा 37 के खण्ड (1) द्वारा उक्त अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया था। उक्त धारा के खण्ड (2) में यह अधिकथित किया गया है कि अध्यादेश के अधीन की गई किसी बात अथवा सम्पन्न की गई किसी कार्यवाही के बारे में यह समझा जाएगा कि वह 1972 वाले अधिनियम के अधीन उसी प्रकार की गई है मानो कि वह अधिनियम 16 नवम्बर, 1970 को प्रारम्भ हुआ था जो वह तारीख थी जिसको कि 1970 वाला अधिनियम प्रवृत्त हुआ था। प्रत्यक्ष रूप से, अध्यादेश में तथा 1972 वाले अधिनियम में इस व्यावृत्ति उपबन्ध को ध्यान में रखते हुए, इस तथ्य के बावजूद उक्त अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम विरचित करने हेतु 1972 वाले अधिनियम में धारा 36 के रूप में विनिर्दिष्ट उपबन्ध विद्यमान है, 1972 वाले अधिनियम के अधीन कोई नये नियम विरचित नहीं किए गए हैं और केवल 1970 वाली नियमावली के नियम 1972 के अधिनियम की धारा 36 द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जारी रखे गए हैं एवं समय-समय पर उन नियमों में से कुछ नियम संशोधित किए गए हैं; इस प्रकार 1 अप्रैल, 1973 को नियम 2 और 4 (1) संशोधित किया गया था; 15 जनवरी, 1974 को नियम 4 (1) को आगे और संशोधित किया गया; 1 फरवरी, 1974 को नियम 3 को एक नवीन नियम द्वारा समर्थित किया गया; 25-11-1975 को नियम 42 जोड़ा गया, तथा 28-9-1976 को नियम 22 (1) में एक उपबन्ध जोड़ा गया।

11. 1972 वाले अधिनियम के अधीन कर के उद्ग्रहण के लिए चुंगी चौकी तथा कलकत्ता नगरनिगम क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए माल की बाबत नियमावली के अधीन चूंगी-चौकी सुसंगत समय में हुसैनाबाद सड़क पर स्थित थी। अपीलार्थी की दलील यह है कि कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में नाभा में स्थित कारखाने में से आयात किये गये हार्लिक्स पाउडर की बाबत अपीलार्थियों ने प्रत्येक स्थल पर विहित प्ररूप में अध्यपेक्षित घोषणा प्रस्तुत की थी जिसके साथ सुसंगत दस्तावेज, जैसे कि इन्वायस पारेषण पत्र, बीमा इत्यादि संलग्न थे, जिनकी कल्पना नियम 12 में की गई है, एवं लागत पर्णियां भी सम्यक् रूप से संलग्न थीं जिनके बारे में उनके सम्परेषक मैसर्स ए० एस० फर्गुसन एण्ड कम्पनी द्वारा विनिर्देश किया गया है और जिनमें कलकत्ता में हार्लिक्स पाउडर की परिदत्त लागत प्रकट की गई है जिसके अन्तर्गत उसके निर्माण की लागत, बीमा और माल भाड़े 1970-71 में 4.9393 रुपए प्रति किलोग्राम, 1971-72 में 4.6922 रुपए प्रति किलोग्राम, 1972-73 में 4.9915 रुपए प्रति किलोग्राम थी और थोक रूप में आधान पात्रों में कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र के भीतर लाए गए हार्लिक्स पाउडर के लिए मूल्य घोषित किया गया था, जिसके लिए बीमा करवाया गया था और उस मूल्य को अप्रैल, 1974 के पश्चात्वर्ती भाग पर्यन्त स्वीकार किया जाता रहा था। अपीलार्थी का परिवाद यह है कि ऐसे हार्लिक्स पाउडर की बाबत जो कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र की भीतर विक्रय के उपयोग अथवा उपभोग के लिए आशयित नहीं था 1972 वाले अधिनियम की धारा 21 के अधीन परिवहन पारपत्र जारी करने के लिए प्रत्यर्थियों के प्रत्याख्यान को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी इस बात के लिए आबद्ध हो गए थे कि वह कलकत्ता स्थित उच्च न्यायालय में 1974 का रिट पिटीशन सं० 155/1974 फाइल किया और 6 मई, 1974 को अन्तरिम व्यादेश अभिप्राप्त कर लिया और यह कि उसके विरुद्ध निर्धारण अधिकारी ने तारीख 10 अगस्त, 1976 वाले अपने ज्ञापन में दिए गए कारणों से उक्त 8,736 किलोग्राम हार्लिक्स पाउडर का घोषित मूल्य स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और उसने कलकत्ता नगर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निगम क्षेत्र में माल के लगभग विक्रय मूल्य के आधार पर मूल्य को अभिनिश्चित करना प्रारंभ किया जो उस क्षेत्र में अपीलार्थी के विक्रय अभिकर्ता द्वारा प्रचलित माल की कीमत सूची के प्रति निर्देश से था और यह कि उसे ऐसा करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है तथा वह इस बात के लिए आबद्ध था कि वह अपीलार्थी द्वारा घोषित मूल्य को स्वीकार कर लेता और नियमावली के नियम 12(1) के अनुकूल आगे कार्रवाई करता और जैसाकि नियम 12(2) में उपबंधित किया गया है "सर्वोत्तम निर्णय" के आधार पर माल के मूल्य का अवधारण करने के लिए कोई गुन्जाइश नहीं थी।

12. अपीलार्थी का प्रथम आक्षेप यह है कि हालांकि अध्यादेश की धारा 1(3) में 1970 वाली नियमावली में निरंतर प्रवर्तन के लिए उपबंध किया गया है, उक्त अध्यादेश को 1972 वाले अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था और ऐसा ही उपबंध नहीं है जो उक्त अध्यादेश के प्रवर्तन की परिसमाप्ति के पश्चात् 1970 वाले नियमों के निरंतर प्रवर्तन को व्यावृत्त करने के लिए अथवा सबल प्रवर्तन हेतु उपबंध करता हो और इसलिए निर्धारण अधिकारी नियम 12(2) का आश्रय नहीं ले सकता था और माल के मूल्य को अभिनिश्चित करने के लिए "सर्वोत्तम निर्णय" वाली पद्धति को नहीं अपना सकता था। हमारी यह राय है कि इस दलील में कोई बल नहीं है। वस्तुतः इस आक्षेप के प्रति न तो अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल द्वारा और न ही अपनी बहस के दौरान रिट पिटीशनर द्वारा हमारे समक्ष निर्देश किया गया था। यह स्वीकार किया गया है कि 1972 वाले अध्यादेश की धारा 1(3) में यह कथन किया गया था कि 1970 के अधिनियम के उपबंधों में से किसी भी उपबंध के अधीन बनाए गए, नियम या आदेश, जारी की गई कोई अधिसूचना, दिया गया कोई निदेश, की गई कोई कार्यवाही अथवा किया गया कोई कार्य उक्त अधिनियम के प्रवर्तन की परिसमाप्ति पर प्रवृत्त बना रहेगा और उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह 1972 के अध्यादेश के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन जारी किया गया, दिया गया, किया गया या अपनाया गया था और 1972 वाले अधिनियम की धारा 37(2) में यह अधिकथित किया गया है 1972 वाले अध्यादेश के अधीन किए गए किसी कार्य अथवा की गई कोई कार्यवाही के बारे में यह समझा जाएगा कि वह इस प्रकार 1972 वाले अधिनियम के अधीन की गई है मानो कि वह अधिनियम 16 नवम्बर, 1970 को पारित कर दिया गया था, जोकि वह तारीख है जिसको 1970 का अधिनियम प्रवृत्त हुआ था और हालांकि 1972 के अधिनियम की धारा 36 राज्य सरकार को इस बात के अधीन रहते हुए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सशक्त करता है कि पूर्वत्तर प्रकाशन कर दिए जाने पर वह उक्त अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाए तथापि उक्त शक्ति के प्रयोग में कोई नवीन नियम विरचित नहीं किए गए हैं और मात्र कतिपय संशोधन समय-समय पर 1970 के उन नियमों के कतिपय नियमों में यथापूर्व वर्णित 1972 के अधिनियम की धारा 36 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में किए गए हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि 1970 वाली नियमावली के नियमों को अध्यादेश की धारा 1(3) के उपबंधों तथा 1972 के अधिनियम की धारा 37(2) द्वारा सजीव रखा गया है और यह कि प्रवेश कर अधिकारी को इस बात की स्वतंत्रता है कि वह नियम 12(2) के अधीन माल के मूल्य को अभिनिश्चित करने के लिए "सर्वोत्तम निर्णय" की पद्धति का आश्रय ले परन्तु यह तब जब कि उसमी अध्यपेक्षा पूरी होती हो अर्थात् यह कि उक्त मूल विपत्र या बीजक या पारेषण पत्र उपलभ्य न होने या पेश न किए जाने के कारण अभिनिश्चेय नहीं है जिससे कि पारेषक द्वारा जारी किया गया था और न ही समस्त प्रकृति के अन्य दस्तावेजों द्वारा या यह दर्शित करने वाले अन्य दस्तावेजों द्वारा उपलभ्य नहीं है जोकि अन्य प्रभारों, शुल्कों तथा फीस को दर्शित करता हो अथवा अपेक्षित हो और निर्धारण अधिकारी का समाधान व्यवहारी द्वारा दर्शित अथवा घोषित मूल्य की युक्तियुक्तता के बारे में समाधान न हुआ हो।

13. अब विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या निर्धारण प्राधिकारी द्वारा नियम 12(2) के अधीन माल के मूल्य को अभिनिश्चित करने की "सर्वोत्तम निर्णय" संबंधी पद्धति का आश्रय लेना न्यायोचित था या नहीं और अपील प्राधिकारी निर्धारण द्वारा निर्धारण संबंधी आदेश की पुष्टि का न्यायोचित ठहराया जाना समुचित था या नहीं। अपीलार्थी ने हुसैनाबाद चौकी में कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र के अन्तर्गत आयात किए गए हार्लिक्स पाउडर की उक्त 8,736 किलोग्राम मात्रा का मूल्य 1,22,324 रुपए दर्शित किया था जोकि 14 रुपए प्रति किलोग्राम निकलता है। किन्तु उसकी यह वांछा थी कि कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में 7.694 रुपए प्रति किलोग्राम के रूप में मूल्य की उसकी उद्घोषणा जो कि स्टॉक अन्तरण बीजक, माल भाड़े और बीमे के अनुसार 5.9891 रुपए बनते थे निर्धारण अधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। अपीलार्थी ने निर्धारण अधिकारी के समक्ष उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क अधीक्षक, पटियाला के आदेश सं० सी० ई०/20/डी० पी० ई०/70 ता० 5-12-1970 के रूप में तात्पर्यित थी और अपीलार्थी की ओर से निर्धारण अधिकारी के समक्ष यह दलील दी गई थी कि उत्पाद शुल्क

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाभा में संदत्त किया गया था । किन्तु जो प्रति पेश की गई थी वह प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं थी और न ही मूल दस्तावेज पेश की गई थी और इसलिए निर्धारण अधिकारी ने यह अभिनिर्धारित किया कि उत्पाद शुल्क का संदाय नाभा स्थित कारखाने में से माल के हटाए जाने के समय संदत्त नहीं किया गया था, अपीलार्थी की यह दलील है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क विनियमों पर ध्यान देते हुए केवल नाभा या राजामुन्द्री ने सीधे माल के निर्यात के मामले में ही बीजक मूल्य के आधार पर उत्पाद शुल्क का संदाय किए जाने पर कारखाने में से माल की निकासी प्रभावशील होती है और इस मूल्य के अन्तर्गत निर्माता की लागत तथा उसका लाभ सम्मिलित है । किन्तु जो प्रति पेश की गई थी, वह प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं थी और न ही मूल "गेट पास" पेश किया गया था इसलिए यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि निर्धारण अधिकारी उस प्रति को नामंजूर करने हेतु न्यायोचित नहीं था और उसके द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना उत्पाद शुल्क नाभा स्थित कारखाने में से सम्बद्ध सम्प्रेक्षण के हटाए जाने के समय संदत्त नहीं किया गया था यथापूर्व न्यायोचित नहीं था ।

14. रिट पिटीशन में अपीलार्थी के मामले के अनुसार जब हुसैनाबाद चेक पोस्ट में 182 किलोग्राम हार्लिक्स पाउडर अन्तर्विष्ट करने वाले इस्पात ड्रमों में थोक रूप में हार्लिक्स पाउडर पहुंचा, तो माल के मूल्य के अन्तर्गत केवल निर्माण की लागत, माल भाड़े और बीमा आते हैं और केवल तब जब कि इस्पात ड्रमों में पैक किए गए हार्लिक्स पाउडर कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो बोतलों में भरने की क्रिया बोतलों में भरने का खर्च; निर्माता के लाभ उसमें जोड़े जाते हैं और केवल तब कुल मूल्य पर उत्पाद शुल्क संदत्त किया जाता है जब कि माल को बेचने योग्य अवस्था में प्रस्तुत किया जाता है । रिट पिटीशन में अपीलार्थी का पक्ष कथन यह भी है कि अपीलार्थी का कदापि विक्रय करने का आशय नहीं था और न ही उसने कभी कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में अथवा अन्यत्र थोक रूप में आधान पात्रों में हार्लिक्स पाउडर का विक्रय किया था और यह कि रिट पिटीशन में प्रत्यर्थी सं० 2 और 4 तक सहायक निदेशक (प्रवेश कर) तथा निरीक्षक (प्रवेश कर) हुसैनाबाद चैक पोस्ट ने नियम 12(1) के अधीन निर्धारण के प्रयोजनों के लिए पेश की गई दस्तावेजों को नामंजूर कर दिया था और सदोष रूप से नियम 12(2) के अधीन मूल्य को अभिनिश्चित करने के "सर्वोत्तम निर्णय" की पद्धति का आश्रय लिया था तथा करादेय मूल्य का निर्धारण कलकत्ता में स्थानीय मण्डी में 450 ग्राम वाली अनेक बोतलों के यूनिटों के खुदरा मूल्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के आधार पर किया था। अपीलार्थी की इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रत्येक इस्पात ड्रम में अन्तर्विष्ट 182 किलोग्राम पैक किया हुआ हार्लिक्स पाउडर हुसैनाबाद चेक पोस्ट में मात्र निर्माण की लागत, माल भाड़े तथा बीमे के रूप में मूल्य धारण करता था। निर्माता की दृष्टि से यह सही हो सकता है, किन्तु कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में माल का यह मूल्य नहीं हो सकता। जहां कि मूल्य के अन्तर्गत पूर्वोक्त मदों के अलावा हुसैनाबाद चेक पोस्ट से कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र पर्यन्त परिवहन की अतिरिक्त लागत, उत्पाद शुल्क व उसका संदाय पहले ही नाभा स्थित कारखाने से उससे माल के हटाए जाने के समय न किया गया हो, थोक तथा खुदरा व्यापारी के लाभ तथा विक्रय कर शामिल होंगे। नियम 12(1) के अधीन घोषित मूल्य के बारे में यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत विपत्र, बीजक अथवा परेषण पत्र या किसी अन्य समरूप प्रकृति की दस्तावेज में, नौवहन शुल्क, जहां लागू हो, बीमा, उत्पाद शुल्क तथा विक्रय कर की लागत, कीमत अन्तर्विष्ट होनी चाहिए। हो सकता है कि बोतलों में भरने और लेबल लगाने की प्रक्रिया उस समय की जाए जबकि कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में परेषण को थोक परेषण के रूप में सुविधा के प्रयोजनार्थ कार्यान्वित किया गया हो और यह भी हो सकता है कि यह उसी प्रवेश बिन्दु के स्थल पर माल का मूल्य गठित न करता हो, पाउडर को बोतलों में भरने और उन पर लेबल लगाने की लागत जिससे कि वे यूनिट बोतलों के रूप में प्रस्तुत की जा सकें कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र के भीतर नगण्य मात्र होगा। हो सकता है कि अपीलार्थी इस बात का हकदार हो कि वह निर्धारण अधिकारी से यह मांग कर सके कि वह नियम 12(1) के अधीन निर्धारण की दशा में उसे भी हिसाब में ले ले। किन्तु चूंकि अपीलार्थी द्वारा जो मूल्य घोषित किया गया था वह स्वयं अपीलार्थी-कंपनी द्वारा प्ररूप 5 में दर्शित 1,22,304 रुपये मूल्य से कहीं कम था क्योंकि वह मात्र 14 रुपये प्रति किलोग्राम बनता था और इसी प्रकार कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में अपीलार्थी के विक्रय अभिकर्ता की कीमत सूची में यूनिट बोतलों के लिए दर्शित मूल्य से भी कम था अतः यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि निर्धारण अधिकारी अपीलार्थी द्वारा 7.694 रुपये प्रति किलोग्राम के रूप में मूल्य के घोषित किए जाने को रद्द करने में न्यायोचित्य नहीं था और न ही उसे यह न्यायोचित्य प्राप्त था कि वह कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में माल के निर्धार्य मूल्य के आधार पर नियम, 12(2) में यथा उपबंधित "सर्वोत्तम निर्णय" के आधार पर निर्धार्य मूल्य को अभिनिश्चित करता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

15. अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने हमारा ध्यान आयकर आयुक्त पश्चिम बंगाल-1 बनाम पदमचन्द रामगोपाल[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति आकर्षित किया जिसमें कि अपने अन्वेषण में आयकर अधिकारी द्वारा निष्कर्ष निकाले जाने पर 1953-54 वाले वर्ष के लिए निर्धारिती के लेखों में दो महत्वपूर्ण त्रुटियां देखने में आई थीं। वे त्रुटियां इस प्रकार थीं : (1) प्राप्त किए हुए ब्याज की एक मद को हिसाब में लेने में असफलता और (2) आय की प्राप्ति से संबंधित एक विष्टि का अनुचित होना। 1953-54 से 1957-58 निर्धारण वर्षों से संबंधित लेखों में कोई त्रुटियां नहीं पाई गई थीं। तथापि, आयकर अधिकारी ने लेखों को विश्वसनीय कहकर नामंजूर कर दिया और रिटर्न में दर्शित की गई आय में सकल प्राप्तियों की उस रकम का आधा भाग जोड़ दिया जोकि निर्धारिती द्वारा "ब्याज" शीर्षक के अधीन उन प्रत्येक वर्षों के लिए दर्शित किया गया था जो आय में दिखाए जाने से रह गया था। अधिकरण ने आयकर अधिकारी द्वारा की गई वृद्धियों को स्वीकार कर लिया। किन्तु इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आयकर अधिकारी तथा अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया था कि जो दो त्रुटियां सामने आई थीं वे पश्चात्वर्ती वर्षों के लेखों को रद्द करने का आधार गठित नहीं करती थीं और आय का जो भाग निर्धारण से बच निकला था उसे अभिनिश्चित करने के लिए जो पद्धति स्वीकार की गई थी, वह सर्वथा अनुचित थी। हमारा यह विचार है कि उस विनिश्चय का आधार वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं होगा। हाजी लाल मोहम्मद बीड़ी वर्क्स, इलाहाबाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य[2] वाले मामले में जो कि एम० पी० जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट की धारा 18(4) के अधीन निर्धारण की "सर्वोत्तम निर्णय" वाली पद्धति से संबंधित था। उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब निर्धारण अधिकारी सर्वोत्तम निर्णय के आधार पर निर्धारण करता है तो उसे चाहिए कि वह अपना निष्कर्ष बिना किसी पक्षपात के तथा वैवेकिक आधार पर निकाले और यह कि यदि निर्धारण अधिकारी द्वारा जो प्राक्कलन किया गया है वह उसका सद्भावपूर्वक प्राक्कलन है तथा उस प्राक्कलन की बाबत कोई साधार सबूत नहीं है तो इससे निर्धारण अवैध नहीं हो जाता। वर्तमान मामले में हमारे समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके बारे में हम यह अभिनिर्धारित कर सकें कि निर्धारण अधिकारी अपीलार्थी के विरुद्ध कोई पक्षपात

[1] [1970] 76 आई० टी० आर० 719.
[2] [1974] 1 एस० सी० आर० 25.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रखता था अथवा यह कि माल के निर्धार्य मूल्य का उसका प्राक्कलन सद्भावपूर्वक प्राक्कलन नहीं था या फिर उसका कोई वैवेकिक आधार नहीं था। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि निर्धारण अधिकारी के समक्ष माल के मूल्य की बाबत अपीलार्थी की घोषणा को स्वीकार न करने के लिए पर्याप्त कारण था और यह कि "सर्वोत्तम निर्णय" के आधार पर विक्रय मूल्य का उसका निर्धारण वैवेकिक है और वह कलकत्ता नगर निगम क्षेत्र में अपीलार्थी के स्वयं अपने अभिकर्ता की दर सूची पर आधारित है। हमें इस अपील तथा रिट पिटीशन में कोई सार दिखाई नहीं देता है। इसलिए यह अपील और रिट पिटीशन असफल होते हैं और उन्हें खारिज किया जाता है। अपीलार्थी अपील में प्रत्यर्थियों का खर्चा संदत्त करेगा। रिट पिटीशन में खर्च की बाबत कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील और रिट पिटीशन खारिज किए गए।

भू०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नायब सिंह पुत्र मक्खन सिंह

बनाम

पंजाब राज्य और अन्य

(Naib Singh S/o Makhan Singh

v.

State of Punjab and Others)

(19 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति वी० डी० तुलजापुरकर और आर बी० मिश्र)

भारतीय दण्ड संहिता, **1860 (1860 का 45)—धारा 53—** द्वितीय धारा 53क, 55 और 58 (निरसन से पूर्व)—पिटीशनर को मृत्यु दण्डादेश के बदले आजीवन कारावास के दण्ड से दण्डित किया जाना—पिटीशनर द्वारा चौदह वर्षों से अधिक का दण्ड भुगतना तथा जेल में अपने सतत निरोध को चुनौती दिया जाना—यदि दण्ड का पूर्णतः परिहार नहीं किया जाता और उसे चौदह वर्षों तक की अन्यून कालावधि तक लघूकृत नहीं किया जाता तो पूरा जीवन कारावास भुगतना होगा और आजीवन कारावास से कठिन कारावास अभिप्रेत है ।

बन्दी अधिनियम, 1900 (1900 का 3)—धारा 32— राज्य सरकार द्वारा आजीवन कारावास के निष्पादन का स्थान नियत न करना—आजीवन कारावास जेल में निष्पाद्य है तथा राज्य सरकार दण्डादेश के निष्पादन के लिए किसी स्थानीय जेल को "स्थान" के रूप में नियत कर सकती है ।

पिटीशनर को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या का अपराध करने के लिए फिरोजपुर के विद्वान सेशन न्यायाधीश द्वारा मूलतः मृत्यु दंडादेश दिया गया था । इसके पश्चात् उसके द्वारा किए गए क्षमायाचना आवेदन पर पंजाब के राज्यपाल द्वारा उसके मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघूकृत कर दिया गया था जो वह भुगत रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि विचारणाधीन कैदी के रूप में उसके द्वारा भोगी गई कालावधि को [जिसके संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 428 के अधीन मुजरा (छूट) का फायदा प्राप्त करने के लिए कोई भी आजीवन सिद्धदोष हकदार नहीं है, जैसा इस न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है] अपवर्जित करते हुए पिटीशनर ने छूट को सम्मिलित करते हुए लगभग 22 वर्ष से अधिक का कुल कारावास भुगत लिया था। समुचित सरकार द्वारा उसके दंडादेश को न तो भारतीय दंड संहिता की धारा 55 के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433(ख) के अधीन पूर्ण रूप से माफ किया गया है और न ही 14 वर्ष से अनधिक कालावधि के कारावास को लघूकृत किया गया है जिसका परिणाम यह है कि वह अपने दंडादेश को अपने शेष जीवन तक कारागार में भुगतने के लिए दायी है। तथापि, पिटीशनर का पक्षकथन यह है कि निश्चित रूप से उसने छूट सहित 14 वर्ष के दंडादेश से अधिक दंडादेश भुगत लिया है और चूंकि सरकार ने जेल के भार-साधक अधिकारी की मार्फत कठोर कारावास के रूप में अर्थात् उससे कठोर श्रम करवाकर जेल अभिरक्षा में उसका दंडादेश निष्पादित करवाया है और उसे माफी भी दी है इसलिए या तो भारतीय दंड संहिता की धारा 55 के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433(ख) के अधीन उसके 14 वर्ष के दंडादेश को इस बात के होते हुए भी लघूकृत किया हुआ माना जाना चाहिए कि राज्य सरकार द्वारा उस निमित्त कोई औपचारिक आदेश नहीं किया गया था और इसलिए जेल में उसका सतत निरोध अवैध है और वह तुरन्त ही छोड़े जाने के लिए हकदार है। अतः पिटीशनर ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस पिटीशन द्वारा अपने सतत निरोध को चुनौती दी है और यह दावा करते हुए बन्दी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति का आदेश प्राप्त करना चाहा है कि उसने विधि के अधीन विहित कारावास के अधिकतम दंडादेश से भी अधिक कारावास भुगत लिया है इसलिए उसे छोड़ दिया जाना चाहिए। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—बंदी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अधीन किसी अवधि या आजीवन के लिए निर्वासन के दंडादेश को तथा आजीवन कारावास के दंडादेश को राज्य सरकारों के आदेशों के अधीन स्थानीय जेलों की धारा 32 के अर्थ में "स्थानों" के रूप में नियत करके ऐसी जेलों में निष्पाद्य बनाया जा सकता था तथा बनाया जा सकता है। (पैरा 9)

बंदी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अतिरिक्त दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 383 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 418 में भी ऐसा आवश्यक विधिक प्राधिकार और शक्ति अन्तर्विष्ट है जिसके अधीन कोई दंड न्यायालय वारंट जारी करके आजीवन कारावास

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के दंडादेश को स्थानीय जेलों में निष्पादित या कार्यान्वित करने के लिए निदेश दे सकती है। दोनों ही धाराएं अपनी अपनी संहिताओं के अधीन दंडादेश के निष्पादन से संबंधित अध्याय मे प्रतीत होती हैं तथा दोनों में ही समान शब्दों का प्रयोग किया गया है तथा प्रत्येक में यह उपबंध है कि जहां अभियुक्त आजीवन कारावास के लिए दंडादिष्ट किया गया हो वहां दंडादेश देने वाला न्यायालय उस जेल या अन्य स्थान को, जिसमें वह परिरुद्ध है या उसे परिरुद्ध किया जाना है, तत्काल वारंट भेजेगा और यदि अभियुक्त पहले से ही उस जेल या अन्य स्थान में परिरुद्ध नहीं है तो वारंट के साथ उसे ऐसी जेल या अन्य स्थान को भिजवाएगा। यह बात स्पष्ट है कि उक्त धाराओं के अधीन जारी किए गए न्यायालय के वारंट के अनुसरण में जेल में सिद्धदोष व्यक्ति का परिरोध दंडादेश को निष्पादित या कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए है। धारा 418 की उपधारा (1) का परन्तुक और 418 की उपधारा (2) इस स्थिति को बहुत ही स्पष्ट करती है कि "परिरोध" शब्द दंडादेश के निष्पादन या कार्यान्वियन के अर्थ में प्रयोग किया गया है। (1898 और 1973 की) दोनों संहिताओं के अधीन विहित सुपुर्दगी के वारंट से संबंधित प्ररूपों पर आधारित एक तर्क पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा दिया गया था किन्तु यह बात स्पष्ट है कि सुपुर्दगी के वारंट के समुचित प्ररूपों के विहित न किए जाने से स्थानीय जेलों में निरोध की वैधता प्रभावित नहीं होगी। तथापि, संहिताओं के अधीन विहित प्ररूपों को व्यापक रूप में नहीं माना जा सकता तथा जेल में आजीवन कारावास के दंडादेश के निष्पादन या कार्यान्वयन के लिए निदेश देने वाले समुचित सुपुर्दगी के वारंट को न्यायालय द्वारा अंगीकृत किया जा सकता है और जारी किया जा सकता है जब तक कि विधि में उस निमित्त अपेक्षित प्राधिकार और शक्ति न्यायालय में निहित है। (पैरा 10)

सम्यक् अनुक्रम में किसी अवधि का या आजीवन निर्वासन का दंडादेश देश के भीतर जेलों में ही निष्पाद्य हो गया था और वही स्थिति दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1955 का 26 द्वारा अन्तःस्थापित भारतीय दंड संहिता की धारा 53क को देखते हुए 1 जनवरी, 1956 को और उसके पश्चात् आजीवन कारावास से दंडित व्यक्तियों के संबन्ध में भी लागू होनी चाहिए। प्रथम आधार जिस पर पिटीशनर को तुरन्त छोड़े जाने का दावा आधारित है इस प्रकार विधिमान्य नहीं है। (पैरा 11)

अंडमान और निकोबार मैन्युअल, 1908 की धारा 17 का उपखंड (3) निर्वासन पद का निर्वचन स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार करता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्वासन से ऐसे अनुग्रह के, जो समय समय पर मंजूर किया जाए या वापस लिया जाए। अध्यधीन एवं कठोर अनुशासन के अधीन श्रम अभिप्रेत है। उक्त मैन्युअल की धारा 24 और 25 बन्दियों की बस्ती में बन्दियों के आने पर बन्दियों के वर्गीकरण और श्रेणियों के लिए उपबन्ध करती हैं। (पैरा 13)

1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 द्वारा भारतीय दंड संहिता में एक नवीन धारा 53क जोड़ी गई है जो शंका से परे मामले को अन्तिम रूप से निर्णीत करती है चूंकि उसकी उपधारा (1) के साथ पठित उपधारा(2) अनिवार्य विवक्षा द्वारा स्पष्ट रूप से यह संकेत देती है कि आजीवन कारावास के दंडादेश को कठोर आजीवन कारावास के समतुल्य ही माना जाना चाहिए। यह बात स्पष्ट है कि धारा 53क निर्वचन खंड की प्रकृति की है चूंकि स्पष्ट रूप से वह इस बात से सम्बन्धित है कि आजीवन या किसी अवधि के निर्वासन के दंडादेश का दांडिक विधिशास्त्र में किस प्रकार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। धारा 53क की उपधारा (1) में यह उपबन्ध है कि तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या किसी ऐसी विधि या किसी निरसित अधिनियमिति के आधार पर प्रभावशील किसी लिखत या आदेश में आजीवन निर्वासन के प्रति निर्देश का अर्थ यह लगाया जाएगा कि वह आजीवन कारावास के प्रति निर्देश है। धारा 53क की उपधारा (2) में संसद् ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि किसी अवधि के लिए निर्वासन के दंडादेश को इस प्रकार निष्पादित या कार्यान्वित किया जाना चाहिए मानो वह उसकी अवधि के लिए कठिन कारावास के लिए दंडादिष्ट किया गया था। यदि किसी अवधि के निर्वासन को उसी अवधि के कठिन कारावास के बराबर माना जाता है तो अनिवार्य विवक्षा द्वारा आजीवन निर्वासन के दंडादेश से, जो अब आजीवन कारावास द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है और जो बहुत ही गम्भीर, कठोर अपराधों के लिए दिया जाता है, कठोर आजीवन कारावास ही अभिप्रेत समझा जाना चाहिए अर्थात् वह कठोर कारावास के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। तारीख 1 जनवरी, 1956 को या उसके पश्चात् दिए गए आजीवन कारावास के दंडादेश के अधीन भुगतने के लिए अपेक्षित दंड की प्रकृति कठोर कारावास है। (पैरा 14)

दंड संहिता के कई उपबन्धों में आजीवन कारावास के बीच प्रभेद कायम रखा गया है। धारा 60 के स्पष्ट शब्दों के अनुसार वह ऐसे मामले को लागू होती है जहां अपराधी कारावास से दंडनीय है। कारावास किसी

भी प्रकार का हो सकता है तथा केवल ऐसे मामलों में ही न्यायालय यह निदेश देने के लिए सक्षम है कि ऐसा कारावास पूर्णतया कठिन या पूर्णतया सादा होगा अथवा ऐसे कारावास का कोई भाग कठिन होगा तथा शेष सादा होगा। यह बात स्पष्ट है कि जब कभी अपराधी आजीवन कारावास से दंडनीय होता है तो वह ऐसे कारावास से दंडनीय नहीं होता है जो किसी भी प्रकार का हो सकता है। अन्य शब्दों में धारा 60 लागू नहीं होगी। आजीवन कारावास के दंडादेश में अन्तर्विष्ट दंड की प्रकृति के बारे में विधि की स्थिति अच्छी तरह से सुस्थिर है तथा आजीवन कारावास के दंडादेश को कठिन आजीवन कारावास के समान मानना है। (पैरा 17 और 18)

प्रभेदित निर्णय

		पैरा
[1931]	ए॰ आई॰ आर॰ 1931 लाहौर 353 : कुन्दनलाल और अन्य बनाम सम्राट (एम्परर) (Kundan Lal and Others *v.* Emperor)	9
[1931]	ए॰ आई॰ आर॰ 1931 लाहौर 476 : खैराती राम का मामला (Kharati Ram's case).	9

अवलम्बित निर्णय

[1962]	ए॰ आई॰ आर॰ 1962 एस॰ सी॰ 605 : के॰ एम॰ एन॰ नानावटी बनाम महाराष्ट्र राज्य (K. M. N. Nanavati *v.* State of Maharashtra);	16
[1961]	ए॰ आई॰ आर॰ 1961 एस॰ सी॰ 998 : मध्य प्रदेश राज्य बनाम अहमदुल्ला (State of Madhya Pradesh *v.* Ahmadulla)	16
[1961]	[1961] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 440 : गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य (Gopal Vinayak Godse *v.* State of Maharashtra);	2,4,13,18

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1945] ए० आई० आर० 1945 पी० सी० 64 :
किशोरी लाल बनाम एम्परर
(Kishori Lal v. Emperor.) 4,6,13,18

निर्दिष्ट निर्णय

[1983] [1983] 2 उम० नि० प० 120=[1982]
2 एस० सी० सी० 1 :
करतार सिंह बनाम हरियाणा राज्य
(Kartar Singh v. State of Haryana) 2

[1957] ए० आई० आर० 1957 केरल 102 :
मथम्माल सरस्वती बनाम राज्य
(Mathammal Saraswathi v. The State). 17

आरंभिक अधिकारिता : 1982 का रिट पिटीशन (दांडिक) सं० 850.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन ।

पिटीशनर की ओर से	सर्वश्री एस० बी० मलिक और के० बी० रोहतगी
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री हरबंस सिंह और डी० डी० शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० डी० तुलजापुरकर ने दिया ।

न्यायाधिपति तुलजापुरकर—

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस रिट पिटीशन द्वारा पिटीशनर नायब सिंह जेल में अपने सतत निरोध को चुनौती दे रहा है और यह दावा करते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति का आदेश प्राप्त करना चाहता है कि उसने विधि के अधीन विहित कारावास के अधिकतम दंडादेश से भी अधिक कारावास भुगत लिया है इसलिए उसे मुक्त किया जाना चाहिए ।

2. पिटीशनर को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या का अपराध करने के लिए फिरोजपुर के विद्वान सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 18 जनवरी, 1969 को मूलतः मृत्यु दंडादेश दिया गया था । इसके पश्चात् उसके द्वारा किए गए क्षमायाचना आवेदन पर पंजाब के राज्यपाल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा उसके मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघूकृत कर दिया गया था जो वह भटिंडा के केन्द्रीय जेल में भुगत रहा है। विचारणाधीन कैदी के रूप में उसके द्वारा भोगी गई कालावधि को [जिसके संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 428 के अधीन मुजरा (छूट) का फायदा प्राप्त करने के लिए कोई भी आजीवन सिद्धदोष हकदार नहीं है, जैसा इस न्यायालय ने करतार सिंह के मामले[1] में निर्वचन किया है] अपवर्जित करते हुए पिटीशनर ने छूट को सम्मिलित करते हुए निम्नानुसार 22 वर्ष 2 मास और 17 दिन का कुल कारावास भुगत लिया प्रतीत होता है—

	वर्ष	मास	दिन
(क) दोषसिद्धि के पश्चात् वास्तविक कठोर कारावास	11	5	10
(ख) जेल की छूट	2	3	6
(ग) सरकार की छूट	8	6	1
	22	2	17

स्वीकार्यतः समुचित सरकार द्वारा उसके दंडादेश को न तो भारतीय दंड संहिता की धारा 55 के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433(ख) के अधीन पूर्ण रूप से माफ किया गया है और न ही 14 वर्ष से अनधिक कालावधि के कारावास को लघूकृत किया गया है जिसका परिणाम यह है कि वह गोपाल गोडसे[2] के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अधीन अपने दंडादेश को अपने शेष जीवन तक कारागार में भुगतने के लिए दायी है। तथापि उपर्युक्त विवरणों के, जो विवादग्रस्त नहीं हैं, आधार पर पिटीशनर का पक्षकथन यह है कि निश्चित रूप से उसने छूट सहित 14 वर्ष के दंडादेश से अधिक दंडादेश भुगत लिया है और चूंकि सरकार ने जेल के भार-साधक अधिकारी की मार्फत कठोर कारावास के रूप में अर्थात् उससे कठोर श्रम करवाकर के जेल अभिरक्षा में उसका दंडादेश निष्पादित करवाया है और उसे माफी भी दी है इसलिए या तो भारतीय दंड संहिता की धारा 55 के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433(ख) के अधीन उसके 14 वर्ष के दंडादेश को इस बात के होते

[1] [1982] 3 एस० सी० सी० 1.=[1983] 2 उम० नि० प० 120

[2] [1961] 3 एस० सी० आर० 440.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हुए भी लघूकृत किया हुआ माना जाना चाहिए कि राज्य सरकार द्वारा उस निमित्त कोई औपचारिक आदेश नहीं किया गया था और इसलिए जेल में उसका सतत निरोध अवैध है और वह तुरंत ही छोड़े जाने के लिए हकदार है।

3. पिटीशनर के काउन्सेल ने पिटीशनर के पक्षकथन को इस प्रकार विस्तृत रूप से समझाया है— भारतीय दंड संहिता की धारा 53 दंड के पांच या छह विभिन्न प्रवर्ग विहित करती है जिसके लिए अपराधी भारतीय दंड संहिता के अधीन दायी हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1955 (1955 का 26) की धारा 117 द्वारा धारा 53 के संशोधन से पूर्व वह धारा द्वितीय मद में 'निर्वासन' का दंड विहित करती थी किन्तु निर्वासन उक्त संशोधन अधिनियम द्वारा (1955 का 26) तारीख 1 जनवरी, 1956 से आजीवन कारावास द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था। काउन्सेल के अनुसार, यद्यपि व्यक्तियों को, जो हत्या का अपराध करते हैं, भारतीय दंड संहिता की धारा 53 की द्वितीय मद के साथ पठित धारा 302 के अधीन "आजीवन निर्वासन" के पूर्ववर्ती दंडादेश के स्थान पर नवीन रूप से प्रतिस्थापित आजीवन कारावास के दंड के लिए दायी बना दिया गया है। इस आजीवन कारावास के नए दंडादेश को (या तो सेशन न्यायालय द्वारा मूल रूप से दिए गए या अपील न्यायालय या समुचित सरकार या प्राधिकारी द्वारा मृत्यु दंडादेश के लघूकृत किए जाने के तौर पर) या तो दंड प्रक्रिया संहिता 1898 या 1973 के अधीन या किसी अन्य विधि के अधीन या न्यायालय के किसी रिट, आदेश या वारंट के अधीन जेल के भारसाधक अधिकारी द्वारा जेल में वैध रूप से निष्पादनीय नहीं बनाया गया है तथा आजीवन निर्वासन के दंडादेश के समान आजीवन कारावास बन्दी अधिनियम, 1900 (1900 का 3) की धारा 32 के अधीन अनुख्यात स्थानों पर देश निकाले या निर्वासन के रूप में निष्पाद्य बना रहता है तथा जेल का भारसाधक अधिकारी केवल मध्यवर्ती अभिरक्षा में सिद्धदोष व्यक्ति को रखने के लिए आदेशाधीन है और दंडादेश के निष्पादन अथवा क्रियान्वयन के लिए उपर्युक्त स्थानों पर हटाए जाने के प्रयोजन के लिए समुचित प्राधिकारी और अभिरक्षा को उसे केवल सौंपने के लिए अपेक्षित है तथा इस निमित्त दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 383 और 386 के अधीन तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 418 के अधीन सुपुर्दगी के वारंट के विहित प्ररूपों का अवलंब लिया गया था। इसलिए आजीवन कारावास की सजा भुगतने वाले व्यक्ति का जेल में निरोध अवैध है। काउन्सेल ने इसके आगे यह भी दलील दी है कि दंड

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1955 (1955 का 26) आजीवन निर्वासन के रूप में पहले ज्ञात दंड की प्रकृति को आजीवन कारावास कहकर के परिवर्तित नहीं करता है तथा आजीवन निर्वासन के समान आजीवन कारावास कठिन कठोर या सादे कारावास के दंड से भिन्न रहता है जैसा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 53 की मद 4 में सूचीबद्ध किया गया है तथा वह भारतीय दंड संहिता की धारा 53 की 'चतुर्थ' मद में सूचीबद्ध एकमात्र दंड है (जिसे अवश्य ही किसी कालावधि का कारावास समझा जाना चाहिए) जो सुपुर्दगी के वारंट में अन्तर्विष्ट न्यायालय के निदेशानुसार ही कठोर या साधारण रीति में जेल में निष्पादित किया जा सकता है। अन्य शब्दों में दो दंड अर्थात् "आजीवन कारावास और कठिन या सादे कारावास (किसी अवधि के लिए) उनकी प्रकृति और स्थान तथा उनके निष्पादन के ढंग और उन्हें निष्पादित करने वाले अधिकारियों के संबंध में भिन्न दंड हैं। संक्षेप में काउन्सेल ने यह दलील दी है कि आजीवन कारावास के दंड के संबंध में स्थान, जहां उसे निष्पादित या क्रियान्वित किया जाना चाहिए, बन्दी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अधीन नियत नहीं किया गया है और न ही उसकी प्रकृति विहित की गई है अर्थात् वह अनिवार्य रूप से कठोर नहीं है। दंड की प्रकृति के संबंध में इस पश्चात्कथित पहलू के समर्थन में काउन्सेल ने इस तथ्य का अवलंब लिया है कि विधि आयोग ने भी भारतीय दंड संहिता के अधीन आजीवन कारावास के दंड "दि पनिशमेंट आफ इम्प्रीजनमेंट फार लाइफ अंडर दि आई० पी० सी०" पर तारीख 4 जुलाई, 1968 की अपनी 39वीं रिपोर्ट में इस आशय का विनिर्दिष्ट उपबंध "आजीवन कारावास कठोर होगा।" अन्तःस्थापित करके भारतीय दंड संहिता में युक्तियुक्त संशोधन करने की सिफारिश की थी तथा उसने उक्त सिफारिश अपनी 42वीं रिपोर्ट में पुनः दोहराई थी जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि इस पहलू पर विद्यमान विधि स्पष्ट नहीं है। इसलिए काउन्सेल ने यह दलील दी है कि चूंकि आजीवन निर्वासन के दंडादेश के समान आजीवन कारावास का दंडादेश, बन्दी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अधीन राज्य सरकार द्वारा नियत किए जाने वाले अपेक्षित स्थान या स्थानों पर सिद्धदोष व्यक्तियों को हटाकर के ही निष्पादित किया जा सकता है और चूंकि राज्य सरकार द्वारा उपर्युक्त उपबंध के अधीन कोई भी ऐसा स्थान अथवा ऐसे स्थान नियत नहीं किए गए हैं, इसलिए विधि की वर्तमान स्थिति को देखते हुए दंडादेश को निष्पादित करने वाले प्राधिकारी भारतीय दंड संहिता की धारा 53 के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 433ख के अधीन 14 वर्ष से अनधिक की कालावधि के लिए दंडादेश को लघूकृत करके अप्रत्यक्ष रूप से जेल में उक्त दंडादेश को निष्पादित या कार्यान्वित करने के लिए बाध्य है। अन्य शब्दों में काउन्सेल के अनुसार जेल अभिरक्षा में ऐसे आजीवन सिद्धदोष व्यक्ति के निरोध और दंडादेश के निष्पादन के समर्थन में विधि के किसी उचित प्राधिकार के अभाव में ऐसी जेल अभिरक्षा में उसके निरोध को अवैध और अविधिमान्य रूप में मानना होगा अथवा विकल्पतः यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि 14 वर्ष की कालावधि के लिए (छूट को सम्मिलित करते हुए) जेल में कठिन कारावास भुगतने के लिए भेजे जाने पर वह जेल से छोड़े जाने के लिए हकदार होगा चूंकि उपर्युक्त कालावधि की समाप्ति पर उसका सतत् रूप से निरोध अवैध होगा। उक्त तर्क के आधार पर ही काउन्सेल ने यह दलील दी है कि यद्यपि पिटीशनर के मामले में या तो भारतीय दंड संहिता की धारा 55 के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433ख के अधीन लघूकरण का कोई भी औपचारिक आदेश पारित नहीं किया गया है इसलिए पिटीशनर के 14 वर्ष (छूट सहित) से अधिक की कालावधि के लिए कठोर कारावास के अधीन रहने से राज्य सरकार को ऐसा आदेश पारित किया हुआ समझा जाना चाहिए तथा पिटीशनर तुरंत छोड़े जाने के लिए हकदार था।

4. दूसरी ओर प्रत्यर्थियों के काउन्सेल ने गंभीरतापूर्वक इस बात पर विवाद किया है कि या तो पुराना "आजीवन निर्वासन" का दंडादेश या 1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 द्वारा प्रतिस्थापित "आजीवन कारावास" का नया दंडादेश केवल देश निकाले के रूप में या समुद्र पार बंदियों की बस्तियों (पीनल सेटलमेन्ट्स) में सिद्धदोष व्यक्तियों को भेजकर निष्पादनीय था अथवा है, या कि जेलों के भारसाधक अधिकारी सिद्धदोष व्यक्तियों पर अधिरोपित दंडादेश को निष्पादित अथवा कार्यान्वित करने के लिए देश के भीतर जेलों में उन्हें परिरुद्ध नहीं कर सकते। काउन्सेल ने बलपूर्वक इस बात से इनकार किया है कि या तो "आजीवन निर्वासन का पुराना दंडादेश या नवीन रूप से प्रतिस्थापित आजीवन कारावास का दंडादेश (या तो मूल रूप से दिया गया अथवा मृत्यु दंडादेश के लघूकरण) के रूप में देश की जेलों में वैध रूप से निष्पादनीय नहीं बनाया गया था अथवा नहीं बनाया गया है और यह दलील दी है कि जेल के भारसाधक अधिकारियों की मार्फत जेलों में ऐसे दंडादेशों के निष्पादन या क्रियान्वयन के समर्थन में पर्याप्त विधिक नजीरें हैं और इस निमित्त पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 383-384 तथा बंदी अधिनियम, 1900 (1900 का 3) की धारा 3, 7, 15, 16, 29

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और 32 के साथ पठित वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 418 और 419 का अवलंब लिया गया था। साथ ही राज्य सरकारों द्वारा समय समय पर जारी किए गए कुछ कार्यपालिक या प्रशासनिक आदेशों या निदेशों का भी अवलंब लिया गया था और विशेषतया पंजाब जेल मैन्युअल के पैरा 719 और 726ए का निर्देश किया गया था जिसके अधीन निर्वासित बंदियों को, (जिनमें आजीवन सिद्धदोष व्यक्ति भी सम्मिलित होंगे) देश की कतिपय जेलों में अपना दंडादेश भुगतने के लिए भेजा जा सकता है। ऐसी जेलें बंदी अधिनियम, 1900 (1900 का 3) की धारा 32 के अधीन उनके परिरोध के लिए नियत स्थान हैं तथा काउन्सेल ने यह दलील दी है कि इस अपील का पिटीशनर भटिंडा की केन्द्रीय जेल में अपने आजीवन कारावास का दंडादेश भुगत रहा है। इसके अतिरिक्त दंड की प्रकृति के पहलू के बारे में काउन्सेल ने यह दलील दी है कि 1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 द्वारा भारतीय दंड संहिता में नई धारा 53क के, जो निर्वचन खंड की प्रकृति की है, प्रतिस्थापन को ध्यान में रखते हुए यह बात स्पष्ट होगी कि संसद का यह आशय था कि आजीवन कारावास का दंडादेश कठिन आजीवन कारावास के बराबर होना चाहिए। यह बतलाया गया कि आजीवन कारावास के दंड से संबंधित दोनों पहलुओं पर (अर्थात दंड के निष्पादन का स्थान और उसकी प्रकृति) पिटीशनर की ओर से दी गई दलीलों को दो सुविख्यात न्यायिक निर्णयों द्वारा हल कर दिया गया है। प्रिवी कौंसिल का उनमें से एक निर्णय **पंडित किशोरी लाल के मामले**[1] में है और दूसरा **गोपाल गोडसे के मामले**[2] का निर्णय है तथा उन विनिश्चयों द्वारा दोनों पहलुओं पर विधि की स्थिति सुस्थिर हो जाने से विधि आयोग द्वारा अपनी 39वीं रिपोर्ट तथा 42वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशें पिटीशनर के लिए कोई उपयोगी नहीं होंगी तथा उन्हें केवल शंकाओं के समाधान तथा विद्यमान विधिक स्थिति को स्पष्ट करने या घोषित करने के प्रयोजन के लिए ही की गई माननी होंगी। इसलिए यदि आजीवन कारावास का दंडादेश कठोर आजीवन कारावास के सिवाय और कुछ नहीं है तथा पिटीशनर के मामले में उसे देश की जेलों में से किसी एक जेल में वैध रूप से निष्पादित या कार्यान्वित किया जा सकता है या किया जा रहा है तो उसे इस कारण से तुरंत छोड़े जाने का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं होगा क्योंकि उसने या तो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 55 के अधीन या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433ख के अधीन

---

[1] ए० आई० आर० 1945 प्रिवी कौंसिल 64.

[2] [1961] 3 एम० सी० आर० 440.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राज्य सरकार द्वारा पारित लघूकरण के आदेश के अभाव में 14 वर्ष का कठोर कारावास (छूट सहित) भुगत लिया है। इसलिए पिटीशनर उसके द्वारा चाहे गए अनुतोष के लिए हकदार नहीं है।

5. दोनों तरफ के काउन्सेलों द्वारा दी गई विरोधी दलीलों से, जिन्हें संक्षेप में ऊपर उल्लिखित किया गया है, यह बात स्पष्ट होगी कि जेल अभिरक्षा से तुरन्त छोड़े जाने के लिए पिटीशनर के दावे का सम्पूर्ण आधार दो बातों पर आधारित है—(क) विद्यमान विधि के अधीन जेल के भारसाधक व्यक्ति की मार्फत जेल में आजीवन कारावास (जिसे पहले आजीवन निर्वासन कहा जाता था) के दण्डादेश का निष्पादित न किया जा सकना और (ख) आजीवन कारावास के दण्डादेश के अधीन भुगते जाने वाले दण्ड की अपरिभाषित प्रकृति, जो अनिवार्य रूप से कठोर प्रकृति की नहीं है, किन्तु क्योंकि उसे जेल में अपना आजीवन कारावास का दण्डादेश भुगतने के लिए भेजा गया था और वह भी 14 वर्ष (छूट सहित) से अधिक के लिए कठोर रीति में इसलिए उसके दण्डादेश को उस निमित्त औपचारिक आदेश के बिना या तो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 55 के अधीन अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433ख के अधीन राज्य सरकार द्वारा लघूकृत किया हुआ माना जाना चाहिए और उसे तुरन्त छोड़ा जाना चाहिए। प्रश्न यह है कि क्या दोनों आधार विधिमान्य हैं जिन पर तुरन्त छोड़े जाने के लिए उसका दावा आधारित है।

6. इस प्रश्न पर कि क्या आजीवन निर्वासन के दंडादेश को देश के भीतर जेलों में निष्पादित किया जा सकता है अथवा वह केवल समुद्र पार ही निष्पादित किया जा सकता था। हमारे मत में पंडित किशोरी लाल के मामले[1] में प्रिवी कौंसिल द्वारा इस स्थिति को बहुत ही स्पष्ट रूप से समझा दिया गया है। आजीवन निर्वासन के दंडादेश के इतिहास और भारतीय दंड संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता और बन्दी अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों पर विचार करने के पश्चात् प्रिवी कौंसिल ने यह निष्कर्ष निकाला था कि उक्त उपबन्ध स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि निर्वासन का दंडादेश अनिवार्य रूप से समुद्र पार ही निष्पादनीय नहीं था। उसने रिपोर्ट के पृष्ठ 66 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

"ये धाराएं यह बात स्पष्ट करती हैं कि जब निर्वासन का

---

1 ए० आई० आर० 1945 प्रिवी कौंसिल 64.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दंडादेश पारित किया गया हो तब निर्वासन का दंडादेश समुद्र पार ही भुगतना अनिवार्य नहीं है। न तो भारत सरकार और न ही प्रांतीय सरकार पर बन्दियों को ग्रहण करने के लिए समुद्र पार किसी स्थान का उपबन्ध करने हेतु कहीं कोई बाध्यता अधिरोपित नहीं की गई है। यह प्रतीत होता है कि कई वर्षों तक एकमात्र स्थान जहां बन्दी भेजे गए हैं अंडमान द्वीप समूह है जो अब जापानियों के कब्जे में है। माननीय न्यायाधीश महोदय को प्रशासनिक न कि विधायी प्रकृति के कई आदेश और निदेश यह दर्शाने के लिए निर्दिष्ट किए हैं कि वहां निर्वासन के लिए कौन से बन्दियों को वहां निर्वासन के लिए योग्य व्यक्तियों के रूप में माना गया है और कौन से बन्दियों को योग्य व्यक्तियों के रूप में नहीं माना गया है तथा यह भी दर्शाया है कि आजकल निर्वासन से दंडादिष्ट बन्दियों में से केवल ऐसे बन्दियों को ही उन द्वीपों में भेजा जाता है जो समुद्र पार निर्वासन के लिए स्वेच्छया जाने हेतु तैयार है··· किन्तु वर्तमान में निर्वासन, जिसे भारत में आजीवन दंडादेश का नाम दिया गया है, कुछ विशेष मामलों में वास्तव में कुछ कम कालावधि के लिए होता है जैसे कि इंगलैंड में 'कारावास' पद ऐसे सब दंडादेशों को लागू किया जाता है जो दो वर्ष से अधिक के नहीं हैं तथा कठोरश्रम के कारावास जो तीन वर्ष और उससे अधिक की कालावधि के हैं।···············इसलिए भारत में निर्वासन से दंडादिष्ट बंदी को अंडमान भेजा जा सकता है अथवा उसे निर्वासन के बंदियों के लिए नियत भारत की जेलों में से किसी एक जेल में भी रखा जा सकता है।··········"

तथापि पिटीशनर के काउन्सेल ने यद्यपि सभी मानवीय दृष्टिकोण से यह दलील देने का साहसपूर्ण प्रयास किया है कि प्रिवी कौंसिल द्वारा अपने उपर्युक्त आधार के समर्थन में निर्दिष्ट विधि के उपबन्ध उक्त निष्कर्ष का समर्थन नहीं करते हैं तथा अपनी दलील पर बल देने की दृष्टि से उन्होंने हमारे समक्ष दंड संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता और बंदी अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों को विस्तारपूर्वक पेश किया है। हमारे द्वारा मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि काउन्सेल की दलील स्वीकार करना कठिन है।

7. काउन्सेल ने यह बतलाया है कि प्रिवी कौंसिल द्वारा भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दंड संहिता की धारा 58 का बहुत अवलम्ब लिया गया था जो तत्समय प्रवृत्त थी (और जो 1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 द्वारा निरसित कर दी गई है) किन्तु यह दलील दी है कि धारा केवल अपराधी के समुद्र पार विवासन के लम्बित रहने के दौरान स्थानीय जेल में उसके अस्थायी या अन्तःकालीन निरोध या उसके साथ बर्ताव के लिए ही उपबंध करती है। इसलिए उस उपबंध का इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अवलम्ब नहीं लिया जा सकता कि निर्वासित बन्दियों को उनका सम्पूर्ण दंडादेश भुगतने के लिए स्थानीय जेलों में निरुद्ध किया जा सकता है। तथापि यह अवश्य ही बताया जाना चाहिए कि प्रिवी कौंसिल ने अपना उपर्युक्त निष्कर्ष निकालते समय पूर्ण रूप से केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 58 का ही अवलम्ब नहीं लिया है। वास्तव में उस निमित्त उसने यह मत व्यक्त किया है कि यदि मामले से सम्बन्धित केवल ये ही कानूनी उपबन्ध (भारतीय दंड संहिता की धारा 53, 55 और 58) होते तो इस तर्क में बहुत ही बल होगा कि धारा 58 को केवल अस्थायी या अन्तःकालीन निरोध और अपराधी के साथ व्यवहार के लिए उपबन्ध करने वाले रूप में पढ़ा जाना चाहिए जबकि अपराधी को समुद्र पार उसके विवासन के लिए व्यवस्था की जा रही हो और दंडादेश के केवल इतिहास पर ही विचार नहीं करना चाहिए किन्तु दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 और बंदी अधिनियम, 1900 के अन्य उपबन्ध भी उपदर्शित किए थे जो उसके निष्कर्ष का समर्थन करते हैं। अन्य शब्दों में उसने यह तथ्य महसूस किया था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 58 केवल अन्तःकालीन कालावधि के लिए ही उपबंध करती है, किन्तु अन्य कानूनी उपबन्धों के साथ उसने यह निष्कर्ष निकालने में सहायता की थी कि निर्वासित बंदियों को समुद्र पार भेजा जाना अनिवार्य रूप से अपेक्षित नहीं है और उसने उस निमित्त दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 368(2) का और विशेषतया बंदी अधिनियम, 1900 (1903 में यथा संशोधित) की धारा 29, 31 और 32 जैसे कतिपय उपबंधों का अवलंब लिया है जो हमारी राय में इस मुद्दे पर निर्णायक थे। जैसा कि हम वर्तमान में बतलाएंगे राज्य सरकार द्वारा समय समय पर जारी किए गए प्रशासनिक प्रकृति के आदेशों (जिनके बारे में इस निर्णय में निर्देश भी किया गया है) के साथ पठित अन्य कानूनी उपबंध उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन करते हैं।

8. यह बतलाया जा सकता है और इस पर भी पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा विवाद नहीं किया गया है कि 1955 के संशोधन अधिनियम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सं० 26 के प्रवृत्त होने के पूर्व भी (अर्थात् 1 जनवरी, 1956 के पूर्व) कुछ वर्षों की कालावधि के लिए अथवा आजीवन निर्वासन से दंडादिष्ट सब बन्दी अनिवार्य रूप से समुद्र पार अंडमान में बंदियों की बस्ती में भेजे नहीं जाते थे, किन्तु निर्वासित बंदियों को दो प्रवर्गों में विभाजित किया जाता था अर्थात् ऐसे बंदी जो निर्वासन के पात्र थे और जो विवासन के पात्र नहीं थे (जिनमें साधारणतया विनिर्दिष्ट रोगों या अंग-शैथिल्य से पीड़ित सिद्धदोष व्यक्ति सम्मिलित होते थे) तथा केवल पहले वर्ग के बन्दियों को ही अंडमान निर्वासित किया जाता था जब कि पश्चात्कथित बन्दियों को बन्दी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अधीन देश के भीतर ही किसी एक या अन्य जेल में अन्तरित और निरुद्ध किया जाता था तथा इसके बीच में उनके मामले भारतीय दंड संहिता की धारा 55 के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 402 के अधीन आदेश पारित करने के लिए राज्य सरकार को निर्दिष्ट किए जाते थे जो राज्य सरकार के विवेकाधिकार के अधीन होता था। इस सम्बन्ध में बंदी अधिनियम, 1900 की धारा 32 और पंजाब जेल मैन्युअल के पैरा 719 का निर्देश किया जा सकता है। बन्दी अधिनियम, 1900 (1900 का 3) की धारा 32, जो विनिर्दिष्ट रूप से निर्वासन के दंडादेश के अधीन व्यक्तियों से सम्बन्धित है (जो अब आजीवन कारावास से दंडादिष्ट व्यक्तियों को लागू होती है) इस प्रकार है —

> "32. निर्वासन के दंडादेश के अधीन व्यक्तियों को निरुद्ध रखने के स्थानों का नियत किया जाना और उन्हें वहां भेजा जाना—
> (1) राज्य सरकार राज्य के भीतर ऐसे स्थान नियत कर सकेगी जहां निर्वासन के लिए दंडादिष्ट व्यक्तियों को भेजा जाएगा और राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सम्यक् रूप से प्राधिकृत कोई अधिकारी उन व्यक्तियों को इस प्रकार नियत स्थानों को भेजने का आदेश उस दशा के सिवाय देगा जब निर्वासन का दंडादेश किसी ऐसे व्यक्ति को दिया गया हो जो किसी अन्य अपराध के लिए उसके पहले से पारित किसी दंडादेश के अधीन निर्वासन पहले से ही भुगत रहा हो।
>
> (2) ऐसी किसी दशा में, जिसमें राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन राज्य के भीतर स्थान नियत करने और निर्वासन के लिए दंडादिष्ट व्यक्तियों को हटाकर वहां भेजने का आदेश देने के लिए सक्षम है, राज्य सरकार किसी अन्य राज्य की राज्य सरकार के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साथ करार करके उस राज्य में ऐसे स्थान नियत कर सकेगी, और वैसे ही करार द्वारा उन व्यक्तियों को वहां हटाने के आदेश दे सकेगी या आदेश देने के लिए किसी अधिकारी को सम्यक् रूप से प्राधिकृत कर सकेगी।"

इस उपबन्ध के अधीन राज्य सरकार को राज्य के भीतर स्थान तय करने और बंदियों की सहमति से अन्य राज्यों में स्थान तय करने के लिए सशक्त किया गया है जहां निर्वासित बन्दियों को उनके दंडादेश भुगतने के लिए भेजा जा सकता है। यह बात स्पष्ट है कि धारा के पार्श्व शीर्षक में आने वाले "निरुद्ध" शब्द से बन्दियों का दंडादेश निष्पादित या कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए स्थान में बंदियों का निरोध अभिप्रेत है।

9. पिटीशनर के काउन्सेल ने बल पूर्वक यह दलील दी है कि बन्दी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अधीन निर्वासित बन्दियों को निरुद्ध रखने के लिए प्रकल्पित स्थान जेलों में स्थान नहीं हो सकते किन्तु जेलों से बाहर कुछ स्थान होने चाहिएं। अन्य शब्दों में दलील यह थी कि निर्वासित बंदियों को निरुद्ध रखने की शक्ति के अधीन राज्य सरकार उनके निरोध के लिए स्थानों के रूप में जेल नियत नहीं कर सकती। हम इस दलील को मानने में असमर्थ हैं कि धारा 32 के अधीन राज्य सरकार की शक्ति पर ऐसी शर्त या सीमा को धारा में क्यों पढ़ा जाना चाहिए। धारा की बिना शर्त और स्पष्ट दशा को ध्यान में रखते हुए ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे कि राज्य सरकारें निर्वासित बंदियों को निरुद्ध रखने के स्थानों के रूप में जेल नियत नहीं कर सकती। काउन्सेल ने अपनी दलील के समर्थन में **कुंदन लाल और अन्य बनाम सम्राट (एम्परर)**[1] के मामले में और **खैराती राम के मामले**[2] में लाहौर उच्च न्यायालय के दो विनिश्चयों का अवलम्ब लिया है किन्तु हमारे मत से इन दोनों विनिश्चयों में से कोई भी विनिश्चय काउन्सेल द्वारा सुझाए गए अनुसार कोई भी बात अधिकथित नहीं करता है। दोनों ही मामलों में न्यायालय का सम्बन्ध इस प्रश्न से था कि मुखबिर को, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 337 के अधीन माफी दी गई थी, जांच या विचारण के दौरान कहां रखा जाना चाहिए। लाहौर उच्च न्यायालय ने केवल यह अभिनिर्धारित किया है कि उसे कारागार में, जिसमें न्यायिक हवालात भी सम्मिलित है, न्यायिक अभिरक्षा में निरुद्ध

---

[1] ए० आई० आर० 1961 लाहौर 353.

[2] ए० आई० आर० 1931 लाहौर 476

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया जाना चाहिए तथा पुलिस अभिरक्षा में नहीं रखा जाना चाहिए तथा दोनों मामलों में पुलिस नियन्त्रण के अधीन लाहौर किले में ऐसे मुखबिरों को रखने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 514(1) के अधीन स्थानीय सरकार द्वारा जारी किए गए निदेश को अवैध और अधिकारातीत घोषित किया गया था। इन विनिश्चयों में से कोई भी विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए नजीर नहीं है कि बंदी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार निर्वासित बन्दियों को निरुद्ध रखने के 'स्थानों' के रूप में अपने राज्य क्षेत्र के भीतर जेल गठित या नियत नहीं कर सकती। तथापि जैसा कि हम इसके पश्चात् बतलाएंगे कि पंजाब जेल मैन्युअल का पैरा 719 स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि पंजाब सरकार द्वारा जारी की गई कई अधिसूचनाओं या आदेशों द्वारा प्रांत के भीतर कतिपय स्थानीय जेलों को निर्वासित बन्दियों को निरुद्ध रखने के लिए बन्दी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अधीन स्थानों के रूप में नियत किया गया है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि बंदी अधिनियम, 1900 (1900 का 3) की धारा 32 के अधीन किसी अवधि या आजीवन के लिए निर्वासन के दंडादेश को तथा आजीवन कारावास के दंडादेश को राज्य सरकारों के आदेशों के अधीन स्थानीय जेलों की धारा 32 के अर्थ में 'स्थानों' के रूप में नियत करके ऐसी जेलों में निष्पाद्य बनाया जा सकता था तथा बनाया जा सकता है।

10. बन्दी अधिनियम, 1900 की धारा 32 के अतिरिक्त दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 383 और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 418 में भी ऐसा आवश्यक विधिक प्राधिकार और शक्ति अन्तर्विष्ट है जिसके अधीन कोई दण्ड न्यायालय वारंट जारी करके आजीवन कारावास के दण्डादेश को स्थानीय जेलों में निष्पादित या कार्यान्वित करने के लिए निदेश दे सकती है। दोनों ही धाराएं अपनी-अपनी संहिताओं के अधीन 'दण्डादेश के निष्पादन' से सम्बन्धित अध्याय में प्रतीत होती हैं तथा दोनों में ही समान शब्दों का प्रयोग किया गया है तथा प्रत्येक में यह उपबन्ध है कि जहां अभियुक्त आजीवन कारावास के लिए दण्डादिष्ट किया गया हो वहां दण्डादेश देने वाला न्यायालय उस जेल या अन्य स्थान को, जिसमें वह परिरुद्ध है या उसे परिरुद्ध किया जाना है, तत्काल वारंट भेजेगा और यदि अभियुक्त पहले से ही उस जेल या अन्य स्थान में परिरुद्ध नहीं है तो वारंट के साथ उसे ऐसी जेल या अन्य स्थान को भिजवाएगा। यह बात स्पष्ट है कि धाराओं अधीन जारी किए गए न्यायालय के वारंट के अनुसरण में जेल में सिद्धदोष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यक्ति का परिरोध दण्डादेश को निष्पादित या कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए है। धारा 418 की उपधारा (1) का परन्तुक और 418 की उपधारा (2) इस स्थिति को बहुत ही स्पष्ट करती है कि "परिरोध" शब्द दण्डादेश के निष्पादन या कार्यान्वयन के अर्थ में प्रयोग किया गया है। दोनों संहिताओं (1898 और 1973 की) के अधीन विहित सुपुर्दगी के वारंट से सम्बन्धित प्ररूपों पर आधारित कुछ तर्क पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा दिया गया था किन्तु यह बात स्पष्ट है कि सुपुर्दगी के वारंट के समुचित प्ररूपों के विहित न किए जाने से स्थानीय जेलों में निरोध की वैधता प्रभावित नहीं होगी जब तक कि उस निमित्त अपेक्षित विधिक प्राधिकार और शक्ति दण्ड न्यायालय में निहित है। तथापि संहिताओं के अधीन विहित प्ररूपों को व्यापक रूप में नहीं माना जा सकता तथा जेल में आजीवन कारावास के दण्डादेश के निष्पादन या कार्यान्वयन के लिए निदेश देने वाला समुचित सुपुर्दगी के वारंट को न्यायालय द्वारा अंगीकृत किया जा सकता है और जारी किया जा सकता है जब तक कि विधि में उस निमित्त अपेक्षित प्राधिकार और शक्ति न्यायालय में निहित है।

11. पंजाब जेल मैन्युअल, जो सन् 1916 में प्रकाशित हुआ है, का पैरा 719 इस प्रकार है—

> "719. **निर्वासित बन्दियों के लिए परिरोध के स्थान**—किसी अवधि के लिए या आजीवन के लिए निर्वासन से दण्डादिष्ट प्रत्येक बन्दी को, यदि वह अण्डमान को निर्वासन करने के अयोग्य हो, निम्नलिखित जेलों में से किसी एक या दूसरी जेल में अन्तरित और परिरुद्ध किया जाएगा जो बन्दी अधिनियम, 1900 (1900 का अधिनियम सं० 3) की धारा 32 के अधीन पंजाब के भीतर निर्वासित बन्दियों के परिरोध के लिए नियत स्थान हैं अर्थात् लाहौर बोर्स्टल सेंट्रल जेल और केन्द्रीय जेल, लाहौर, मांटगोमरी और मुलतान, जिला जेल अम्बाला और मुलतान तथा लाहौर महिला जेल।"

हाशिए में पैरा में नामित जेल विनिर्दिष्ट करने वाली पंजाब सरकार की कई अधिसूचनाओं का निर्देश किया गया है। यह प्रतीत होता है कि पैरा 719 स्वयं कुछ समय पश्चात् संशोधित किया गया था (यह संशोधन कब किया गया था यह बात काउन्सेल बतलाने में असमर्थ रहे थे किन्तु अन्दाजन आजीवन निर्वासन के स्थान पर आजीवन कारावास प्रतिस्थापित किए जाने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से पूर्व किया गया था) तथा "यदि अण्डमान को विवासन करने के अयोग्य हो" शब्द 1975 में प्रकाशित पंजाब जेल मैन्युअल में आने वाले संशोधित पैरा 719 से लुप्त किए गए थे। संशोधित पैरा 719 इस प्रकार है—

> "719. **निर्वासित बन्दियों के लिए परिरोध के स्थान**—किसी अवधि के लिए या आजीवन के लिए निर्वासन से दण्डादिष्ट प्रत्येक बन्दी, को निम्नलिखित जेलों में से किसी एक या अन्य जेल में अन्तरित और परिरुद्ध किया जाएगा जो कि बन्दी अधिनियम, 1900(1900 का अधिनियम सं० 3) की धारा 32 के अधीन पंजाब के भीतर निर्वासित बन्दियों के निरोध के लिए नियत स्थान हैं अर्थात् केन्द्रीय जेल अम्बाला और फिरोजपुर, बोर्स्टल इन्स्टीट्यूशन तथा जुएनाइल जेल फरीदकोट महिला बन्दियों के मामले में महिला सेक्शन जेल, लुधियाना और जिला जेल, दिल्ली।"

यहां पर भी हाशिए में पैरा में नामित जेलों को विनिर्दिष्ट करने वाली विभिन्न सरकारी अधिसूचनाओं का निर्देश किया गया है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट होगी कि चूंकि पैरा 719 में "यदि अंडमान को विवासन करने के अयोग्य हो" शब्दों को लुप्त करने के पश्चात् जहां तक पंजाब का सम्बन्ध है, किसी भी निर्वासित बन्दी को समुद्र पार देशान्तरित नहीं किया गया था तथा सब निर्वासित बन्दियों को उन स्थानीय जेलों में निरुद्ध और परिरुद्ध किया गया था जो बन्दी अधिनियम, 1900 (1900 का 3) की धारा 32 के अधीन परिकल्पित स्थानों के रूप में नियत किए गए थे। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि सम्यक् अनुक्रम में किसी अवधि का या आजीवन निर्वासन का दण्डादेश देश के भीतर जेलों में ही निष्पादन हो गया था और वही स्थिति दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1955 का 26 द्वारा अन्तःस्थापित भारतीय दण्ड संहिता की धारा 53क को देखते हुए 1 जनवरी, 1956 को और उसके पश्चात् आजीवन कारावास से दण्डित व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी लागू होनी चाहिए। प्रथम आधार जिस पर पिटीशनर का तुरन्त छोड़े जाने का दावा आधारित है इस प्रकार विधिमान्य नहीं है।

12. पिटीशनर के काउन्सेल ने आजीवन कारावास (1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 द्वारा निर्वासन के लिए प्रतिस्थापित) का दंडादेश भुगतने के लिए अपेक्षित दण्ड की प्रकृति के बारे में यह दलील दी है कि उसकी प्रकृति कहीं भी परिभाषित नहीं की गई है। इसलिए उसकी तुलना "कठोर आजीवन कारावास" से नहीं की जा सकती। तर्क यह था कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संशोधन अधिनियम (1955 का सं० 26) "आजीवन निर्वासन के अधीन" और उसके समान दण्डादेश भुगतने के लिए अपेक्षित दण्ड की प्रकृति में परिवर्तन नहीं करता है तथा आजीवन कारावास का दण्डादेश भारतीय दण्ड संहिता की धारा 53 में चतुर्थ मद में उल्लिखित "कठिन या सादा कारावास" के दण्ड से भिन्न रहता है। काउन्सेल ने यह भी बतलाया है कि भारतीय दण्ड संहिता तथा दण्ड प्रक्रिया संहिताओं (1898 तथा 1973 की) दोनों में ही "आजीवन कारावास और किसी अवधि के कारावास के बीच प्रभेद कायम रखा गया है तथा केवल किसी अवधि का कारावास ही है जो कठोर या सादा हो सकता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 60 के अधीन अभियुक्त को दण्डित करते समय न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश पर निर्भर करता है तथा दण्ड संहिता या दण्ड प्रक्रिया संहिताओं में ऐसी कोई बात नहीं है जो यह उपदर्शित करती हो कि "आजीवन कारावास अनिवार्य रूप से कठोर है या कठोर होगा।" इस दलील को उन कारणों से स्वीकार करना सम्भव नहीं है जो हम यहां पर उपदर्शित करेंगे।

13. प्रथमतः पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा दिए गए तर्क में विवक्षित बात इस स्थिति को स्वीकार करना है कि आजीवन निर्वासन का पूर्ववर्ती दण्डादेश और उसके लिए प्रतिस्थापित आजीवन कारावास का दंडादेश दोनों में से किसी के भी अधीन सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा भुगतने के लिए अपेक्षित दंड की प्रकृति के बारे में समान है। इसलिए यदि यह दर्शाने के लिए कानूनी सामग्री या विधि का बल रखने वाली सामग्री पर्याप्त है कि किसी अवधि के या आजीवन निर्वासन के दण्डादेश में सिद्धदोष व्यक्ति से दण्डादेश भुगतते समय कठोर श्रम लेना अन्तर्वलित है। तो स्पष्ट रूप से दलील असफल होनी चाहिए। यह बात अच्छी तरह से सुविदित है कि समुद्र पार बन्दियों की बस्ती में निर्वासन में सदैव ही सम्बन्धित सिद्धदोष व्यक्तियों के लिए कठोर श्रम विवक्षित होता है और इसलिए समुद्र पार विवासन को, जिसे सामान्य रूप से काला पानी कहा जाता है, भारत में बिना कारण के बहुत ही आंतककारी दंड था। कारागार अधिनियम' 1894 (1894 का अधिनियम सं० 9) की धारा 59 ऐसी अधिनियमिति है जो कारागारों से संबंधित विधि का संशोधन करने के लिए बनाई गई थी ताकि भारत में कारागार व्यवस्था की एक समाव पद्धति को विहित किया जा सके। उक्त धारा प्रथमतः सपरिषद गवर्नर जनरल को शक्ति प्रदत्त करती थी और उसके पश्चात् वर्ष 1937 से सुसंगत नियम बनाने के लिए राज्य सरकारों को शक्ति प्रदत्त करती है। अन्य बातों के साथ उसके खण्ड 14 के अधीन श्रम को वर्गीकृत करने और उनके प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विहित करने के लिए और श्रम से आराम की कालावधियां विहित करने के लिए नियम बनाए जा सकते हैं और यह प्रतीत होता है कि उस निमित्त अपेक्षित नियम उन प्राधिकारियों द्वारा बनाए गए हैं जिन्हें शक्ति प्रदत्त की गई थी अथवा शक्ति प्रदत्त की गई है। प्रत्यर्थी के काउन्सेल ने हमारे समक्ष अण्डमान और निकोबार मन्युअल निर्दिष्ट किया है जो वर्ष 1908 में भारत सरकार का प्रकाशन है जिसमें पोर्ट ब्लेयर और निकोबार द्वीपों में बन्दियों की बस्तियों के प्रबन्ध और नियंत्रण को लागू होने वाले कई नियम, विनियम और आदेश अन्तर्विष्ट हैं। मैन्युअल की धारा 1(2) में यह कहा गया है कि पोर्ट ब्लेयर और निकोबार द्वीपों में बन्दियों की बस्तियां विनिर्दिष्ट रूप से बन्दी अधिनियम, 1871 (1871 का अधिनियम सं० 5) की धारा 33, जो बन्दी अधिनियम, 1900 (1900 का 3) की धारा 32 के समान है, के अर्थ में "स्थान के रूप में" नियत की गई हैं तथा किसी अवधि के और आजीवन सिद्धदोष व्यक्तियों को वहां निर्वासित किए जाने के लिए अनुज्ञात किया गया है जबकि धारा 1(3) में यह कहा गया है कि पोर्ट ब्लेयर में बन्दियों को परिरुद्ध रखने के लिए उपयोग में लाए गए बैरकों और अन्य स्थानों को शास्तिक सेवा से दण्डादिष्ट सिद्धदोष व्यक्तियों को निरुद्ध करने के लिए कारागार भी घोषित किया गया है। उक्त मैन्युअल का अध्याय 2 सिद्धदोष व्यक्तियों के वर्गीकरण से सम्बन्धित है तथा धारा 17 बहुत ही महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार है—

> "17(1) 1871 के अधिनियम सं० 5 की धारा 34 द्वारा सपरिषद् गवर्नर जनरल समय-समय पर निर्वासित सिद्धदोष व्यक्तियों के वर्गीकरण के बारे में नियम विहित कर सकेगें।
>
> (2) सिद्धदोष व्यक्तियों के वर्गीकरण के लिए भारत सरकार द्वारा इस प्रकार मंजूर किए गए नियम निम्नलिखित आदेशों में सम्मिलित हैं...."

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "17(1) By section 34, Act V of 1871. the Governor General in Council may, from time to time, prescribe rules as to the classification of transported convicts.
>
> (2) The rules so sanctioned by the Government of India for the classification of convicts are comprised in the following orders.........

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(3) निर्वासन में कठोर अनुशासन के अधीन कठोर श्रम अन्तर्विष्ट है और उसमें केवल उतना ही भोजन दिया जाता है जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। उपर्युक्त बातों में किसी भी प्रकार की कमी उदारता है जो किसी भी समय पूर्णतया या भागतः वापस ली जा सकती है।"

संक्षेप में धारा 17 का उपखंड (3) के निर्वासन पद का निर्वचन करता है और स्पष्ट शब्दों में यह कहता है कि निर्वासन से ऐसे अनुग्रह के, जो समय-समय पर मन्जूर किया जाए या वापस लिया जाए, अध्यधीन एवं कठोर अनुशासन के अधीन कठोर श्रम अभिप्रेत है। उक्त मैन्युअल की धारा 24 और 25 बन्दियों की बस्ती में बन्दियों के आने पर बन्दियों के वर्गीकरण और श्रेणियों के लिए उपबन्ध करती है। धारा 146, जो श्रम के घण्टे विहित करती है, यह कहती है कि काम घण्टे अधीक्षक द्वारा विनियमित किए जाते हैं और सामान्यतया प्रतिदिन काम के घण्टे 9 होंगे जिसमें काम पर जाने और काम पर लौटने का समय भी सम्मिलित होगा (जहां तक व्यवहार्य हो)। अंडमान और निकोबार जेल मैन्युअल के ये उपबंध स्पष्ट रूप से इस तथ्य को उपदर्शित करते हैं कि या तो आजीवन या किसी अवधि के लिए निर्वासन के दण्डादेश से सिद्धदोष व्यक्ति से कठोर श्रम लेने के अर्थ में कठोर कारावास अभिप्रेत है। इस स्थिति को न्यायिक रूप से देखा गया है और प्रिवी कौंसिल द्वारा पंडित किशोरी लाल के मामले[1] में स्वीकार किया गया है। इस मामले में निर्वासन के दण्डादेश के इतिहास पर विस्तारपूर्वक विचार करते समय प्रिवी कौंसिल ने स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि इंगलैंड और भारत दोनों ही जगह निर्वासित बन्दी समुद्र पार भेजे जाते समय कठोर अनुशासन के अधीन एवं कठोर श्रम की शर्तों के अध्यधीन होते थे। भारतीत दण्ड संहिता की धारा 50 और अन्य कानूनी उपबंधों का अवलम्ब लेते हुए प्रिवी कौंसिल ने यह व्यक्त किया है कि जब देश के भीतर ही स्थानीय जेलों में बन्दी को सजा भुगतने के लिए कहा गया हो तब निर्वासन से कठोर कारावास अभिप्रेत है। इसलिए स्वयं काउन्सेल के तर्क के अनुसार

---

(3) Transportation entails hard labour under strict discipline, with only such food as is necessary for health. Any mitigation of the above is an indulgence which may, at any time, be withdrawn in whole or in part."

[1] ए० आई० आर० 1945 पी० सी० 64.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोनों दण्डादेश समान प्रकृति के होने से आजीवन कारावास के दण्डादेश से कठोर आजीवन कारावास ही अभिप्रेत समझा जाना चाहिए।

14. द्वितीयतः, 1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 द्वारा भारतीय दण्ड संहिता में एक नवीन धारा 53क जोड़ी गई है जो हमारे मत से शंका से परे मामले को अन्तिम रूप से निर्णीत करती है चूंकि उसकी उपधारा (1) के साथ पठित उपधारा (2) अनिवार्य विवक्षा द्वारा स्पष्ट रूप से यह संकेत देती है कि आजीवन कारावास के दण्डादेश को कठोर आजीवन कारावास के समतुल्य ही माना जाना चाहिए। यह बात स्पष्ट है कि धारा 53क निर्वचन खंड की प्रकृति की है चूंकि स्पष्ट रूप से वह इस बात से सम्बन्धित है कि आजीवन या किसी अवधि के निर्वासन के दण्डादेश का दाण्डिक विधिशास्त्र में किस प्रकार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। धारा 53क की उपधारा (1) में यह उपबन्ध है कि तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या किसी ऐसी विधि या किसी निरसित अधिनियमिति के आधार पर प्रभावशील किसी लिखत या आदेश में आजीवन निर्वासन के प्रति निर्देश का अर्थ यह लगाया जाएगा कि वह आजीवन कारावास के प्रति निर्देश है। उक्त धारा की उपधारा (2) इस प्रकार है—

> "(2) हर मामले में, जिसमें कि किसी अवधि के लिए निर्वासन का दण्डादेश दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1955 के प्रारम्भ से पूर्व दिया हुआ है, अपराधी से उसी प्रकार बरता जाएगा मानो वह उसी अवधि के लिए कठिन कारावास के लिए दण्डादिष्ट किया गया हो।"

इस उपबन्ध के अधीन संसद ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि किसी अवधि के लिए निर्वासन के दण्डादेश को इस प्रकार निष्पादित या कार्यान्वित किया जाना चाहिए मानो वह उसी अवधि के लिए कठिन कारावास के लिए दण्डादिष्ट किया गया था। यदि किसी अवधि के निर्वासन को उसी अवधि के कठिन कारावास के बराबर माना जाता है तो अनिवार्य विवक्षा द्वारा आजीवन निर्वासन के दंडादेश से जो अब आजीवन कारावास द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है और जो बहुत ही गम्भीर, कठोर अपराधों के लिए दिया जाता है, कठोर आजीवन कारावास ही अभिप्रेत समझा जाना चाहिए अर्थात वह कठोर कारावास के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। तथापि पिटीशनर के काउन्सेल ने यह बतलाया है कि उपधारा (2) केवल किसी अवधि के निर्वासन के दण्डादेश से ही सम्बन्धित है न कि आजीवन निर्वासन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

या कारावास से सम्बन्धित है तथा उपबन्ध तारीख । जनवरी, 1956 से पूर्व दिए गए किसी अवधि के निर्वासन के दण्डादेशों को भी लागू होता है । यह बात निस्संदेह सही है किन्तु वह इस प्रश्न को प्रभावित नहीं करेगी कि क्या उपबन्ध आजीवन कारावास से दण्डादिष्ट दोषसिद्ध व्यक्तियों पर अधिरोपित किए जाने के लिए आशयित दण्ड की प्रकृति के बारे में कोई अपेक्षित मार्गदर्शन देता है और ऐसा मार्गदर्शन अनिवार्य विवक्षा द्वारा स्पष्ट है । हमारे मत से विधायी आशय को स्पष्ट रूप से समझा दिया गया है और वह यह मत व्यक्त करता है कि तारीख 1 जनवरी, 1956 को या उसके पश्चात् दिए गए आजीवन कारावास के दण्डादेश के अधीन भुगतने के लिए अपेक्षित दण्ड की प्रकृति कठोर कारावास है ।

15. गोपाल गोडसे के मामले[1] के विनिश्चय से यह बात स्पष्ट है कि किस प्रकार से इस न्यायालय द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 53क(2) का अर्थान्वयन किया गया था । उस मामले के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं—गोपाल गोडसे को तारीख 10 फरवरी, 1949 को स्पेशल कोर्ट रेडफोर्ट, दिल्ली के न्यायाधीश द्वारा आजीवन निर्वासन का दण्डादेश दिया गया था । अनुग्रहों सहित 20 वर्ष का कठोर कारावास भुगतने के पश्चात् उसने अपने सतत निरोध को वैधता की चुनौती देते हुए यह दावा किया था कि उसने अपना दण्डादेश भुगत लिया था और इसलिए वह छोड़े जाने के लिए हकदार है । न्यायालय द्वारा अपने अवधारण के लिए उठाए गए प्रश्नों में से एक प्रश्न यह था कि क्या पिटीशनर (गोपाल गोडसे) जिसे आजीवन निर्वासन का दण्डादेश दिया गया था [और जिसके दण्डादेश को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 55 के अधीन या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 402(1) के अधीन लघुकृत नहीं किया गया था] वैध रूप से इस प्रकार बरता जा सकता है मानो कि वह कठिन कारावास से दण्डादिष्ट व्यक्ति था । पंडित किशोरी लाल के मामले[2] में प्रिवी कौंसिल के विनिश्चय का, जो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 58 और अन्य कानूनी उपबन्धों पर आधारित था, अनुमोदन करने के पश्चात् इस न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर पूर्ण रूप से सकारात्मक रूप में दिया था और उसने अपने निष्कर्ष को धारा 53क(2) में अन्तर्विष्ट उपबंध पर आधारित किया था । यह उपबन्ध तारीख 1 जनवरी, 1956 से 1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 द्वारा जोड़ा गया था । उपबन्ध को

---

[1] (1961) 3 एस० सी० आर० 440.

[2] ए० आई० आर० 1945 पी० सी० 64.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उल्लिखित करने के पश्चात् न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "इस दलील के लिए चाहे जो भी न्यायोचितता हो कि निर्वासन के लिए दण्डादिष्ट व्यक्ति को अस्थायी रूप के सिवाय भारत की किसी भी जेल में कठिन कारावास भुगतने के लिए वैध रूप से बाध्य नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे इस प्रकार निर्वासित न किया गया हो। उक्त संशोधन के पश्चात् उस धारा के अधीन अब कोई भी अनिर्णीत बात नहीं है। उक्त धारा के अधिनियमित किए जाने से पूर्व आजीवन या किसी अन्य अवधि के लिए निर्वासित व्यक्ति को आजीवन कठिन कारावास के लिए अथवा उक्त अवधि के लिए दण्डादिष्ट व्यक्ति के रूप में बरता जायेगा।"

विनिर्दिष्ट रूप से यह बतलाया जा सकता है कि गोपाल गोडसे का आजीवन निर्वासन का दण्डादेश 10 फरवरी, 1949 को अर्थात् 1955 के संशोधन अधिनियम सं० 26 के प्रवृत्त होने से पूर्व पारित किया गया था तथा संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने के बहुत पश्चात् जनवरी, 1961 में न्ययालय के समक्ष विचारार्थ प्रश्न आया था। उक्त संशोधन अधिनियम के अधीन आजीवन कारावास के दण्डादेश को निर्वासन के लिए प्रतिस्थापित किया गया था जिसका यह परिणाम था कि इस न्यायालय को अपने निष्कर्ष के लिए धारा 53क(2) का अवलम्ब लेना पड़ा था और उसने अवलम्ब लिया था। अन्य शब्दों में इस न्यायालय ने उस मामले में आजीवन निर्वासन के दण्डादेश को (जो तारीख 1 जनवरी 1956 को और उसके पश्चात् आजीवन कारावास के रूप में प्रवृत्त रहा था) कठिन आजीवन कारावास के समान माना था।

16. यह बतलाया जा सकता है कि इसके पश्चात् भी ऐसे न्यायिक पूर्वोदाहरण की कमी नहीं हैं जिनमें दण्ड की प्रकृति के मामले में आजीवन कारावास को कठिन आजीवन कारावास के समान माना गया है। मध्य प्रदेश राज्य बनाम अहमदुल्लाह[1] के मामले में इस न्यायालय ने हत्या के आरोप पर उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के निर्णय को उलटने के पश्चात् निम्नलिखित दण्डादेश अधिरोपित किया था—

> "किन्तु इस तथ्य पर ध्यान देने के पश्चात् कि अभियुक्त को तुरन्त सेशन न्यायाधीश के आदेश द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है

---

1 ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 998.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और जिस आदेश की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई है, हमारा यह विचार है कि यदि हम अभियुक्त को कठिन आजीवन कारावास का दण्ड देते हैं तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा"

पुन: के० एम० एन० नानावटी बनाम महाराष्ट्र राज्य[1] के प्रसिद्ध मामले में (नानावटी का द्वितीय मामला) मुम्बई उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभियुक्त को कठिन आजीवन कारावास से दण्डादिष्ट किया था और इस न्यायालय ने अपील खारिज करते समय दण्डादेश को सही रूप से दिए गए दण्डादेश के रूप में कायम रखा था।

17. सुनवाई के दौरान हमारा ध्यान सथम्माल सरस्वती बनाम राज्य[2] के मामले में केरल उच्च न्यायालय के विनिश्चय की ओर आकृष्ट किया था जिसमें उस उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि आजीवन कारावास का दण्डादेश पारित करते समय दण्ड न्यायालय को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 60 के उपबन्धों को ध्यान में रखना चाहिए और उसमें से कोई एक या दूसरा चुनना चाहिए ताकि अभियुक्त को दिए जाने के लिए आशयित दण्ड की वास्तविक प्रकृति स्पष्ट हो सके और यह कहकर के भी स्थिति को स्पष्ट किया था कि उस मामले में आजीवन कारावास सादा कारावास होगा न कि कठिन कारावास। केरल उच्च न्यायालय के उपर्युक्त मत को कायम रखना सम्भव नहीं है। प्रथमत: दण्ड संहिता के कई उपबन्धों में आजीवन कारावास के बाद प्रभेद कायम रखा गया है। द्वितीयत: धारा 60 के स्पष्ट शब्दों के अनुसार वह ऐसे मामले को लागू होती है जहां अपराधी कारावास से दण्डनीय है। कारावास किसी भी प्रकार का हो सकता है तथा केवल ऐसे मामलों में ही न्यायालय यह निदेश देने के लिए सक्षम है कि ऐसा कारावास पूर्णतया कठिन या पूर्णतया सादा होगा अथवा ऐसे कारावास का कोई भाग कठिन होगा तथा शेष सादा होगा। यह बात स्पष्ट है कि जब कभी अपराधी आजीवन कारावास से दण्डनीय होता है तो वह ऐसे कारावास से दण्डनीय नहीं होता है जो किसी भी प्रकार का हो सकता है। अन्य शब्दों में धारा 60 लागू नहीं होगी।

18. तथापि ऊपर चर्चा किए गए कारणों से क्रमश: पंडित किशोरी लाल के मामले[3] और गोपाल गोडसे के मामले[4] में प्रिवी कौंसिल और इस

---

1. ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 605.
2. ए० आई० आर० 1957 केरल 102.
3 ए० आई० आर० 1945 पी० सी० 64.
4 (1961) 3 एस० सी० आर० 440.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय द्वारा दिए गए प्राधिकृत निर्णयों को देखते हुए हमें यह अभिनिर्धारित करना होगा कि आजीवन कारावास के दण्डादेश में अन्तर्वलित दण्ड की प्रकृति के बारे में विधि की स्थिति अच्छी तरह से सुस्थिर हैं तथा आजीवन कारावास के दण्डादेश को कठिन आजीवन कारावास के समान मानना है। मामले के इस पहलू से विधि आयोग की 39वीं और 42वीं रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट सिफारिश को, जिसमें भारतीय दण्ड संहिता में उपयुक्त संशोधन करने का सुझाव दिया गया है, केवल शंकाओं के निवारण के प्रयोजन के लिए या विद्यमान विधिक स्थिति को स्पष्ट करने या घोषित करने के प्रयोजन के लिए दी गई मानना होगा। संभवतः उस कारण से सुझाए गए संशोधन को आत्यंतिक और आवश्यक रूप में नहीं माना गया है और इसलिए उसे अभी तक पारित नहीं किया गया है।

19. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए आधारों में से, जिन पर तुरन्त छोड़े जाने के लिए पिटीशनर का दावा आधारित है, किसी भी आधार को विधिमान्य अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और इसलिए या तो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 55 के अधीन या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433ख के अधीन लघूकरण का कोई आदेश पारित किए जाने के अभाव में पिटीशनर छोड़े जाने के हकदार नहीं है। इसलिए आदेश प्रभावोन्मुक्त किया जाता है।

पिटीशन खारिज किया गया।

जै०/स०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोहर नाथ कौल
बनाम
जम्मू-कश्मीर राज्य

(Manohar Nath Kaul
v.
State of Jammu & Kashmir)

(19 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और रंगनाथ मिश्र)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 197(1)—लोक सेवक द्वारा विनिमय आदेशों के बदले में हवाई जहाज के टिकट प्राप्त करना—टिकटों की कीमत निदेशालय के खाते में न डालना यथा उस खर्चे को यात्रा भत्ते के बिलों में डालना तथा उसका भुगतान प्राप्त करना—भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन उसका छल के अपराध के लिए अभियोजन किया जाना—अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करना अथवा कार्य करने के लिए तात्पर्यित होना अभिव्यक्ति में छल का अपराध करना सम्मिलित नहीं है—अतः ऐसे अपराध के अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

अपीलार्थी भारत सरकार के क्षेत्र प्रचार निदेशालय का क्षेत्रीय अधिकारी था। उसने विनिमय आदेशों के बदले में हवाई जहाज की टिकटें प्राप्त करके एक अवसर पर श्रीनगर से दिल्ली और दिल्ली से श्रीनगर और अन्य अन्य अवसरों पर श्रीनगर से जम्मू और जम्मू से श्रीनगर हवाई जहाज द्वारा यात्रा की। अपीलार्थी द्वारा प्राप्त की गई इन टिकटों की कीमत निदेशालय के खाते में डाली जानी थी और नियमों के अधीन अपीलार्थी से यह अपेक्षित था कि वह यात्रा-भत्ते के बिलों में इसे न जोड़े। इस अभिकथन पर कि अपीलार्थी ने ऐसे बिल दिए जिनमें हवाई जहाज का किराया सम्मिलित था और उसका भुगतान भी ले लिया, उसके विरुद्ध श्रीनगर के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन छल के अपराध के लिए अभियोजन रिपोर्ट दी गई। अपीलार्थी ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह दलील दी कि संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी के अभाव में अभियोजन चलने योग्य नहीं था। विचारण मजिस्ट्रेट ने इस दलील को नामन्जूर कर दिया और उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की ओर से किए गए पुनरीक्षण में इस आदेश को पुष्ट कर दिया। उच्च न्यायालय के आदेश और निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में की गई अपील को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जहां कोई लोक सेवक छल का अपराध करता है या किसी अन्य व्यक्ति को इस प्रकार छल करने के लिए दुष्प्रेरित करता है वहां उसके द्वारा किया गया अपराध ऐसा अपराध नहीं है जो उसने अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में किया हो या जिसका ऐसे किया जाना तात्पर्यित हो इसलिए अपराध का उसके और लोक सेवक के कर्तव्यों के पालन के बीच कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। पदीय हैसियत अपराध को करने का केवल अवसर या संयोग ही प्रदान करती है। यह दलील नहीं दी गई कि यात्रा भत्ते के बिलों को प्राप्त करना अपीलार्थी का पदीय कर्तव्य था यद्यपि लोक सेवक की हैसियत से वह ऐसे बिलों के पाने के लिए प्राधिकृत था। यात्रा भत्ता के बिलों को प्राप्त करना निदेशालय के क्षेत्रीय अधिकारी की हैसियत में अपीलार्थी के कर्तव्य के साथ सीधे या युक्तियुक्त रूप से सम्बद्ध नहीं कहा जा सकता और पदीय हैसियत में उसे ऐसे कार्यों के करने का केवल अवसर प्रदान किया जो कि अपराध का अंग है। इसलिए वह संहिता की धारा 197 (1) के संरक्षण का दावा करने का हकदार नहीं था। अभियोजन मन्जूरी के अभाव में दूषित नहीं था। (पैरा 9)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1955]	[1955] 1 एस० सी० आर० 1302 : अमरीक सिंह बनाम पेप्सू राज्य (Amrik Singh v. State of Pepsu).	4, 8, 9

निर्दिष्ट निर्णय

[1980]	[1980] 3 उम० नि० प० 41=[1980] 1 एस० सी० आर० 111 : बी० साहा और अन्य बनाम एम० एस० कोचर (B. Saha and Others v. M. S. Kochar);	1

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1972] (1972) 3 एस० सी० सी० 89 :
हरिहर प्रसाद बनाम बिहार राज्य
(Harihar Prasad v. State of Bihar); 8

[1970] (1970) 2 एस० सी० सी० 56 :
श्रीवास्तव बनाम मिश्र
(Srivastava v. Mishra); 3

[1967] [1967] 1 एस० सी० आर० 211 :
बख्शीश सिंह धालीवाल बनाम पंजाब राज्य
(Bakhshish Singh Dhaliwal v. State of Punjab); 8

[1966] [1966] 1 एस० सी० आर० 210 :
बैजनाथ गुप्त और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य
(Baijnath Gupta and Others v. State of Madhya Pradesh); 7

[1960] [1960] 2 एस० सी० आर० 89 :
के० सतवन्त सिंह बनाम पंजाब राज्य
(K. Satwant Singh v. State of Punjab); 5

[1939] [1939] एफ० सी० आर० 159 :
होरी राम सिंह बनाम एम्परर
(Hori Ram Singh v. Emperor); 7

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1980 की दाण्डिक अपील सं० 677.

1979 के दाण्डिक पुनरीक्षण सं० 6 में जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के तारीख 7 अगस्त, 1980 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से श्री टी० सी० मेहता और डा० मीरा अग्रवाल

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अल्ताफ अहमद

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति रंगनाथ मिश्र ने दिया।

न्यायाधिपति मिश्र—

विशेष इजाजत लेकर की गई इस अपील में, विचार के लिए संक्षिप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रश्न यह है कि क्या भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन दण्डनीय छल के अपराध के लिए अपीलार्थी के अभियोजन हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "संहिता") की धारा 197 के अधीन मन्जूरी आवश्यक है।

2. अपीलार्थी 1972 में भारत सरकार के क्षेत्र प्रचार निदेशालय का क्षेत्रीय अधिकारी था। उसने विनिमय आदेशों के बदले में हवाई जहाज की टिकटें प्राप्त करके एक अवसर पर श्रीनगर से दिल्ली और दिल्ली से श्रीनगर और दो अन्य अवसरों पर श्रीनगर से जम्मू और जम्मू से श्रीनगर हवाई जहाज द्वारा यात्रा की। अपीलार्थी द्वारा प्राप्त की गई इन टिकटों की कीमत निदेशालय के खाते में डाली जानी थी और नियमों के अधीन अपीलार्थी से यह अपेक्षित था कि वह यात्रा-भत्ते के बिलों में इसे न जोड़े। इस अभिकथन पर कि अपीलार्थी ने ऐसे बिल दिए जिनमें हवाई जहाज का किराया भी सम्मिलित था और उसका भुगतान भी ले लिया, उसके विरुद्ध श्रीनगर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन छल के अपराध के लिए अभियोजन रिपोर्ट दी गई। अपीलार्थी ने यह दलील दी कि संहिता की धारा 197 के अधीन मन्जूरी के अभाव में अभियोजन चलने योग्य नहीं था। विचारण मजिस्ट्रेट ने इस दलील को नामंजूर कर दिया और उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की ओर से किए गए पुनरीक्षण में इस आदेश को पुष्ट कर दिया।

संहिता की धारा 197(1) में निम्नलिखित उपबंधित है—

> "जब किसी व्यक्ति पर, जो न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट या ऐसा लोक सेवक है या था जिसे सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से ही उसके पद से हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं, किसी ऐसे अपराध का अभियोग है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह अपने पदीय कर्त्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था, तब कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान—
>
> (क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के कार्यकलाप के सम्बन्ध में, यथास्थिति, नियोजित है या अभिकथित अपराध के किए जाने के समय नियोजित था, केन्द्रीय सरकार की…
>
> पूर्व मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं।"

इसमें सन्देह नहीं कि यह धारा लोक सेवकों द्वारा पदीय कार्य को प्रभावी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और निर्बाध रूप से करने को सुकर करने हेतु प्रकल्पित है जिसमें उनके विरुद्ध वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा किए गए अभिकथनों की संवीक्षा का और न्यायालयों द्वारा उनके विरुद्ध मामलों के संज्ञान को पुरोभाव्य शर्त के रूप में अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी का उपबन्ध किया गया है जिससे कि उनको अपराधों के, जिनके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उन्होंने उस समय किए थे जबकि वे अपने पदीय कर्त्तव्य का निर्वहन कर रहे थे या उन्हें करने के लिए तात्पर्यित थे, तुच्छ, तंग करने वाले या झूठे अभियोजनों से संरक्षण मिल सके। जैसाकि श्री वास्तव बनाम मिश्र[1] के मामले में इस न्यायालय ने बताया है, संरक्षण उन अपराधों की बाबत मिलता है जो पदीय कर्त्तव्य के निर्वहन में किए गए या किए जाने के लिए तात्पर्यित अभिकथित किए गए हैं। अपीलार्थी की यह दलील है कि लोक अधिकारी की हैसियत में उसने आक्षेपित बिलों को प्रस्तुत किया और यात्रा भत्ता प्राप्त किया। उसके अनुसार बिलों का दिया जाना और भत्ते का प्राप्त करना उसके लोक सेवक होने की स्थिति से पूरी तरह से जुड़ा हुआ है और इसलिए इसे संहिता की धारा 197 की उपधारा (1) में आने वाले दो वाक्यों के अन्तर्गत माना जाना चाहिए।

4. हमारा यह विचार है कि अपीलार्थी की ओर से दी गई दलील बिलकुल निराधार है और इसे नामंजूर किया जाता है। विधि की स्थिति को, जैसी कि इस न्यायालय द्वारा कई पूर्व निर्णयों में अधिकथित की गई है, इस निष्कर्ष के समर्थन में निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा। अमरीक सिंह बनाम पैप्सू राज्य[2] के मामले में अभियुक्त पैप्सू के लोक निर्माण विभाग में उप-खण्ड अधिकारी था। करहाली नामक स्थान पर कतिपय संकर्मों में नियोजित कर्मकारों को मजदूरी बांटना उसके कर्त्तव्यों का भाग था। आमतौर पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया यह थी कि वह खजाने से अपेक्षित राशि निकालता था और कर्मचारियों को मासिक वेतनावलि में उनके हस्ताक्षर करवाकर या अंगूठा लगवाकर उस राशि को बांटता था। ऐसा एक संदाय अप्रैल, 1951 के लिए परमा नामक एक व्यक्ति को किया गया दिखाया गया। उप-खण्ड अधिकारी को इस अभिकथन पर अभियोजित किया गया कि परमा नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं और वेतनावलि में अंगूठा स्वयं अभियुक्त ने लगाया था। यह उन मजदूरियों का दुर्विनियोग करने की दृष्टि से किया गया था, जिनके बारे में यह कहा गया है कि उनका संदाय कर्मकारों

---

[1] (1970) 2 एस० सी० सी० 56.

[2] [1955] 1 एस० सी० आर० 1302.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को कर दिया गया था। तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के सम्मुख अपीलार्थी की ओर से दोषसिद्धि को इस आधार पर चुनौती दी गई कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 409 और 465 के अधीन दण्डनीय अपराधों की बाबत संहिता की धारा 197(1) के अधीन मंजूरी नहीं ली गई थी। कतिपय विनिश्चित मामलों को विनिर्दिष्ट करते हुए न्यायाधिपति वेंकटराम अय्यर ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए यह कहा—

> "नजीरों के निष्कर्ष को संक्षिप्त में इस प्रकार कहा जा सकता है: किसी लोक सेवक द्वारा किया गया प्रत्येक अपराध ऐसा नहीं होता जिसके लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी अपेक्षित हो, यहां तक कि उसके द्वारा किया गया ऐसा कोई प्रत्येक कार्य भी नहीं जो उसने वस्तुतः अपने पदीय कर्त्तव्यों के पालन में किया हो; किन्तु यदि कोई कार्य, जिसका परिवाद किया गया है, उसके पदीय कर्त्तव्यों से इस प्रकार से सीधे सम्बद्ध हो जिससे कि यदि उसे प्रश्नगत किया जाता है तो यह दावा किया जा सके कि वह उसके पद के कारण किया गया था तो मंजूरी की आवश्यकता होगी; और यह इस बात को विचार में लाए बिना होगा कि यह वास्तव में उसके कर्त्तव्यों के उचित निर्वहन में था क्योंकि वह गुणागुण पर प्रतिवाद का असलियत में ऐसा मामला होगा जिसका विचारण के समय अन्वेषण करना होगा और जिसे मंजूरी, दिए जाने की अवस्था पर जोकि अभियोजन के संस्थित किए जाने से पूर्व दी जानी चाहिए, नहीं उठाया जा सकता।"

उन्होंने आगे चलकर यह कहा कि—

> "हमारे मतानुसार जब किसी लोक सेवक पर दुर्विनियोग का आरोप है तो क्या धारा 197(1) के अधीन मंजूरी की अपेक्षा होगी या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। यदि वे कार्य, जिनका परिवाद किया गया है, पद से संलग्न कर्त्तव्यों के साथ इस प्रकार से पूरी तरह जुड़े हुए हैं कि उनको अलग नहीं किया जा सकता तो धारा 197(1) के अधीन मंजूरी आवश्यक होगी; किन्तु यदि उनके बीच और उन कर्त्तव्यों के पालन में कोई आवश्यक संबंध न हो, तथा पदीय हैसियत ऐसे कार्यों के केवल किए जाने या अवसर को बताता हो तो मंजूरी अपेक्षित नहीं होगी।"

उस मामले में दोषसिद्धि को इस निष्कर्ष पर अपास्त कर दिया गया था कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चेतनावलि का तैयार किया जाना और पैसों का बांटा जाना उप-खण्ड अधिकारी के पदीय कर्त्तव्यों के साथ पूरी तरह से जुड़ा हुआ था और बिना मंजूरी के अभियोजन चलने योग्य नहीं था।

5. मंजूरी का प्रश्न के० सतवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य[1] के मामले में पुनः उठा था और इस बार यह सांविधानिक न्यायपीठ के समक्ष उठा। दूसरे महायुद्ध के दौरान जापानी हमले के पश्चात् बर्मा में पुनर्वास कार्यक्रम से सम्बन्धित कतिपय कार्यों को शुरु किया गया—इसमें से कुछ तो सेना द्वारा निष्पादित किए गए और अन्य ठेकेदारों को सौंपे गए। अपीलार्थी एक ऐसा ही ठेकेदार था और उससे ऐसे कार्य के बदले संदाय का दावा किया तथा उसकी प्रार्थना पर चेकों द्वारा संदाय किया गया। उन चेकों को लाहौर में भुनाया गया। बर्मा सरकार ने संदेह के कारण दावों की दुबारा जांच की और यह पाया कि वे दावे झूठे थे और उनका संदाय देय नहीं था। अतः ठेकेदार पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन और संदायों से संबंधित कुछ अधिकारियों पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420/109 के अधीन अपराध का आरोप लगाया गया। सांविधानिक न्यायपीठ की ओर से बोलते हुए न्या० इमाम ने इस प्रकार कहा—

> "हेंडरसन पर यह आरोप था कि उसने जानबूझकर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अधीन दण्डनीय अपराध कारित करने में अपीलार्थी को सहायता दी। उसने अपनी रिपोर्ट में यह झूठा कथन किया कि अपीलार्थी के दावे सच्चे हैं। यह कथन उसने हर मौके पर यह जानते हुए किया कि प्रश्नगत दावे झूठे और कपटपूर्ण थे और यह कि उसने तदनुसार भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420/109 के अधीन अपराध किया था। हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है कि कुछ अपराधों की प्रकृति ही ऐसी है कि उनके बारे में ऐसा नहीं समझा जा सकता कि उन्हें लोक सेवकों ने अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित है, किया है। उदाहरण के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 के अधीन दण्डनीय अपराध रिश्वत लेना उनमें से एक है और छल या उसके दुष्प्रेरण का अपराध, एक अन्य अपराध है। हमें यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं कि जहां लोक सेवक छल का अपराध करता है या किसी अन्य व्यक्ति को इस प्रकार छल करने के लिए दुष्प्रेरित

---

[1] [1960] 2 एस० सी० आर० 89.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करता है वहां उसके द्वारा किया गया अपराध ऐसा अपराध नहीं है जो उसने अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में किया हो या किया जाना तात्पर्यित हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि ऐसे अपराधों के आपस में और लोक सेवक के कर्त्तव्यों के पालन के बीच कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। ऐसी पदीय हैसियत केवल अपराध के किए जाने का अवसर देने के लिए कही जा सकती है (देखिए अमरीक सिंह का मामला)। छल करने या उसके दुष्प्रेरण का पदीय कर्त्तव्य के निर्वहन के साथ कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध नहीं है। वह कार्य उस कर्त्तव्य से इस प्रकार सम्बद्ध होना चाहिए कि लोक सेवक युक्तियुक्त न कि बनावटी या काल्पनिक दावा कर सके और यह भी कि उसने उसे अपने कर्त्तव्य के पालन के अनुक्रम में किया हो।" (रेखांकन हमारी ओर से किया गया)

न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संहिता की धारा 197 के अधीन संरक्षण नहीं मिल सकता।

6. इस न्यायालय में सतवंत सिंह के मामले[1] की नजीर को कभी भी चुनौती नहीं दी गई और चूंकि इसमें छल का अपराध अन्तर्वलित था; उपरोक्त मामले के विनिश्चयाधार जोकि हम पर आबद्धकर हैं इस अपील के निपटान के लिए सामान्यतया पर्याप्त होते। तथापि, हम इस न्यायालय के कुछ पश्चात्कथित विनिश्चयों को निर्दिष्ट करना चाहेंगे जिससे कि इस प्रश्न पर न्यायिक राय का पूर्ण दृष्टिकोण उपलब्ध हो सके।

7. बैजनाथ गुप्ता और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य[2] के मामले में मध्य भारत राज्य की भूतपूर्व सरकार द्वारा चलाए गए विद्युत प्रदाय उपक्रम में मुख्य लेखा और कार्यालय अधीक्षक को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 477क और 409 के अधीन दण्डनीय अपराधों से अभियोजित किया गया था। इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि अपराधों को पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में किया गया था और पूर्व मंजूरी के अभाव में दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता। बहुमत ने होरी राम सिंह बनाम एम्परर[3] के मामले में अनुमोदन के साथ लार्ड साइमन्ड्स के निम्नलिखित मतों को

---

[1] [1960] 2 एस० सी० आर० 89.

[2] [1966] 1 एस० सी० आर० 210.

[3] [1939] एफ० सी० आर० 159.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उद्धृत किया :—

"किसी लोक सेवक को अपने पदीय कर्त्तव्य के निर्वहन में कार्य करने या कार्य करने के लिए तात्पर्यित केवल तभी कहा जा सकता है जब उसका कार्य ऐसा हो जो उसके पदीय कर्त्तव्य की परिधि के भीतर आता हो। इस प्रकार रिश्वत लेते समय कोई न्यायाधीश न तो न्यायाधीश की हैसियत से कार्य करता है न ही उसका इस रूप में कार्य करना तात्पर्यित है, यद्यपि वह निर्णय जो, वह देता है, ऐसा कार्य हो सकता है; न ही कोई सरकारी चिकित्सा अधिकारी ऐसे रोगी की, जिसका वह परीक्षण कर रहा है, जेब काटते हुए लोक सेवक के रूप में कार्य करता है या उसका ऐसे रूप में कार्य करना तात्पर्यित है, यद्यपि परीक्षण करना ऐसा कार्य हो सकता है। अच्छी परख यह हो सकती है कि कोई लोक सेवक, यदि चुनौती दी जाए तो, युक्तियुक्तत: यह दावा कर सकता है कि जो वह कुछ करता है वह अपने पद की हैसीयत से करता है..."

न्यायालय ने आगे यह कहा :—

"किसी लोक सेवक द्वारा किया गया प्रत्येक अपराध ऐसा नहीं होता जिसके अभियोजन के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) के अधीन मंजूरी अपेक्षित हो; उसके द्वारा किया गया ऐसा प्रत्येक कार्य भी नहीं जो उसने वस्तुत: अपने पदीय कार्यों के पालन में किया गया हो; किन्तु यदि परिवादित कार्य उसके पदीय कर्त्तव्यों से इस प्रकार सीधे सम्बद्ध है कि यदि उसे प्रश्नगत किया गया हो तो उस कार्य के उसके पद की हैसियत से किए जाने का दावा किया जा सके, तब मंजूरी आवश्यक होगी। कार्य की विशेषता महत्वपूर्ण है और यदि वह उसके पदीय कर्त्तव्यों की परिधि और दूरी में आता है तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 द्वारा अनुध्यात संरक्षण लागू होगा। कोई अपराध पदीय कर्त्तव्यों से सर्वथा असम्बद्ध हो सकता है। जहां यह पदीय कर्त्तव्यों से असम्बद्ध होता है वहां संरक्षण नहीं मिल सकता। संरक्षण का दावा केवल तभी किया जा सकता है जब वह अपराध पदीय कर्त्तव्यों की परिधि में या उसकी पहुंच के भीतर किया गया हो"

8. **बख्शीश सिंह धालीवाल बनाम पंजाब राज्य**[1] के मामले के तथ्य

[1] 1967] 1 एस० सी० आर० 211.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सतवंत सिंह के मामले[1] के तथ्यों के समान थे। बख्शीश सिंह भी दूसरे महायुद्ध के बाद बर्मा में पुनर्वास कार्य में नियोजित एक ठेकेदार था और इसी प्रकार के अभिकथनों पर, जैसे कि इस मामले में थे, उसे लोक सेवकों के साथ छल के अपराध के लिए अभियोजित किया गया था। सतवंत सिंह के मामले[1] के विनिश्चयाधार को पूरे अनुमोदन से उद्धृत किया गया और मंजूरी को पूर्णतया अनावश्यक माना गया। यह अभिनिर्धारित किया गया कि मूल अपराधियों को दुष्प्रेरित करने का कार्य लोक सेवकों के रूप में पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में किया गया नहीं माना जा सकता। मंजूरी का प्रश्न पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120क, 120ख और 409 के अधीन दण्डनीय अपराधों के लिए छह लोक सेवकों के अभियोजन की पृष्ठ भूमि में हरिहर प्रसाद आदि बनाम बिहार राज्य[2] के मामले में विचार किया गया था। न्यायालय ने अमरीक सिंह के मामले[3] में किए गए विनिश्चय को दोहराया जिसमें यह कहा गया था—

> "ऐसा नहीं है कि किसी लोक सेवक द्वारा किए गए प्रत्येक अपराध के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) के अधीन अभियोजन हेतु मंजूरी अपेक्षित है; उसके द्वारा किए गए ऐसे प्रत्येक कार्य के लिए भी नहीं जिसका उसने वस्तुतः अपने पदीय कर्त्तव्यों के पालन में किया हो; किन्तु यदि परिवादित कार्य उसके पदीय कर्त्तव्यों से इस प्रकार से सीधे सम्बद्ध है कि यदि उसे प्रश्नगत किया गया हो तो उस कार्य के उसके पद की हैसियत से किए जाने का दावा किया जा सके, तब मंजूरी आवश्यक होगी।"

इस कथन के आधार वाक्य पर तथ्यों को परखते हुए न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मंजूरी का अभाव अभियोजन के लिए कोई वर्जन नहीं है।

9. बी० साहा और अन्य बनाम एम० एस० कोचर[4] के मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120ख; 166 और 409 के अधीन दण्डनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध सीमाशुल्क विभाग के कुछ अधिकारियों की ओर से ऐसे ही निवेदन पर विचार किया।

---

1 [1960] 2 एस० सी० आर० 89.
2 [1960] 3 एस० सी० आर० 89.
3 [1955] 1 एस० सी० आर० 1302.
4 [1980] 3 उम० नि० प० 41=[1980] 1 एस० सी० आर० 111.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय की ओर से बोलते हुए न्या० सरकारिया ने यह मत व्यक्त किया—

> "संक्षेप में, इस धारा के लागू करने के लिए आवश्यक बात यह है कि आरोपित अपराध, चाहे वह किए जाने का हो या उसके लोप का हो, ऐसा होना चाहिए जो लोक सेवक द्वारा या तो उसकी पदीय हैसियत में या उसके द्वारा धारित पद के अधीन किया गया हो।"

अमरीक सिंह के मामले[1] में बताए गए नियम के अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया। यह मत व्यक्त किया गया—

> "संहिता की धारा 197(1) में नियोजित किसी ऐसे अपराध का अभियोग है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह अपने पदीय कर्त्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था, शब्दों का निर्वचन संकीर्ण एवं विस्तृत दोनों प्रकार से किया जा सकता है। यदि इन शब्दों का अर्थान्वयन बहुत ही संकीर्ण रूप से किया जाता है तो यह धारा पूर्ण रूप से बेकार हो जाएगी क्योंकि कोई अपराध करना किसी पदीय कर्त्तव्य का न तो कोई भाग है और न कभी हो सकता है। अधिक विस्तृत अर्थ में इन शब्दों के अन्तर्गत किसी अपराध को बनाने वाला प्रत्येक ऐसा कार्य सम्मिलित होगा जो उस संव्यवहार के अनुक्रम में किया गया है जिसमें पदीय कर्त्तव्य किया गया है या किए जाने के लिए तात्पर्यित है। इन शब्दों के अर्थ के लिए उचित दृष्टिकोण इन दोनों के बीच का है। जबकि एक ओर ऐसे प्रत्येक अपराध को जो, किसी लोक सेवक द्वारा उस समय किया जाता है जबकि वह अपने पदीय कर्त्तव्य के अनुपालन में लगा हुआ है, धारा 197(1) का संरक्षण प्राप्त नहीं है, फिर भी, प्रत्यक्ष और उपयुक्त रूप से उसके पदीय कर्त्तव्य से सम्बन्धित कोई अपराध गठित करने वाले कार्य के लिए उक्त उपबन्ध के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी की अपेक्षा होगी।"

हमारा यह दृढ़ विचार है कि अमरीक सिंह के मामले[1] में उद्धृत नियम संहिता की धारा 197(1) के अधीन संरक्षण के अवलम्ब की विधिक प्रतिपादना को सही रूप में अधिकथित करता है। सतवंत सिंह के मामले[2]

[1] [1955] 1 एस० सी० आर० 1302.
[2] [1960] 2 एस० सी० आर० 89.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में न्या० इमाम का यह मत भी विधि का सही प्रतिपादन करता है कि यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जहां कोई लोक सेवक छल का अपराध करता है या किसी अन्य व्यक्ति को इस प्रकार छल करने के लिए दुष्प्रेरित करता है वहां उसके द्वारा किया गया अपराध ऐसा अपराध नहीं है जो उसने अपने पदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में किया हो या जिसका ऐसे किया जाना तात्पर्यित हो इसलिए अपराध का उसके और लोक सेवक के कर्त्तव्यों के पालन के बीच कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। पदीय हैसियत अपराध को करने का केवल अवसर या संयोग ही प्रदान करती है। हमारे समक्ष यह दलील नहीं दी गई कि यात्रा भत्ते के बिलों को प्राप्त करना अपीलार्थी का पदीय कर्त्तव्य था, यद्यपि लोक सेवक की हैसियत से वह ऐसे बिलों के पाने के लिए प्राधिकृत था। यात्रा भत्ते के बिलों को प्राप्त करना निदेशालय के क्षेत्रीय अधिकारी की हैसियत में अपीलार्थी के कर्त्तव्य के साथ सीधे या युक्तियुक्त रूप से सम्बद्ध नहीं कहा जा सकता और पदीय हैसियत ने उसे ऐसे कार्यों के करने का केवल अवसर प्रदान किया जो कि अपराध का अंग है। इसलिए, वह संहिता की धारा 197(1) के संरक्षण का दावा करने का हकदार नहीं था। अभियोजन मंजूरी के अभाव में दूषित नहीं था। अतः अपील खारिज की जाती है।

10. अभियोजन 8 वर्ष पहले शुरू किया गया था और मंजूरी के अभाव को लेकर मामले को भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर लम्बे समय तक खींचा गया है। अतः हम निदेश देते हैं कि विचारण न्यायालय विधि के अनुसार शीघ्रता से विचारण पूरा करेगा।

अपील खारिज की गई।

घ०/स०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बिहार राज्य

बनाम

श्री राधाकृष्ण सिंह और अन्य

(State of Bihar

v.

Sri Radha Krishna Singh and Others)

(20 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली, ए० वरदराजन और बी० बालकृष्ण एराडी)

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)—धारा 13 और 32(5)—कुटुम्ब के वंशानुक्रम से सम्बन्धित साक्ष्य का मूल्यांकन—उक्त साक्ष्य के मूल्यांकन को विचारगत करना होगा जिससे कि किसी हितबद्ध व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत मिथ्या या कूटरचित वंशावली के भ्रमजाल से बचा जा सके।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)—धारा 35—उक्त धारा के अधीन दस्तावेज की ग्राह्यता के बारे में शर्तें पूरी की जानी चाहिएं।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)—धारा 5 और 35—दस्तावेज की ग्राह्यता तथा उसका साक्ष्यिक मूल्य दो अलग-अलग बातें हैं और उन्हें एक दूसरे के साथ मिलाया नहीं जा सकता।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)—धारा 35, 75 और 90—वंशानुक्रम को दर्शित करने वाला पुराना प्राइवेट दस्तावेज—उक्त दस्तावेज में दस्तावेज को लिखने वाले; उसकी प्रणाली, समय तथा उन परिस्थितियों का दर्शित न किया जाना जिनमें कि दस्तावेज तैयार किया गया था—परीक्षित दस्तावेज में वर्णित विभिन्न वारिसों के बारे में ऐसे किन्हीं व्यक्तियों का उल्लेख न होना जिन्हें ऐसी समस्त जानकारी थी—उक्त दस्तावेज संदेहास्पद होने के कारण उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)—धारा 32(5), 50, 59 और 60—वंशानुक्रम की बाबत मौखिक साक्ष्य—ऐसे साक्ष्य का मूल्यांकन करने के सम्बन्ध में न्यायालय की प्रणाली—न्यायालय को विशिष्ट सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए उत्तराधिकार का निर्धारण करना होगा।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)—धारा 13 और 40 से 43—केवल सर्वबन्धी निर्णयों का ग्राह्य होना चाहे वह पक्षकारों के बीच हों या नहीं—ऐसे व्यक्ति बन्धी निर्णयों के साक्ष्य का मूल्य जो पक्षकारों के बीच हैं—यदि निर्णय न तो धारा 40 और न ही धारा 42 के अन्तर्गत आता है और न धारा 43 की अध्यपेक्षा को पूरा करता है, तो वह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होगा और धारा 13 के आधार पर ग्राह्य नहीं बन जाएगा।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872(1872 का 1)—धारा 61 और 62—कानूनों का निर्वचन—जहां विशिष्ट उपबंध उपलभ्य हो वहां धारा 13 जैसे उपबंधों के प्रति निर्देश नहीं किया जा सकता—राजगामी सम्पत्ति (एस्चीट) को उक्त सिद्धांत के लागू होने के बारे में सबूत का भार सरकार पर होगा।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 296—राजगामी सम्पत्ति का दावा—राजगामी सम्पत्ति के सिद्धांत के लागू होने के विषय में शर्तें पूरी हो जाने पर सबूत का भार सरकार पर रहता है और यह मात्र इस कारण प्रतिवर्तित नहीं होता कि दावेदार द्वारा सम्पत्ति के बारे में हक और स्वामित्व को साबित करने में असफलता रही है।

इस मामले का सम्बन्ध महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह द्वारा छोड़ी गई अविभाज्य सम्पदा से है। महाराजा की सम्पत्ति, जिसमें जंगम तथा स्थावर दोनों प्रकार की सम्पत्ति शामिल है, के कई वारिस बन गए और सर्वप्रथम हक-वाद सं० 5/64 फाइल किया गया जिसे पटना उच्च न्यायालय ने डिक्री कर दिया। मुख्य रूप से चार वाद फाइल किए गए जिनमें से पहले अर्थात् हक-वाद सं० 3/55, पैरवी न किए जाने के कारण स्वयं ही समाप्त हो गया। अब मामले में तीन हक-वाद रह गए, किन्तु द्वितीय तथा तृतीय हक-वाद खारिज कर दिए गए और इसलिए न्यायालय का सम्बन्ध प्रमुख रूप से वादी राधाकृष्ण सिंह तथा प्रत्यर्थी बिहार राज्य के बीच वाद से है। इस मामले में मौखिक तथा दस्तावेजी दोनों प्रकार का साक्ष्य पेश किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया और पटना उच्च न्यायालय ने ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् इस पर अपना निर्णय दिया, किन्तु न्यायमूर्तियों में पूर्णतया सहमति नहीं हो पाई और इस प्रकार विसम्मत मत भी विद्यमान है। इस मामले में न्यायालय का सम्बन्ध मात्र दो विरोधी दावों से है जो कि महाराजा और उसकी दो विधवाओं की मृत्यु के पश्चात् सामने आए। महाराजा तथा अन्य दो व्यक्तियों के दावों को एक न्यायपीठ के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया गया और अब उच्चतम न्यायालय के समक्ष की गई अपीलों से ही सम्बन्ध रह गया है। यह महत्वपूर्ण है कि हक-वाद सम्बन्धी इस मामले में वाद-पत्र की वंशानुक्रमिका समस्त ढांचे का आधार है जिस पर कि वाद का पक्षकथन आधारित है। वादी-प्रत्यर्थियों ने अपने हक-वाद को इस बात पर आधारित किया कि वे महाराजा के निकटतम प्रतिवर्ती हैं और उनका यह दावा था कि वे महाराजा की विधवाओं की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र कब्जा ग्रहण करने के हकदार थे। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वादी अपना यह मामला साबित कर पाए हैं कि वे बंसीधर सिंह के सीधे वंशज थे जिससे कि वे महाराजा की मृत्यु पर विवादग्रस्त सम्पत्तियों का दावा कर सकते थे। विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया था कि वादी यह साबित नहीं कर पाये थे कि रामरूच और बंसीधर के बीच उनका कोई सीधा सम्बन्ध विद्यमान था, किन्तु बहुमत के निर्णय में इस निष्कर्ष से सहमति प्रकट की गई थी और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वादियों द्वारा सभी कड़ियां स्पष्ट रूप से साबित की जा चुकी थीं और न्यायालय का समाधान हो गया था कि रामरूच सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र था। इस मामले में जिस संविवाद का समाधान न्यायालय को करना है वह यह है कि क्या वादी एक ओर रामरूच और गजराज सिंह के बीच सम्बन्ध को और रामरूच तथा बंसीधर के बीच सम्बन्ध को साबित कर पाए कि ये दोनों सम्बन्ध विद्यमान थे। उच्चतम न्यायालय के समक्ष की गई अपीलों को मंजूर करते हुए न्या० प्रसाद के विसम्मत निर्णय को पुष्ट किया गया और वादियों के वाद को खर्चे सहित खारिज किया गया। अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—ऐसे मामलों में चूंकि किसी हितबद्ध व्यक्ति अथवा किसी पक्षकार की यह प्रवृत्ति रहती है कि किसी अभिकथित दावे को हथियाने, स्थापित अथवा साबित करने के लिए कोई ऐसी मिथ्या वंशावली गढ़ी जाए, कूटरचित की जाए अथवा हासिल की जाए जिससे कि उनके उद्देश्यों की पूर्ति हो, इसलिए न्यायालयों को प्रस्तुत की गई इस वंशावली का अवलम्ब लेते समय कि वे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दस्तावेज़ों की शृंखला द्वारा अथवा प्राचीन दिखाई जाने वाली एक वंशावली की जटिलता द्वारा, जो कि प्रतिद्वंद्वी दावों के समर्थन में पेश की गई हैं, उनके चंगुल से बचा जाए। (पैरा 18)

ऐसे मामलों को लागू होने वाले सिद्धान्तों को निम्नलिखित तौर पर संक्षिप्त रूप से दिया जा सकता है—

(1) ऐसी वंशावलियां जिनके बारे में यह स्वीकार अथवा साबित किया गया है कि वे पुरानी हैं और पूर्ववर्ती मामलों में जिनका अवलंब लिया गया है वे निस्संदेह सुसंगत हैं और कुछ मामलों में तो वे साबित किए गए तथ्यों के बारे में विनिश्चायक भी हो सकती हैं, किन्तु इन वंशावलियों को स्वीकार करने और इनका अवलम्ब लेने से पूर्व न्यायालयों को चाहिए कि वे अनेक विचार्य विषयों पर ध्यान दें :

(क) वंशावली का स्रोत और उसकी विश्वसनीयता,

(ख) साक्ष्य अधिनियम के अधीन वंशावली की ग्राह्यता,

(ग) ऐसे विनिश्चयों या निर्णयों में उक्त वंशावलियों का समुचित उपयोग जिनका कि अवलम्ब लिया गया है,

(घ) वंशावलियों की प्राचीनता,

(ङ) जहां ऐसी वंशावलियां स्वीकार की गई हैं या रद्द की गई हैं वहां उनके सम्बन्ध में मुक़दमेबाजी।

(2) ग्राह्यता के प्रश्न पर निम्नलिखित कसौटियों का अपनाया जाना आवश्यक है :

(क) यह निश्चित है कि सम्बद्ध कुटुम्बों की वंशावलियां साक्ष्य अधिनियम की धारा 13 द्वारा अथवा धारा 32(5) की परिधि के अन्तर्गत आती हों।

(ख) उन्हें पोस्ट लाईटम मोर्टम (वाद प्रारम्भ होने के पश्चात् दस्तावेज़ प्रस्तुत करने) का सिद्धांत लागू होता हो।

(ग) वंशावलियों अथवा दावों को उन परिवर्णनों, अभिसाक्ष्यों अथवा निर्णयों में वर्णित तथ्यों द्वारा साबित नहीं किया जा सकता जिन्हें शृंखलाबद्ध विनिश्चयों द्वारा अग्राह्य अभिनिर्धारित किया जा चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(घ) जहां वंशावलियां मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित होती हैं वहां उक्त साक्ष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह स्पष्ट रूप से जानकारी का विशेष साधन दर्शित करे जिससे ऐसा निश्चित स्रोत, समय और परिस्थितियां प्रकट होती हों जिनके अधीन जानकारी अर्जित की गई थी और यह निश्चित रूप से स्पष्टतया और विनिश्चायक तौर पर साबित की जानी चाहिएं। (पैरा 19)

वादियों द्वारा पेश किए गए दस्तावेजों के मुख्य ताने-बाने और कोणशिला के बारे में यह प्रतीत होता है कि वह प्रदर्श-जे के रूप में है, जोकि 1810 की एक पुरानी दस्तावेज है जिसकी ग्राह्यता पर अपीलार्थियों द्वारा गम्भीर रूप से विवाद किया गया था, किन्तु सभी न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह दस्तावेज ग्राह्य नहीं है। बहुमत के निर्णय के अलावा, न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद ने भी स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है प्रदर्श-जे चूंकि बही-खाते में एक प्रविष्टि है जोकि एक सार्वजनिक कार्य द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन में भली-भांति की गई थी, अतः वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 की परिधि के अन्तर्गत आती है और इसलिए निस्संदेह ग्राह्य है। (पैरा 32)

न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद द्वारा निकाले गए कतिपय अनुमानों के बारे में यह प्रतीत नहीं होता है कि वे सही हैं क्योंकि वे प्रदर्श-जे में किए गए परिवर्णनों द्वारा साबित नहीं होते हैं और वे वास्तविक रूप में कतिपय पदावलियों के गलत निर्वचन पर आधारित हैं जिनका उपयोग फारसी भाषा में किया गया है। ये सम्प्रेक्षण निर्णय (खण्ड 8) के पृष्ठ 483 पर विद्यमान हैं जहां कि विद्वान् न्यायाधीश ने यह कहा है कि दस्तावेज यह दर्शित करता है कि गजराज सिंह, हृदय नारायण सिंह के वंशजों में से एक था और यह कि देबी सिंह और गजराज सिंह भी उसी कुटुम्ब से सम्बन्धित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विषमता इस कारण उद्भूत हो गई है क्योंकि उक्त दस्तावेज (प्रदर्श-जे) फारसी भाषा में है और इन दोनों तथ्यों से सम्बन्धित परिवर्णनों के अतिरिक्त निकट परिशीलन के आधार पर विद्वान् न्यायाधीश द्वारा जो अनुमान लगाए गए हैं वे सही प्रतीत नहीं होते हैं। यह न्यायालय उच्च न्यायालय के इस एक मत दृष्टिकोण से सहमत है कि प्रदर्श-जे ग्राह्य है। वास्तव में, स्वयं उक्त दस्तावेज यह दर्शित करता है कि यह एक सेरिश्टादार द्वारा लिखा गया था जोकि एक सरकारी अधिकारी था और इसे अति उच्च सरकारी प्राधिकारी के निर्देश पर लिखा गया था जिन्होंने कि उससे यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपेक्षा की थी कि वह विभिन्न जमीदारों के कब्जे में जो कुछ भी है उसकी विस्तृत रूप से जांच करे और उनके कब्जे में जो कुछ भी हो उसके सम्बन्ध में सरकार को रिपोर्ट पेश करे। इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 की सभी शर्तों का अनुपालन कर दिया गया है और उन्हें पूरा किया जा चुका है और इस निष्कर्ष को स्वीकार करना कठिन है कि उक्त दस्तावेज धारा 35 के अधीन अथवा साक्ष्य अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अधीन ग्राह्य नहीं है। यह और बात है कि हालांकि कोई दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य हो, तो भी उसका साक्ष्यिक मूल्य नगण्य हो सकता है। (पैरा 33)

दस्तावेज़ निश्चित रूप से किसी सार्वजनिक अथवा अन्य शासकीय पुस्तक, रजिस्टर अथवा अभिलेख में प्रविष्टि के स्वरूप में होनी चाहिए। यह आवश्यक है कि इसके द्वारा विवाद्य तथ्य अथवा सुसंगत तथ्य का कथन किया जाए और यह आवश्यक है कि प्रविष्टि किसी लोक सेवक द्वारा अपने शासकीय कर्त्तव्योंके निर्वहन में अथवा ऐसे कर्त्तव्यों के पालन में की गई हो, जोकि उस देश की विधि द्वारा विशेष रूप से उस प्रकार व्यादिष्ट है है जिसमें कि सुसंगत प्रविष्टि रखी गई है। (पैरा 35)

प्रदर्श-जे के परिशीलन से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि यह ऐसी रिपोर्ट है जोकि सरकार के किसी अधिकारी द्वारा अपने शासकीय अधिकारियों के निर्वहन में सम्यक् रूप से की गई है क्योंकि दस्तावेज के परिवर्णनों से यह दर्शित होता है कि उसे विभिन्न भूस्वामियों के कब्जे में विद्यमान भूमियों को विनिश्चत करने का कार्य सौंपा गया था और यह कार्य उस पर व्यादिष्ट किया गया था जिससे कि इस विषय पर समुचित कदम उठाया जा सके। इस मामले में, यह निर्विवाद है कि उक्त प्रदर्श में उन विभिन्न विषयों का उल्लेख किया गया जिनकी मार्फत वादी अपने हक का दावा करते हैं और इसलिए यह किसी सुसंगत तथ्य से सम्बन्धित है। यह प्रश्न कि क्या सुसंगत तथ्य साबित हुआ है या नहीं एक भिन्न विषय है, जिसका कि दस्तावेज की ग्राह्यता के साथ सर्वथा कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु जो केवल तभी महत्वशाली हो जाता है जबकि किसी विशिष्ट दस्तावेज के साक्ष्यिक मूल्य पर विचार किया जाए। यह तथ्य कि इस रिपोर्ट की मांग मिर्ज़ापुर कलेक्टोरेट से की गई थी मौखिक तथा दस्तावेज़ी दोनों प्रकार के साक्ष्य द्वारा सुचारू रूप से सिद्ध हो चुका है। इस प्रकार धारा 35 की सभी पूर्ववर्ती शर्तों का इस मामले में पूर्णतः अनुवर्तन कर दिया गया है। (पैरा 36)

किन्तु श्री मिश्र ने इस दस्तावेज की ग्राह्यता के बारे में दो गम्भीर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आक्षेप उठाए हैं—एक तो उसने यह दलील दी कि यह दर्शित करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है कि दुर्गाप्रसाद, जोकि प्रदर्श-जे का लेखक था, किसी भी रीति में सरकारी अधिकारी था क्योंकि इस बात को नजरंदाज नहीं किया जा सकता कि यह संभाव्यता थी कि वह किसी ऐसे जमींदार का प्राइवेट राजस्व अभिकर्ता था जिसका कि प्राइवेट कार्यालय भी था जहां भाटक और राजस्व की वसूली से सम्बन्धित कागज-पत्र रखे गए हैं। इसलिए दुर्गा प्रसाद का पदाभिधान विनिश्चायक रूप से यह साबित नहीं करता कि वह सरकारी अधिकारी था। दूसरे, यह दलील दी गई कि भले ही प्रदर्श-जे पर मुद्रांक लगा था, यह दर्शित करने के लिए कोई बात नहीं है कि वह मुद्रांक प्राइवेट था। श्री मिश्र द्वारा जो दलील पेश की गई हैं वे सारहीन हैं और उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता। उक्त दस्तावेज प्रदर्श-जे का समूचे तौर पर परिशीलन करने से और इस बात पर और ध्यान देने से कि दुर्गा प्रसाद को जो कार्य सौंपा गया था उसका अवसर था, उसके परिवर्तन और यह तथ्य कि वह पूर्णतया सरकारी विभाग अर्थात् मिर्जापुर कलेक्टोरेट में रखा गया था जहां से कि वह विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था, स्पष्टतया और विनिश्चायक रूप से यह साबित करते हैं कि उक्त रिपोर्ट किसी शासकीय सेरिश्टादार द्वारा तैयार की गई थी जिसे किसी अत्यंत उच्च सरकारी प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया था। यहां तक कि प्रदर्श-जे की प्रारम्भिक पंक्ति से स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि दुर्गा प्रसाद एक सरकारी सेवक था जोकि संभवतः राजस्व विभाग में कार्यरत था और उससे शासकीय प्रयोजनों हेतु रिपोर्ट पेश करने के लिए कहा गया था। यह भी साबित हो चुका है कि दुर्गा प्रसाद ने एक व्यापक जांच की थी और अन्ततः अपनी रिपोर्ट 1813 में पेश कर दी थी। निस्संदेह; यह सही है कि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य विद्यमान नहीं है कि इस रिपोर्ट का क्या हुआ किन्तु यह इस प्रश्न से सम्बन्धित नहीं है जहां तक कि इस दस्तावेज की ग्राह्यता की सुसंगति का सम्बन्ध है। वास्तव में यह दर्शित करना होगा कि हालांकि प्रदर्श-जे ग्राह्य है तथापि इसका उन कारणों तथा परिस्थितियों के फलस्वरूप कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं है इसके अलावा, उच्च न्यायालय के सभी तीनों न्यायमूर्तियों ने एक-मत से यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रदर्श-जे साक्ष्य में ग्राह्य है, उसका विधिक मूल्य चाहे कुछ भी हो। (पैरा 37)

किसी दस्तावेज की ग्राह्यता एक बात है और उसका साक्ष्यिक मूल्य सर्वथा भिन्न विषय है और इन दोनों पहलुओं को संयुक्त नहीं माना जा सकता। हो सकता है कि कोई दस्तावेज ग्राह्य तो हो, किन्तु वह विश्वास-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जनक न हो और न ही उसमें कोई महत्व हो और इस प्रकार उसका साक्ष्यिक मूल्य भी नगण्य हो। (पैरा 40)

मामले के इस महत्वपूर्ण पहलू के बारे में न्याय-निर्णयन करते समय यह आवश्यक हो जाता है कि यह दर्शित करने के लिए कि प्रदर्श-जे का सर्वथा कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं है किंचित् तथ्यों तथा परिस्थितियों को वर्णित किया जाए। प्रारम्भ में, रिपोर्ट (प्रदर्श-जे) परिशीलन से यह दर्शित होता है कि इससे सर्वथा वह स्रोत प्रकट नहीं होता जिससे कि दुर्गा प्रसाद ने अपने तथ्यों को संगृहीत किया था अथवा उसमें प्रकट किए गए तत्वों को इकट्ठा किया था। यह दर्शित करने के लिए भी कोई तत्व नहीं है कि रिपोर्ट के रचयिता ने या तो साम्यिक अथवा पूर्ववर्ती अभिलेखों को उनमें की गई प्रविष्टियों को ध्यानपूर्वक देखा था जिससे कि वह इस बारे में अपना समाधान कर सकता कि जिन भू-स्वामियों के कब्जे में वे भूमियां थीं जिनका कथन उक्त रिपोर्टों में किया गया है उनकी वंशावली के बारे में किए गए विभिन्न कथन सही थे। यह सही है कि एक स्थल पर रचयिता ने यह कथन किया है कि उसने उन तथ्यों को वही-खाते में लिया था किन्तु उसने सर्वथा कोई वर्णन अथवा ब्यौरे नहीं दिए हैं और यहां तक कि उसने बही-खाते और उसकी अन्तर्वस्तुओं के प्रकार अथवा उसकी प्रकृति के बारे में भी कुछ नहीं कहा है। इसके अलावा, यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य विद्यमान नहीं है कि जब रचयिता ने सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तो उसके पश्चात् क्या हुआ और क्या उसकी रिपोर्ट के आधार पर कोई कार्यवाही की गई थी अथवा नहीं या यह मात्र फाइल कर दी गई थी और अभिलेख पर निर्जीव तथा निर्मूक रूप में अभिलिखित कर दी गई थी। (पैरा 41)

इस मामले का तथ्य यह है कि दुर्गा प्रसाद द्वारा अपनी रिपोर्ट में कथित तथ्यों के बारे में किसी भी स्रोत से समुचित सत्यापन नहीं किया गया था और यह कि यह राजस्व प्रविष्टि अथवा अभिलेख का भाग गठित नहीं करती थी जिसके बारे में कदाचित् किसी कार्यपालक, न्यायिक अथवा कानूनी प्राधिकारी द्वारा रिपोर्ट फाइल किए जाने के पश्चात् त्रुटिहीन किया गया हो। स्थिति के बारे में यह प्रतीत होता है कि पेश किए जाने के पश्चात् उस रिपोर्ट का परिणाम क्या हुआ यह बात रहस्यमय बनी हुई है और यह रिपोर्ट एक ऐसा वृत्तान्त बन गया जिसे विस्मृत कर दिया गया और न उसके बारे में कुछ सुना गया, न उसका खण्डन किया गया और न ही उसकी प्रशंसा की गई और यह तब तक जबकि वादी द्वारा वर्तमान वाद फाइल नहीं किया गया। इसलिए इन परिस्थितियों में हमारे लिए (प्रदर्श-जे)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दस्तावेज का अवलम्ब लेने की कोई गुंजाइश नहीं है, भले ही यह साक्ष्य में ग्राह्य हो। (पैरा 42)

यद्यपि कोई दस्तावेज ग्राह्य अथवा प्राचीन हो तथापि उसका उतना महत्व अथवा साक्ष्यिक मूल्य नहीं हो सकता जितना कि ऐसे दस्तावेज का होता है जो या तो किसी कानूनी, अध्यादेश अथवा अधिनियम के अधीन तैयार की जाती है जिसमें कि कतिपय शर्तों के पूरा किए जाने की अपेक्षा होती है। (पैरा 47)

जहां कोई रिपोर्ट किसी उत्तराधिकारी द्वारा दी जाती है जोकि साक्षियों तथा दस्तावेजों के साक्ष्य पर आधारित है और वह कानूनी स्वरूप की है, क्योंकि वह न केवल किसी प्रशासनिक अधिकारी द्वारा दी गई है बल्कि किसी कानून के प्राधिकार के अधीन प्रस्तुत की गई है, उसका साक्ष्यिक मूल्य वस्तुतः अत्यंत उच्च कोटि का होगा जिससे कि वह विशाल महत्व वाली रिपोर्ट होगी। (पैरा 52)

किन्तु इन सम्प्रेक्षणों का परिशीलन संदर्भ के अनुसार करना होगा। क्रॉस ने इस बात पर जोर दिया कि सर रॉबर्ट फिल्लीमोर ने यह कहा था कि किसी मृत व्यक्ति द्वारा किसी दस्तावेज में की गई प्रविष्टियों को केवल तब ग्रहण किया जा सकता है जबकि यह स्पष्ट रूप से दर्शित किया गया हो कि उनका सम्बन्ध किसी ऐसे कार्य अथवा कार्यों से था जोकि मृत व्यक्ति द्वारा किया गया था, न कि अन्य पक्षकारों द्वारा। (पैरा 56)

प्रस्तुत मामले में हालांकि प्रदर्श-जे इस कारण ग्राह्य था क्योंकि उसका रचियता अब जीवित नहीं रहा था, तथापि, इसमें ऐसी जानकरी अन्तर्विष्ट है जो प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर निर्भर करती है जिसके बारे में यह समझा जा सकता है कि वह अन्य पक्षकारों से सुनी-सुनाई थी और इसलिए ऐसी रिपोर्ट को पर्याप्त मूल्य संलग्न नहीं किया जा सकता। (पैरा 57)

यद्यपि यह अभिनर्धारित नहीं किया जा सकता कि प्रदर्श-जे प्रस्तुत मामले में साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अभिव्यक्त उपबंधों की दृष्टि से अग्राह्य है तथापि प्रिवी काउन्सिल के सम्प्रेक्षण प्रदर्श-जे को लागू होने वाले साक्ष्यिक मूल्य अथवा महत्व को प्रत्यक्ष तथा समुचित रूप से दस्तावेज के रचियता द्वारा किसी ऐसे प्रकटीकरण के अभाव में लागू होंगे जिसका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्बन्ध उस स्रोत अथवा ऐसी सामग्री से हो जिसके आधार पर उसने अपनी रिपोर्ट में तथ्यों का वर्णन किया था। जहां तक किसी दस्तावेज के साक्ष्यिक मूल्य का सम्बन्ध है, वह उस दशा में न्यूनतम रह जाता है जहां कि ऐसा कोई साक्ष्य न हो जिससे कि साक्ष्य में पेश की गई दस्तावेज के रचयिता को दिए गए अनुदेशों की प्रकृति को प्रकट न किया गया हो अथवा उस स्रोत या ज्ञान या जानकारी को प्रकट न किया गया हो, जिसके आधार पर रिपोर्ट लिखी गई है। यह एक गम्भीर विधि सम्बन्धी त्रुटि है जिससे कि प्रदर्श-जे ग्रस्त है और केवल उसी आधार पर उसे विश्वसनीय अथवा निर्भर करने योग्य दस्तावेज नहीं माना जा सकता है। (पैरा 61)

वह केवल बिरादरी को ही दर्शित करता है और केवल किसी विशेष व्यक्ति के कुटुम्ब के सदस्य अभिप्रेत नहीं है। किन्तु व्यापक और सामान्य अर्थ में ऐसे व्यक्तियों के समूह की सम्पूर्ण बिरादरी या जाति, या जन-जाति अभिप्रेत है जिसमें से कुछ कुटुम्ब का गठन कर सकते हैं अथवा नहीं भी कर सकते हैं। (पैरा 77)

दस्तावेजी साक्ष्य के बारे में, जो प्रदर्श "ज" की पुष्टि करता है, इस प्रक्रम पर यह मत व्यक्त किया जा सकता कि यदि प्रदर्श "जे" का प्रमाणक महत्व शून्य है तो वह मुश्किल से ही किसी अन्य दस्तावेज की पुष्टि कर सकता है और इस बात की उसके गुणागुण के आधार पर ही परीक्षा करनी होगी। (पैरा 104)

कुछ न्यायालयों ने ऐसे निर्णय की ग्राह्यता साबित करने के लिए धारा 13 का प्रयोग किया है। तथापि जहां दस्तावेज की ग्राह्यता को मानने वाला विनिर्दिष्ट उपबन्ध हो, वहां न्यायालय किसी विशेष दस्तावेज को ग्राह्य बनाने के लिए अन्य साधारण उपबन्धों की सहायता लेने के लिए स्वतन्त्र नहीं है। अन्य शब्दों में, यदि निर्णय धारा 40 से 42 तक की परिधि के अन्तर्गत न आने के कारण ग्राह्य नहीं है, तो उसे धारा 43 की शर्तों को अवश्य ही पूरा करना चाहिए, अन्यथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 13 के अधीन सुसंगत नहीं हो सकता। "इस अधिनियम के अन्य उपबन्ध" शब्द धारा 13 को सम्मिलित नहीं कर सकते क्योंकि यह धारा निर्णयों से बिलकुल भी सम्बन्धित नहीं है। (पैरा 121)

यह बात भी अच्छी तरह से सुस्थिर है कि सर्वसम्बन्धी निर्णय जैसे कि प्रोबेट, दिवाला, वैवाहिक या संरक्षकता या इसी प्रकार के अन्य कार्यवाहियों में पारित निर्णय, सभी मामलों में ग्राह्य हैं चाहे ऐसे निर्णय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पक्षकारों के बीच हों अथवा नहीं। तथापि, प्रस्तुत मामले में फाइल किए गए निर्णयों वाले सब दस्तावेज सर्वबन्धी निर्णय नहीं हैं और इसलिए उस आधार पर उनकी ग्राह्यता का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, प्रस्तुत मामलों में प्रदर्शों के रूप में फाइल किए गए निर्णय व्यक्तिबंधी निर्णय हैं और इसलिए वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 में वर्णित शर्तों को पूरा नहीं करते हैं। (पैरा 122)

चाहे सुस्थिर सामान्य सिद्धांत पर आधारित हो अथवा केवल सुविधा के कारणों द्वारा समर्थित हो, इस नियम को जहां तक मामले की सच्चाई के बारे में विनिश्चय करने वाला निर्णय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है, जो वाद के लिए पर-व्यक्ति है, इंगलिश विधि में सामान्य नियम के रूप में बहुत लम्बे समय से स्वीकार किया गया है। (पैरा 129)

किन्तु न्यायालय की राय में वह ऐसी कार्यवाहियों में जिनमें न तो वादी और न ही प्रतिवादी पक्षकार था, उल्लिखित तथ्यों को साबित करने के लिए दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करने अथवा अवलम्ब लेने के लिए हकदार नहीं है। (पैरा 130)

इस मुद्दे पर उद्धृत विनिश्चयों का सामूहिक प्रभाव यह है कि साक्ष्य अधिनियम के अधीन निर्णय जो पक्षकारों के बीच नहीं है, सिवाय इस बात को साबित करने के सीमित प्रयोजन के साक्ष्य में अग्राह्य है कि पक्षकार कौन थे तथा क्या डिक्री पारित की गई थी तथा कौन-सी सम्पत्तियां वाद की विषयवस्तु थीं। (पैरा 133)

यह बात भी अच्छी तरह से सुस्थिर है कि वाद का निर्णय करने से पूर्व सक्षम ज्ञान वाले व्यक्तियों के समक्ष किए गए कथन या घोषणाएं लोक या साधारण प्रकृति के प्राचीन अधिकारों को साबित करने के लिए ग्राह्य हैं। (पैरा 134)

ऐसी घोषणाओं की ग्राह्यता पर्याप्त रूप से कमजोर हो गई है यदि वह लोक अधिकारों से सम्बन्धित न होकर पूर्णतया प्राइवेट अधिकारों से सम्बन्धित है। समान रूप से यह बात भी सुस्थिर है कि निर्णय के पश्चात् की गई घोषणाएं या कथन ग्राह्य नहीं होंगे क्योंकि वाद का निर्णय करने से पूर्व की गई कार्यवाहियों या घोषणाओं के मामले में वैर और बनावट का तत्व समाप्त हो जाता है। तथापि ऊपर वर्णित प्रकृति के कथनों को वाद का निर्णय होने से पूर्व ग्राह्य होने के लिए वे किसी विवाद के वास्तविक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अस्तित्व में होने से पूर्व के ही होने चाहिएं किन्तु वे विधिक कार्यवाहियों के प्रारम्भ से पूर्व भी किए जाने चाहिएं। (पैरा 135)

सर्वबन्धी निर्णय अर्थात् नाविक न्यायालय, प्रोबेट कार्यवाहियों आदि के निर्णय या आदेश इस बात के बावजूद भी सदैव ग्राह्य होंगे कि वे पक्षकारों के बीच हैं अथवा नहीं। व्यक्तिबन्धी निर्णय, जो पक्षकारों के बीच नहीं है, ऊपर उल्लिखित तीन प्रयोजनों के सिवाय साक्ष्य में बिल्कुल भी ग्राह्य नहीं हैं। उपर्युक्त तर्क के आधार पर निर्णय में दिए गए साक्ष्य या किए गए तर्कों या निर्दिष्ट वंशाक्रम का अधिमूल्यन करने में दिए गए निष्कर्ष जैसे निर्णय के परिवर्णन, ऐसे मामले में पूर्णयता अग्राह्य होंगे जहां न तो वादी और न ही प्रतिवादी पक्षकार थे। ऐसे दस्तावेज़ों का, जो चाहे जितने पुराने हों, और उनकी जानकारी के स्रोत प्रकट नहीं करते हों अथवा जिन्होंने पर्याप्त ख्याति प्राप्त नहीं की हो संभावित मूल्य बहुत ही कम है। कथन, घोषणाएं या अभिसाक्ष्य आदि ग्राह्य नहीं होंगे यदि वे वाद का निर्णय करने के पश्चात् के हैं। (पैरा 143)

इस बात का ध्यान रखा जा सकता है कि वर्तमान मामले में वादी राधाकृष्ण पर अपने पक्षकथन को यह दर्शित कर के साबित करने का स्पष्ट रूप से भार है कि वह स्वर्गीय महाराजा का अगला वंशज था और वंशक्रम में प्रत्येक ऐसा सम्बन्ध साबित हो गया था जो उसने वादपत्र में उल्लिखित किया था। उसके द्वारा उपर्युक्त तथ्यों को साबित करके अपने कर्तव्य का निर्वहन करने के पश्चात् ही प्रतिवादियों को उसके पक्षकथन को अभिखंडित करने के लिए कहा जा सकता है। साक्ष्य का बारीकी से परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि वादी ने जो कुछ किया है वह किसी भी और प्रत्येक दस्तावेज, अभिसाक्ष्य, कथन, घोषणा आदि को फाइल करना है जहां वंशावली को, जो उसे बनारस के महाराजा से अथवा उसके गोत्र के लोगों से किसी ऐसे मुख्य स्रोत को साबित करने का प्रयत्न किए बिना उससे जोड़ती है जिस पर उसके पक्षकथन का सम्पूर्ण ढांचा आधारित है। परिणाम यह है कि वादियों ने स्वयं को ऐसे चक्रव्यूह और मायाजाल में फंसा दिया है जिससे निकलना उनके लिए कठिन है तथा उनके द्वारा पेश किया गया मामला छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गया है और वे अपनी सब तरकीबों और उलझनों के बावजूद भी निर्णायक मुद्दों को अर्थात् रामरुच सिंह, गजराज सिंह, देवी सिंह और बंसीधर सिंह के बीच सम्बन्ध साबित करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं। (पैरा 144)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह सच है कि वंशावली की बाबत मौखिक साक्ष्य पर विचार करके कोई पूर्ण रूप से गणितीय दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता क्योंकि जहां एक शताब्दी से भी अधिक के वंशक्रम को साबित करना हो, वहां यह बात स्पष्ट है कि जिन साक्षियों की, वंशावली में अभिसाक्ष्य देने के लिए, परीक्षा की जाती है, उनको अपनी जानकारी के विशेष स्रोत पर निर्भर करना होता है जो उन्हें उनके पूर्वजों से मिल सकती है, किन्तु साथ ही केवल स्मरण-शक्ति से दिए गए साक्षियों के साक्ष्य पर अनन्य रूप से विश्वास करने में अत्यन्त जोखिम भरा और गम्भीर खतरा हो सकता है क्योंकि साक्षी जोकि हितबद्ध होते हैं, सामान्यतः अपनी कल्पना से अधिक काम लेते हैं और अपने पूर्वजों से सुने-सुनाए तथ्यों को, उन पक्षकारों की सहायता के लिए जिनके लिए वे अभिसाक्ष्य दे रहे होते हैं, तोड़-मरोड़ देते हैं। अतः, न्यायालय को ऐसे पूर्वोपाय करने चाहिएं जिनसे कि ऐसे साक्षियों के साक्ष्य को जोकि पूर्णतया कल्पना पर आधारित हो या जो विधि द्वारा यथापेक्षित जानकारी के विशेष स्रोत की बजाय काल्पनिक अथवा भ्रमिक हो, स्वीकार न किया जाए। इस मामले में, साक्षियों का मौखिक साक्ष्य सुनी-सुनाई बात ही है और जहां सुनी-सुनाई बात वाला साक्ष्य अनुज्ञेय न हो, वहां उनका साक्ष्य साधारण नियम के अपवाद के रूप में अनुज्ञेय होगा। इसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के खण्ड (5) में अंतर्विष्ट विधि से चुना गया है जिसकी भाषा और भाव का अर्थान्वियन उसी रूप में किया जाना चाहिए जिसमें वह पास किया गया है। (पैरा 192)

ऐसे साक्षियों के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा :—(1) रिश्तेदारी या सम्बन्ध, जोकि साक्षी का उस वादी से है, जिसका वंशावली के बारे में उसने अभिसाक्ष्य देना है, कितना निकट हो सकता है; (2) जानकारी के उस विशेष स्रोत का स्वरूप और प्रकृति, जिसके द्वारा साक्षी को वंशावली के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ; (3) सम्बद्ध साक्षियों की हितबद्ध प्रकृति; (4) कोई ऐसी पूर्वविधानी जोकि किसी वाद आरम्भ होने के पश्चात् कथन दस्तावेज प्रस्तुत करने हेतु साक्षी द्वारा किए गए किसी मिथ्या कथन को अपास्त करने के लिए अवश्य अपनाई जानी चाहिए और इसी प्रकार उस मिथ्या कथन को भी नामंजूर करने हेतु इसका प्रयोग किया जाना चाहिए जो किसी ज्ञान-विशेष के माध्यम से ग्रहण न किया हो बल्कि मात्र उसकी कल्पना पर आधारित हो; और (5) साक्षियों के साक्ष्य की, जहां तक समय और स्मरण-शक्ति ले जाएं, सारभूत रूप से सम्पुष्टि की जानी चाहिए। (पैरा 193)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(1) जिस ढंग से न्या० मुखर्जी ने साक्ष्य को समझा है, वह सही या वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता। इसके विपरीत, उन्होंने वादियों के साक्ष्य पर बहुत मामूली और सरसरी तौर पर विचार किया है, तथा उन महत्वपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को पूरी तरह अनदेखा कर कर दिया है जिनके आधार पर साक्षियों का साक्ष्य विश्वास योग्य नहीं है। (2) न्यायाधीश ने वंशावली के सबूत से संबंधित साक्ष्य के नियमों पर चलने का प्रयास नहीं किया और न ही वादियों के साक्षियों के साक्ष्य के अत्यन्त उल्लेखनीय तत्व को कोई महत्व दिया जो यह था कि उनकी स्मरण-शक्ति को परखते समय जिससे कि यह पता लगाया जा सके कि उन नामों को वास्तव में याद रख सकते हैं जो उन्हें बताए गए थे, वे इन साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करते समय, पहले और बाद में नजीरों में अधिकथित सामान्य कसौटियों पर पूरी तरह असफल रहे। (3) न्यायाधीश ने वादियों के साक्षियों के साक्ष्य को सिद्ध किया गया मान लिया और उसे इन साक्षियों के साक्ष्य की प्रकट विसंगतियों और प्रत्यक्ष कमियों पर गहन विचार किए बिना प्रथम दृष्टया उन्हें सही मान लिया। (पैरा 261)

दस्तावेजों के संबंध में भी बहुमत के निर्णय में यही दृष्टिकोण अपनाया गया है कि अधिकांश उन दस्तावेजों का अवलम्ब लिया गया जो या तो असंगत, अग्राह्य थे या जो वादियों के लिए सहायक नहीं थे। उदाहरण के लिए न्या० मुखर्जी ने बाद में वर्णित वंशावली को साबित करने के लिए प्रदर्श डी० डी० 30 और 31 का अवलम्ब लिया और यह सर्वथा नहीं समझा कि पहले तो निर्णयों में जो वर्णन किया गया है, वह ग्राह्य नहीं है क्योंकि निर्णय परस्पर पक्षकारों में नहीं थे और उनमें दी गई वंशावलियां भी उस वर्णन का भाग नहीं थीं, अतः उसका विधि की दृष्टि से कोई उपयोग नहीं किया जा सकता। उन दस्तावेज़ों की विधिक और वास्तविक स्थिति पर पूर्ण विवेचन किया गया है, जिसका वादियों द्वारा अवलम्ब लिया गया था : उक्त दस्तावेजों का बहुमत के निर्णय में अवलम्ब नहीं लिया जाना चाहिए था। (पैरा 263)

मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के सूक्ष्म और गहन, विस्तृत और निःशेषी विवेचन पर यह न्यायालय जिन अनिवार्य निष्कर्षों और परिणामों पर पहुंचा है, वे निम्नलिखित हैं :—(1) वादी ने निस्संदेह यह साबित कर दिया है कि वह गजराज सिंह का सीधे वंशज है। किन्तु यह तब तक उसके लिए हायक नहीं है जब तक यह न दिखा दिया जाए कि गजराज सिंह का रामरूच सिंह के साथ और रामरूच सिंह का बंशीधर सिंह के साथ क्या सम्बन्ध है तथा कि बंसीधर सिंह हृदय नारायण सिंह के पुत्रों में से एक था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(2) वादी यह साबित करने में नितान्त असफल रहा है कि गजराज सिंह का बंसीधर सिंह से कोई सम्बन्ध था अथवा यह कि रामरूच सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र और देवी सिंह का भाई था। (3) यह कि प्रदर्श-जे साक्ष्य में ग्राह्य था यद्यपि वादियों को उससे कोई मदद नहीं मिलेगी। (4) वादियों द्वारा पेश किए गए दस्तावेज, संव्यवहार, निर्णय, रोबकार, वादपत्र लिखित कथन, आदि या तो अग्राह्य हैं या असंगत हैं। (5) वंशावली के मुद्दे पर मौखिक साक्ष्य एकदम अविश्वसनीय है और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। (6) वादी द्वारा पेश किया गया न तो दस्तावेजी और न ही मौखिक साक्ष्य उनके पक्षकथन को साबित करने के लिए पर्याप्त है, अतः वादीगण आरम्भिक भार का निर्वहन करने में असफल रहे हैं जोकि अपना पक्ष कथन साबित करने के लिए उन पर है। (7) बहुमत का निर्णय विधि की दृष्टि से और तथ्यों के आधार पर गलत है और विधिक दृष्टि से त्रुटिपूर्ण निष्कर्षों पर पहुंचा है, अतः उसे कायम नहीं रखा जा सकता। (8) यह कि न्यायालय जहां तक वादियों के पक्षकथन का सम्बन्ध है, न्या० एम० प्रसाद के निर्णय से पूरी तरह सहमत है। (9) वादीगण यह साबित नहीं कर सके हैं कि वे स्वर्गीय महाराजा (हरेन्द्र किशोर सिंह) के अगले और निकटतम उत्तरभोगी हैं। (पैरा 265)

यह सुस्थिर है कि जब राजगामी सम्पत्ति का दावा सरकार सामने रखती है तो यह साबित करने का भार अपीलार्थियों पर अत्यधिक रहता है कि प्रत्यर्थियों का कोई भी वारिस दुनिया में कहीं भी नहीं है। आम तौर पर न्यायालय राजगामित्व द्वारा सम्पदा लिए जाने से अप्रसन्न होता है जब तक कि राजगामित्व की आवश्यक शर्तें पूरी तरह पूरी न कर दी जाएं। इसके अतिरिक्त, राजगामित्व का अभिवाक् स्वीकार करने से पूर्व सरकार को एक सार्वजनिक सूचना निकालनी चाहिए जिससे कि यदि कोई दावेदार देश में कहीं भी है अथवा इस मामले के लिए विश्व में कहीं भी है तो वह राज्य के दावे का प्रतिवाद करने के लिए आगे आ सकता है। प्रस्तुत मामले में, बिहार राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य वादी प्रत्यर्थियों के दावे का प्रतिवाद करने के लिए हाजिर होकर ही सतुष्ट हो गए। यदि वे यह दर्शित करने में असफल हो जाएं कि वादी स्वर्गीय महाराजा के निकटतम उत्तरभोगी नहीं हैं, तो भी तार्किक नियम के रूप में यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि वादियों के दावे के असफल होने से यह अनिवार्य निष्कर्ष निकलेगा कि ऐसा कोई अन्य वारिस नहीं है जो सम्पत्तियों का दावा करने के लिए किसी भी समय आगे आ सके। (पैरा 270)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रश्न के बारे में न्यायालय न्यायाधीश की राय से पूरी तरह सहमत है, फिर भी इस प्रश्न पर कोई राय व्यक्त किए बिना इसे अनिर्णीत छोड़ना होगा क्योंकि अपील का विनिश्चय करने के लिए राजगामित्व के प्रश्न पर विचार करना सर्वथा आवश्यक नहीं है। इसका अवधारण तब किया जा सकता है जब बिहार राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य उचित रूप से फाइल की गई कार्यवाही में राजगामित्व का दावा करने के लिए आगे आएं। अतः राजगामित्व के प्रश्न पर दोनों राज्यों द्वारा लिया गया अभिवाक् अनिर्णीत छोड़ा जाता है। (पैरा 272)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1972]	[1972] 2 एस० सी० आर० 646 : पी० सी० पुरुषोत्तम रेड्डियार बनाम एस० पेरुमल (P. C. Purushothama Reddiar *v.* S. Perumal);	38
[1965]	[1965] 3 एस० सी० आर० 861 : बृज मोहन सिंह बनाम प्रिय व्रत नारायण सिंह और अन्य (Brij Mohan Singh *v.* Priya Brat Narain Singh and Others);	53
[1942]	ए० आई० आर० 1942 पी० सी० 40 : कोका-कोला कम्पनी ऑफ कैनेडा बनाम पेप्सी-कोला कम्पनी ऑफ कैनेडा लिमिटेड (Coca-Cola Company of Canada Ltd. *v.* Pepsi-Cola Company of Canada);	66; 130
[1936]	ए० आई० आर० 1936 पी० सी० 60 : भोजराज बनाम सीता राम और अन्य (Bhojraj *v.* Sita Ram and Others);	199
[1931]	[1931] 58 आई० ए० 188 : अब्दुल गफ्फूर और अन्य बनाम हुसैन बीबी और अन्य (Abdul Ghafur *v.* Hussain Bibi and Others);	197

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1918] ए० आई० आर० 1918 पी० सी० 49 :
मेवा सिंह और अन्य बनाम बसन्त सिंह और अन्य
(Mewa Singh v. Basant Singh and Others); 198

[1905] [1905] 2 चान्सरी डिवीजन 538 :
मरसर बनाम डेनी
(Mercer v. Denne); 60

[1904] [1904] 31 आई० ए० 160 :
देबी प्रसाद चौधरी और अन्य बनाम रानी राधा चौधराईन और अन्य
(Debi Pershad Chowdhry and Others v. Rani Radha Chodhrain and Others); 196, 200

[1902] [1902] 29 आई० ए० 1 :
बहादुर सिंह और अन्य बनाम मोहन सिंह और अन्य
(Bahadur Singh and Others v. Mohan Singh and Others); 195

[1835] [1835] 152 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1016 :
ब्रेन बनाम प्रीस
(Brain v. Preece). 58

प्रभेदित निर्णय

[1946] ए० आई० आर० 1946 पी० सी० 103 :
कुंवर श्याम प्रताप सिंह बनाम कलक्टर, इटावा
(Kunwar Shyam Pratap Singh v. Collector of Etawah) 45, 46, 47

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1925] [1925] 52 इण्डियन अपील्स 201 :
गुलाम रसूल खां बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया इन काउन्सिल
(Ghulam Rasul Khan v. Secretary of State for India in Council); 43; 44; 47

[1874] [1874] इण्डियन अपील्स 209 :
राजा मट्टू रामलिंग सेतुपती बनाम पेरियानयागम पिल्लै
(Raja Muttu Ramlinga Setupati *v.* Perianayagum Pilai); 50, 52

[1836-37] [1836-37] 1 एम० आई० ए० 19 :
मीर असदुल्लाह बनाम मुसम्मात बीबी इमामन
(Meer Usd-oollah *v.* Mussumat Beebi Imaman). 48

अनुमोदित निर्णय

[1937] ए० आई० आर० 1937 पी० सी० 69 :
महाराजा सर केशव प्रसाद सिंह बहादुर बनाम बहूरिया मुसम्मात भागजोगना कुंवर और अन्य
(Maharaja Sir Kesho Prasad Singh Bahadur *v.* Bhagjogna Kaur and Others); 129

[1922] [1922] आई० एल० आर० 45 मद्रास 352 :
सीतापति राव डोरा बनाम वेंकन्ना डोरा और अन्य
(Seethapati Rao Dora *v.* Venkanna Dora and Others); 132

[1881] [1881] आई० एल० आर० 6 कलकत्ता 171 :
गज्जू लाल बनाम फतह लाल
(Gajju Lall *v.* Fatteh Lall); 126

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1870-72] [1870-72] 14 एम० आई० ए० 367 : जोगेन्द्र देव राय कुट बनाम फनीन्द्र देव राय कुट (Jogindro Deb Roy Kut v. Funindro Deb Roy Kut); 125

[1854-57] [1854-57] 6 एम० आई० ए० 494 : जॉन कुकरेन बनाम हरे सुन्दरी देबिया और अन्य (John Cockrane v. Hurresoonduri Debia and Others). 123

व्युत्क्रान्त निर्णय

[1940] [1940] 44 सी० डब्ल्यू० एन० 935 : गदाधर चौधरी और अन्य बनाम शरत् चन्द्र चक्रवर्ती और अन्य (Gadaddar Chowdhary and Others v. Sarat Chandra Chakravarty and Others). 127

सिविल अपीली अधिकारिता : 1975 की सिविल अपील संख्या 494 से 496.

1966 की क्रमशः प्रथम अपील सं० 85, 86 और 87 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 15 दिसम्बर, 1982 वाले निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से डा० एल० एम० सिंघवी, सर्वश्री एस० सी० मित्र, यू० पी० सिंह, एस० एन० झा और एल० के० पाण्डे ।

प्रत्यर्थी सं० 5—22 की ओर से सर्वश्री वी० एम० तारकुण्डे, यू० आर० ललित, डी० एन० गोबर्धन और डी० गोबर्धन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से	डा० वाई० एस० चितले और श्रीमती शोभा दीक्षित
मध्यवर्ती की ओर से	श्री एस० के० वर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फ़ज़ल अली ने दिया।

न्यायाधिपति फ़ज़ल अली—

ये अपीलें पटना उच्च न्यायालय की एक विशेष न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय के विरुद्ध की गई हैं जिसके द्वारा उक्त उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटने के पश्चात् हक-वाद सं० 1961 को डिक्री कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराजा नरेन्द्र किशोर सिंह (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'महाराजा' कहा गया है) की मृत्यु के पश्चात् जोकि 26 मार्च, 1973 को निःसंतान रहते हुए हो गई थी, उनके द्वारा पीछे छोड़ी गई विभाज्य सम्पदा के बारे में एक गम्भीर विवाद उद्भूत हो गया। महाराजा ने यह दावा किया कि वह राजा हृदय नारायण सिंह का सीधा वंशज था जोकि स्वीकृत रूप से उक्त सम्पत्तियों का स्वामी था। अनेक व्यक्ति तत्-विरोधी दावे लेकर सामने आए। उनका यह कहना था कि वे महाराजा द्वारा छोड़ी गई उन सम्पत्तियों के वारिस थे, जिनमें स्थावर तथा जंगम दोनों प्रकार की सम्पत्तियां शामिल थीं, जैसे कि ज़मीन, गृह, हीरे-जवाहरात इत्यादि। चूंकि प्रत्येक दावेदार ने जोरदार रूप से प्रतिवाद किया इसलिए परिणामस्वरूप एक वाद वाराणसी में फाइल किया गया जोकि हक-वाद सं० 3/55 के रूप में है। वह वाद रामबख्श सिंह नामक व्यक्ति द्वारा फाइल किया गया था और उसका यह दावा था कि वह स्वर्गीय महाराजा का निकटतम उत्तर भोगी था। किन्तु उस वाद के बारे में यह प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक प्रक्रमों के दौरान ही वह स्वाभाविक रूप से समाप्त हो गया और उसे अन्ततः 9 अप्रैल, 1956 को वापस ले लिया गया और इस प्रकार विवाद के क्षेत्र में केवल तीन दावेदार शेष रह गए।

2. 16-10-1955 को अधीनस्थ न्यायाधीश, पटना के न्यायालय में एक अन्य वाद फाइल किया गया जिसे हक-वाद सं. 44/1955 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया। इस वाद का दावेदार शिवहर निवासी सुरेश नन्दन सिंह नामक एक व्यक्ति था जिसने कि राजस्व बोर्ड के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत किया था क्योंकि उसने महाराजा की विधवाओं की मृत्यु के पश्चात् सम्पूर्ण सम्पत्तियों का इन्तजाम अपने हाथ में ले लिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

3. तृतीय वाद अर्थात् हक-वाद सं० 25/58 वादियों के दो समूहों द्वारा फाइल किए गए जिन्होंने पारस्परिक रूप से किंचित करार कर लिया था। वह वाद 11 अप्रैल, 1958 को अधीनस्थ न्यायाधीश, पटना के न्यायालय में फाइल किया गया था। उस वाद में मुख्य दावा राजा जुगल किशोर सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया था जिसने यह दावा किया था कि वह राजा ध्रुव की पुत्री का पुत्र के नाते बेत्तिया राज पर गद्दीनशीन हुआ था और महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह की मृत्यु के कारण राजा दलीप सिंह की पंक्ति की समाप्ति पर उक्त अधिकार वादी अम्बिका प्रसाद सिंह पर न्यागत हुआ था।

4. चौथा वाद 12 मार्च, 1959 को अधीनस्थ न्यायाधीश, छपरा के न्यायालय में फाइल किया गया था जोकि बाद में अधीनस्थ न्यायाधीश, पटना के न्यायालय में अन्तरित कर दिया गया और उसे हक वाद संख्या 5/61 के रूप में पुनः संख्यांकित किया गया। इस वाद में भी वादियों के दो समूह थे जिनमें से एक उन व्यक्तियों से मिलकर गठित होता था जिन्होंने कि वादियों के अन्य गिरोह के साथ चम्पारटस करार कर लिया था। इस वाद में प्रमुख वादी श्री राधा कृष्ण सिंह, जोकि भगवती प्रसाद सिंह के पुत्रों में से एक था, ने यह दावा किया कि उसने निकटतम उत्तरभोगी के रूप में भूतपूर्व महाराजा की सम्पदा ग्रहण की थी।

5. यहां हम इस बात का उल्लेख कर दें कि हमारे समक्ष मुख्य प्रतिवाद वादी राधा कृष्ण सिंह (जिसे इसमें इसके पश्चात् वादी कहा गया है) तथा उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा यथासमर्थित बिहार राज्य के बीच है। जहां तक अन्य दो वादियों का प्रश्न है उन्हें विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों ने ही खारिज कर दिया, किन्तु राधा कृष्ण सिंह द्वारा फाइल किया गया वाद (हक-वाद सं० 5/1961) उच्च न्यायालय द्वारा 2 : 1 के बहुमत से डिक्री किया गया था। न्यायमूर्ति जी० एन० प्रसाद, जिनसे कि न्यायमूर्ति ए० एन० मुखर्जी ने सहमति व्यक्त की थी, ने अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय को उलट दिया और राधा कृष्ण सिंह के वाद को डिक्री कर दिया तथा बिहार राज्य के दावे को खारिज कर दिया। किन्तु न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने भिन्न दृष्टिकोण अपनाया और यह अभिनिर्धारित करते हुए विचारण न्यायालय के साथ सहमति व्यक्त की थी कि वादी का वाद सही रूप से खारिज किया गया था। तदनुसार उन्होंने एक विसम्मत निर्णय दिया जिसके द्वारा वादी का वाद खारिज कर दिया गया।

6. यहां हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम इस मामले के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इतिवृत्त तथा अन्य परिस्थितियों की चर्चा करें क्योंकि न्यायाधीश जी० एन० प्रसाद ने सुचारु रूप से साधारण मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का ब्यौरा दिया है लेकिन स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया है जिनके परिणामस्वरूप विभिन्न तात्विक प्रक्रम उत्पन्न हुए हैं जिनसे होकर विवादग्रस्त सम्पत्तियों की बाबत मुकदमेबाजी अग्रसर हुई है। इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम उन बातों को फिर से दोहराएं जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ण रूप से विचार-विमर्श कर लिया गया है। यहां यह कहना पर्याप्त होगा कि वर्तमान मुकदमेबाजी की घटनाओं का वृत्तांत महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह की मृत्यु से प्रारम्भ होता है और इनमें उस समय गम्भीर आरोप लगाए जब उसकी दो विधवाओं, महारानी शिवरत्न कुंवर की मृत्यु 24 मार्च, 1896 को हो गई और महारानी जानकी कुंवर के बारे में यह घोषणा कर दी गई कि वह सम्पदा का प्रबन्ध करने में अक्षम है, जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण सम्पदा को प्रतिपाल्य अधिकरण द्वारा अपने हाथ में ले लिया गया। चूंकि प्रश्नगत सम्पत्तियां बिहार तथा उत्तर प्रदेश राज्यों में स्थित थीं इसलिए बिहार और उत्तर प्रदेश के प्रतिपाल्य अधिकरणों ने संयुक्त रूप से उन सम्पत्तियों के प्रबन्ध को कार्यान्वित किया। महारानी जानकी कुंवर इलाहाबाद में निवास करती थीं और उनकी मृत्यु 27 नवम्बर, 1954 को निःसंतान हो गई।

7. उसकी खेदजनक मृत्यु के पश्चात् अथवा तत्पूर्व भी, हितबद्ध व्यक्तियों ने स्वर्गीय महाराजा द्वारा पीछे छोड़ी गई भारी सम्पत्तियों पर लालच तथा लोलुपता की दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया और प्रतिद्वंद्वी तथा परस्पर विरोधी दावे प्रस्तुत करके मुकदमेबाजी प्रारम्भ हो गई जिससे कि इस बात के लिए भरसक प्रयत्न किए गए कि इस अवसर को सौभाग्य के रूप में बदल दिया जाए। इस नाटक का अन्तिम तथा अनिवार्य कदम अग्रसर होते-होते चरम सीमा तक उस समय पहुंच गया जबकि महारानी जानकी कुंवर की मृत्यु हो गई और उस समय, जैसाकि ऊपर वर्णित किया गया है चार वाद फाइल किए गए जिनमें यह दावा किया गया कि महाराजा की सम्पत्तियां उनकी हैं, जोकि कुछ उत्तरभोगियों के रूप में और कुछ पुत्री का पुत्र होने के नाते उनकी हैं।

8. हम इस बात को स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि तीन अपीलें अर्थात् 1975 की सिविल अपील सं० 494 से 496 बिहार राज्य द्वारा फाइल की गई हैं जिनमें वादियों तथा अन्य दावेदारों को प्रत्येक अपील में प्रत्यर्थियों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप में पेश किया गया है। प्रमुख विवाद अपील सं० 494 के बारे में है जो कि बिहार राज्य के बीच, जिसका समर्थन एक ओर उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा किया गया है, और वादी राधा कृष्ण सिंह तथा उसके सम्पारटरों के बीच है।

9. इसलिए हम यह आशा करते हैं कि हम केवल अपील सं० 494 के पक्षकारों के बारे में साक्ष्य—चाहे यह मौखिक हो या दस्तावेज़ी—उस पर विचार-विमर्श करें और उसका विश्लेषण करें।

10. मौखिक, दस्तावेज़ी तथा परिस्थितिक साक्ष्य पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि हम संक्षेप में मामले की पृष्ठ-भूमि के प्रति निर्देश करें जिससे कि निस्संदेह निचले न्यायालयों द्वारा पूर्णतया विचार-विमर्श कर लिया गया है। किन्तु किंचित् ऐतहासिक पहलुओं को दोहराना होगा जिससे कि इस दृष्टिकोण को समझा जा सके जिसे हम इस मामले में अपना रहे हैं।

11. बेत्तिया राज के इतिवृत्त पर विचार करने के लिए हमें सत्रहवीं शताब्दी की ओर पीछे जाना होगा। निर्विवाद्य स्थिति यह है कि बेत्तिया राज एक विभाज्य सम्पदा थी जिसकी कि बिहार तथा उत्तर प्रदेश राज्यों में सम्पत्तियां विद्यमान थीं। ये राज राजा उग्रसेन नामक एक राजा द्वारा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग में स्थापित किए गए थे और यह सामान्य रूप से चम्पारन की सरकार की रियासत के नाम से जाने जाते थे जिसमें चार परगना थे अर्थात् माझवा, सिमराऊं, बाबरा और मैंहसी। राजा दलीप सिंह, राजा गजराज सिंह तथा अन्ततः राजा ध्रुव सिंह 1715 में राजा उग्रसेन के उत्तरभोगी बन गए। राजा ध्रुव सिंह की मृत्यु कोई पुरुष संतान छोड़े बिना 1762 में हो गई किन्तु वह अपने पीछे बेंगा बाबुई नामक एक पुत्री छोड़ गया जिसने कि रघुनाथ सिंह नामक एक व्यक्ति से विवाह कर लिया जोकि गौतम गोत्र का एक भूमिहर ब्राह्मण था। राजा ध्रुव सिंह की मृत्यु पर, उसकी पुत्री के पुत्र राजा जुगल किशोर सिंह ने बेत्तिया राज सम्पदा पर कब्जा कर लिया और जिस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उस प्रांत की सरकार को अपने हाथ में लिया तब उक्त राजा का उस पर कब्जा था। उक्त कम्पनी इन शासकों के किसी प्रतिरोध को सहन नहीं कर सकती थी और इसलिए एक लड़ाई लड़ी गई जिसके दौरान राजा जुगल किशोर सिंह को 1766 में बुन्देलखण्ड राज्य नामक पड़ोसी राज्य में धकेल दिया गया और बेत्तिया राज की सम्पूर्ण सम्पदा को अभिगृहीत कर लिया गया तथा उसे कम्पनी के अधिकारियों के प्रबन्धतंत्र के अन्तर्गत रख दिया गया। राजा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जुगल किशोर सिंह, श्री किशन सिंह और अबधूत सिंह ने जोकि क्रमशः पृथी सिंह और छत्रजीत सिंह के पुत्र थे, और जो राजा दलीप सिंह के छोटे भाई थे, की अनुपस्थिति में कम्पनी का विश्वास प्राप्त कर लिया और उन्हें बेत्तिया राज का भारसाधक बना दिया गया। किन्तु 1971 में कम्पनी ने राजा जुगल किशोर सिंह को पुनःस्थापित कर दिया जिसका प्रत्यक्ष कारण यह था कि उसने संभाव्यत: माफीनामा प्रस्तुत कर दिया था और निष्ठापूर्वक यह वचन दिया था कि वह कम्पनी के प्रति वफादार रहेगा, जिसके परिणामस्वरूप सरकार तथा राजा जुगल किशोर सिंह के बीच प्रश्नगत सम्पदा की बाबत बातचीत प्रारम्भ हो गई और अन्ततः उसे माझवा तथा सिमराउं की जमींदारी आबंटित कर दी गई जोकि बेत्तिया राज सम्पदा का भाग गठित करती थी और बाबरा तथा मैहशी को श्री किशन सिंह तथा अवधूत सिंह के कब्जे में छोड़ दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने औपचारिक रूप से यह बन्दोबस्त तारीख 24 जुलाई, 1971 वाले अपने विनिश्चय द्वारा प्रख्यापित कर दिया। उसके तुरन्त पश्चात्, राजा जुगल किशोर सिंह तथा कम्पनी के बीच कुछ विवाद पैदा हो गया जिसके परिणामस्वरूप उसे कम्पनी द्वारा इस कारण पुनः बेकब्ज़ा कर दिया गया क्योंकि वह सरकारी राजस्व का संदाय करने में असफल रहा था। इस प्रकार चम्पारण की सम्पूर्ण सरकार सरकारी कब्जे में आ गई और उसे अस्थायी बन्दोबस्त के रूप में छोटे-छोटे किसानों के हाथ में सौंप दिया गया। राजा जुगल किशोर सिंह को भरण-पोषण के लिए कुछ भत्ता दे दिया गया और 1783 में उसकी मृत्यु हो गई तथा वह अपने पीछे अपना पुत्र बीर किशोर सिंह छोड़ गया जिसका उत्तरभोगी उसका सबसे बड़ा पुत्र महाराजा आनन्द किशोर सिंह 1970 में बन गया। उसकी मृत्यु पर जोकि निःसंतान हो गई थी उसके उत्तरभोगी के रूप में उसका छोटा भाई महाराजा नवल किशोर सिंह आया और उक्त महाराजा के उत्तरभोगी के तौर पर उसका सबसे बड़ा बेटा राजेन्द्र किशोर सिंह बना जिसका कि उत्तरभोगी अन्ततः महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह बना जिसकी सम्पदा इस वाद में विवाद की विषयवस्तु है।

12. 22 सितम्बर, 1790 को लार्ड कार्नवालिस ने राजस्व बोर्ड को यह सिफारिश की कि माझवा और सिमराउं की सम्पदा राजा जुगल किशोर सिंह को लौटा दी जाए, किन्तु चूंकि इसी बीच उसकी मृत्यु हो चुकी थी इसलिए कम्पनी ने यह निदेश दिया कि राजा जुगल किशोर के वारिस श्री किशन सिंह तथा अवधूत सिंह को क्रमशः उनके जिलों को प्रत्याहृत कर दिया जाए। बोर्ड के इस विनिश्चय से, जोकि ऊपर वर्णित है, बीर किशोर सिंह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वथा संतुष्ट नहीं हुआ क्योंकि उसने सम्पूर्ण प्रांत (चम्पारन की सरकार) का दावा किया किन्तु महा राज्यपाल के आदेश की आज्ञा का पालन करते हुए उसने माझवा और सिमराउं का कब्जा ग्रहण कर लिया।

13. तत्पश्चात् बीर किशोर सिंह और राजा जुगल किशोर सिंह के वारिसों के बीच माझवा और सिमराउं की बाबत एक विस्तृत मुकदमेबाजी शुरू हो गई और अन्ततः वाद फाइल किये गये जिनके अनुसरण में उप-राज्यपाल को एक स्मरण-पत्र भेजा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि जबकि पूर्ववर्ती वाद में राजा देवकी नन्दन सिंह के उत्तरवर्ती ने यह दलील दी थी कि राजा जुगल किशोर सिंह राजा ध्रुव सिंह की पुत्री का पुत्र था, और इसलिए वह राजा ध्रुव सिंह के कुटुम्ब का सदस्य नहीं था, बीर किशोर सिंह ने अपनी बहस में यह कहा कि चूंकि राजा जुगल किशोर सिंह, राजा ध्रुव सिंह द्वारा दत्तकग्रहण किया गया था इसलिए वह उसके कुटुम्ब का सदस्य बन गया। आवेदन पत्र में यह दलील दी गई कि राजा जुगल किशोर सिंह, जोकि गौतम गोत्र का था, राजा ध्रुव सिंह द्वारा, जोकि काश्यप गोत्र का ही था, दत्तक ग्रहण किया गया था और उसको उत्तरभोगी के रूप में नियुक्त कर लिया गया था।

14. संक्षेप में यहां इस बात का उल्लेख कर दिया जाए कि इस पर विस्तृत मुकदमेबाजी प्रारम्भ हो गई जिसमें राजा ध्रुव सिंह द्वारा पीछे छोड़ी गई सम्पदा पर प्रतिद्वन्द्वी दावे पेश किए गए। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 1895, 1896 और 1905 में संस्थित वादों में से किसी में भी यह प्रश्न कि क्या राजा जुगल किशोर सिंह राजा ध्रुव सिंह के कुटुम्ब का इस कारण सदस्य बन गया था कि उसे पुत्री के पुत्र के रूप में दत्तकग्रहण कर लिया गया था, इस दलील के बावजूद विनिश्चित नहीं किया गया था कि यह अभिवचन उन सभी वादों में पेश किया गया था। जैसा कि पहले वर्णित किया गया है जो चार वाद फाइल किए गए थे उनमें से एक वाद वापस ले लिया गया था। प्रस्तुत अपीलों में हमारा सम्बन्ध केवल दो प्रतिद्वन्द्वी दावों से है जो कि महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह और उसकी दोनों विधवाओं की मृत्यु पर बेतिया राज के बारे में प्रस्तुत किया गया था। वाद सं० 25/1958 में दावेदार अम्बिका प्रसाद सिंह तथा अन्य वादी थे जिन्होने इस आधार पर सम्पदा का दावा किया था कि चूंकि राजा जुगल किशोर सिंह दत्तकपुत्र एवं राजा ध्रुव सिंह के उत्तरभोगी के रूप में न कि उसकी पुत्री के पुत्र के रूप में उत्तरभोगी बना था, इसलिए अम्बिका प्रसाद जो कि उत्तरवर्तियों में से निकटतम था, विधवाओं की मृत्यु के पश्चात् उक्त सम्पदा का उत्तरभोगी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होने का हकदार था। अम्बिका प्रसाद सिंह के वाद को विचारण न्यायालय ने एवं उच्च न्यायालय की विशेष न्यायपीठ ने खारिज कर दिया और इस प्रकार इस न्यायालय में प्रमाण-पत्र ग्रहण करके कुछ अपीलें प्रस्तुत की गईं। उक्त अपीलों अर्थात् सिविल अपील सं० 114-119/1976 श्याम सुन्दर प्रसाद सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य[1] वाले मामले में न्या० पी० एन० भगवती, ए० पी० सेन और ई० एस० वेंकटरमय्या द्वारा गठित न्यायपीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आई। इस न्यायालय ने इन अपीलों को खारिज कर दिया और अम्बिका प्रसाद के दावे को यह अभिनिर्धारित करते हुए नामंजूर कर दिया कि चूंकि राजा जुगल किशोर सिंह विधि की दृष्टि से पुत्री का पुत्र नहीं माना जा सकता था इसलिए निकटतम उत्तरवर्ती के रूप में राजा ध्रुव सिंह द्वारा छोड़ी गई सम्पदा पर उसका दावा सफल नहीं हो सकता है।

15. 1961 के वाद सं० 5 में राधा कृष्ण सिंह और अन्य का दावा एक अन्य न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किए जाने के लिए अन्तरित कर दिया गया और इन अपीलों में अब यह दावा हमारे समक्ष सुनवाई के लिए आया है।

16. किन्तु हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम बेत्तिया राज के पूर्व वृत्तांत पर गहराई से छान-बीन करें क्योंकि प्रस्तुत मामले में पक्षकारों के उत्तरभोगियों को विनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए सुसंगत वंशावली राजा हृदय नारायण सिंह से तथा उसके वंशजों से प्रारम्भ होती है जिनके प्रति निर्देश प्रदर्श-जे० में, जो कि सेरिश्टेदार की रिपोर्ट है, उसके बारे में यह प्रतीत होता है कि वह वादियों के मामले की आधार शिला है।

17. प्रदर्श क्यू-2, जो कि वादियों द्वारा फाइल की गई एक वंशावली है, स्पष्ट रूप से यह दर्शित करता है कि ठाकुर हृदय नारायण सिंह, जो कि अपने पिता ठाकुर हंसराज सिंह की मृत्यु के पश्चात् बेत्तिया का राजा था, उसके पांच पुत्र थे। इन पुत्रों में से एक बंसीधर सिंह नामक पुत्र था जिसके बारे में यह कथन किया गया है कि वह वादियों का पूर्वज था। बंसीधर सिंह का केवल एक पुत्र अर्थात् देबी सिंह था।

18. ऊपर वर्णित तथ्यों के संक्षिप्त वर्णन के पश्चात्, मौखिक, दस्तावेजी तथा पारिस्थितिक साक्ष्य पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक हो

---

[1] [1981] 1 एस० सी० आर० 1.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाता है कि हम उन सुस्थापित सिद्धांतों का कथन करें, जिनके प्रकाश में हमें पक्षकारों के परस्पर विरोधी दावों का विनिश्चय करना है। ऐसा प्रतीत होता है कि वाद-वंशावली में ढांचे का वास्तविक ताना-बाना तथा आधार है जिस पर कि वादी का मामला खड़ा किया गया है। यह वादी के मामले का प्रारंभिक प्रश्न है जिसका प्रतिविरोध अपीलार्थी द्वारा जोरदार रूप से किया गया है। ऐसे मामलों में चूंकि किसी हितबद्ध व्यक्ति अथवा किसी पक्षकार की यह प्रवृत्ति रहती है कि किसी अभिकथित दावे को हथियाने, स्थापित अथवा साबित करने के लिए कोई ऐसी मिथ्या वंशावली गढ़ी जाए, कूट-रचित की जाए अथवा हासिल की जाए जिससे कि उनके उद्देश्यों की पूर्ति हो, इसलिए न्यायालयों को प्रस्तुत की गई इस वंशावली का अवलम्ब लेते समय कि वे दस्तावेजों की शृंखला द्वारा अथवा प्राचीन दिखाई जाने वाली एक वंशावली की जटिलता द्वारा जो कि प्रतिद्वन्द्वी दावों के समर्थन में पेश की गई हैं, उनके चंगुल से बचा जाए।

19. ऐसे मामलों को लागू होने वाले सिद्धांतों को निम्नलिखित तौर पर संक्षिप्त रूप से दिया जा सकता है—

(1) ऐसी वंशावलियां जिनके बारे में यह स्वीकार अथवा साबित किया गया है कि वे पुरानी हैं और पूर्ववर्ती मामलों में जिनका अवलम्ब लिया गया है वे निस्संदेह सुसंगत हैं और कुछ मामलों में तो वे साबित किए गए तथ्यों के बारे में विनिश्चायक भी हो सकती हैं किन्तु इन वंशावलियों को स्वीकार करने और इनका अवलम्ब लेने से पूर्व न्यायालयों को चाहिए कि वे अनेक विचार्य विषयों पर ध्यान दें—

(क) वंशावली का स्रोत और उसकी विश्वसनीयता,

(ख) साक्ष्य अधिनियम के अधीन वंशावली की ग्राह्यता;

(ग) ऐसे विनिश्चयों या निर्णयों में उक्त वंशावलियों का समुचित उपयोग जिनका कि अवलम्ब लिया गया है,

(घ) वंशावलियों की प्राचीनता,

(ङ) जहां ऐसी वंशावलियां स्वीकार की गई हैं या रद्द की गई हैं वहां उनके सम्बन्ध में मुकदमेबाजी।

(2) ग्राह्यता के प्रश्न पर निम्नलिखित कसौटियों का अपनाया जाना आवश्यक है—

(क) यह निश्चित है कि सम्बद्ध कुटुम्बों की वंशावलियां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साक्ष्य अधिनियम की धारा 13 अथवा धारा 32(5) की परिधि के अन्तर्गत आती हों;

(ख) उन्हें पोस्ट लाईटम मॉटम (वाद प्रारम्भ होने के पश्चात् दस्तावेज़ प्रस्तुत करने) का सिद्धान्त लागू न होता हो।

(ग) वंशावलियों अथवा दावों को उन परिवर्तनों, अभिसाक्ष्यों अथवा निर्णयों में वर्णित तथ्यों द्वारा साबित नहीं किया जा सकता जिन्हें शृंखलाबद्ध विनिश्चयों द्वारा अग्राह्य अभिनिर्धारित किया जा चुका है।

(घ) जहां वंशावलियां मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित होती हैं वहां उक्त साक्ष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह स्पष्ट रूप से जानकारी का विशेष साधन दर्शित करे जिससे ऐसा निश्चित स्रोत, समय और परिस्थितियां प्रकट होती हों जिनके अधीन जानकारी अर्जित की गई थी और वह निश्चित रूप से स्पष्टतया और विनिश्चायक तौर पर साबित की जानी चाहिए।

20. अब हम ऊपर उद्धृत सिद्धांतों के प्रकाश में, साक्ष्य को आकेंगे तथा उसका विश्लेषण करेंगे और मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य से उद्भूत होने वाले प्रश्नों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण नजीरों के प्रति निर्देश करेंगे। हालांकि दोनों पक्षकारों ने बड़ी संख्या में विनिश्चयों के उद्धरण पेश किए हैं, हम इस निर्णय को उन सभी नजीरों से बोझिल अथवा संकुलित नहीं करना चाहेंगे जो हमारे समक्ष पेश किए गए हैं और अपने आप को केवल महत्वपूर्ण तथा ऐसी सुसंगत नजीरों तक ही सीमित रखेंगे जो कि इस न्यायालय द्वारा तथा प्रिवी काउन्सिल द्वारा दी गई हैं और हम उच्च न्यायालय के निर्णयों के प्रति केवल तभी निर्देश करेंगे यदि प्रिवी काउन्सिल का अथवा इस न्यायालय का कोई प्रत्यक्ष विनिश्चय विद्यमान न हो।

21. संक्षेप में इसे पुनः दोहराते समय वादी-प्रत्यर्थियों ने उसी अपने हक को इस बात पर आधारित रखा कि वे महाराजा के निकटतम उत्तरभोगी हैं और यह दावा किया कि वे महाराजा की विधवाओं की मृत्यु के पश्चात् अव्यवहित रूप से कब्जा ग्रहण करने के हकदार हैं। इसलिए वादियों ने यह दावा किया है कि वे गजराज सिंह तथा रामरुच सिंह के वंशज हैं जो कि बंसीधर सिंह के पुत्र की शाखा थी और जो बरैनी में शेष बनी हुई थी और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाराजा की पंक्ति के निर्वापन के पश्चात् सम्पत्तियां गजराज सिंह के वंशजों को प्रत्यावर्तित हो जानी थीं। वादियों का प्रश्न यह रहा है कि वे न्यायालय को यह दर्शित करें कि वे गजराज सिंह के प्रत्यक्ष वंशज थे जो कि (गजराज सिंह) रामरुच का पुत्र था और रामरुच स्वयं बंसीधर सिंह का पुत्र था।

22. इस प्रकार इस मामले के प्रयोजन के लिए बंसीधर सिंह के बारे में स्वीकृत रूप से यह मान लिया जाना चाहिए कि वह महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह का वंशज था। एक मात्र विवादग्रस्त प्रश्न तथा महत्वपूर्ण संविवाद इस प्रश्न से सम्बन्धित है कि क्या वादियों ने अपना यह मामला सिद्ध कर लिया है या नहीं कि वे भी बंसीधर सिंह के सीधे वंशज थे जिससे कि वे महाराजा की मृत्यु पर विवादग्रस्त सम्पत्तियों का दावा कर सकते थे। वंशावली तथा अन्य विषयों के दोनों प्रश्नों पर विस्तृत रूप से मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पेश किया गया है जिसके अन्तर्गत दस्तावेजी, रिपोर्टें, निर्णय वाद, बहियों में लिखतें इत्यादि विद्यमान हैं और इन पर सुसंगत प्रक्रम पर विचार किया जाएगा।

23. अपीलार्थी का प्रतिरक्षा-पक्ष यहां तक नकारात्मक प्रकृति का है कि प्रतिवादी-अपीलार्थियों ने वादी-प्रत्यर्थियों द्वारा पेश किए गए दावों का प्रत्याख्यान किया है और उनके मामले के विषय में ठोस सबूत के आधार पर जांच की गई है। किन्तु प्रतिवादियों ने यह स्वीकार करके प्रायः औचित्य दर्शित किया है कि भगवती प्रसाद सिंह, जो वादी का पिता था, उसके बारे में यह साबित कर दिया गया है कि वह गजराज सिंह का सीधा वंशज था, किन्तु उन्होंने यह स्वीकार करने से सर्वथा इंकार कर दिया है कि गजराज सिंह के पिता रामरुच सिंह का ध्रुव सिंह अथवा बंसीधर सिंह के साथ कोई संबंध था। दूसरे शब्दों में, वादियों की वंशावली जहां तक कि उनका इससे सम्बन्ध है अपीलार्थियों द्वारा रामरुच सिंह के प्रक्रम पर्यन्त स्वीकार कर ली गई है। निचले न्यायालयों ने भी मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् उस दृष्टिकोण का समर्थन किया है जो प्रतिवादियों द्वारा अपनाया गया था अर्थात् यह कि भगवती प्रसाद सिंह के बारे में यह साबित कर दिया गया कि वह गजराज सिंह का सीधा वंशज था और उसकी पंक्ति में सं० 7 पर था।

24. यह सुस्थिर है कि जहां किसी पक्षकार का पक्षकथन किसी ऐसी वंशावली पर आधारित हो जिसके अन्तर्गत सम्बन्ध विद्यमान हो, वहां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पक्षकार के लिए यह विवक्षित हो जाता है कि वह उसकी प्रत्येक कड़ी को साबित करे और यदि एक भी कड़ी अनुपस्थित पाई जाए तो विधि की दृष्टि से उस वंशावली के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह पूर्णतः साबित कर दी गई है। प्रस्तुत मामले में, हालांकि वादियों ने यह दर्शित करने के लिए कि रामरुच सिंह तथा देबी सिंह भाई-भाई थे और वे बंसीधर सिंह के पुत्र थे, मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पेश किया है, तथापि, इस स्थिति को न तो विचारण न्यायालय द्वारा और न ही न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद द्वारा, जिन्होंने कि विशेष न्यायपीठ गठित करने वाले दो अन्य न्यायमूर्तियों से विमति प्रकट की थी, तत्प्रतिकूल दृष्टिकोण अपनाया था और यह अभिनिर्धारित किया था कि वादी ने वाद-पत्र में प्रस्तुत की गई सम्पूर्ण वंशावली को पूर्णतः साबित कर दिया है। इसलिए इससे हमारा कार्य सुगम हो जाता है क्योंकि हमारे लिए यह आवश्यक नहीं रहता कि हम साक्ष्य पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श करें और गजराज सिंह के प्रक्रम पर्यन्त वादियों के सम्बन्ध को दर्शित करने के लिए विनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य के प्रति निर्देश करना है, अर्थात् यह कि क्या गजराज सिंह रामरुच सिंह का पुत्र था या नहीं और क्या रामरुच सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र तथा देबी सिंह का भाई था या नहीं।

25. साक्ष्य पर विचार करने से पूर्व हम हक के प्रश्न पर निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में से उद्धरण देना चाहेंगे। विचारण न्यायालय ने स्पष्टतया यह अभिनिर्धारित किया था कि वादी रामरुच सिंह और बंसीधर सिंह के बीच कोई कड़ी अथवा सम्बन्ध साबित करने में समर्थ नहीं हुए थे किन्तु न्यायमूर्ति जी० एन० प्रसाद और मुखर्जी से गठित न्यायपीठ का बहुमत का निर्णय इस निष्कर्ष से सहमत नहीं थे और उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया था कि वादियों द्वारा सभी कड़ियां स्पष्टतया साबित कर दी गई हैं और यह बात उनके समाधान पर्यन्त साबित हो चुकी है कि रामरुच सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र था। इस मुद्दे पर बहुमत का निष्कर्ष इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है—

"मैंने वंशावली के प्रश्न पर पक्षकारों द्वारा पेश किए गए मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार किया है और मेरी राय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में यह हक-वाद सं० 5/1961 के वादियों की ओर से इस मामले में पेश किए गए साक्ष्य द्वारा सुस्थापित हो चुका है कि वंसीधर सिंह महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह तथा भगवती प्रसाद सिंह (हक वाद सं० 5/1961 के वाद सं० 1 से 8 का पिता) का सामान्य वंशज था।"

(खण्ड 8, पृ० 247, पैरा 109)

26. किन्तु न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद ने बहुमत के निर्णय से विमति प्रकट की और विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की। इस सम्बन्ध में उनके निष्कर्ष को इस प्रकार उद्धृत किया जाता है—

"इस प्रकार वंशावली के प्रश्न पर सम्पूर्ण दस्तावेजी साक्ष्य सम्बन्धी विचार-विमर्श से यह दर्शित होता है कि ऐसी कोई दस्तावेज नहीं है जिसका कि वर्तमान अपीलार्थियों की वंशावली के अन्तर्गत दोनों करारों को साबित करने के प्रयोजन के लिए सुरक्षित रूप से अवलम्ब लिया जा सके, अर्थात् (1) यह कि बंसीधर रामरुच का पिता था और (2) रामरुच गजराज का पिता था।

(पृ० 491, पैरा 457)

... ...

इसलिए, सारांश स्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि एक भी ऐसी दस्तावेज विद्यमान नहीं है जिसका अवलम्ब विवादग्रस्त कड़ियों को साबित करने के लिए लिया जा सके, अर्थात् यह कि गजराज रामरुच का पुत्र था और रामरुच बंसीधर का पुत्र था।

(पृष्ठ 506, पैरा 480)

... ...

अब मौखिक साक्ष्य पर ध्यान देते हुए, जिस पर कि मैंने ऊपर विचार-विमर्श किया है, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि एक भी ऐसा साक्षी नहीं है जिसका अवलम्ब पूर्ववर्ती दोनों करारों को साबित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने के प्रयोजन के लिए लिया जा सके।

(पृष्ठ 506 पैरा 480)

... ...

अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि वे दो करार जिनकी बाबत कोई विश्वसनीय दस्तावेजी साक्ष्य विद्यमान नहीं है उन्हें सम्बद्ध प्रश्न के आधार पर मौखिक साक्ष्य द्वारा भी साबित नहीं किया गया है और ये दोनों करार इस प्रकार हैं कि क्या बंसीधर देबी का पिता था और ऐनी रघुनाथ का पिता था। इसका परिणाम यह है कि हक-वाद सं० 5 के वादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि बंसीधर महाराजा हरेन्द्र किशोर का पूर्वज था। मैंने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि वे इस बात को साबित करने में भी असफल रहे हैं कि बंसीधर उनका वंशज था क्योंकि वे यह साबित नहीं कर पाए कि बंसीधर रामरुच का पिता था और रामरुच गजराज का पिता था। परिणामस्वरूप, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि वाद सं० 5 के वादी अपने द्वारा प्रस्तुत की गई वंशावली को साबित करने में असफल रहे हैं और इस प्रकार वे यह साबित नहीं कर पाए कि वे महाराजा हरेन्द्र किशोर के निकटतम वारिस हैं।"

(खण्ड 8, पृ० 533, पैरा 533)

27. किन्तु बहुमत के निर्णय तथा विसम्मत निर्णय के बीच एक सामान्य तत्व विद्यमान है और वह यह है कि वादी संदेहातीत रूप से यह साबित कर पाए हैं कि गजराज सिंह के साथ उनका सम्बन्ध था। इसलिए अब यह संविवाद मात्र न्यून रूप धारण कर लेता है और इससे विवाद की परिधि संक्षिप्त हो जाती है जिस पर कि हमें विचार करना है। तथापि, यह संक्षिप्त संविवाद अपने आप में अवधारणार्थ एक महत्वशील कार्य है और हमें इस पहलू पर सावधानी और सतर्कता से विचार-विमर्श एवं ध्यानपूर्वक दृष्टिपात करना होगा क्योंकि पटना उच्च न्यायालय के दो विद्वान् न्यायमूर्तियों ने प्रतिरक्षा पक्ष के अभिवचन को अस्वीकार कर दिया था और वादियों के पक्षकथन को स्वीकार किया था।

28. मामले के विभिन्न अर्थों तथा पहलुओं को समझने के लिए और उसकी ऐतहासिक पृष्ठभूमि में दृष्टिपात करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वादगत वंशावली के उद्धरण पर निश्चित रूप से विचार किया जाए, हालांकि इसमें पुनरावृत्ति दोष है। वास्तव में स्वयं वादियों ने अपने वादपत्र के साथ कोई वंशावली संलग्न नहीं की थी, किन्तु न्यायमूर्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जी० एन० प्रसाद ने सुविधा के प्रयोजनार्थ वादपत्र में किए गए परिवर्णनों के आधार पर एक वंशावली विरचित की है जो कि यहां प्रतिपादित की जा रही है—

वाम पक्ष बंसीधर सिंह

देबी सिंह

रघुनाथ सिंह
बेंगा बाबुई (राजा ध्रुव सिंह
की पुत्री)
17/15,1762

राजा जुगल किशोर सिंह
(1784 में मृत)

राजा बीर किशोर सिंह
(1790–1816)

आनन्द किशोर
(26 मार्च, 1883 को
मृत्यु हो गई)

हरेन्द्र किशोर
(26 मार्च, 1893 को मृत्यु हो गई)
=विधवा

1. महारानी शिवरतन कुँवर
(24 मार्च, 1896 को मृत्यु हो गई)
2. महारानी जानकी कुँवर
(दिनांक 27 नवम्बर, 1954 को
मृत्यु हो गई)

महेन्द्र किशोर
(निःसंतान)

पहलवान सिंह
बसंत कुँवर

तिलक सिंह=
सोमन कुँवर

बलभद्र सिंह
=जैमेद कुँवर
(1887 मृत)

संगम कुँवर (पुत्री)
(मृत्यु निःसंतान हो गई)

बसंत सिंह
(निःसंतान)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दक्षिण पक्ष

- रामरुच (उर्फ राम रूप)
  - फरमन
    - देव नारायण
      - भोला सिंह
        - नन्द कुमार (नि:संतान)
      - दीप नारायण
        - बंसगोपाल
          - भगवती प्रसाद सिंह (29 जून, 1957 को मृत्यु हो गई)
            - राधाकृष्ण (वादी)
              - विद्या सागर (पुत्र)
            - श्री कृष्ण
              - मालती देवी (पुत्री)
            - राम कृष्ण =शैल कुमारी
              - पारवती (पुत्री)
            - शिव कृष्ण
            - अशता भुजा
              - मीरा देवी (पुत्री)
            - मैना
            - राम केस
            - भारीगीरथी
          - इलाका (नि:संतान)
        - हरीकिशोर (नि:संतान)
        - रामकुमार (नि:संतान)
        - संकताप्रसाद (नि:संतान)
  - हर कुंवर
    - शिव बालक
      - चोटक (नि:संतान)
    - पृथवी (नि:संतान)
    - मोहन सिंह
      - प्रताप नारायण
        - शिवगुलाम
          - जगदम्बा प्रसाद
            - जगत बहादुर =अनमोल कुँवर
              - नन्द प्रसाद (दत्तक)
                - रामचन्द्र (जीवित)
  - भूप नारायण (नि:संतान)
  - अवधूत सिंह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

29. पक्षकारों के अभिवचनों के परिशीलन से जो स्थिति उद्भूत होती है वह यह है कि जहां तक वाम पक्ष का सम्बन्ध है वादियों ने न तो देवी सिंह और न ही बंसीधर सिंह अथवा रामरुच सिंह के साथ सम्बन्ध साबित किया है। स्वर्गीय महाराजा (हरेन्द्र किशोर सिंह) देवी सिंह का सीधा वंशज था जो कि वंशावली के वाम पक्ष में दर्शित किया गया है, जब कि मूल वादी भगवती प्रसाद सिंह रामरुच सिंह का सीधा वंशज था जिसे वंशावली के दक्षिण पक्ष पर दर्शित किया गया है, जब कि अन्य सभी सम्बन्ध स्वीकार कर लिए गए हैं, विवाद इस बारे में सामने आता है कि क्या रामरुच सिंह किसी भी प्रकार से अर्थात् गजराज सिंह के पिता के रूप में अथवा देवी सिंह के भाई के रूप में बंसीधर से सम्बन्धित था। बहुमत के निर्णय के अलावा न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद ने भी जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, ये निष्कर्ष निकाला है कि वादियों ने यह साबित कर दिया है कि वे रामरुच सिंह का सीधा वंशज था। इस सम्बन्ध में न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद का निष्कर्ष नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

> "जहां तक इन वादियों की वंशावली का सम्बन्ध है, इस आशय का उनका दावा कि वे गजराज के वंशज हैं इस मामले में विवादग्रस्त नहीं हैं। वाद हक सं० 25 एवं बिहार राज्य के वादियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष यह साबित किया गया कि वे उस प्रक्रम पर्यन्त उनकी वंशावली पर विवाद नहीं करते हैं। विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश का निष्कर्ष भी इस आशय का है कि उन्होंने अपनी वंशावली को उस प्रक्रम पर्यन्त साबित कर दिया है। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया जाए।
>
> ... ...
>
> 378. किन्तु अन्य दस्तावेजों से यह साबित होता है कि भगवती, जो कि उन अपीलार्थियों का पिता था, गजराज का वंशज था।" (खण्ड 8, पृ० 442 और 444)

30. इस प्रकार, जिस विवाद का समाधान इस मामले में हमें करना है वह यह है कि क्या वादी एक ओर रामरुच तथा गजराज सिंह के बीच कोई सम्बन्ध स्थापित कर पाए हैं और दूसरी ओर रामरुच और बंशीधर के बीच उसे साबित कर पाए हैं। वादी केवल तब सफल हो सकते हैं यदि वे यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दर्शित करके गजराज सिंह रामरुच सिंह का पुत्र था और रामरुच बन्शीधर का पुत्र था इन सम्बन्धों को साबित कर दे।

31. पहले हम उस मुख्य दस्तावेजी साक्ष्य की परीक्षा करेंगे जिसका अवलम्ब वादियों द्वारा अपने पक्षकथन साबित करने के लिए लिया गया है। अपीलार्थियों द्वारा कुछ दस्तावेजों के सही होने के बारे में विवाद नहीं किया गया है किन्तु उनके कथनानुसार यह दस्तावेज वादियों के मामले में कोई मदद नहीं करते हैं। कुछ अन्य दस्तावेज भी हैं, जिनका असली होना और ग्राह्य माना जाना हमारे समक्ष अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले डॉ० एल० एम० सिंघवी द्वारा प्रश्नगत किया गया है।

32. प्रारम्भ में वादियों द्वारा पेश किए गए दस्तावेजों का मुख्य ताना-बाना और कोणशिला के बारे में यह प्रतीत होता है कि वह प्रदर्श-जे के रूप में, जो कि 1810 की एक पुरानी दस्तावेज है जिसकी ग्राह्यता पर अपीलार्थियों द्वारा गम्भीर रूप से विवाद किया गया था, किन्तु सभी न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह दस्तावेज ग्राह्य नहीं है। बहुमत के निर्णय के अलावा, न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद ने भी स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है प्रदर्श-जे चूंकि बही-खाते में एक प्रविष्टि है जो कि एक सार्वजनिक कार्य द्वारा अपने कर्तव्यों के निर्वहन में भली भांति की गई थी, अतः वह साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 की परिधि के अन्तर्गत आती है और इसलिए निस्संदेह ग्राह्य है। विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

> "इस प्रकार इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह एक सार्वजनिक अधिकारी की रिपोर्ट है जो कि उसके लोक तथा पद के कर्तव्यों के निर्वहन में सम्यक् रूप से दी गई थी। इस रीति से इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन ग्राह्य है।"

33. न्यायमूर्ति एम० एम० प्रसाद द्वारा निकाले गए कतिपय अनुमानों के बारे में हमें यह प्रतीत नहीं होता है कि वे सही हैं क्योंकि वे प्रदर्श-जे में किए गए परिवर्णनों द्वारा साबित नहीं होते हैं और वे वास्तविक रूप में कतिपय पदावलियों के गलत निर्वचन पर आधारित हैं जिनका उपयोग फारसी भाषा में किया गया है। ये सम्प्रेक्षण निर्णय (खण्ड 8) के पृष्ठ 483 पर विद्यमान हैं जहां कि विद्वान् न्यायाधीश ने यह कहा है कि दस्तावेज यह दर्शित करता है कि गजराज सिंह हृदय नारायण सिंह के वंशजों में से एक था और यह कि देबी सिंह और गजराज सिंह भी उसी कुटुम्ब से सम्बन्धित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विषमता इस कारण उद्भूत हो गई है क्योंकि उक्त दस्तावेज (प्रदर्श-जे) फारसी भाषा में है और इन दोनों तथ्यों से सम्बन्धित परिवर्णनों के अतिरिक्त निकट परिशीलन के आधार पर विद्वान् न्यायाधीश द्वारा जो अनुमान लगाए गए हैं वे सही प्रतीत नहीं होते हैं। हम बाद में जाकर इस मुद्दे पर विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे जबकि हम दस्तावेज के गुणागुण पर विचार करेंगे। फिलहाल हम उच्च न्यायालय के इस एक मत दृष्टिकोण से सहमत हैं कि प्रदर्श-जे ग्राह्य है। वास्तव में, स्वयं उक्त दस्तावेज यह दर्शित करता है कि यह एक सेरिश्टादार द्वारा लिखा गया था जो कि एक सरकारी अधिकारी था और इसे अति उच्च सरकारी प्राधिकारी के निर्देश पर लिखा गया था जिन्होंने कि उससे यह अपेक्षा की थी कि वह विभिन्न जमींदारों के कब्जे में जो कुछ भी है उसकी विस्तृत रूप से जांच करे और उनके कब्जे में जो कुछ भी हो उसके सम्बन्ध में सरकार को रिपोर्ट पेश करे। इसलिए, हमारी यह राय है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 की सभी शर्तों का अनुपालन कर दिया गया है और उन्हें पूरा किया जा चुका है और इस निष्कर्ष को स्वीकार करना कठिन है कि उक्त दस्तावेज धारा 35 के अधीन अथवा साक्ष्य अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अधीन ग्राह्य नहीं है। यह और बात है कि हालांकि कोई दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य हो, तो भी उसका साक्ष्यिक मूल्य नगण्य हो सकता है और मामले का मुख्य पहलू जिसे हम अत्यन्त महत्व देने की प्रस्थापना कर सकते हैं जब कि हम इस दस्तावेज के विधिक मूल्य पर विचार करेंगे।

34. किन्तु प्रश्नगत दस्तावेज के साक्ष्यिक मूल्य पर कोई टीका-टिप्पणी करने से पूर्व, यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी महत्वपूर्ण अन्तर्वस्तुओं का परिशीलन तथा अन्वेषण किया जाए और इस बात पर विचार किया जाए कि पक्षकारों द्वारा मामले पर जो विधिक प्रभाव डाला गया है वह क्या है ? यहां हम इस बात का उल्लेख कर दें कि हमारे समक्ष अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया है कि यह दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य है, किन्तु उन्होंने किंचित् विस्तृत रूप से इस बारे में बहस की है कि यह सर्वथा अग्राह्य है। यह अधिनिर्धारित करने में हमें प्रेरित करने हेतु डा० सिंघवी ने कोई विशेष जोर नहीं दिया कि दस्तावेज अग्राह्य है, किन्तु अपीलार्थियों के एक समूह की ओर से उपसंजात होने वाले श्री मिश्र ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि दस्तावेज अग्राह्य है। हमारे समक्ष जो दलील सम्बोधित की गई हैं उनको ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि हम अग्राह्यता के प्रश्न पर भी विचार करें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

35. हमारी राय में, प्रदर्श-जे पूर्ण-रूपेण साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 की परिधि के अन्तर्गत आता है जिससे यह अपेक्षा की गई है कि इससे पूर्व की कोई दस्तावेज़ इस धारा के अधीन ग्राह्य माना जाए, निम्नलिखित शर्तें पूरी की जाएं—

(1) दस्तावेज निश्चित रूप से किसी सार्वजनिक अथवा अन्य शासकीय पुस्तक, रजिस्टर अथवा अभिलेख में प्रविष्टि के स्वरूप में होनी चाहिए,

(2) यह आवश्यक है कि इसके द्वारा विवाद्य तथ्य अथवा सुसंगत तथ्य का कथन किया जाए,

(3) यह आवश्यक है कि प्रविष्टि किसी लोक सेवक द्वारा अपने शासकीय कर्तव्यों के निर्वहन में अथवा ऐसे कर्तव्यों के पालन में की गई हो, जो कि उस देश की विधि द्वारा विशेष रूप से उस प्रकार व्यादिष्ट है जिसमें कि सुसंगत प्रविष्टि रखी गई है।

36. प्रदर्श-जे के परिशीलन से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि ये ऐसी रिपोर्ट है जो कि सरकार के किसी अधिकारी द्वारा अपने शासकीय अधिकारियों के निर्वहन में सम्यक् रूप से की गई है क्योंकि दस्तावेज़ के परिवर्णनों से यह दर्शित होता है कि उसे विभिन्न भूस्वामियों के कब्जे में विद्यमान भूमियों को विनिश्चित करने का कार्य सौंपा गया था और यह कार्य उस पर व्यादिष्ट किया गया था जिससे कि इस विषय पर समुचित कदम उठाया जा सके। इस मामले में यह निर्विवाद है कि उक्त प्रदर्श में उन विभिन्न विधियों का उल्लेख नहीं किया गया जिनकी मार्फत वादी अपने हक का दावा करते हैं और इसलिए यह किसी सुसंगत तथ्य से सम्बन्धित है। यह प्रश्न कि क्या सुसंगत तथ्य साबित हुआ है या नहीं एक भिन्न विषय है, जिसका कि दस्तावेज की ग्राह्यता के साथ सर्वथा कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु जो केवल तभी महत्वशाली हो जाता है जब कि हम किसी विशिष्ट दस्तावेज़ के साक्ष्यिक मूल्य पर विचार करते हैं। यह तथ्य कि इस रिपोर्ट की मांग मिर्जापुर कलेक्टोरेट से की गई थी, मौखिक तथा दस्तावेज़ी दोनों प्रकार के साक्ष्य द्वारा सुचारु रूप से सिद्ध हो चुका है। इस प्रकार धारा 35 की सभी पूर्ववर्ती शर्तों का इस मामले में पूर्णतः अनुवर्तन कर दिया गया है।

37. किन्तु श्री मिश्र ने इस दस्तावेज़ की ग्राह्यता के बारे में दो गम्भीर आदेश उठाए हैं—एक तो उसने यह दलील दी कि यह दर्शित करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है कि दुर्गा प्रसाद जो कि प्रदर्श-जे का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेखक था, किसी भी रीति में सरकारी अधिकारी था क्योंकि इस बात को नजरंदाज नहीं किया जा सकता कि ये सम्भाव्यता थी कि वह किसी ऐसे जमींदार का प्राइवेट राजस्व अभिकर्ता था जिसका कि प्राइवेट कार्यालय भी था जहां भाटक और राजस्व की वसूली से सम्बन्धित कागज-पत्र रखे गए हैं। इसलिए दुर्गा प्रसाद का पदाभिधान विनिश्चायक रूप से यह साबित नहीं करता कि वह सरकारी अधिकारी था। दूसरे, यह दलील दी गई कि भले ही प्रदर्श-जे पर मुद्रांक लगा था, यह दर्शित करने के लिए कोई बात नहीं है कि वह मुद्रांक प्राइवेट था। हमारी राय में श्री मिश्र द्वारा जो दलील पेश की गई हैं वे सारहीन हैं और उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता। उक्त दस्तावेज प्रदर्श-जे को समूचे तौर पर परिशीलन करने से और इस बात पर और ध्यान देने से कि दुर्गा प्रसाद को जो कार्य सौंपा गया था उसका अवसर था, उसके परिवर्तन और यह तथ्य कि वह पूर्णतया सरकारी विभाग अर्थात मिर्जापुर कलेक्टोरेट में रखा गया था जहां से कि वह विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था, स्पष्टतया और विनिश्चायक रूप से यह साबित करते हैं कि उक्त रिपोर्ट किसी शासकीय सेरिष्टादार द्वारा तैयार की गई थी जिसे किसी अत्यन्त उच्च सरकारी प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया था। यहां तक कि प्रदर्श-जे की प्रारम्भिक पंक्ति से स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि दुर्गा प्रसाद एक सरकारी सेवक था जो कि संभवत: राजस्व विभाग में कार्यरत था और उससे शासकीय प्रयोजनों हेतु रिपोर्ट पेश करने के लिए कहा गया था। यह भी साबित हो चुका है दुर्गा प्रसाद ने एक व्यापक जांच की थी और अन्तत: अपनी रिपोर्ट 1813 में पेश कर दी थी। निस्संदेह यह सही है कि यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य विद्यमान नहीं है कि इस रिपोर्ट का क्या हुआ किन्तु यह हमारे समक्ष प्रश्न से सम्बन्धित नहीं है जहां तक कि इस दस्तावेज की ग्राह्यता की गति का सम्बन्ध है। वास्तव में हम यह दर्शित करेंगे कि हालांकि प्रदर्श-जे ग्राह्य है तथापि इसका उन कारणों तथा परिस्थितियों के फलस्वरूप कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं है जिन पर कि हम इसमें इसके बाद विचार-विमर्श करेंगे। इसके अलावा, उच्च न्यायालय के सभी तीनों न्यायमूर्तियों ने एक मत से यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रदर्श-जे साक्ष्य में अग्राह्य है, उसका विधिक मूल्य चाहे कुछ भी हो।

38. पी० सी० पुरुषोत्तम रेड्डियार बनाम एस० पेरूमल[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के प्रभाव पर

[1] [1972] 2 एस० सी० आर० 646.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विचार करते समय निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "अन्त में यह दलील दी गई थी कि पुलिस रिपोर्टों से जो साक्ष्य प्राप्त हुआ था, वह सुसंगत नहीं है। यह दलील भी अमान्य है। प्रश्नगत रिपोर्टें सरकारी पदधारियों द्वारा अपने शासकीय अधिकारियों के निर्वहन में तैयार की गई थीं। उन अधिकारियों को उनके वरिष्ठ पदधारियों द्वारा इस हेतु प्रतिनियुक्त किया गया था कि वे प्रश्नगत बैठकों की जांच पड़ताल करें......साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के प्रथम भाग में यह कहा गया है कि किसी सामाजिक अभिलेख में की गई कोई ऐसी प्रविष्टि जिसमें कि विवाद्य तथ्य अथवा सुसंगत तथ्य का कथन किया गया हो, और जो किसी लोक सेवक द्वारा उसके शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में तैयार की गई हो; सुसंगत साक्ष्य है। अत्यंत स्पष्ट रूप से प्रश्नगत रिपोर्टें लोक सेवक द्वारा उनके शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में तैयार की गई थीं।"

39. इस न्यायालय के ऊपर निर्दिष्ट स्पष्ट विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस मुद्दे की बाबत बड़ी संख्या में नजीरें दें।

40. ग्राह्यता के प्रदर्श-जे या उसके सही होने के बारे में हमारे समक्ष केवल एक ही मामले का पहलू प्रस्तुत होता है और हमारी राय में इससे इस अपील में अन्तर्वलित संविवादग्रस्त मुद्दों पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। जब हम यह अभिनिर्धारित कर रहे हैं कि प्रदर्श-जे ग्राह्य है तो यह नहीं समझा जाना चाहिए कि इससे यह अभिप्रेत है कि इसके सभी परिवर्णन सही हैं अथवा इसके अतिरिक्त विशिष्ट साक्ष्य मिला है मात्र इस कारण कि यह एक प्राचीन दस्तावेज है। किसी दस्तावेज की ग्राह्यता एक बात है और उसका साक्ष्यिक मूल्य सर्वथा भिन्न विषय है और इन दोनों पहलुओं को संयुक्त नहीं माना जा सकता। हो सकता है कि कोई दस्तावेज ग्राह्य तो हो, किन्तु वह विश्वासजनक न हो और न ही उसमें कोई महत्व हो और इस प्रकार इसका साक्ष्यिक मूल्य भी नगण्य हो। प्रदर्श-जे की अन्तर्वस्तुओं पर विचार करने से पूर्व, जिन पर कि उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ण रूप से विचार-विमर्श किया जा चुका है, पहले हम इस दस्तावेज के साक्ष्यिक मूल्य के बारे में टीका-टिप्पणी करना चाहेंगे।

41. मामले के इस महत्वपूर्ण पहलू के बारे में न्याय-निर्णयन करते समय यह आवश्यक हो जाता है कि यह दर्शित करने के लिए कि प्रदर्श-जे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का सर्वथा कोई साक्ष्यिक मूल्य नहीं है किंचित् तथ्यों तथा परिस्थितियों को वर्णित करना होगा। प्रारम्भ में, रिपोर्ट (प्रदर्श-जे) के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि इससे सर्वथा वह स्रोत प्रकट नहीं होता जिससे कि दुर्गा प्रसाद ने अपने तथ्यों को संगृहीत किया था अथवा उसमें प्रकट किए गए तत्वों को इकट्ठा किया था। यह दर्शित करने के लिए भी कोई तत्व नहीं है कि रिपोर्ट के रचयिता ने या तो साम्यिक अथवा पूर्ववर्ती अभिलेखों को उनमें की गई प्रविष्टियों को ध्यानपूर्वक देखा थ. जिससे कि वह इस बारे में अपना समाधान कर सकता कि जिन भूस्वामियों के कब्जे में वे भूमियां थीं जिनका कथन उक्त रिपोर्टों में किया गया है उनकी वंशावली के बारे में किए गए विभिन्न कथन सही थे। यह सही है कि एक स्थल पर रचयिता ने यह कथन किया है कि उसने उन तथ्यों को बही-खाते में लिया था किन्तु उसने सर्वथा कोई वर्णन अथवा ब्यौरे नहीं दिए हैं और यहां तक कि उसने बही-खाते और उसकी अन्तर्वस्तुओं के प्रकार अथवा उसकी प्रकृति के बारे मे भी कुछ नहीं कहा है। इसके अलावा, यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य विद्यमान नहीं है कि जब रचयिता ने सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तो उसके पश्चात् क्या हुआ और क्या उसकी रिपोर्ट के आधार पर कोई कार्यवाही की गई थी अथवा नहीं या यह मात्र फाइल कर दी गई थी और अभिलेख पर निर्जीव तथा निर्मूक रूप में अभिलिखित कर दी गई थी।

42. इस मामले का तथ्य यह है कि दुर्गा प्रसाद द्वारा अपनी रिपोर्ट में कथित तथ्यों के बारे में किसी भी स्रोत से समुचित सत्यापन नहीं किया गया था और यह कि यह राजस्व प्रविष्टि अथवा अभिलेख का भाग गठित नहीं करती थी जिसके बारे में कदाचित् किसी कार्यपालक, न्यायिक अथवा कानूनी प्राधिकारी द्वारा रिपोर्ट फाइल किए जाने के पश्चात् निर्देश किया गया हो। दूसरे शब्दों में, स्थिति के बारे में यह प्रतीत होता है कि पेश किए जाने के पश्चात् उस रिपोर्ट का परिणाम क्या हुआ यह बात रहस्यमय बनी हुई है और यह रिपोर्ट एक ऐसा वृतांत बन गया जिसे विस्मृत कर दिया गया और न उसके बारे में कुछ सुना गया, न उसका खंडन किया गया और न ही उसकी प्रशंसा की गई और यह तब तक जब कि वादी द्वारा वर्तमान वाद फाइल नही किया गया। इसलिए इन परिस्थितियों में हमारे लिए (प्रदर्श-जे) दस्तावेज का अवलम्ब लेने की कोई गुंजाइश नहीं है, भले ही यह साक्ष्य में ग्राह्य हो।

43. किन्तु प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले श्री तारकुण्डे ने यह दर्शित करने के लिए कि इस दस्तावेज की प्रामाणिकता को प्रश्नगत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं किया जा सकता इस बारे में अपनी दलील के समर्थन में अनेक नजीरों का अवलम्ब लिया। सर्वप्रथम गुलाम रसूल खां बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फ़ार इण्डिया इन काउन्सिल[1] वाले मामले में प्रिवी काउन्सेल के विनिश्चय का अवलम्ब विशेष रूप से निम्नलिखित सम्प्रेक्षणों के सम्बन्ध में लिया—

> "किसी ऐसे मामले में, जैसा कि वर्तमान मामला है, सार्वजनिक दस्तावेज़ों में किए गए कथन उन सामान्य आधारों पर कथित तथ्यों को साबित करने के लिए ग्राह्य हैं कि उनकी विरचना; शासकीय कर्तव्य के अनुक्रम में तथा ऐसे तथ्यों की बाबत जो कि सामाजिक हित के थे अथवा जिनके बारे में यह अपेक्षा थी कि उन्हें समुदाय के फायदे के लिए अभिलिखित किया जाए, की गई थी [टेलरकृत लॉ ऑफ ऐवीडेंस, 10वां संस्करण, खण्ड 1591] वस्तुत: बहुत से मामलों में अथवा लगभग सभी मामलों में ही कुछ वर्षों के बीत जाने के पश्चात् कोई ऐसा साक्ष्य देना असम्भव हो जाता है कि ऐसे दस्तावेज़ों में अन्तर्विष्ट कथन वास्तव में सही था और यही कारण है कि जनश्रुति स्वयं नियम में ऐसा अपवाद रखती है।"

43. ऊपर जो सम्प्रेक्षण उद्धृत किए गए हैं उनके बारे में यह उपधारणा निस्संदिग्ध रूप से की जा सकती है कि वे श्री तारकुण्डे की दलील का समर्थन करते हैं, किन्तु इन सम्प्रेक्षणों का भी परिशीलन उसी विशिष्ट मामले के तथ्यों के प्रकाश में करना होगा। उस मामले में इस बारे में स्पष्ट साक्ष्य विद्यमान था कि 1852 से लेकर सम्यक् रूप से सरकार द्वारा राजस्व सम्बन्धी अभिलेख बनाए रखा गया था जिससे यह दर्शित होता था कि "खैयत मोहल" पद किसी जनजाति को इंगित नहीं करता था, बल्कि वह वृत्ति मात्र था। दूसरे; मौजा शहनाह के राजस्व अभिलेख में स्पष्टत: उस कुटुम्ब की सम्पूर्ण वंशावली स्पष्ट रूप से वर्णित की गई थी जिसके बारे में विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि उक्त वंशावली साबित हो चुकी है। उस मामले में विवाद्यक प्रश्न यह था कि क्या मोहल राजपूत वंश के थे और यह विनिश्चायक रूप से निचले न्यायालय द्वारा साबित कर दिया गया था कि मोहल निस्संदेह राजपूत थे अथवा वे राजपूत वंश से सम्बन्धित रहे थे। उस मामले में जिस प्रविष्टि का अवलम्ब लिया गया था वह 1852 से लेकर जिले के बन्दोबस्त अभिलेखों में से उद्धृत किया गया था और उनका अनुसमर्थन 1882 पर्यन्त विद्यमान पश्चात्वर्ती प्रविष्टियों से होता था।

---

[1] [1925] 52 इण्डियन अपील्स 201.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रिवी काउन्सिल ने इस तथ्य का विशेष रूप से उल्लेख किया कि सन् 1852 की वर्ष शृंखला के अन्तर्गत सामाजिक अभिलेखों में से ली गई प्रकृति का साक्ष्य ऐसा होता है कि उसे आसानी से नजरंदाज नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में माननीय न्यायाधिपतियों ने निम्नलिखित सम्प्रेक्षण किए—

> "न्यायाधिपति अपील न्यायालय के इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकते कि इस प्रकार का साक्ष्य जो कि 1852 से लेकर शृंखलाबद्ध अनेक वर्षों के लिए सामाजिक अभिलेखों में से लिया गया हो और जिसे विधि की अपेक्षाओं के अनुसार अभिलिखित किया गया हो, उसे किसी वंशावली सम्बन्धी मामले में नजरंदाज किया जा सकता है।"

44. इस प्रकार हमें यह सम्पूर्णतया स्पष्ट लगता है कि उस मामले के तथ्य निश्चित रूप से भिन्न थे और वे उस दस्तावेज की प्रकृति से स्पष्टतया प्रभेद करने योग्य थे जो कि प्रदर्श-जे के रूप में यहां हमारे समक्ष है। प्रदर्श-जे के बारे में यह नहीं माना जा सकता कि वह उस प्रकार की प्रविष्टि है जोकि गुलाम रसूल खां वाले मामले में[1] की विषय-वस्तु थी। न तो पश्चात्वर्ती विनिश्चयों द्वारा और न ही किसी अन्य दस्तावेज द्वारा प्रदर्श-जे में वर्णित तथ्यों का किसी भी प्रकार से अनुसमर्थन किया गया है। प्रिवी काउन्सिल के उपर्युक्त निर्णय में वर्णित अन्य अनेक तथ्य हैं जो पूर्ण रूपेण उस मामले को वर्तमान मामले में प्रदर्श-जे से प्रभेद करते हैं। कम-से-कम यह तो स्पष्ट है, जैसा कि पहले उपदर्शित किया जा चुका है कि प्रिवी काउन्सिल वाले मामले में इस बारे में यह दर्शित करने के लिए निश्चायक साक्ष्य था कि उक्त प्रविष्टि को अनेक वर्षों तक कार्यरूप दिया जाता रहा था और यह कि निष्कासन की प्रक्रिया द्वारा अपीलार्थियों की मोहल राजपूत होने की जाति को साबित कर दिया गया था। किन्तु प्रस्तुत मामले में, प्रदर्श-जे में विद्यमान परिवर्णनों का अनुसमर्थन करने के लिए किसी भी सांम्यिक तथा पश्चात्वर्ती सरकारी अभिलेख में कोई साक्ष्य मौजूद नहीं है। इसलिए, हमारी राय में प्रत्यर्थी के काउन्सेल ने जिस विनिश्चय का अवलम्ब लिया था उससे कोई मदद नहीं मिलती है।

45. कुंवर श्याम प्रताप सिंह बनाम इटावा का कलक्टर[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का भी अवलम्ब लिया गया था जिसमें कि प्रिवी

---

[1] [1925] 52 आई० ए० 201.

[2] ए० आई० आर० 1946 पी० सी० 103.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काउन्सिल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "इसलिए यह दस्तावेज एक शासकीय दस्तावेज है जिसे किसी लोक प्राधिकारी द्वारा कानूनी कार्य के अन्वेषण में तैयार किया गया है और इस बारे में कोई विवाद नहीं कि यह साक्ष्य है, हालांकि यह उसमें कथित तथ्य का विनिश्चायक साक्ष्य नहीं है। उन स्रोतों का अभिनिश्चय करने के लिए जिन पर वंशावली आधारित थी, प्रतिपालय नियमों में से बुलाए गए दोनों साक्षियों की कोई प्रतिपरीक्षा नहीं की गई थी।"

46. हमारी राय में, यह विनिश्चय तो प्रत्यर्थियों के मामले का सर्वथा कोई समर्थन नहीं करता बल्कि यह प्रदर्श-जे जैसे दस्तावेज के महत्व अथवा उसके साक्ष्यिक मूल्य को अभिखण्डित करता है। प्रिवी काउन्सिल द्वारा जिस दस्तावेज का अवलम्ब लिया गया था वह एक ऐसी वंशावली थी जिसे प्रतिपाल्य न्यायालय के एक अधिकारी द्वारा न्यायालय में पेश किया किया गया था। दूसरे, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रतिपाल्य न्यायालय मैन्युअल यू० पी० कोर्ट ऑफ वार्ड्स ऐक्ट के अधीन तैयार किया गया था जिसमें यह उपबन्ध बनाया गया था कि सभी प्रतिपाल्य न्यायालयों में से प्रत्येक ऐसे न्यायालय के लिए एक सम्पदा पुस्तिका के लिए उपबन्ध किया गया था। उक्त प्रतिपाल्य न्यायालयों को ऐसी सम्पदा-पुस्तिका की तीन प्रतियां बनाएं रखनी थीं जिनमें से एक प्रति जिला कार्यालय में रखी जानी थी, एक उपखण्ड कार्यालय में और एक प्रतिपाल्य न्यायालय के कार्यालय में। पुस्तिका का उद्देश्य प्रतिपाल्य न्यायालयों के अधीन प्रबंधतंत्र के अन्तर्गत प्रत्येक सम्पदा के लिए एक पृथक् तथा सुस्पष्ट टिप्पण का उपबंध करना था। इसलिए यह सुव्यक्त है कि उस मामले में सम्बद्ध दस्तावेज न केवल किसी अधिकारी द्वारा बनाए रखा गया था बल्कि वह किसी कानूनी (स्टेट्यूट) के अधीन तैयार किया जाना था जिसके द्वारा कतिपय शर्तों को पूरा करने की अपेक्षा की गई थी। इसके अलावा, इस दस्तावेज को पर्याप्त कुख्याति तथा प्रसारण दिया गया था क्योंकि उक्त अभिलेख की एक प्रति जिला कार्यालय में रखी गई थी जिसका जनता के किसी भी सदस्य द्वारा निरीक्षण किया जा सकता था। किन्तु वर्तमान मामले में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रदर्श-जे के पेश किए जाने के पश्चात् यह पृष्ठ-भूमि में विलुप्त हो गया और इसके बारे में तब तक किसी ने सुना तक नहीं जबकि इसे पहली बार मिर्जापुर कलक्टोरेट में से विचारण न्यायालय में पेश किया गया। एक अन्य महत्वपूर्ण लक्षण यह था कि प्रिवी काउन्सेल इस निष्कर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर पहुंचा था कि स्वयं प्रतिपाल्य न्यायालय ने जांच करवाई थी और चूंकि वह एक कानूनी निकाय था और यह उपधारणा करना आवश्यक है कि उसने अपनी सर्वोत्तम योग्यता के अनुकूल अपना कार्य पूरा किया था। चौथे, हालांकि प्रतिपाल्य न्यायालय में से दस्तावेजों को साबित करने के लिए दो साक्षियों की परीक्षा की गई थी, उनकी सर्वथा प्रतिपरीक्षा नहीं की गई थी। प्रस्तुत मामले में, मिर्जापुर कलक्टोरेट में से किसी व्यक्ति ने इस दस्तावेज को मात्र पेश कर दिया था, किन्तु उसे न तो इसकी अन्तर्वस्तुओं के बारे में कोई ज्ञान था और न यह ही बताया था कि इस पर अमल किया गया था या नहीं। इन परिस्थितियों में, प्रदर्श-जे को किसी भी प्रकार से प्रदर्श-बी के समतुल्य नहीं माना जा सकता जोकि एक ऐसी दस्तावेज थी जिसे कि कुंवर श्याम प्रताप सिंह वाले मामले में[1] प्रिवी काउन्सिल द्वारा विचारगत किया गया था।

47. यहां हम इस बात का उल्लेख करना चाहेंगे कि यद्यपि कोई दस्तावेज ग्राह्य अथवा प्राचीन हो तथापि उसका उतना महत्व अथवा साक्ष्यिक मूल्य नहीं हो सकता जितना कि ऐसे दस्तावेज का होता है जो या तो किसी कानूनी, अध्यादेश अथवा अधिनियम के अधीन तैयार की जाती है जिसमें कि कतिपय शर्तों के पूरा किए जाने की अपेक्षा होती है। गुलाम रसूल खां वाले मामले में[2] तथा कुंवर श्याम प्रताप सिंह वाले मामले में[1] भी यही स्थिति थी।

48. मीर असदुल्लाह बनाम मुसम्मात बीबी इमामन[3] जोकि शाह खादिम हुसेन की विधवा थी, वाले मामले से हमें यह प्रतीत होता है कि वह किसी ऐसे दस्तावेज का स्पष्ट दृष्टांत है जोकि किसी सामाजिक अभिलेख में प्रविष्ट होने के नाते अत्यंत साक्ष्यिक मूल्य धारण करती है और उसका अत्यधिक महत्व होता है। इस मामले में सम्बद्ध रजिस्टर संभवतः बंगाल अधिनियमों के अधीन थे और रजिस्टरों में रजिस्ट्रीकरण सम्बन्धी कार्य उस समय किए गए थे जबकि किसी सार्वजनिक, स्पष्ट तथा कुख्यात हक के प्रकथन की कोटि में आने वाली उद्घोषणा की जा चुकी थी। ऐसी दस्तावेज के बारे में प्रिवी काउन्सिल द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह दस्तावेज अत्यंत महत्वपूर्ण है और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मत व्यक्त

[1] ए० आई० आर० 1946 पी० सी० 103.

[2] [1925] 52 इण्डियन अपील्स 201.

[3] [1836-37] 1 एम० आई० ए० 19.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया गया था—

"यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है, किन्तु इसका कारण यह नहीं कि रजिस्टर स्वयं हक के विनिश्चायक साक्ष्य की प्रकृति के ही होते हैं; (क्योंकि विनियमों में तत्विरोधी उपबन्ध किया गया है) किन्तु इस कारण कि रजिस्ट्रीकरण कार्य, जो किसी सार्वजनिक स्पष्ट और हक के कुख्यात प्रकथन की कोटि में आता है, तत्पश्चात् एक ओर उदघोषणा और दावेदार अस्वस्थ होने के सबूत द्वारा स्पष्टीकृत न किए जाने पर अथवा उसके किसी दूरस्थ देशों में होने के कारण अनुपस्थित रहने पर या फिर उसे जानकारी न होने पर दूसरी ओर किसी भी हक के विद्यमान होने सम्बन्धी प्रबल उपधारणा सम्मान रूप से कर ली जाती है।"

(अधो रेखांकन हमने किया है)

49. यह किसी ग्राह्य दस्तावेज़ का एक स्पष्ट महत्वपूर्ण दृष्टांत है जो सुचारु रूप से विश्वास का पात्र है और जिसका साक्ष्यिक मूल्य लगभग अखण्डनीय तथा दुर्गम है।

50. राजा मुट्टू रामलिंगा सेतुपती बनाम पेरियानेयागम पिल्ले[1] वाले मामले में प्रिवी काउन्सेल मद्रास प्रेजीडेन्सी के 1817 वाले विनियम सं० 7 के अधीन कार्यवाही करने वाले कलक्टरों द्वारा पेश की गई रिपोर्टों पर विचार कर रहा था और यह अभिनिर्धारित किया गया कि हो सकता है कि कलक्टरों की रिपोर्ट, जहां तक कि पक्षकारों के निजी अधिकारों पर अभिव्यक्त किए गए मतों का सम्बन्ध है, कोई विशेष न्यायिक नजीर न हो, किन्तु चूंकि रिपोर्ट कानूनी विनियम के अधीन तैयार की गई थी इसलिए वे पर्याप्त महत्वपूर्ण धारण करने की हकदार थी। प्रिवी काउन्सिल ने इन रिपोर्टों पर गम्भीर विश्वास क्यों अधिरोपित किया इसका कारण यह था कि जब इन रिपोर्टों को कलक्टोरेट को निर्दिष्ट किया गया था तो वे उनके (कलक्टर) द्वारा ग्रहण किए गए अभिसाक्ष्यों पर तथा अन्य दस्तावेजों पर आधारित थीं जिनके आधार पर कि उन्होंने अपनी रिपोर्ट पेश की थी। इसके अलावा, राजस्व बोर्ड ने कलक्टर की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया और उसका संक्षिप्त रूप तैयार किया तथा उसे यह मत व्यक्त करते हुए अनुसमर्थित करने तथा रिपोर्ट की विद्यमानता पर संदेह करने का

---

[1] [1874] 1 इण्डियन अपील्स 209.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कोई प्रश्न नहीं है, इस सम्बन्ध में प्रिवी काउन्सिल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया —

> "यह नवीन विवाद उस समय के कलक्टर श्री राउटन को निर्दिष्ट किया गया था। इसके सम्बन्ध में उनकी रिपोर्ट 7 जनवरी, 1834 वाली रिपोर्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने 1815 में कलक्टोरेट को भेजे गए अभिसाक्ष्यों तथा अन्य दस्तावेज़ों की परीक्षा की थी और उन्होंने उन तथ्यों को अभिलिखित किया है जोकि उनकी राय में उन दावों के प्रतिकूल है जोकि जमींदार की ओर से किए गए हैं। पन्डाराम वेंकटचल्लम के हक के पक्ष में भी कार्यालय में रिपोर्ट भेजी थी।
>
> ... ...
>
> किन्तु चूंकि अपने कर्त्तव्य के अनुक्रम में लोक अधिकारियों की रिपोर्ट होने के नाते तथा इस कारण कि वह कानूनी प्राधिकरण की रिपोर्ट है वे पूर्णतया विचार किए जाने की हकदार हैं जहां तक कि वे शासकीय कार्यवाहियों एवं ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में जानकारी देते हैं और इसके अलावा वहां तक भी जहां तक कि वे उनसे सम्बन्धित पक्षकारों के आचरण तथा कृत्यों से सुसंगत हैं तथा इस कारण कि सरकार की कार्यवाहियां उन पर आधारित हैं।"

51. प्रिवी काउंन्सिल के प्रति सम्यक् आदर दर्शित करते हुए, हम माननीय न्यायाधिपतियों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण तथा उनके द्वारा अधिकथित कसौटी से पूर्णतया सहमत हैं। प्रस्तुत मामलें में, प्रदर्श-जे रूपी दस्तावेज में ऐसे कोई गुण अथवा दायित्व अन्तर्विष्ट नहीं हैं जोकि कलक्टरों की उस रिपोर्ट में विद्यमान हैं जिसका अवलम्ब प्रिवी काउन्सिल द्वारा लिया गया है। जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, जबकि कलक्टर ने सम्पूर्ण जांच की थी, जोकि साक्षियों के साक्ष्य तथा अन्य दस्तावेजों पर आधारित था और उसने अपनी स्पष्ट राय अभिलिखित की थी जिसे राजस्व बोर्ड द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, प्रस्तुत मामले में प्रदर्श-जे परमात्मा द्वारा परित्यक्त दस्तावेज थी जिसमें न तो इस बात को प्रकट किया गया है कि वह स्रोत कौन-सा है जिसके आधार पर सामग्री एकत्रित की गई थी और न ही उसमें यह उपदर्शित किया गया है कि रिपोर्ट के रचयिता ने किन्हीं कथनों को अभिलिखित किया था अथवा अन्य दस्तावेज़ पर ध्यान दिया था जबकि उसने वंशावली के सही होने के बारे में अपना आधार गठित किया था

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और फिर उसने तो अपनी रिपोर्ट में उन भूस्वामियों के कब्जे में विद्यमान भूमि के प्रति भी निर्देश नहीं किया था।

52. अन्त में, जोकि प्रिवी काउन्सिल के समक्ष मामले में दस्तावेज थी, वह किसी कानूनी प्राधिकारी के अधीन रिपोर्ट नहीं समझी जा सकती थी बल्कि वह मात्र एक ऐसी रिपोर्ट थी जो कि किसी उच्च सरकारी पदाधिकारी के प्रशासनिक आदेशों के आधार पर पेश की गई थी, प्रदर्श-जे में ऐसा नहीं है। इसलिए हमारी राय में जहां कोई रिपोर्ट किसी उत्तराधिकारी अधिकारी द्वारा दी जाती है जो कि साक्षियों तथा दस्तावेजों के साक्ष्य पर आधारित है और वह कानूनी स्वरूप की है, क्योंकि वह न केवल किसी प्रशासनिक अधिकारी द्वारा दी गई है बल्कि किसी कानून के प्राधिकार के अधीन प्रस्तुत की गई है, उसका साक्ष्यिक मूल्य वस्तुतः अत्यन्त उच्च कोटि का होगा जिससे कि वह विशाल महत्व वाली रिपोर्ट होगी।

53. उपर्युक्त युक्तियों के सादृश्य के आधार पर, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि जन-श्रुति के आधार पर दिए गए साक्ष्य अथवा किसी निरक्षर व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर तैयार की गई रिपोर्ट साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन भी ग्राह्य नहीं हो सकती है। बृज मोहन सिंह बनाम प्रिय व्रत नारायण सिंह और अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "15 अक्तूबर, 1935 को सरजू सिंह के यहां पुत्र के जन्म को दर्शित करने वाली उसमें की गई प्रविष्टि अपीलार्थी की कोई मदद नहीं कर सकती जब कि यह प्रविष्टि साक्ष्य अधिनियम के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य न हो। यदि यह प्रविष्टि स्वयं चौकीदार द्वारा की गई होती तो यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन सुसंगत होता। किन्तु स्वीकृत रूप से, स्वयं चौकीदार ने यह प्रविष्टि नहीं की थी।
>
> ....
>
> किसी लोक सेवक द्वारा किसी सार्वजनिक अथवा अन्य शासकीय पुस्तक, रजिस्टर अथवा अभिलेख में की गई प्रविष्टि जिसके अन्तर्गत विवाद्यक तथ्य अथवा सुसंगत तथ्य अभिलिखित किए गए थे, सुसंगत मानी गई है, जिसका कारण यह है कि जब

[1] [1965] 3 एस० सी० आर० 861.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कोई लोक सेवक स्वयं अपने शासकीय कार्य के निर्वहन में ऐसी प्रविष्टि करता है तो इस बात की संभाव्यता की वह सही और सत्य रीति से अभिलिखित की गई है, पर्याप्त महत्वपूर्ण हो जाती है। जब स्वय लोक सेवक निरक्षर हो और उसे ऐसी प्रविष्टि करने के लिए किसी अन्य व्यक्तियों पर निर्भर करना पड़े तो वह संभाव्यता न्यूनतम रूप धारण कर लेती है।"

54. प्रस्तुत मामले में भी, दुर्गा प्रसाद को कुछ अपरिचित व्यक्तियों पर निर्भर करना पडा था, जिनके बारे में दस्तावेज में उल्लेख तक नहीं किया गया था और उसके द्वारा एकत्रित किए गए तथ्य इस रीति में किए गए थे और इसलिए यद्यपि यह ग्राह्य है इसका साक्ष्यिक मूल्य नगण्य मात्र होगा।

55. तब श्री तारकुण्डे ने र्यूपर्ट क्रॉस द्वारा लिखित अपनी पुस्तक "एवीडेंस" (साक्ष्य) (1967 : तृतीय संस्करण) पृष्ठ 408 पर व्यक्त किए गए मत का अवलम्ब लिया था जो निम्नलिखित रूप में था—

> "निस्संदेह किसी सालिसिटर के क्लर्क द्वारा की गई प्रविष्टियां जन-श्रुति नियम के अपवाद के अन्तर्गत ग्रहण की जा सकती हैं, जिनसे कि अब इस कारण विचार किया जा रहा है कि उसे अपने नियोजक के कर्त्तव्य का निर्वहन करना होता है और कुछ मामलों में अभिलिखित करने संबंधी कार्य के प्रति यह हो सकता है कि वह सालिसिटर को अपने मुवक्किल के प्रति रखना हो..........कर्त्तव्य के अनुक्रम में घोषणाओं के प्रतिग्रहण की चर्चा करते हुए सर राबर्ट फिल्लीमोर ने यह कहा था ;
>
> किसी मृत व्यक्ति द्वारा किसी दस्तावेज में की गई प्रविष्टियों को वहां ग्रहण नहीं किया जा सकता जहां कि यह स्पष्ट रूप से दर्शित किया गया हो कि उन प्रविष्टियों का सम्बन्ध किसी ऐसे कार्य अथवा कार्यों से है जो कि मृत व्यक्ति द्वारा किया गया था, न कि अन्य पक्षकारों द्वारा।"

56. किन्तु इन सम्प्रेक्षणों का परिशीलन संदर्भ के अनुसार करना होगा। उपर्युक्त सम्प्रेक्षणों का उल्लेख करते हुए क्रॉस ने इस बात पर जोर दिया कि सर रावर्ट फिल्लीमोर ने यह कहा था कि किसी मृत व्यक्ति द्वारा किसी दस्तावेज में की गई प्रविष्टियों को केवल तब ग्रहण किया जा सकता है जब कि यह स्पष्ट रूप से दर्शित किया गया हो कि उनका सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किसी ऐसे कार्य अथवा कार्यों से था जो कि मृत व्यक्ति द्वारा किया गया था न कि अन्य पक्षकारों द्वारा।

57. इस प्रकार प्रस्तुत मामले में हालांकि प्रदर्श-जे इस कारण ग्राह्य था क्योंकि उसका रचयिता अब जीवित नहीं रहा था, तथापि, इसमें ऐसी जानकारी अन्तर्विष्ट है जो प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर निर्भर करती है जिसके बारे में यह समझा जा सकता है कि वह अन्य पक्षकारों से सुनी-सुनाई थी और इसलिए ऐसी रिपोर्ट का पर्याप्त मूल्य संलग्न नहीं किया जा सकता।

58. ब्रेन बनाम प्रीसी लार्ड[1] में सी० बी० अबिंगर ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"डो बनाम टरफोर्ड वाले मामले में अटर्नी का पक्षकथन सुनिश्चित रूप से उन आधारों पर आधारित है जिन पर कि प्राईस बनाम लार्ड टॉरिंटन वाला मामला आधारित था। वहां यह साबित किया गया था कि सूचनाएं लिखित रूप में थीं और यह कि अटर्नी बाहर चला गया था और उसने प्रतिलिपि को उस समय पृष्ठांकित किया था जब कि वह वापस आया था और यह कि यह उसकी पद्धति ही थी कि वह प्रतिलिपि का पृष्ठांकन उस समय किया करता जब कि वह मूल नोटिस की तामिल कर लेता; और यह सही तौर पर अभिनिर्धारित किया गया था कि वह नोटिस के तामिल किए जाने का सबूत है। एक अन्य मामला भी है, अर्थात् नोटरी (पूल बनाम डायकस उपरोक्त) वाला मामला जहां कि समरूप प्रविष्टियों के बारे में यह मांगा गया था कि वे साक्ष्य गठित करती हैं; किन्तु कोई भी नोटरी एक लोक अधिकारी होता है और उसने यह शपथ ली हुई होती है कि वह नोटरी के रूप में अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा और विदेशों में किसी नोटरी द्वारा किए गए कार्य किसी भी न्यायालय के कार्यों के समरूप होते हैं हालांकि हमारे देश में ऐसा नहीं है।

59. दूसरी ओर, प्रदर्श-जे जैसी दस्तावेज़ों तथा साक्ष्यिक मूल्य पर टीका-टिप्पणी करते हुए मेरिया मंगिनी स्टरला और अन्य बनाम फिलिप्पो टोमास्सो मेट्टिया, फ्रेंसिया आगस्टस केप्पेल स्टीवेंसन और अन्य[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित करते हुए लार्ड ब्लैकबर्न ने निम्नलिखित मत व्यक्त

---

[1] (1835) 152 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1016.

[2] [1880] ए० सी० 623.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया था—

"मेरे विचार में किसी मैनर की पुस्तक में की गई प्रविष्टि इन अर्थों में सामाजिक प्रविष्टि होती है कि इसका सम्बन्ध उन सभी व्यक्तियों से होता है जो कि जमींदारी से हितबद्ध होते हैं.......... किन्तु यह आवश्यक है कि यह सामाजिक दस्तावेज हो और यह किसी लोक अधिकारी द्वारा तैयार किया जाना चाहिए। जहां तक मैं समझता हूं वहां किसी लोक दस्तावेज से यह अभिप्रेत है कि वह जनता के प्रयोजन के लिए बनाया गया होता है जहां उसका प्रयोग किया जाता है और उसके प्रति निर्देश किए जाने की सामर्थ्य होती है।"

60. एक पश्चात्वर्ती विनिश्चय मरसर बनाम डेनी[1] में ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाया गया था जिसमें निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था—

"यह दर्शित करने के लिए कोई आधार नहीं है कि उनमें से कोई भी दस्तावेज समसाम्यिक रूप से किसी संव्यवहार के किए जाने अथवा निष्पादित किए जाने के साथ की गई थी जब कि मृत व्यक्ति का यह कर्त्तव्य था कि वह उसे अभिलिखित करता। इस विषय में कोई साक्ष्य मौजूद नहीं है कि उसके अनुदेश क्या थे अथवा उन अनुदेशों का साक्ष्य में पेश की गई दस्तावेज के साथ उसका सम्बन्ध था और न ही वहां उस ज्ञान अथवा जानकारी का स्रोत का उल्लेख था जिसके आधार पर कि रिपोर्ट अथवा प्राक्कलन की अन्तर्वस्तुएं आधारित थीं........

ये रिपोर्टें किसी भी भांति क्षेत्रीय पुस्तिका में की गई प्रविष्टियों के समतुल्य नहीं हैं जो कि किसी मृत सर्वेक्षक द्वारा अन्वेषण के प्रयोजन के लिए की गई थीं जहां कि वह वृत्ति की दृष्टि से नियोजित था और जिसके आधार पर इस न्यायालय ने मैलोर बनाम वाल्मसले, (1905) 2 चांसरी 164 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि वह ग्राह्य था।"

61. यद्यपि हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते कि प्रदर्श-जे प्रस्तुत मामले में साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अभिव्यक्त उपबन्धों की

[1] [1905] 2 चान्सरी 538.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृष्टि से अग्राह्य है तथापि ऊपर उद्धृत किए गए प्रिवी काउन्सिल के सम्प्रेक्षण प्रदर्श-जे को लागू होने वाले साक्ष्यिक मूल्य अथवा महत्व को प्रत्यक्ष तथा समुचित रूप से दस्तावेज के रचयिता द्वारा किसी ऐसे प्रकटीकरण के अभाव में लागू होंगे जिसका सम्बन्ध उस स्रोत अथवा ऐसी सामग्री से हो जिसके आधार पर उसने अपनी रिपोर्ट में तथ्यों का वर्णन किया था। यदि यह उपधारणा कर ली जाए कि ऊपर उद्धृत किया गया मामला ऐसा है कि उसके द्वारा आत्यंतिक दृष्टिकोण अपनाया गया है जहां तक कि यह मान लिया गया है कि रिपोर्ट सर्वथा इस कारण ग्राह्य नहीं थी, [?] इंग्लैण्ड में विधिक स्थिति इस प्रकार की है, तो यह तथ्य बराबर बना रहता है कि जहां तक किसी दस्तावेज के साक्ष्यिक मूल्य का सम्बन्ध है, वह उस दशा में न्यूनतम रह जाता है जहां कि ऐसा कोई साक्ष्य न हो जिससे कि साक्ष्य में पेश की गई दस्तावेज के रचयिता को दिए गए अनुदेशों की प्रकृति को प्रकट न किया गया हो अथवा उस स्रोत या ज्ञान या जानकारी को प्रकट न किया गया हो; जिसके आधार पर रिपोर्ट लिखी गई है। यह एक गम्भीर विधि सम्बन्धी त्रुटि है जिससे कि प्रदर्श-जे ग्रस्त है और केवल उसी आधार पर उसे विश्वसनीय अथवा निर्भर करने योग्य दस्तावेज नहीं माना जा सकता है।

62. ऊपर जो कारण बतलाए गए हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए हम प्रदर्श-जे की ग्राह्यता तथा साक्ष्यिक मूल्य से सम्बन्धित विधि की बाबत निम्नलिखित निष्कर्षों पर आते हैं—

(1) यह कि प्रदर्श-जे साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन स्पष्ट रूप से ग्राह्य है और हम इस मुद्दे पर उच्च न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हैं।

(2) ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्गा प्रसाद सेरिश्टादार ने सन् 1810 में प्रदर्श-जे को लिखना प्रारम्भ किया था और उसे 1813 में पूर्ण रूप दे दिया था।

(3) यह कि प्रदर्श-जे में कुछ ऐसे व्यक्तियों के नामों का वर्णन किया गया है जो कि वादियों के मतानुसार उनके पूर्वज थे, किन्तु इस दस्तावेज का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करने पर यह बात सर्वथा स्पष्ट नहीं होती कि भला रामरुच सिंह को बंशीधर सिंह अथवा देबी सिंह के साथ कैसे जोड़ा गया है।

(4) यह कि प्रदर्श-जे का साक्ष्यिक मूल्य सर्वथा महत्वहीन है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और वाद की वंशावली को साबित करने में उससे हमें कोई मदद नहीं मिलती है।

(5) यह कि प्रदर्श-जे मिर्जापुर कलक्टर के अभिलेख का भाग था और उसे वहां से तामील किया गया था।

(6) प्रदर्श-जे के परिशीलन मात्र से यह प्रतीत होगा कि दुर्गा प्रसाद को यह निदेश दिया गया था कि वह उन व्यक्तियों की बाबत जांच प्रारम्भ करे जिनके कब्जे में सुसंगत समय पर भूमियां वस्तुतः मौजूद थीं और उसके कर्त्तव्य का यह भाग नहीं था कि वह उन भूमियों को धारण करने वाले व्यक्तियों के हक के सम्बन्ध में कोई जांच प्रारम्भ करता और न ही उसने ऐसा करने का कोई प्रयत्न ही किया था। रिपोर्ट का शीर्षक (प्रदर्श-जे) स्वयं यह दर्शित करता है कि यह ताल्लुका मझवा के कब्जे में की भूमि की बाबत एक रिपोर्ट है।

63. यदि प्रदर्श-जे को विचारगत किया भी जाता है, तो भी इससे वादी प्रत्यर्थियों का हक साबित नहीं होगा बल्कि केवल उन भूमियों का कब्जा स्थापित होगा। उनके कतिपय पूर्वजों द्वारा किया गया था। दूसरे शब्दों में ये दस्तावेज उस वाद के अन्तर्गत हक सम्बन्धी साक्ष्य गठित नहीं करेंगे जिनमें से वर्तमान अपीलें उद्भूत हुई हैं और जिनका सम्बन्ध मुख्य रूप से हक के प्रश्न से है, न कि कब्जे के प्रश्न से।

64. अब हम प्रदर्श-जे की अन्तर्वस्तुओं पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श यह दर्शित करने के लिए प्रारम्भ करेंगे कि वह कहां तक सुसंगत अथवा महत्वपूर्ण है। मूल प्रदर्श फारसी भाषा में है और इसे एक पृथक् 'बस्ते' में रखा गया था। अपील की सुनवाई के दौरान ही उक्त प्रदर्श का पुनः अनुवाद कराया गया और उक्त अनूदित अंग्रेजी रूपान्तर पेपर-बुक के खण्ड 7 में पृष्ठ 25-33 के अन्तर्गत है। रोमन लिपि में दस्तावेज खण्ड 5 में पृष्ठ 120-123 पर विद्यमान है जो कि हमारी राय में मूल प्रदर्श का सही प्रतिपादन है, हालांकि उसमें छोटी-मोटी विसंगतियां यत्र-तत्र पाई जाती हैं।

65. चूंकि पक्षकारों के काउन्सेल उक्त प्रदर्श में दुर्गा प्रसाद द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्तियों में से किंचित् अभिव्यक्तियों के अर्थ तथा तात्पर्य के बारे में सहमत नहीं हो पाए, इसलिए हमने यह विनिश्चय किया कि अनूदित रूपान्तर के साथ-साथ मूल दस्तावेज का भी विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाए, क्योंकि हममें से एक (न्या० फजल अली) को फारसी भाषा का पर्याप्त ज्ञान है और इसलिए हमें प्रदर्श में प्रयुक्त अभिव्यक्तियों के विवादग्रस्त अर्थों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सही भाव का परिशीलन करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। तथापि, हमने सर्वाधिक विश्वसनीय फारसी-अंग्रेजी शब्दकोश (स्टीनगॅस-1947-तृतीय संस्करण) को तथा अन्य मानक शब्दकोशों को देख लिया है और तब हम दस्तावेज़ में प्रयुक्त पदों और अभिव्यक्तियों के अर्थों के सही अभिप्राय पर पहुंचे हैं।

66. कोका-कोला कम्पनी ऑफ कैनेडा बनाम पैप्सी-कोला कम्पनी आफ कैनेडा लि०[1] वाले मामले में यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि न केवल किसी शब्द के अर्थ बल्कि उसके सामान्य उपयोग को अभिनिश्चित करने के लिए सदैव शब्दकोशों के प्रति निदेश किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में माननीय न्यायाधिपतियों ने निम्नलिखित सम्प्रेक्षण किए :—

> "जब कि कदाचित् ऐसे प्रश्न हो सकते हैं कि कोई न्यायालय किस हद तक शब्दकोषों का हवाला देकर जानकारी प्राप्त कर सकता है, तथापि, माननीय न्यायाधिपतियों का यह विचार है कि इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि न केवल किसी शब्द के अर्थ को अभिनिश्चित करने के लिए बल्कि उस उपयोग को अभिनिश्चित करने के लिए भी जिससे कि किसी शब्द द्वारा इंगित कोई वस्तु (यदि वह वस्तु हो) तो उसका सामान्य रूप से ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है।"

67. फारसी भाषा, जिसे कि हममें से एक जानते हैं, के ज्ञान के अलावा हमने यह उपलब्धि प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

68. प्रारम्भ में दस्तावेज़ स्पष्ट रूप से यह वर्णित करता है कि दुर्गा प्रसाद को किसने यह आदेश दिया था कि वह आवश्यक जानकारी प्राप्त करे और यह तथ्य किंचित महत्व इस कारण ग्रहण कर लेता है कि पक्षकारों के बीच इस बारे में गम्भीर संविवाद रहा है कि क्या दुर्गा प्रसाद को किसी प्राइवेट भूस्वामी द्वारा अथवा किसी उच्च सरकारी अधिकारी द्वारा जांच करने का कार्य सौंपा गया था। उच्च न्यायालय ने दस्तावेज़ के प्रारम्भिक प्रभाव का परिशीलन करने पर यह निष्कर्ष निकाला था कि प्रारम्भिक प्रभाव में उपयुक्त पद और वह रीति जिसमें कि उसने उस वाद को जिसे रिपोर्ट पेश करने के लिए निदेश किया था यह दर्शित करता है कि

---

[1] ए० आई० आर० 1942 पी० सी० 40.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह निश्चित रूप से सरकार का कोई उच्च अधिकारी था। हालांकि उक्त अधिकारी के सही पदनाम को उक्त प्रदर्श में प्रकट नहीं किया गया है। मूल पाठ एवं अनूदित रूपान्तरण का परिशीलन करने पर हम यह समझते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा जो दृष्टिकोण अपनाया गया है उससे हमारी सहमति है। दुर्गा प्रसाद द्वारा वस्तुत: प्रयोग में लाए गए शब्दों का जब अंग्रेजी में अनुवाद किया जाता है तो वह ऐसे है :—

"बेनीफिसेंट मास्टर, जेनरस, काईंड एण्ड जज आफ दि टाइम, मे युअर प्रास्पेरिटी बी एवर लास्टिंग।"

69. हमने मूल फारसी शब्दों का परिशीलन किया है और यह देखा है कि उनका अंग्रेजी भाषा में सही अनुवाद किया गया है। इन परिस्थितियों में हम अपीलार्थी द्वारा इस बारे में अपनाए गए आक्षेप को अभिखण्डित करते हैं कि दस्तावेज़ एक प्राइवेट दस्तावेज़ थी अथवा रिपोर्ट ऐसी रिपोर्ट थी जो कि किसी प्राइवेट से रिश्टादार द्वारा तैयार की गई थी।

70. पदधारी को सम्बोधित करने के पश्चात् दस्तावेज का प्रारम्भ 'हजूर' शब्द का प्रयोग करते हुए किया गया है और इस शब्द के आधार पर यह दलील दी गई थी कि इससे यह दर्शित होता है कि उक्त व्यक्ति कोई बहुत बड़ा पदधारी होगा जिसने कि जांच का आदेश दिया था। यहां "हजूर" शब्द के प्रयोग से कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता क्योंकि यह मात्र ऐसा पद है जिसका उपयोग शालीनता के नाते या तो वयोवृद्ध व्यक्तियों को अथवा उच्च पदधारियों को सम्बोधित करके किया जाता है किन्तु यहां तात्विक शब्द "हजूरेवाला" है। "हजूर" के साथ "वाला" शब्द की प्रकृति दस्तावेज के प्रारम्भिक भाग में वर्णित पदधारी सर्वनाम के रूप में है अर्थात् वह उच्च पदधारी स्वामी है या यों कहें कि वह पूर्वोक्त उच्च अधिकारी है।

71. रिपोर्ट के प्रारम्भिक भाग पर विचार करने के पश्चात् अब हम उसमें उल्लिखित मुख्य मुद्दों पर विचार करेंगे—

(1) इस बात का उल्लेख किया गया है कि दुर्गा प्रसाद को उच्च पदाधिकारी का आदेश तारीख 26 अक्तूबर, 1810 को प्राप्त हो गया था जिसमें रिपोर्ट के माननीय लेखक को सेरिश्टादार के कार्यालय में रखे दस्तावेजों का परिशीलन करने के लिए और इस बारे में विस्तृत विवरण देने के लिए निदेश दिया गया था कि पहलवान सिंह के पूर्वाधिकारियों में से पूर्व में कौन-कौन व्यक्ति, किस वर्ष में और किस रीति में उपर्युक्त तालुका पर काबिज़ रहे थे (उपर्युक्त—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तालुका से मौजा मझवा स्पष्ट रूप से आशयित है जो दस्तावेज के पूर्ववर्ती भाग से प्रतीत होगा) रोमन लिपि में प्रयुक्त शब्द 'बुजुर्गान पहलवान सिंह' हैं। 'बुजुर्गान' शब्द के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में बहुत गम्भीर विवाद हुआ था। वादियों-प्रत्यर्थियों के अनुसार बुजुर्गान शब्द से पूर्वज अभिप्रेत है जबकि अपीलार्थी के अनुसार उससे पहलवान सिंह के कुटुम्ब के अग्रज अभिप्रेत हैं। अन्य शब्दों में अपीलार्थी के अनुसार दुर्गा प्रसाद को जो कुछ करना अपेक्षित था वह यह मालूम करना नहीं था कि पहलवान सिंह के पूर्वज काबिज थे, किन्तु पहलवान सिंह के अग्रज मालूम करना था। अग्रज शब्द बहुत ही व्यापक शब्द है। हमारी राय में अपीलार्थियों द्वारा बुजुर्गान शब्द का किया गया निर्वचन सही प्रतीत होता है। प्रारम्भ में बुजुर्गान शब्द के यथार्थ अर्थ में पूर्वाधिकारी अभिप्रेत नहीं है। फारसी या उर्दू भाषा में 'बुजुर्गान' शब्द का आशय केवल अग्रज व्यक्ति दर्शाना ही अभिप्रेत है।

72. स्टेनगैस कृत परसियन-इंगलिश डिक्शनरी (तृतीय संस्करण, 1947) के पृष्ठ 183 में "बुजुर्ग" शब्द को अन्य अर्थों के बीच "वयोवृद्ध, वयस्क और अग्रज" के रूप में परिभाषित किया गया है। "बुजुर्गान" शब्द केवल बुजुर्ग शब्द का बहुवचन है। फोरबेस कृत हिन्दुस्तानी-इंगलिश डिक्शनरी (1848) में "बुजुर्ग" को अग्रज के रूप में परिभाषित किया गया है (पृष्ठ 77) इसी प्रकार "बुजुर्गान" को अग्रज के रूप में परिभाषित किया गया है (पृष्ठ 89)। इसलिए प्रस्तुत मामले में संदर्भ के प्रति निर्देश से बुजुर्गान शब्द के वास्तविक अर्थ से न केवल पहलवान सिंह के पूर्वाधिकारी या पूर्वज ही अभिप्रेत होंगे किन्तु पहलवान सिंह के ऐसे अग्रज भी अभिप्रेत होंगे जो उससे प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो सकते हैं अथवा नहीं भी हो सकते हैं। यद्यपि वे पहलवान सिंह के अग्रज होने से या तो पास के या दूर के नातेदार भी हो सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर विचार किया कि "बुजुर्गान" शब्द से वास्तविक रूप में केवल पूर्वज अभिप्रेत है तथा दुर्गा प्रसाद को सौंपे गए कामों में से एक काम पहलवान सिंह के ऐसे पूर्वजों के नाम मालूम करना था जिनके कब्जे में तालुका था। ऊपर समझाए गए अनुसार बुजुर्गान शब्द के वास्तविक अर्थ को, जिसे शब्दकोश के अर्थ का समर्थन प्राप्त है, देखते हुए हम प्रत्यर्थियों के काउन्सेल द्वारा सुझाए गए अनुसार बुजुर्गान शब्द के अर्थ से सहमत होने में असमर्थ हैं और हम रोमन लिपि में बुजुर्गान शब्द का अनुवाद केवल "पूर्वाधिकारी" रूप में स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

73. स्वयं दस्तावेज में एक और अन्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य है जो पूर्ण रूप से हमारे द्वारा अपनाए गए मत का समर्थन करता है। इसके कुछ समय पश्चात् दुर्गा प्रसाद ने गौतम जनजाति के वारिसों का वर्णन करते समय वारशा शब्द का प्रयोग किया है (वारशा शब्द को सही रूप में वारस लिखा जाना चाहिए) जिससे वंशज अथवा वारिस अभिप्रेत हैं (देखिए फोरबेस कृत हिन्दुस्तानी-इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ 134, स्टेनगैस कृत डिक्शनरी पृष्ठ 1449 और नोलस्टन कृत इंगलिश-परसियन डिक्शनरी, पृष्ठ 141)। फारसी में "पूर्वज" शब्द का अनुवाद मोरिस या जद या बाप-दादा (पिता और पितामह) होगा (देखिए बोलस्टन कृत डिक्शनरी पृष्ठ 12 और फोरबे कृत डिक्शनरी पृष्ठ 10) और यदि सबसे बड़ा पूर्वज अभिप्रेत है तो उसका "मोरिस-ए-आला" के रूप में अनुवाद किया जाएगा। दुर्गा प्रसाद ने, जो फारसी भाषा से अच्छी तरह से परिचित था जानबूझकर पहलवान सिंह के अग्रजों को निर्दिष्ट करते समय "मोरिस" या "मोरिस-ए-आला" या "जद" शब्द का प्रयोग नहीं किया है जो बिना किसी त्रुटि के उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा से स्पष्ट है, किन्तु उसने "बुजुर्गान" शब्द का प्रयोग किया है जिसका बहुत ही व्यापक आशय है और केवल यह सुझाव देता है कि उसे पहलवान सिंह के अग्रजों का, चाहे उसी कुटुम्ब के हों अथवा नहीं, कब्जा मालूम करने के लिए निदेश दिया गया था। यदि लेखक का आशय सीधे पहलवान सिंह के पूर्वजों को ही निर्दिष्ट करने का था तो उसने "मोरिसेन पहलवान सिंह" (पहलवान सिंह के पूर्वज) शब्द का प्रयोग किया होता जो कि उसने जानबूझकर प्रयोग नहीं किया है।

74. हमारा मत "मोरिस" और "मौरुस" शब्दों के शब्दकोश अर्थ द्वारा समर्थित है। स्टेनगैस द्वारा "मौरुस" शब्द का अर्थ उसके शब्दकोश के पृष्ठ 1343 में आनुवंशिक, पैतृक उत्तराधिकार के कब्जे के रूप में वर्णित किया गया है। "मोरिस" शब्द "मौरुस" का आधार है जिससे आनुवंशिक कब्जा अभिप्रेत है और सीधे पूर्वज अभिप्रेत है। इसी प्रकार शब्दों को भी विभिन्न शब्दकोशों में निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है—

"मिनजुमला—सब में से; में से (स्टेनगैस शब्दकोश का पृष्ठ 1323)

मिनजुमला—सब मिलकर (फोरबेस कृत शब्दकोश का पृष्ठ 510)

औलाद—वंशज (स्टेनगैस शब्दकोश पृष्ठ 121)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वंशज—औलाद (फोरबेस कृत शब्दकोश, इंगलिश भाग, पृष्ठ 72)

इसका तर्कसंगत परिणाम यह है कि भूतपूर्व न्यायाधीश की रोमन लिपि में "बुजुर्गान" शब्द का "पूर्वाधिकारी" के रूप में अनुवाद बिल्कुल सही नहीं है।

75. "बुजुर्गान" शब्द की समस्या पर विचार करने के पश्चात् अब हम इस रिपोर्ट के प्राथमिक भाग में दुर्गा प्रसाद द्वारा प्रयुक्त शब्दों के अर्थ पर विचार करेंगे। दस्तावेज़ में उच्च अधिकारियों को सम्बोधित करते समय इस बात का उल्लेख किया गया है कि पहले तालुका मझवा परगना कासवर की जमींदारी गौतम जन-जाति के वंशजों के कब्जे में थी और आगे इस बात पर भी बल दिया गया है कि गौतम जन-जाति के वंशजों के कब्जे में वह क्रमशः उनके कुटुम्ब के सदस्यों के हिस्से के अनुसार आनुवंशिक रूप से कब्जे में थी। इन अंग्रेजी शब्दों का अनुवाद यद्यपि सारतः सही था, फिर भी उसके विस्तार की आवश्यकता है। प्रथमतः दुर्गा प्रसाद ने "औलाद-ए-गौतम" शब्द का प्रयोग किया है। "औलाद" से वारिस या सीधे वंशज अभिप्रेत हैं। यह "बिरादरी" शब्द का अनुसरण है। वास्तविक अर्थ जो वह संसूचित करना चाहता था वह यह था कि मौजा की भूमियां गौतम जन-जाति के वंशजों और उसकी बिरादरी के कब्जे में थीं। प्रत्यर्थियों द्वारा "बिरादरी" शब्द का गौतम जन-जाति के कुटुम्ब के सदस्यों के अर्थ में निर्वचन करना चाहा गया था तथापि यह बात पूर्णतया असत्य है। फारसी भाषा में बिरादरी शब्द का आशय केवल कुटुम्ब शब्द से अधिक व्यापक है। स्टेनगैस कृत डिक्शनरी के पृष्ठ 167 में बिरादरी शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।

76. "बिरादरी"—बिरादराना सम्बन्ध, भाई-चारा सम्बन्ध, नातेदारी। मोहम्मद मुस्तफा खां कृत उर्दू-हिन्दी डिक्शनरी में "बिरादरी" शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

"बिरादरी"—एक जन-जाति, एक जन-जाति का व्यक्ति, बिरादराना सम्बन्ध

(पृष्ठ 422, 1959 संस्करण)।

बिरादराना—नातेदारी, बिरादराना सम्बन्ध

(फोरबेसकृत हिन्दुस्तानी-इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ 71)

77. वह केवल बिरादरी को ही दर्शित करता है और केवल किसी विशेष व्यक्ति के कुटुम्ब के सदस्य से अभिप्रेत नहीं है। किन्तु व्यापक और सामान्य अर्थ में ऐसे व्यक्तियों के समूह की सम्पूर्ण बिरादरी या जाति, या जन-जाति अभिप्रेत है जिसमें से कुछ एक कुटुम्ब का गठन कर सकते हैं अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं भी कर सकते हैं। इस प्रकार "बिरादरी" शब्द के प्रयोग से किसी भी प्रकार का बल दिखाकर के यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि मौजा मझवा गौतम जन-जाति के कुटुम्ब के सीधे वंशजों और सदस्यों के ही केवल कब्जे में था। दुर्गा प्रसाद ने विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों को उपदर्शित करने के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग करने के लिए सावधानी बरती है। कुछ स्थानों पर उसने—"औलाद" शब्द का प्रयोग किया है जहां वह सीधे वंशजों या वारिसों को दर्शाना चाहता था। अन्य स्थानों पर उसने "बुजुर्गान" शब्द का प्रयोग किया है जहां वह केवल ऐसे अग्रजों को उपदर्शित करना चाहता था जो सम्बन्धित व्यक्ति के नातेदार हो सकते हैं अथवा नहीं भी हो सकते। कभी-कभी उसने न केवल कुटुम्ब को दर्शाने के लिए किन्तु जाति या जन-जाति की सम्पूर्ण बिरादरी या सदस्यों को दर्शाने के लिए बिरादरी शब्द का प्रयोग किया है।

78. रिपोर्ट के प्रथम पैरा के अन्तिम लाइनों में निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया गया है—

> "ब बिरादरी हृदय नारायण सिंह दर कब्जा मुसम्मियान देवी सिंह व बरिसाल सिंह व राम हित सिंह व गजराज साही जमींदार बूद्स
>
> (अन्तिम शब्द "बूद" होना चाहिए "बूद्स" नहीं)।

79. इससे प्रत्यर्थियों तथा उच्च न्यायालय ने यह अनुमान लगाया प्रतीत होता है कि देवी सिंह, बरिसाल सिंह, रामहित सिंह और गजराज साही हृदय नारायण सिंह के सीधे वंशज या उसके कुटुम्ब के सदस्य थे। यह अनुमान दुर्गा प्रसाद द्वारा प्रयुक्त शब्दों द्वारा नहीं निकाला गया है। शब्द केवल हृदय नारायण सिंह का असंदिग्ध कब्जा उपदर्शित करते हैं तथा व्यक्ति, जिनका अन्य व्यक्तियों के साथ कब्जा था ऊपर उल्लिखित चार व्यक्ति थे जो केवल हृदय नारायण सिंह की बिरादरी के थे। यह प्रश्न कि वे सब सीधे वंशज या नातेदार थे दुर्गाप्रसाद द्वारा प्रयुक्त शब्दों के निर्वचन पर उद्भूत नहीं होता है जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है। उसने आगे यह भी कहा है कि उसे परगना कासवार के लेखा कागजातों से उपर्युक्त तथ्य मालूम हुए थे।

80. हम इस बात का उल्लेख कर सकते हैं कि न्या० एम०एम० प्रसाद भी दुर्गा प्रसाद द्वारा प्रयुक्त भाषा अर्थात "बिरादरी" शब्द के प्रयोग द्वारा यह उपदर्शित करने के लिए प्रभावित हो गए थे कि हृदय नारायण सिंह और अन्य चार व्यक्ति उसी कुटुम्ब के थे जो उसका आशय नहीं था न ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उनके द्वारा प्रयुक्त वाक्य का अर्थ था। इसलिए इस सीमा तक हम न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद से सहमत नहीं हैं। इस तथ्य को स्मरण में रखना महत्वपूर्ण हो सकता है क्योंकि "देवी सिंह और उपर्युक्त चार व्यक्तियों" वाक्य का प्रयोग यह दलील देने के लिए कई बार किया गया है कि चार व्यक्ति अर्थात देवी सिंह, बरिसाल सिंह, रामहित सिंह, गजराज साही हृदय नारायण सिंह या देवी सिंह के वंशज थे जो कि उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया मिथ्या निष्कर्ष है और दस्तावेज में प्रयुक्त शब्दों द्वारा समर्थित नहीं है। (प्रदर्श-जे)

81. "मिनजुमला" शब्द से केवल सब में से या उनमें से अभिप्रेत है। उससे 'सहित" अभिप्रेत नहीं है। रिपोर्ट के द्वितीय पैरा के अन्तिम भाग के शब्द "पहलवानसिंह—हम-अज-औलाद, देवी सिंह मिनजुमला चहारकशा मजकूरान अस्त-फकत" यह उपदर्शित नहीं करते हैं कि पहलवान सिंह के साथ उसके वंशजों अर्थात देवी सिंह बारीसाल सिंह, रामहित सिंह और गजराज साही का कब्जा था। "वंशज" शब्द हृदय नारायण सिंह की बिरादरी को उपदर्शित करते हुए ऊपर उद्धृत प्रथम पैरा में किए गए कथन के तर्कसंगत परिणाम के रूप में केवल रामहित सिंह को ही अहित करते हैं न कि अन्य तीन व्यक्तियों को।

82. इसके पश्चात दस्तावेज में विभिन्न व्यक्तियों के साथ किए गए बंदोबस्त के ब्यौरे दिए गए हैं और रोमन-लिपि में पृष्ठ 121, जिल्द 7 का सुसंगत भाग इस प्रकार है—

> "खालिस पुर। मौजा असली, बक्त बंदोबस्त पट्टा जमींदारी बेनाम अवधान सिंह के अज औलाद हृदय नारायण सिंह मजकूर अस्त शुदा बूद..........।"

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

> "खालिस पुर। मौजा असली, बंदोबस्त के समय जमींदारी पट्टा अवधान सिंह के पक्ष में निष्पादित किया गया था जो कि उपर्युक्त हृदय नारायण सिंह के वंशजों में से एक है।"

(जिल्द 7, पृष्ठ 27)

83. हम यहां पर उस महत्वपूर्ण मुद्दे को उपदर्शित कर सकते हैं जो उपर्युक्त परिवर्णन से उद्भूत हुआ है। दुर्गा प्रसाद ने अवधान सिंह का वर्णन करते समय—"बिरादरी" या "बुजुर्गान" शब्द का प्रयोग नहीं किया है किन्तु केवल यह कहा है कि वह हृदय नारायण सिंह का वंशज था। यदि यह बात

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सही थी कि बारीसाल सिंह, देवी सिंह और गजराज सिंह हृदय नारायण सिंह के सीधे वंशज थे तो उसने बिना किसी संदेह के उनके नाम भी उल्लिखित किए होते।

84. अगले कालम में दुर्गा प्रसाद इतिहास का उल्लेख करता है और इस बात का वर्णन करता है कि बंदोबस्त के समय जमींदारी पट्टा गुरुदत्त सिंह के पक्ष में निष्पादित किया गया था जो देवी सिंह के वंशजों में से एक था। यहां पर भी उसने स्पष्ट रूप से देवी सिंह के वंशज होने के रूप में गुरुदत्त सिंह की नातेदारी को उपदर्शित किया है जो बहुत ही महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि वादपत्र की वंशावली में हृदय नारायण सिंह के वारिसों का वर्णन करते समय आत्यन्तिक रूप से न तो अवधान सिंह और न ही गुरुदत्त सिंह का कोई निर्देश है। वास्तव में गुरुदत्त सिंह नाम के किसी भी व्यक्ति का वादपत्र की वंशावली में देवी सिंह के वारिस के रूप में उल्लेख किया गया है।

85. अगले प्रश्न पर इस बात का उल्लेख किया गया था कि बाबू दीप नारायण सिंह ने सरकारी राजस्व के बकायों के संदाय के लिए सरकार द्वारा की गई नीलामी में गांव क्रय किया था। दीप नारायण सिंह ने हजूर (सरकार के उच्च अधिकारी) से जमींदारी सनद प्राप्त की थी और पट्टा रामबक्श सिंह के पक्ष में निष्पादित किया गया था जो हृदय नारायण सिंह के वंशजों में से एक है और अभी भी जीवित है। इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि रामबक्शसिंह को भी हृदय नारायण सिंह की वंशावली में बिल्कुल भी उल्लिखित नहीं किया गया है और न ही उसका हृदय नारायण सिंह के कुटुम्ब के सदस्य अथवा वंशज होने के रूप में प्रदर्श-जे के पूर्ववर्ती भाग में उल्लिखित किया गया है।

86. इसलिए बिना किसी संदेह के यह बात सिद्ध हो गई है कि बारीसाल सिंह, देवी सिंह और गजराज सिंह हृदय नारायण सिंह के सीधे वंशज नहीं थे अन्यथा दुर्गा प्रसाद ने भी हृदय नाराण सिंह के वारिसों अथवा सीधे वंशजों के रूप में इन व्यक्तियों का भी उल्लेख किया होता जैसा कि उसने अवधान सिंह, रामबक्श सिंह और रामहित सिंह के मामले में किया है। इसके अतिरिक्त दस्तावेज (अंग्रेजी अनुवाद) के बाएं पार्श्व टिप्पण पर पृष्ठ 28 पर स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया गया है कि जमींदारी पट्टा भगत सिंह, गुलामी सिंह, हरजन सिंह, जो हृदय नारायण सिंह के वंशज थे, के पक्ष में निष्पादित किया गया था। इस प्रकार दुर्गा प्रसाद द्वारा अपनाई गई स्कीम से यह बात स्पष्ट है कि जब कभी वह किसी विशेष व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों को किसी पूर्वज के वारिसों अथवा सीधे वंशजों के रूप में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दर्शाना चाहता था तो वह स्पष्ट रूप से ऐसा कह सकता था। रिपोर्ट के इस भाग को साधारण रूप से पढ़ने पर यह बात स्पष्ट होगी कि हृदय नारायण सिंह के वंशज, भगत सिंह, गुलामी सिंह, अवधान सिंह, रामबक्श सिंह, रामहित सिंह और हरजन सिंह थे। अन्य व्यक्ति अर्थात् देवी सिंह, बारीसाल सिंह, और गजराज साही (गजराज सिंह) को हृदय नारायण सिंह के वंशजों के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया है और इसलिए यह बात मामले के इस पहलू पर वादी-प्रत्यर्थियों के पक्षकथन को पूर्ण रूप से खंडित करती है और उनकी वंशावली के बारे में गम्भीर रूप से शंका उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त यह परिस्थिति हमारे इस निर्वचन का भी समर्थन करती है कि रिपोर्ट के प्रथम भाग में प्रयुक्त "उपर्युक्त चार व्यक्तियों में से" शब्द इस बात को दर्शाते हैं कि केवल रामहित सिंह ही न कि अन्य व्यक्ति हृदय नारायण सिंह के वंशज थे। वे उसी बिरादरी के हो सकते हैं।

87. प्रदर्श-जे के पृष्ठ 28, जिल्द 7 के अंग्रेजी अनुवाद के दाहिने कालम में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि पहलवान सिंह देवी सिंह के वंशजों में से एक है। यह कथन वादियों के पक्षकथन की इस सीमा तक पुष्टि करता है कि पहलवान सिंह देवी सिंह के वंशजों में से एक था और यह दर्शाता है कि देवी सिंह से सम्बन्धित वादियों की वंशावली का एक भाग सही है।

88. दरायनी, सेमरी और रामचन्द्रपुर गांवों को निर्दिष्ट करते हुए इस बात का उल्लेख किया गया है कि जमींदारी पट्टा मोहन सिंह को दिया गया था जो गजराज साही का वंशज था। इस बात पर भी ध्यान दिया जा सकता है कि यहां पर प्रयुक्त शब्द "औलाद" है जिससे सीधे वंशज की प्रकृति के रूप में पुत्र या नाती अभिप्रेत है। यह प्रविष्टि गजराज साही की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालती है और आत्यन्तिक रूप से ऐसा कोई निर्देश या बात नहीं है जो यह दर्शाती हो कि गजराज साही देवी सिंह या हृदय नारायण सिंह से किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित था। रामरछ सिंह के बारे में भी कोई निर्देश नहीं है। चूंकि वादियों ने गजराज सिंह के सीधे वंशज होने का दावा किया है। यह परिस्थिति पूर्ण रूप से उनके इस पक्षकथन को मिथ्या सिद्ध करती है कि गजराज सिंह या रामरछ सिंह किसी भी प्रकार से देवी सिंह या हृदय नारायण सिंह के वंशजों से सम्बन्धित थे।

89. अगली मद ग्राम बादापुर, कनक सराय से सम्बन्धित है जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि हरदर्शन सिंह को, जो रामहित सिंह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का वंशज था, पट्टा दिया गया है और वह उसके कब्जे में है । गडोई ग्राम के बारे में इस बात का उल्लेख किया गया है कि बन्दोबस्त के समय जमींदारी पट्टा ननकू सिंह और जीतू सिंह को दिया गया था जो हृदय नारायण सिंह के वंशज थे । ननकू सिंह की मृत्यु हो गई और उसके पश्चात दीपनारायण सिंह को, जो ननकू सिंह का पुत्र था, आधे हिस्से के सम्बन्ध में उसके स्वयं के नाम में पट्टा मिला ।

90. अगली मद में इस बात का उल्लेख है कि बन्दोबस्त के समय जमींदारी पट्टा गुरुदत्त सिंह, जो देवी सिंह के वंशजों में से एक था, के पक्ष में निष्पादित किया गया था और उसने कोई नवीन पट्टा प्राप्त किए बिना किराए का संदाय किया था । आगे इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि ग्राम सबेशर के सम्बन्ध में जमींदारी पट्टा हृदय नारायण सिंह के वंशज (औलाद) रामहित सिंह को दिया गया था तथा रामहित सिंह की मृत्यु पर पट्टा ननकू सिंह को दिया गया था ।

91. कुछ प्रविष्टियों के सिवाय, जिनके बारे में हम इसमें इसके पश्चात् निर्देश करेंगे, चम्पारन के जिलों में विभिन्न ग्रामों से सम्बन्धित विभिन्न जमींदारों द्वारा किए गए बन्दोबस्त के ब्यौरों को पढ़ना हमारे लिए आवश्यक नहीं है ।

92. जलालपुर, जो मदनगोपाल और किश्वर दास ठाठर के तालुका में था, के सम्बन्ध में जमींदारी पट्टा परमान सिंह के पक्ष में निष्पादित किया गया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् जालिम सिंह और रामहित सिंह, फरमान सिंह के पुत्रों ने अपने नामों से पट्टा प्राप्त किया था तथा वे उसके कब्जे में थे । यहां पर भी गजराज साही या गजराज सिंह के देवीसिंह के नातेदार होने के बारे में कोई निर्देश नहीं है और न ही रामरछ सिंह का नाम बिल्कुल भी उल्लिखित नहीं किया गया है । पुनः चाकलोहनी और कल्याणपुर के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख किया गया है कि गुरुदत्त सिंह के वंशजों में से एक थे और हरदर्शन सिंह रामहित सिंह के वंशज थे ।

93. जहां तक तालुका ठाठरा और अन्य ग्रामों का सम्बन्ध है, वे राजा बलवंत सिंह को बेचे गए थे तथा गजराज सिंह नामक व्यक्ति ने राजा बलवंत सिंह की ओर से सरकार को किराए का संदाय किया था । गजराज सिंह के वंशज को अथवा उसके हृदय नारायण सिंह या देवी सिंह से सम्बन्ध को बिल्कुल भी नहीं दर्शाया गया है । इसलिए यह प्रतीत होता है कि गजराज सिंह अवश्य ही ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसका देवी सिंह के कुटम्ब से कोई सम्बन्ध नहीं था ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

94. ये सब तथ्य हैं जो दस्तावेज़ (प्रदर्श-जे) से मालूम किए जा सकते हैं। इसलिए रिपोर्ट को अन्तर्वस्तु को संक्षिप्त करने पर स्थिति निम्नानुसार है—

(1) विभिन्न ग्रामों का जमींदारी पट्टा हृदय नारायण सिंह और उसके वंशजों को दिया गया था।

(2) न तो देवी सिंह और न ही गजराज सिंह और न ही वंशीधर सिंह को हृदय नारायण सिंह के सीधे वंशज होने के रूप में उल्लिखित किया गया है।

(3) पहलवान सिंह निस्संदेह देवी सिंह का सीधा वंशज है किन्तु वह समस्या को हल नहीं करता है। तत्पश्चात् पहलवान सिंह के वंशजों को विभिन्न पट्टे दिए गए थे।

(4) रिपोर्ट (प्रदर्श-जे) पूर्ण रूप से विभिन्न पट्टाधारकों के कब्जे के प्रश्न तक ही सीमित है तथा इन पट्टाधारकों में से किसी के भी हक को उपदर्शित करने के लिए एक भी शब्द नहीं है। जैसा कि पहले उल्लिखित किया जा चुका है, दुर्गा प्रसाद को हक के प्रश्न के सम्बन्ध में जांच प्रारंभ करने के लिए नहीं कहा गया था और इसलिए उसकी रिपोर्ट पूर्णतया और मुख्यतया कब्जे के प्रश्न से सम्बन्धित है और वह उस हक से किसी भी रीति से सम्बन्धित नहीं है। तथापि यदि हक के प्रश्न पर प्रसंगवश उसके द्वारा कोई मत व्यक्त किए गए हैं (यद्यपि जहां तक हमने रिपोर्ट देखी है ऐसा कोई मत व्यक्त नहीं किया गया है) तो वे किसी भी प्रकार से उपयोगी नहीं होंगे चाहे वे पक्षकारों के हक को साबित करने के लिए भी हों।

(5) रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट तथ्यों के सम्बन्ध में, यद्यपि दुर्गाप्रसाद ने यह कहा है कि उसे वे तथ्य तुमार अर्थात् एक लेखा पुस्तक से मिले हैं, उसने लेखा पुस्तक के कोई ब्यौरे नहीं दिए हैं और न ही उसने रिपोर्ट के साथ लेखा पुस्तक का कोई सुसंगत भाग संलग्न किया है और न ही उसने इस बात का उल्लेख किया है कि लेखा पुस्तक का लेखक कौन था तथा कब और किन परिस्थितियों में लेखा पुस्तकें तैयार की गई थीं।

95. इसलिए इन परिस्थितियों में हम इस बारे में पूर्णतया अंधकार में रखे गए हैं कि उन लेखा पुस्तकों में कौन सी बातें अन्तर्विष्ट थीं तथा क्या उनमें उल्लिखित तथ्यों की उचित रूप से जांच और सत्यापन किया गया था अथवा नहीं। यद्यपि यह तथ्य भी कि लेखापाल कौन था अथवा किसकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिरक्षा में लेखा पुस्तकें रहीं थीं, दुर्गा प्रसाद की रिपोर्ट से स्पष्ट रूप से गायब है। ये अतिरिक्त परिस्थितियां हैं जो प्रदर्श-जे के प्रमाणक महत्व को पूर्ण रूप से कम करती हैं।

96. श्री तारकुण्डे ने हमें इस बात का विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया है कि प्रदर्श-जे न केवल ग्राह्य है किन्तु मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा सारतः पुष्टि किया हुआ भी है। यह बात सही है कि वादी की वंशावली के एक भाग को, जिसके बारे में अपीलार्थियों द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया है, प्रदर्श-जे से पुष्टि मिलती है, किन्तु इससे हमें कोई मार्गदर्शन नहीं मिलता है। हमारा ध्यान रिपोर्ट में उल्लिखित ऐसे किसी तथ्य की ओर आकृष्ट नहीं किया गया है जो देवी सिंह, रामरछ सिंह और गजराज सिंह के बीच सीधी नातेदारी या सम्बन्ध दर्शाता हो और जब तक ऐसा नहीं किया जाता, संपुष्टि यदि कोई हो, किसी भी प्रकार से उपयोगी नहीं है। तथापि हम इस तर्क पर विचार करेंगे चाहे उसका जो भी महत्व हो।

97. प्रथमतः यह दलील दी गई थी कि प्रतिवादी साक्षी 13, 21, 33, 34, और 35 का मौखिक साक्ष्य प्रदर्श-जे में की गई प्रविष्टियों की पुष्टि करता है। इस प्रक्रम पर हम केवल मौखिक साक्ष्य का ही संक्षेप में निर्देश करेंगे जहां तक कि उसके बारे में प्रदर्श-जे की संपुष्टि करने का अभिकथन किया गया है और हम दस्तावेजी साक्ष्य पर चर्चा पूर्ण करने के पश्चात् मौखिक साक्ष्य पर विचार करेंगे।

98. श्री तारकुण्डे द्वारा यह दलील दी गई थी, जिसे हमें दिए गए तर्कों की समरी में भी दोहराया गया है, ऊपर निर्दिष्ट प्रतिरक्षा साक्षी प्रदर्श-जे में किए गए कुछ कथनों का भी समर्थन करते हैं। यह दलील दी गई है कि उक्त प्रदर्श ऐसे चार जमींदारों में से बारीसाल सिंह और रामहित सिंह के नामों का उल्लेख करता है जिनके कब्जे में तालुका मझवा था। मौखिक साक्ष्य यह दर्शाता है कि बारीसाल सिंह राम फकीर का पुत्र था। राम फकीर बंसीधर सिंह के पुत्रों में से एक पुत्र था तथा बंसीधर सिंह के वंशज बारीसाल सहित उसके तीन पुत्रों की मृत्यु से लुप्त हो गए थे। प्रथमतः यह तर्क बारीसाल सिंह, जिसे हृदय नारायण सिंह के सीधे वंशज होने के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया है, के सम्बन्ध में प्रदर्श-जे में प्रयुक्त शब्दों के गलत निर्वचन पर आधारित है। यह संभव है कि बारीसाल सिंह दूर का संबंधी रहा हो अथवा हृदय नारायण सिंह की बिरादरी का सदस्य हो किन्तु दस्तावेज बिल्कुल भी इस बात का उल्लेख नहीं करता है कि, वह हृदय नारायण सिंह का सीधा वंशज था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

99. इस प्रश्न से सम्बन्धित मौखिक साक्ष्य पर विचार करते समय प्रतिवादी साक्षी सं० 33 भैरो प्रसाद, जो 85-36 वर्ष का है और मिर्जापुर का निवासी है, के कथन का अवलम्ब लिया गया था। जिल्द 1 के पृष्ठ 436 पर साक्षी ने यह कहा है कि राम फकीर के तीन पुत्र बारीसाल, राम सिंह और रतन सिंह थे तथा फकीर सिंह के सब तीनों पुत्रों की निःसंतान मृत्यु हुई थी। वंशावली के बारे में उसने यह कहा है कि उसे बंसीधर सिंह की वंशावली और उसके वंशजों के बारे में नन्दकुमार सिंह और जुगल बहादुर सिंह और उसके स्वयं के दादा से मालूम हुआ था। तथापि इस बारे में दर्शाने के लिए कोई बात नहीं है कि वंशावली के बारे में ज्ञान होने के लिए उसके पास कौन से विशेष साधन हैं। द्वितीयतः साक्षी ने कहीं भी यह बात नहीं कही है कि बारीसाल सिंह और अन्य हृदय नारायण सिंह से सीधे सम्बन्धित थे क्योंकि वह वादी के दावे का मुख्य स्रोत और महत्वपूर्ण आधार प्रतीत होता है। इस साक्षी का सन् 1879 में जन्म हुआ था जबकि रिपोर्ट वर्ष 1810 की है। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि दुर्गा प्रसाद की याददाश्त बहुत ही ताजी होगी तथा उसे वादी की वंशावली साबित करने के लिए और विशेषतया पहलवान सिंह के, जिसके बारे में उसे रिपोर्ट देनी थी, अग्रजों के नाम साबित करने के लिए इस साक्षी की बजाय अच्छा ज्ञान होगा।

100. इसके अतिरिक्त हम यह मालूम करने में असमर्थ हैं कि किस प्रकार से इस साक्षी का साक्ष्य वादियों का समर्थन करता है जो केवल यह कहते हैं कि राम फकीर के तीन पुत्र थे अर्थात् बारीसाल, राम सिंह और रतन सिंह। वह अपने साक्ष्य में कहीं भी यह बात नहीं कहता है कि या तो राम फकीर अथवा उसके पुत्र हृदय नारायण सिंह से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित थे। एक अन्य स्थान पर साक्षी यह कहता है कि बंसीधर सिंह के तीन पुत्र थे अर्थात् रामरछ सिंह, राम फकीर और देवी सिंह तथा गजराज सिंह देवी सिंह का पुत्र था। रिपोर्ट (प्रदर्श-जे) में आत्यंतिक रूप से न तो बंसीधर सिंह का और न ही राम फकीर सिंह या रामरछ सिंह के बारे में कोई निर्देश है। एकमात्र व्यक्ति, जिसका रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, देवी सिंह है, जो हृदय नारायण सिंह का वंशज होना कहा जाता है। सम्पूर्ण रिपोर्ट में बंसीधर सिंह के बारे में कोई निर्देश नहीं है। इस प्रकार उसके द्वारा दी गई वंशावली का प्रारम्भिक प्रक्रम रिपोर्ट (प्रदर्श-जे) पेश करने के पश्चात् से है। इसलिए हम यह मालूम करने में असमर्थ हैं कि किस प्रकार से इस साक्षी का साक्ष्य किसी भी प्रकार से प्रदर्श-जे की संपुष्टि करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

101. इसके पश्चात् प्रतिवादी साक्षी 34, नगेन्द्र कुमार के जिल्द 1 के पृष्ठ 446 पर दिए गए साक्ष्य का अवलम्ब लिया गया था। इस साक्षी की आयु 60 वर्ष है और उसने गौतम गोत्र के होने का दावा किया है। उसने यह कहा है कि उसके कुटुम्ब के सदस्यों के वंशज बाबू हंसराज सिंह थे, जिनके दो पुत्र हरीनारायण सिंह और हृदय नारायण सिंह थे। हरीनारायण का शाह मुकुंद नामक पुत्र था और उसने मुकुंद के वंशज होने का दावा किया है जो कई पीढ़ी बाद का है। उसने आगे इस बात का भी उल्लेख किया है कि बंसीधर सिंह हरीनारायण सिंह का पुत्र था। यदि उसके द्वारा बताए गए तथ्य सही हैं तो हमें प्रदर्श-जे में उसके वंशज के नाम का स्पष्ट रूप से उल्लेख होने की आशा करनी चाहिए। दूसरी ओर, यद्यपि दुर्गाप्रसाद को स्पष्टरूप से पहलवान सिंह के अग्रजों के ब्यौरे ढूंढने का काम सौंपा गया था, फिर भी उसने इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि हृदय नारायण सिंह हंसराज सिंह का पुत्र था। वास्तव में हंसराज सिंह का बिल्कुल भी कोई निर्देश नहीं है। आगे उसने यह भी कहा है कि बंसीधर सिंह के तीन पुत्र अर्थात् राम फकीर सिंह, रामरछ सिंह और देवी सिंह थे। यह बात ऊपर चर्चा किए गए अनुसार प्रदर्श-जे में किए गए कथनों द्वारा पूर्ण रूप से खंडित की गई है। संपूर्ण रिपोर्ट में या तो रामरछ सिंह या बंसीधर सिंह का हृदय नारायण सिंह से सम्बन्ध होने के बारे में आत्यंतिक रूप से कोई निर्देश नहीं हैं। इसलिए इन कारणों से हम वादी के काउन्सेल के इस तर्क से सहमत होने में असमर्थ हैं कि प्रदर्श-जे इस साक्षी के साक्ष्य द्वारा किसी भी प्रकार से संतुष्ट है।

102. इसके पश्चात् प्रतिवादी साक्षी 35 देवी सिंह के साक्ष्य का अवलम्ब लिया गया था जिसने मौजा मझवा के निवासी होने का दावा किया और यह कहा है कि उसके वंशज मझवा निवासी थे तथा विक्रम साह उससे 10 डिग्री (पीढ़ी) ऊपर था। उसके साक्ष्य के अनुसार विक्रम साह और बंसीधर सिंह सगे भाई थे और हृदय नारायण सिंह के पुत्र थे। हृदय नारायण सिंह हंसराज सिंह का पुत्र था। उसका साक्ष्य रिपोर्ट में किए गए कथनों द्वारा पूर्ण रूप से मिथ्या हो जाता है चूंकि रिपोर्ट में न तो हंसराज सिंह और न ही बंसीधर सिंह के कोई निर्देश है। हमें प्रदर्श-जे की अन्तर्वस्तु द्वारा यह दर्शाया गया है कि दुर्गाप्रसाद ने स्पष्ट रूप से हृदय नारायण सिंह के सीधे वंशजों के रूप में उसके पुत्रों के नाम उल्लिखित किए हैं। यदि बंसीधर सिंह और विक्रम शाह वास्तव में हृदय नारायण सिंह के पुत्र थे तो वह इस महत्वपूर्ण तथ्य को भूल नहीं सकता था जोंकि उसकी रिपोर्ट के प्रयोजन के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। इसके आगे साक्षी ने यह भी कहा है कि बंसीधर सिंह के तीन पुत्र अर्थात् देवी सिंह, रामरछ सिंह और राम फकीर थे। जबकि प्रदर्श "जे" में देवी सिंह के बारे में स्पष्ट रूप से निर्देश है और रामरछ सिंह या राम फकीर के बारे में आत्यंतिक रूप से कोई निर्देश नहीं है। इसलिए प्रदर्श "जे" की अन्तर्वस्तु की संपुष्टि करने के अतिरिक्त वह निश्चित रूप से उसका खंडन करता है। इसके आगे इस साक्षी के बारे में टिप्पणियां की जाएंगी जब हम पक्षकारों के मौखिक साक्ष्य के बारे में चर्चा करेंगे। वर्तमान में यह दर्शाना पर्याप्त है कि प्रत्यर्थियों के काउन्सेल का यह तर्क पूर्ण रूप से कायम रहने योग्य नहीं है कि प्रदर्श "जे" इस साक्षी के साक्ष्य द्वारा समर्थित है।

103. इसके पश्चात् प्रतिवादी साक्षी 36 महादेव सिंह के साक्ष्य का अवलम्ब लिया गया था जो हितबद्ध साक्षी प्रतीत होता है क्योंकि उसके साक्ष्य के अनुसार उसके वंशज और वादी के पिता भगवती प्रसाद सिंह के वंशज का उसके वंशजों के समय से बाबू भगवती प्रसाद सिंह के कुटुम्ब के साथ घर आने-जाने और खाने-पीने का सम्बन्ध था। उसने यह भी कहा है कि भगवती प्रसाद सिंह और हरेन्द्र किशोर सिंह एक ही वंशज के थे। वंशज बाबू बंसीधर सिंह थे। बाबू बंसीधर सिंह के तीन पुत्र थे। रामरछ, राम फकीर सिंह और देवी सिंह तथा गजराज सिंह, राम फकीर सिंह का पुत्र था। उसका साक्ष्य प्रत्यक्षतः रिपोर्ट (प्रदर्श "जे") का समर्थन नहीं करता है। पूर्ववर्ती साक्षियों के मामले के समान ही यहां पर भी हमें न तो बंसीधर सिंह और न ही रामरछ सिंह के बारे में कोई निर्देश मिलता है। इस बात पर विश्वास करना असंभव है कि यदि रामरछ सिंह या गजराज सिंह हृदय नारायण सिंह के कुटुम्ब से सम्बन्धित थे तो यह तथ्य रिपोर्ट में उल्लिखित नहीं किया गया होगा। इसके अतिरिक्त न तो बंसीधर सिंह और न ही यह तथ्य कि देवी सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र था, रिपोर्ट में उल्लिखित किए गए हैं और यह महत्वपूर्ण तथ्य दुर्गा प्रसाद द्वारा अपने विस्तृत और स्पष्ट रिपोर्ट में भुलाया नहीं जा सकता। हम इन बातों के वास्तविक गुणागुण पर बाद में विचार करेंगे, किन्तु जो कुछ भी हमने कहा है, वह यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि अन्य साक्षियों अर्थात् प्रतिवादी साक्षी 33, 34 और 35 के समान यह साक्षी भी दुर्गा प्रसाद की रिपोर्ट की संपुष्टि नहीं करता है। इस साक्षी के कथन में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह यह कहता है कि रामहित सिंह माधव सिंह का पुत्र था जो कि हृदय नारायण सिंह के पुत्रों में से एक था। तथापि यह बात दुर्गा प्रसाद की रिपोर्ट द्वारा खंडनीय है जिसमें

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस बात का उल्लेख किया गया है कि रामहित सिंह हृदय नारायण सिंह का पुत्र था न कि माधव सिंह का जिसके नाम का बिल्कुल भी उल्लेख नहीं किया गया है। यह तथ्य रिपोर्ट (प्रदर्श "जे") को अभिखंडित करने के अतिरिक्त उक्त रिपोर्ट (प्रदर्श 'जे") का भी सीधे रूप से खंडन करता है।

104. दस्तावेजी साक्ष्य के बारे में, जो प्रदर्श "जे" की पुष्टि करता है इस प्रक्रम पर यह मत व्यक्त कर सकते हैं कि यदि प्रदर्श "जे" का प्रमाणक महत्व शून्य है तो वह मुश्किल से ही किसी अन्य दस्तावेज की पुष्टि कर सकता है और इस बात की उसके गुणागुण के आधार पर ही परीक्षा करनी होगी।

105. प्रदर्श "एल" के बारे में भी निर्देश किया गया था जो बनारस के राजा उदीत नारायण सिंह द्वारा किया गया था जिसके द्वारा सब जमींदारों लंबरदारों और अन्य राजस्व अधिकारियों तथा तालुका मझवा, परगना कासवर, बनारस के सीरकारों से उसके अधिकारों का सत्यापन करने के लिए इस आशय का किया गया था कि संपूर्ण तालुका बाबू पहलवान सिंह के खास पूर्वज के जमींदारी हित का था और वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसके स्वामित्व और कब्जे में रहा था। यह दस्तावेज तारीख 14 मार्च, 1818 का है जोकि दुर्गा प्रसाद द्वारा पेश किए गए प्रदर्श "जे" के पांच वर्ष पश्चात् का है। इस दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न के अतिरिक्त वह केवल बनारस के राजा की जमींदारी का इतिहास बतलाता है और इस तथ्य का भी उल्लेख करता है कि यह जमींदारी आवेदक के पिता द्वारा 59,864 रुपये 11 आने की राशि से क्रय की गई थी। प्रथमतः एकमात्र प्रयोजन, जिसके लिए वादियों द्वारा समर्थन लेना चाहा गया है, यह है कि पहलवान सिंह के बारे में उदीत नारायण सिंह के वंशज होने का निर्देश है। चूंकि दुर्गा प्रसाद को पहलवान सिंह के वंशजों के नाम मालूम करने के लिए कहा गया था; इसलिए इस दस्तावेज को प्रदर्श "जे" में किए गए इस कथन की पुष्टि करने वाला कहा गया है। तथापि यह बात पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है कि यह पिटीशन भेजने के लिए कौन सा अवसर था और उसका परिणाम क्या था जिसका उसे सामना करना पड़ा था। वह केवल उदीत नारायण सिंह का कथन है तथा दस्तावेज यह नहीं दर्शाता है कि वह उसके वैयक्तिक ज्ञान अथवा पिटीशनर द्वारा उसके वंशजों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है। तथापि चूंकि इस बारे में कोई विवाद नहीं किया गया है कि पहलवान सिंह निस्संदेह रूप से स्वर्गीय महाराजा का वंशज था और उसका नाम वादियों की वंशावली में था, तो भी इस कथन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि प्रतिवादी ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न केवल पहलवान सिंह तक ही किन्तु उससे बड़े अग्रजों की वंशावली के बारे में भी कोई विवाद नहीं किया है। जैसे कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है, मुख्य बात गजराज सिंह, रामरछ सिंह और देवी सिंह के बीच सम्बन्ध स्थापित करना है। इस प्रक्रम पर यह दस्तावेज कोई भी प्रकाश नहीं डालता और इसलिए इसका कोई महत्व नहीं है। किसी भी व्यक्ति ने कभी भी इस बारे में कोई विवाद नहीं किया है कि पहलवान सिंह देवी सिंह का पौत्र नहीं था। अन्यथा भी प्रदर्श "एल" के दस्तावेज के ग्रहण किए जाने के बारे में संदेह है।

106. आगे यह भी दलील दी गई है कि यह दस्तावेज प्रदर्श "जे" के इस कथन का समर्थन करता है कि देवी सिंह, बारीसाल सिंह, रामहित सिंह और गजराज सिंह हृदय नारायण सिंह के कुटुम्ब के सदस्य थे। तथापि इस तर्क को बहुत ही गलत रूप से समझा गया है और वह प्रदर्श "जे" के गलत निर्वचन पर आधारित है जो कहीं भी यह बात नहीं दर्शाता है कि देवी सिंह, बारीसाल सिंह, रामहित सिंह और गजराज सिंह हृदय नारायण सिंह के कुटुम्ब के सदस्य थे। उसमें जो कुछ भी कहा गया है वह यह है कि वे देवी सिंह की बिरादरी के थे। वास्तव में, जैसाकि हमने दर्शाया है बारीसाल सिंह और रामहित सिंह तथा देवी सिंह के पूर्वाधिकारियों के संबंध में प्रदर्श "जे" में उल्लिखित नाम वादियों के पक्षकथन से बिल्कुल ही भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त यह उपधारणा करने पर भी कि उपर्युक्त चार व्यक्ति हृदय नारायण सिंह के कुटम्ब के सदस्य थे, प्रदर्श "जे" यह बात नहीं दर्शाता है कि किस रीति में रामरछ और देवी सिंह सम्बन्धित थे अथवा गजराज सिंह रामरछ सिंह का पुत्र था।

107. इसके पश्चात् प्रदर्श डी० डी० (38) की जिल्द 4 के पृष्ठ 215 का अवलम्ब लिया गया था जो देव नारायण सिंह और मोहन सिंह के बीच वाद में तारीख 25 अप्रैल, 1801 को दिया गया निर्णय है। वादियों के अनुसार मोहन सिंह और नारायण सिंह बरायनी ग्राम की जमींदारी के सम्बन्ध में गजराज सिंह के नाती थे। प्रदर्श "जे" में इस तथ्य के उल्लेख किए जाने का अवलम्ब लिया गया था कि बरायनी ग्राम का बन्दोबस्त मोहन सिंह के पक्ष में किया गया था जो गजराज सिंह या गजराज साही का वंशज था। यह उपधारणा करने पर कि यह कथन सही है वह वादियों के मामले को और अग्रसर नहीं करता है क्योंकि प्रदर्श "जे" बिल्कुल भी यह नहीं दर्शाता है कि गजराज सिंह रामरछ सिंह का पुत्र था और बंसीधर सिंह का नाती या देवी सिंह का भतीजा था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

108. इसके पश्चात् उसी जिल्द के पृष्ठ 72 पर प्रदर्श "एफ०(1)"—जिल्द 3 और पृष्ठ 105 पर प्रदर्श "जी" और जिल्द 4 के पृष्ठ 5 पर प्रदर्श डी० डी०(44) का निर्देश किया गया था जो तालुका मझवा में देवी सिंह द्वारा समय-समय पर दिए गए विभिन्न अनुदानों के उदाहरण हैं। ये दस्तावेज केवल प्रदर्श "जे" में किए गए इस कथन की संपुष्टि करते हैं कि देवी सिंह तालुका मझवा के कब्जे वाले जमींदारों में से एक था। इस तथ्य के बारे में भी विवाद नहीं किया गया है और संपुष्टि होने या न होने पर भी अपीलार्थियों ने या तो इस कथन की प्रमाणिकता को या इस तथ्य को कि देवी सिंह तालुका मझवा का जमींदार था, चुनौती नहीं दी है।

109. जिल्द 5 के पृष्ठ 215 पर के प्रदर्श एन० एन० (6) में बनारस गजट के उद्धरण हैं। इस गजट में केवल बारीसाल सिंह के उन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति होने के बारे में कहा गया है जो वर्ष 1719 में अथवा उसके लगभग मारुई की लड़ाई में मारा गया था। इस बारे में कोई विवाद नहीं किया गया है कि बारीसाल सिंह निस्संदेह ग्राम के जमींदारों में से एक जमींदार था और उसके कब्जे में ग्राम मझवा था, किन्तु केवल यही तथ्य वादियों और गजराज सिंह के बीच अथवा गजराज सिंह और देवी सिंह के बीच किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को साबित नहीं करता है।

110. एक अन्य दस्तावेज प्रदर्श टी० टी० (जिल्द 4 का पृष्ठ 238) है जिसका प्रदर्श "जे" की संपुष्टि करने के लिए अवलम्ब लिया गया है। इस दस्तावेज में केवल यह कहा गया है कि तालुका मझवा में ग्राम जलालपुर का जमींदारी पट्टा फरमान सिंह के पक्ष में निष्पादित किया गया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र जालिम सिंह और रामहित सिंह ने पट्टे प्राप्त किए थे। यह उपधारणा करने पर भी कि ऊपर किया गया कथन सही है हमें केवल फरमान सिंह के बारे में ही मालूम होता है जिसे गजराज सिंह का पुत्र होना बतलाया गया है। हम ऊपर पहले ही उपदर्शित कर चुके हैं कि जहां तक वादियों की वंशावली का सम्बन्ध है, दाहिनी ओर गजराज सिंह तक का सम्बन्ध और बाईं ओर देवी सिंह तक का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से साबित हो गया है किन्तु वह वादियों के पक्षकथन को तब तक सिद्ध नहीं करता है जब तक कि वे आगे यह न साबित कर दें कि गजराज सिंह रामरछ सिंह का पुत्र और देवी सिंह का भतीजा था। यदि इस सम्बन्ध का अभाव रहता है तो वादियों का दावा अवश्य ही असफल होना चाहिए।

111. इसी प्रकार क्रमशः प्रदर्श जी० जी० जी०-3, जी० जी० जी०-4, जी० जी० जी०-5, जी० जी० जी०-6 और जी० जी० जी०-8, जो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिल्द 4 के पृष्ठ 187, 192, 209 188 और 208 पर हैं, ग्राम बरायनी में जमींदारी हित के सम्बन्ध में गजराज सिंह के वारिसों द्वारा निष्पादित बन्धक विलेखों की प्रकृति के दस्तावेज हैं। ये दस्तावेज भी वादियों की वंशावली को साबित करने के प्रयोजन के लिए अथवा यह दर्शाने के लिए कि वह स्वर्गीय महाराजा का नजदीकतम वंशज था मुश्किल से ही सुसंगत है।

112. इसी प्रकार प्रदर्श डब्ल्यू० डब्ल्यू० (जिल्द 4 का पृष्ठ 185) यह सिद्ध करता है कि ग्राम बरायनी के सम्बन्ध में जमींदारी पट्टा मोहन सिंह को मंजूर किया गया था। यह प्रदर्श "जे" में उल्लिखित एक ऐसा तथ्य है जो कि वादी की वंशावली की शुद्धता का अवधारण करने के हमारे प्रयोजन के लिए बिल्कुल भी सुसंगत नहीं है।

113. प्रदर्श एस० एस० (जिल्द 4, पृष्ठ 376) ग्राम बरायनी के बन्दोबस्त के सम्बन्ध में और उस ग्राम की जमींदारी के सम्बन्ध में पश्चात्वर्ती संव्यवहारों के बारे में सालिगराम सिरिश्तादार सदर (उप-कलक्टर) की रिपोर्ट है। यह दस्तावेज 1197 फसली में और पश्चात्वर्ती अन्तरणों के अभिलेखों में मोहन सिंह के पक्ष में ग्राम के बन्दोबस्त को निर्दिष्ट करता है। मोहन सिंह का नाम प्रदर्श "जे" में भी उल्लिखित है और इस सीमा तक वह प्रदर्श की संपुष्टि करता है, किन्तु यह संपुष्टि किसी भी प्रकार से उपयोगी नहीं है क्योंकि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि मोहन सिंह गजराज सिंह का नाती था।

114. इस प्रकार प्रदर्श "जे" की संपुष्टि के लिए वादियों-प्रत्यर्थियों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट और अवलम्ब लिए गए सब दस्तावेजों का वास्तविक विवादास्पद बात का अवधारण करने के लिए कोई मूल्य नहीं है। वादियों का कई पुराने दस्तावेजों पर नियंत्रण प्रतीत होता है, वे उन्हें चाहे जहां से ढूंढ़ सकते हैं और वे किसी भी दस्तावेज को हाथ लगाए बिना देवी सिंह या गजराज सिंह के वंशजों के नाम मालूम कर सकते हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि देवी सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र था और रामरछ सिंह का सगा भाई था जोकि देवी सिंह का भी एक अन्य पुत्र था तथा गजराज सिंह रामरछ सिंह का पुत्र था। वास्तव में, वादपत्र की वंशावली में दर्शाए गए वंशजों में से अन्तिम वंशज बंसीधर सिंह है जिसका नाम भी प्रदर्श "जे" में कहीं भी उल्लिखित नहीं है। किन्तु इस मामले के प्रयोजनों के लिए हम यह उपधारणा कर सकते हैं कि बंसीधर सिंह स्वर्गीय महाराजा का सबसे बड़ा वंशज था और इसलिए जब तक कि यह साबित न हो जाए कि बंसीधर सिंह के देवी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिह और रामरछ सिंह दो पुत्र थे, और रामरछ सिंह का पुत्र गजराज सिंह था, तब तक वादी द्वारा अवलम्ब ली गई वंशावली को साबित हुआ नहीं कहा जा सकता। हमारे लिए इन दस्तावेजों के बारे में और कोई टिप्पणी करना आवश्यक नहीं है क्योंकि वे हमने जो कुछ कहा है, उससे परे कोई बात नहीं दर्शाते हैं।

115. बन्सीधर सिंह और रामरछ सिंह के नामों के न होने के बारे में प्रत्यर्थियों द्वारा जो स्पष्टीकरण देना चाहा गया है, यह है कि चूंकि दुर्गा प्रसाद वर्ष 1810 में रिपोर्ट लिख रहा था उस समय तक बन्सीधर सिंह और रामरछ दोनों की ही पहले मृत्यु हो चुकी थी, इसलिए रिपोर्ट में उनके नाम होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। हमारी राय में यह तर्क पूर्ण रूप से कायम रखने योग्य नहीं है। हम पहले ही बतला चुके हैं कि मुख्य काम जो दुर्गा प्रसाद को सौंपा गया था, पहलवान सिंह के वंशज ढूंढ निकालना था और यदि बन्सीधर और रामरछ पहलवान सिंह के वास्तविक वंशज थे तो उनके नाम दुर्गा प्रसाद के ध्यान से उतर नहीं सकते थे, विशेषतया जबकि हृदय नारायण सिंह का नाम, जोकि बन्सीधर सिंह की तुलना में ऊपर था, स्पष्ट रूप से रिपोर्ट में उल्लिखित किया गया है। द्वितीयतः दुर्गा प्रसाद द्वारा की गई जांच की परिधि को देखते हुए उसे अभिलेखों से वंशजों को ढूंढना पड़ा था और वह रिपोर्ट में इस बात पर बहुत ही स्पष्ट रूप से यह कहता है कि उसकी जानकारी सिरिश्ता के अभिलेखों पर विशेषतया तुमर (लेखा पुस्तक) पर आधारित थी। यदि बन्सीधर और रामरछ वास्तव में देवी सिंह या पहलवान सिंह से सीधे सम्बन्धित रहे थे तो ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे दुर्गा प्रसाद ने पहलवान सिंह के वंशज होने के रूप में उनके नामों का उल्लेख न किया होता जो कि उनसे केवल दो से तीन डिग्री (पीढ़ी) तक ही दूर हैं। इसलिए इन परिस्थितियों में प्रदर्श "जे" में उपर्युक्त व्यक्तियों के नामों की अनुपस्थिति हमारी राय में यह दर्शाने के लिए एक निश्चायक परिस्थिति है कि बन्सीधर रामरछ और पहलवान सिंह के बीच कोई सम्बन्ध नहीं था। इस निष्कर्ष को आगे इस तथ्य द्वारा भी समर्थन मिलता है कि गजराज साही (या गजराज सिंह) भी, जो रामरछ सिंह का एकमात्र पुत्र और बन्सीधर सिंह का नाती था, रिपोर्ट में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। इन कारणों से हम इस मुद्दे पर प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को नामंजूर करते हैं।

116. दस्तावेजों के सम्बन्ध में हमारे विश्लेषण को देखते हुए हमें उनकी ग्राह्यता के बारे में विचार करने की आवश्यकता नहीं है; यद्यपि यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बात बहुत ही संदेहास्पद है कि किस प्रकार से उनकी जानकारी के साधनों को प्रकट किए बिना विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किए गए कथनों को ग्राह्य कहा जा सकता है।

117. हमें यह प्रतीत होता है कि वादियों द्वारा इस मामले में जो कुछ किया गया प्रतीत होता है, यह है कि प्रदर्श "जे" के परिवर्णनों और ऐसे व्यक्तियों के कुछ नामों का, जिनके कब्जे में ग्राम बरायनी का मौजा मझवा था, लाभ उठाते हुए उन्होंने प्रदर्श "जे" को संदर्भ से बाहर दुर्गा प्रसाद द्वारा किए गए कुछ कथनों और व्यक्त मतों का अवलम्ब लेने के लिए आधार माना है तथा इधर-उधर की छोटी मोटी बातों को जोड़कर के गजराज सिंह का बन्सीधर से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया है तथा गजराज सिंह और बन्सीधर सिंह को उनके वंशजों के रूप में होने के लिए उन्हें जानबूझकर अन्तःस्थापित करके वंशावली की पुनः रचना की जा सके। उनके द्वारा अंगीकृत पद्धति को कुछ ही प्रयत्न द्वारा प्राप्त कर लिया गया है और वह निरर्थक और व्यर्थ व्यायाम के सिवाय और कुछ नहीं है।

118. हम पहले ही यह बात देख चुके हैं कि वादियों द्वारा अनुसरण की गई स्कीम और कार्यप्रणाली फारसी भाषा के वास्तविक शब्दों के गलत अनुवाद और अर्थ के गलत निर्वचन पर आधारित है जिसका यह परिणाम है कि उनके द्वारा अनुसरण की गई संपूर्ण स्कीम उनके द्वारा चाहे गए उद्देश्य को पूरा करने की बजाय उनके पक्षकथन को पूर्ण रूप से निष्प्रभावी बना दिया गया है। इन निष्कर्षों और मतों के साथ हम इस अध्याय को समाप्त कर देते हैं जहां तक प्रदर्श "जे" और दस्तावेजी तथा मौखिक साक्ष्य द्वारा उसकी अभिकथित संपुष्टि का सम्बन्ध है।

119. अब हम वादियों-प्रत्यर्थियों के तर्क के इस दूसरे पहलू पर विचार करेंगे कि ऐसे अखण्डनीय दस्तावेज हैं जो उनके वादपत्र में उनके द्वारा प्रतिपादित मामले पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डालते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने प्राइवेट दस्तावेजों, लोक दस्तावेजों, निर्णयों के परिवर्णनों, पक्षकारों के बीच हुए निर्णयों, और ऐसे निर्णयों का, जो पक्षकार के बीच नहीं हैं, विक्रय-पत्रों, बंधक विलेखों और इसी प्रकार के अन्य दस्तावेजों का अवलंब लिया है जिन पर हम इसमें इसके पश्चात् चर्चा करेंगे, किन्तु ऐसा करने से पूर्व हम ऐसे अधिकांश दस्तावेजों की ग्राह्यता की विधिक स्थिति पर प्रकाश डालना चाहेंगे जो वादियों द्वारा अपने पक्षकथन के समर्थन में फाइल किए गए हैं। इस प्रयोजन के दस्तावेजों को तीन शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सकता है—

(1) दस्तावेज जो स्वयं ही अग्राह्य हैं।

(2) ऐसे निर्णयों के परिवर्णन जो पक्षकारों के बीच नहीं हैं, और

(3) वाद से पहले के दस्तावेज या निर्णय।

अभिलेख स्पष्ट करने के लिए हम इस विषय पर संक्षेप में निर्णयज-विधि पर चर्चा करेंगे और इस न्यायालय की तथा प्रिवी कौंसिल और कुछ निर्णयों की कुछ महत्वपूर्ण नजीरों को निर्दिष्ट करेंगे जो हमें बहुत ही सुसंगत प्रतीत होती हैं।

120. प्रथम प्रकार के वर्गीकृत दस्तावेजों के बारे में यह बात अच्छी तरह से सुस्थिर है कि न्यायालयों के निर्णय साक्ष्य अधिनियम की धारा 40, 41 और 42 के उपबन्धों के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य हैं। धारा 43 में, जो नीचे उद्धृत की गई है, स्पष्ट रूप से इस बात का उपबन्ध है कि ऐसे निर्णय, जो धारा 40 से 42 की सीमा के अन्तर्गत नहीं आते हैं, तब तक अग्राह्य हैं जब तक कि ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का अस्तित्व विवाद्यक तथ्य न हो या वह साक्ष्य अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अन्तर्गत सुसंगत न हो—

> "43. धारा 40, 41 और 42 में वर्णित से भिन्न निर्णय आदि कब सुसंगत है—धारा 40, 41 और 42 में वर्णित से भिन्न निर्णय, आदेश या डिक्रियां विसंगत हैं जब तक कि ऐसे निर्णय आदेश या डिक्री का अस्तित्व विवाद्यक तथ्य न हो या वह अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के अन्तर्गत सुसंगत न हो।"

121. कुछ न्यायालयों ने ऐसे निर्णय की ग्राह्यता साबित करने के लिए धारा 13 का प्रयोग किया है जो ऊपर निर्दिष्ट धारा 43 के उपबन्धों के अधीन आते हैं। तथापि हमारी यह राय है कि जहां दस्तावेज की ग्राह्यता को मानने वाला विनिर्दिष्ट उपबन्ध हो, वहां न्यायालय किसी विशेष दस्तावेज को ग्राह्य बनाने के लिए अन्य साधारण उपबन्धों की सहायता लेने के लिए स्वतन्त्र नहीं है। अन्य शब्दों में, यदि निर्णय धारा 40 से 42 तक की परिधि के अन्तर्गत न आने के कारण ग्राह्य नहीं है, तो उसे धारा 43 की शर्तों को अवश्य ही पूरा करना चाहिए अन्यथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 13 के अधीन सुसंगत नहीं हो सकता। "इस अधिनियम के अन्य उपबन्ध" शब्द

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 13 को सम्मिलित नहीं कर सकते क्योंकि यह धारा निर्णयों से बिल्कुल भी सम्बन्धित नहीं है।

122. यह बात भी अच्छी तरह से सुस्थिर है कि सर्वबन्धी निर्णय जैसे कि प्रोबेट, दिवाला, वैवाहिक या संरक्षता या इसी प्रकार के अन्य कार्यवाहियों में पारित निर्णय, सभी मामलों में ग्राह्य हैं चाहे ऐसे निर्णय पक्षकारों के बीच हों अथवा नहीं। तथापि प्रस्तुत मामले में फाइल किए गए निर्णयों वाले सब दस्तावेज सर्वबंधी निर्णय नहीं हैं और इसलिए उस आधार पर उनकी ग्राह्यता का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, प्रस्तुत मामलों में प्रदर्शों के रूप में फाइल किए गए निर्णय व्यक्तिबंधी निर्णय हैं और इसलिए वे साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 में वर्णित शर्तों को पूरा नहीं करते हैं।

123. अब यह सुस्थिर विधि है कि ऐसे निर्णय जो पक्षकारों के बीच न हों, कुछ ऐसे आपवादिक मामलों को वर्जित करते हुए साक्ष्य में अग्राह्य हैं जिन्हें हम इसमें इसके पश्चात निर्दिष्ट करेंगे। **जान कुकरेन बनाम हर सुन्दरी देबिया और अन्य**[1] के मामले में लार्ड जस्टिस ब्रूस ने निर्णय की ग्राह्यता के प्रश्न पर विचार करते समय निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

> "सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के सम्बन्ध में यह बात स्पष्ट है कि ऐसे वाद के, जिसमें वह निर्णय दिया गया था, पक्षकारों पर विचार करने के पश्चात् वह प्रस्तुत मामले में साक्ष्य नहीं है...तथापि हमें न केवल इस बात को ध्यान में रखना है कि उस वाद का वर्तमान वाद से भिन्न उद्देश्य था जो कि पक्षकारों के मतभेद से स्वतंत्र है किन्तु यहां पर साक्ष्य उससे परे है और उससे भिन्न है जो उस निर्णय को देने के अवसर पर सुप्रीम कोर्ट के समक्ष था।"

124. यह बात सही है कि ऊपर उल्लिखित मामले में माननीय न्यायाधीश ने यह अनुभव किया था कि कुछ मामलों में अधिकरण के दिए गए विनिश्चय को सम्यक् रूप से कुछ अन्तर अवश्य ही करना चाहिए किन्तु प्रस्तुत मामले के, जिस पर माननीय न्यायाधीशों द्वारा विचार किया गया था, समान मामलों में निर्णय ग्राह्य नहीं था।

125. **जोगेन्द्र देव राय कुट बनाम फनीन्द्र देव राय कुट**[2] के मामले

---

[1] (1854-57) 6 एम० आई० ए० 494.

[2] (1871-72) 14 एम० आई० ए० 367.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था—

"प्रथम वाद के समान यदि ऐसा वाद यहां लाया गया होता और इस देश की विधि के अनुसार उसका विचारण किया गया होता तो यह कहने के लिए कोई बहाना नहीं हो सकता था कि उस निर्णय में सर्वबंधी निर्णय के समान कोई बात थी अथवा वह वाद के पक्षकारों के सिवाय किसी को भी आबद्ध कर सकता था। माननीय न्यायाधीशों के लिए यह कहना पर्याप्त है कि न्यायालय में इस मामले में उद्धृत निर्णय को किन्हीं भी सिद्धांतों के आधार पर उस प्रकृति के निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता चाहे वह इंगलिश विधि या ऐसी भारतीय विधि और पद्धति से व्युत्पन्न हुआ हो जो उसे लागू की जा सकती है।"

126. गज्जू लाल बनाम फतह लाल[1] के मामले में पूर्ण न्यायपीठ ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 से 43 की परिधि और लक्ष्य के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया था और निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"दूसरी ओर, जब ऐसे प्रयोजन के लिए तैयार की गई विधि में और ऐसी परिस्थितियों के अधीन हम 'न्यायालय के निर्णय कब सुसंगत होते हैं' शीर्षक के अधीन कई धाराओं का समूह पाते हैं और वह इस बात पर विचार करने के लिए एक अच्छा कारण प्रतीत होता है, जहां तक अधिनियम का सम्बन्ध है, किसी विशेष निर्णय की सुसंगतता उन धाराओं के प्रति निर्देश से अनुज्ञात अथवा नामंजूर की जानी चाहिए।

× × × ×

मुझे उस निर्णय को पढ़ने का अवसर मिला था जो मुख्य न्यायाधिपति ने देने के लिए तैयार किया था तथा मेरे विद्वान बंधु फोंटीफेक्ट्स के मतों को भी पढ़ने का अवसर मिला है और मैं सामान्यतया उन दोनों से सहमत हूं तथा उसमें उल्लिखित कारणों से और जो मैंने संक्षेप में दिए हैं मैं साक्ष्य अग्राह्य मानता हूं।"

मुख्य न्यायाधीश गर्थ ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

"यह बात स्पष्ट है कि यदि अर्थान्वयन, जो प्रत्यर्थी के काउंसेल

1 आई० एल० आर० (1881) 6 कलकत्ता 171.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारा 13 के अधीन करेंगे, सही है तो धारा 40, 41 और 42 की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं होगी तब ये धाराएं केवल गुमराह करने वाली होंगी क्योंकि निर्णय जो उनके अधीन ग्राह्य बनाए गए हैं। धारा 13 के अधीन संव्यवहार के रूप में समान रूप से ग्राह्य होंगे तथा न केवल वे ही ग्राह्य होंगे किन्तु ऐसे विभिन्न प्रकार के अन्य निर्णय भी ग्राह्य होंगे जो न तो इस देश में और न ही इंगलैंड में पहले कभी ग्राह्य रहे थे तथा इस बात को स्वीकार करना कठिन है कि क्यों धारा 42 के अधीन निर्णय यद्यपि वे उसी पक्षकारों के बीच न हों, ग्राह्य घोषित किए जाने चाहिएं जहां तक कि वे लोक प्रकृति के मामलों से सम्बन्धित हों, यदि वे निर्णय धारा 13 के अधीन पहले ही ग्राह्य बनाए गए हों चाहे वे लोक प्रकृति के मामलों से सम्बन्धित हों अथवा नहीं।

× × × ×

इसलिए मेरी यह राय है कि पहला निर्णय प्रस्तुत वाद में ग्राह्य नहीं था।"

(हमारे द्वारा रेखांकन बल देने हेतु किया गया है)

127. गदाधर चौधरी और अन्य बनाम शरत चन्द्र चक्रवर्ती और अन्य[1] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे निर्णयों के, जो पक्षकारों के बीच के नहीं हैं, निष्कर्ष साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है। इस सम्बन्ध में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"यद्यपि ऐसे निर्णय के, जो पक्षकारों के बीच का न हो, परिवर्णन और निष्कर्ष साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है। हमारी राय में ऐसा निर्णय और डिक्री इस तथ्य को साबित करने के लिए ग्राह्य है कि कतिपय पक्षकारों के बीच वाद में डिक्री की गई थी तथा यह मालूम करने के लिए है कि वाद द्वारा कौन सी भूमियों की डिक्री की गई थी।"

128. हमारी राय में यह पक्षकारों के बीच न हुए निर्णयों की ग्राह्यता के सम्बन्ध में सही विधिक स्थिति है।

---

[1] (1940) 44 सी० डब्ल्यू० एन० 935.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

129. महाराजा सर केशवप्रसाद सिंह बहादुर बनाम बहूरिया मुसम्मात भागजोगना कुंवर और अन्य[1] के मामले में प्रिवी कौंसिल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"चाहे सुस्थिर सामान्य सिद्धांत पर आधारित हो अथवा केवल सुविधा के कारणों द्वारा समर्थित हो, इस नियम को कि जहां तक मामले की सचाई के बारे में विनिश्चय करने वाला निर्णय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है, जो वाद के लिए पर-व्यक्ति है, इंगलिश विधि में सामान्य नियम के रूप में बहुत लम्बे समय से स्वीकार किया गया है।

× × × ×

माननीय न्यायाधीश ने न्यायाधीश रोश के मत से सहमति व्यक्त करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

"निर्णय न तो पक्षकारों के बीच है और न ही वह सर्वबंधी निर्णय है और न ही वह लोक प्रकृति के मामले से सम्बन्धित है। निर्णय का अस्तित्व विवाद्यक तथ्य नहीं है और यदि निर्णय का अस्तित्व साक्ष्य अधिनियम के कुछ उपबन्धों के अधीन सुसंगत है तो यह मालूम करना कठिन है कि इन धाराओं के अधीन उसके प्रयोग से कौन सा निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

भारत में भूमि के हकों के सम्बन्ध में गम्भीर परिवर्तन हो सकते हैं यदि इस बात को मान्यता प्रदान कर दी जाती है कि किसी पर-व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय विरोधी दावेदारों के बीच सबूत के भार को प्रवर्तित कर देता है तथा उससे अनुसरण किए जाने के लिए बहुत सी अप्रत्यक्ष बातों की आशा की जा सकती है।"

(हमारे द्वारा रेखांकन बल देने हेतु किया गया है।)

130. इस सिद्धांत को कोका-कोला कम्पनी आफ कनाडा लिमिटेड[2] के मामले में दोहराया गया था (प्रदर्श "जे" पर विचार करते समय शब्द-कोश की सुसंगतता के प्रश्न पर पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है) जिसमें माननीय न्यायाधीश महोदय ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में यह मत व्यक्त किया है कि ऐसा कोई भी निर्णय जो पक्षकारों के बीच नहीं था अथवा ऐसा निर्णय जिसमें न तो वादी और न ही प्रतिवादी पक्षकार थे, किसी भी प्रयोजन के

---

[1] ए० आई० आर० 1937 पी० सी० 69.

[2] ए० आई० आर० 1942 पी० सी० 40.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए साक्ष्य में प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यह प्रतीत होता है कि ऊपर निर्दिष्ट मामले में एक्सचेकर कोर्ट के प्रेसिडेंट ने चांसलर के निर्णय में पाए गए तथ्यों का अवलम्ब लिया था तथा चांसलर ने दिए गए अखंडनीय साक्ष्य से समर्थन लिया था। प्रिवी कौंसिल ने ऐसे निर्णयों का अवलम्ब लेने की इस पद्धति को अस्वीकार किया था जो इस अर्थ में पक्षकारों के बीच नहीं थे कि निर्णय, जिसमें न तो वादी और न ही प्रतिवादी पक्षकार थे, और इस सम्बन्ध में लार्ड रसेल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "विद्वान प्रेसिडेंट ने वादी की दलील का बहुत ही बलपूर्वक समर्थन के रूप में इस निर्णय का अवलम्ब लिया था...भ्रम होने की सम्भावना है, किन्तु माननीय न्यायाधीश महोदय की राय में वह ऐसी कार्यवाहियों में जिसमें न तो वादी और न ही प्रतिवादी पक्षकार था, उल्लिखित तथ्यों को साबित करने के लिए दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करने अथवा अवलम्ब लेने के लिए हकदार नहीं था।"

(रेखांकन बल देने हेतु किया गया है)

131. हम प्रिवी कौंसिल द्वारा व्यक्त मत से पूर्णतया सहमत हैं जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 से 43 तक के सही निर्वचन से निकलता है।

132. सीतापति राव डोरा बनाम वेंकन्ना डोरा और अन्य[1] के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा भी यही मत अपनाया गया था, जिसमें न्यायाधीश कुमार स्वामी शास्त्री ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "मेरी यह राय है कि धारा 35 ऐसे निर्णयों को तथा ऐसे निर्णय को लागू नहीं होता है जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 से 43 के अधीन ग्राह्य नहीं होगा तथा वह केवल इस कारण से सुसंगत नहीं हो जाएगी क्योंकि उसमें ऐसे तथ्य के बारे में कथन है जो ऐसे पक्षकारों के बीच वाद में विवाद्यक अथवा सुसंगत है जो पक्षकार या हिताधिकारी नहीं हैं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 40 से 44 न्यायालयों में निर्णयों की सुसंगतता से सम्बन्धित है।"

133. इस मुद्दे पर ऊपर उद्धृत विनिश्चयों का सामूहिक प्रभाव यह है कि साक्ष्य अधिनियम के अधीन निर्णय जो पक्षकारों के बीच नहीं है, सिवाय इस बात को साबित करने के सीमित प्रयोजन के साक्ष्य में अग्राह्य

[1] (1922) आई० एल० आर० 45 मद्रास 352.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि पक्षकार कौन थे तथा क्या डिक्री पारित की गई थी तथा कौन सी सम्पत्तियां वाद की विषयवस्तु थीं । इसलिए इन परिस्थितियों में वादी-प्रत्यर्थी ऐसे कुछ निर्णयों का समर्थन प्राप्त करने लिए स्वतन्त्र नहीं है जो उनके हक और नातेदारी का समर्थन करने के लिए फाइल किए गए हैं जिनमें न तो वादी और न ही प्रतिवादी पक्षकार थे । वास्तव में यदि निर्णयों का ऊपर उल्लिखित सीमित प्रयोजन के लिए ही प्रयोग किया जाता है तो वे हमें वादियों का पक्षकथन साबित करने के बारे में कहीं और नहीं ले जाते ।

134. यह बात भी सुस्थिर है कि वाद का निर्णय करने से पूर्व सक्षम ज्ञान वाले व्यक्तियों के समक्ष किए गए कथन या घोषणाएं लोक या साधारण प्रकृति के प्राचीन अधिकारों को साबित करने के लिए ग्राह्य है (देखिए हाल्सबरीज लाज आफ इंगलैंड जिल्द 15, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 308) जिसमें निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था—

> "सक्षम ज्ञान वाले मृत व्यक्तियों द्वारा वाद का निर्णय करने से पूर्व की गई घोषणाएं लोक या साधारण प्रकृति के प्राचीन अधिकारों को साबित करने के लिए ग्राह्य हैं । उन अधिकारों के बारे में घोषणाओं की स्वीकृति आवश्यकता के आधार पर भागतः स्वीकार की गई है चूंकि ऐसे साक्ष्य के बिना प्राचीन अधिकारों को बहुत ही कम सिद्ध किया जा सकता है तथा भागतः इस आधार पर कि अधिकारों की लोक प्रकृति गलत बयानी की जोखिम को कम करती है ।"

135. तथापि ऐसी घोषणाओं की ग्राह्यता पर्याप्त रूप से कमजोर हो गई है यदि वह लोक अधिकारों से सम्बन्धित न होकर पूर्णतया प्राइवेट अधिकारों से सम्बन्धित हैं । समान रूप से यह बात भी अच्छी तरह से सुस्थिर है कि निर्णय के पश्चात् की गई घोषणाएं या कथन ग्राह्य नहीं होंगे क्योंकि वाद का निर्णय करने से पूर्व की गई कार्यवाहियों या घोषणाओं के मामले में बैर और बनावट का तत्व समाप्त हो जाता है । तथापि ऊपर वर्णित प्रकृति के कथनों को वाद का निर्णय होने से पूर्व ग्राह्य होने के लिए वे किसी विवाद के वास्तविक अस्तित्व में होने से पूर्व के ही होने चाहिएं किन्तु वे विधिक कार्यवाहियों के प्रारम्भ से पूर्व भी किए जाने चाहिएं । इस सम्बन्ध में हाल्सबरीज लाज आफ इंगलैंड (उपर्युक्त) के पृष्ठ 308 के पैरा 562 के निम्नलिखित मत का अवलम्ब लिया है—

> "निष्पक्ष होने के लिए घोषणाएं वाद का निर्णय करने से पूर्व अवश्य की जानी चाहिएं जिसका अर्थ न केवल विधिक कार्यवाहियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के प्रारम्भ करने से पूर्व का है, किन्तु किसी वास्तविक संविवाद के, जिसका घोषणाओं की विषयवस्तु से सम्बन्ध हो, अस्तित्व में आने के पूर्व से भी हो। इस अपेक्षा को इतनी कठोरता से प्रवृत्त किया गया है कि यह तथ्य कि ऐसा विवाद घोषणाकर्ता के ज्ञान में नहीं था अथवा कपटपूर्वक प्रारम्भ किया गया था जिससे कि उसकी घोषणाओं को समाप्त किया जा सके, और ऐसी अपेक्षा को अतात्विक निर्धारित किया गया।"

136. तथापि यह स्थिति वाद का निर्णय करने के पश्चात् किए गए कथनों को अच्छा नहीं मान सकती जो साक्ष्य में स्पष्ट रूप से अग्राह्य होंगे। इस नियम के लिए कारण यह प्रतीत होता है कि किसी विवाद के प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् अथवा विधिक कार्यवाहियों के प्रारम्भ होने के समय निष्पक्षता की संभावना, झूठे अभिवाकों से सम्बद्ध होने अथवा रखने की धारणा को निर्मूल नहीं किया जा सकता। इंगलिश विधि के इस नियम की बहुत बारीकी से परीक्षा कर ली गई है जैसे कि निर्णयों या दस्तावेजों की ग्राह्यता के प्रश्न पर साक्ष्य अधिनियम के आवश्यक सिद्धांतों के बारे में स्पष्ट हो। न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने मामले के इस पहलू पर पूर्ण रूप से विचार किया है और हम इस मुद्दे पर उनके द्वारा व्यक्त राय से पूर्णतया सहमत हैं। वास्तव में साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 में वाद का निर्णय करने के पश्चात् के सिद्धांत को स्वयं ही पूर्ण रूप से सम्मिलित करता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(5) का सुसंगत भाग इस प्रकार है—

"32. वे दशाएं जिनमें उस व्यक्ति द्वारा सुसंगत तथ्य का किया गया कथन सुसंगत है, जो मर गया है या मिल नहीं सकता इत्यादि—

(5)···उस व्यक्ति के पास, जिसने वह कथन किया है ज्ञान के विशेष साधन थे और जबकि वह कथन विवादग्रस्त प्रश्न के उठाए जाने से पूर्व किया गया था।"

137. फालका प्रसाद और अन्य बनाम मथुरा प्रसाद[1] के मामले में प्रिवी कौंसिल ने ऐसी वंशावली को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था जो वर्ष 1892 की थी, क्योंकि संविवाद वर्ष 1891 से अर्थात् वंशावली के एक वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। इस सम्बन्ध में वादी द्वारा अवलम्ब ली गई वंशावली पर टिप्पणी करते हुए माननीय न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत

[1] आई० एल० आर० 30 इलाहाबाद 510.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यक्त किया था—

"उन्हें उलटे क्रम में मानने पर अन्तिम अग्राह्य है क्योंकि वह वाद का निर्णय करने से पूर्व का है।

× × × ×

इस आधार पर कथन अग्राह्य करने के लिए वही वाद कथन करने से पूर्व और पश्चात् संविवाद की विषयवस्तु होना चाहिए।"

138. हरीबक्श बनाम बाबूलाल और एक अन्य[1] के मामले में माननीय न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

"माननीय न्यायाधीश को यह प्रतीत होता है कि बिशनदयाल के ये कथन, जो उस समय विवाद में हितबद्ध पक्षकार था, और उस समय हरीबक्श के विपरीत स्थिति कायम कर रहा था, इस वाद में साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं किए जा सकते और वे अग्राह्य हैं।"

139. उस मामले में यह प्रतीत होता है कि बिशनदयाल ने, जो विभाजन के उस वाद में प्रतिवादी था, जो तारीख 7 अगस्त, 1908 को फाइल किया गया था, तारीख 26 नवम्बर, 1908 को अर्थात् वाद फाइल करने के 2-1/2 मास पश्चात् एक विल की थी। 1908 के वाद में बिशनदयाल के कथन का अवलम्ब लेना चाहा गया था, किन्तु प्रिवी कौंसिल ने कथन को अग्राह्य अभिनिर्धारित किया था क्योंकि वह पहले ही हितबद्ध पक्षकार हो गया था और इसलिए मामला वाद का निर्णय करने से पूर्व के सिद्धांत द्वारा अविधिमान्य हो गया था।

140. डोलगोविन्द परिचा बनाम निमई चरण मिश्र और अन्य[2] के मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत कथन अग्राह्य था क्योंकि वह विवादग्रस्त प्रश्न के उद्भूत होने से पूर्व किया गया था। अन्य शब्दों में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए अवलम्ब लिया गया कथन और वंशावली वाद का निर्णय करने से पूर्व की थी न कि वाद का निर्णय करने के पश्चात् की थी क्योंकि यदि पश्चात्वर्ती मामले का पक्षकथन होता तो दस्तावेज अग्राह्य हुआ होता और इस सम्बन्ध में न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

"यह स्थिति होने से प्रदर्श 1 में अन्तर्विष्ट वंशावली के बारे

---

[1] ए० आई० आर० 1924 पी० सी० 126.

[2] [1959] सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 814,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में कथन वर्तमान मुकदमेबाजी में संक्षेप विवादग्रस्त प्रश्न के उद्भूत होने से पूर्व किए गए थे।"

141. कालिंदीनी वेंकटा सुब्बाराजू और अन्य बनाम चितालपट्टी सुब्बाराजू और अन्य[1] के मामले में साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के खंड (5) के उपबन्धों का अर्थान्वयन करते समय इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "ऊपर वर्णित धारा 32 की उपधारा (5) और (6) दोनों इस बात की घोषणा करते हैं कि अवलम्ब लिए गए कथन को ग्राह्य होने के लिए ऐसे व्यक्तियों द्वारा, जिनकी मृत्यु हो गई है, वाद का निर्णय करने से पूर्व किया हुआ होना चाहिए अर्थात् एक ही प्रश्न पर वास्तविक या विधिक किसी विवाद के प्रारम्भ होने से पूर्व।"

142. इस न्यायालय ने प्रिवी कौंसिल के एक पूर्ववर्ती मामले का अवलम्ब लेते हुए आगे निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "कालका प्रसाद बनाम मथुरा प्रसाद, (35 आई० ए० 166) के मामले में एक पार्वती की मृत्यु पर सन् 1896 में विवाद उद्भूत हुआ था। सन् 1898 में शिवसहायक द्वारा लाए गए वाद में एक वंशावली फाइल की गई थी। इसके पश्चात् वाद जिसके विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील की गई थी, सन् 1901 में संशोधित किया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सन् 1898 में फाइल की गई वंशावली वाद का निर्णय करने के पश्चात् की होने से ग्राह्य नहीं थी।"

143. इस प्रकार ऊपर उल्लिखित नजीरों का विनिश्चयाधार संक्षेप में करने पर उपर्युक्त विनिश्चयों से उद्भूत होने वाली स्थिति और सिद्धांत इस प्रकार हैं—

(1) सर्वबन्धी निर्णय अर्थात् नाविक न्यायालय, प्रोबेट कार्यवाहियां आदि के निर्णय या आदेश इस बात के बावजूद भी सदैव ग्राह्य होंगे कि वे पक्षकारों के बीच हैं अथवा नहीं।

(2) व्यक्तिबन्धी निर्णय, जो पक्षकारों के बीच नहीं है, ऊपर उल्लिखित तीन प्रयोजनों के सिवाय साक्ष्य में बिल्कुल भी ग्राह्य नहीं हैं।

---

[1] [1968] 2 एस० सी० आर० 292.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(3) उपर्युक्त तर्क के आधार पर निर्णय में दिए गए साक्ष्य या किए गए तर्कों या निर्दिष्ट वंशक्रम का अधिमूल्यन करने में दिए गए निष्कर्ष जैसे निर्णय के परिवर्णन ऐसे मामले में पूर्णतया अग्राह्य होंगे जहां न तो वादी और न ही प्रतिवादी पक्षकार थे।

(4) ऐसे दस्तावेजों का, जो चाहे जितने पुराने हों, और उनकी जानकारी के स्रोत प्रकट नहीं करते हों अथवा जिन्होंने पर्याप्त ख्याति प्राप्त नहीं की हो संभावित मूल्य बहुत ही कम है।

(5) कथन, घोषणाएं या अभिसाक्ष्य आदि ग्राह्य नहीं होंगे यदि वे वाद का निर्णय करने के पश्चात के हैं।

144. अब हम उपर्युक्त विनिश्चयों द्वारा अधिकथित सिद्धांतों को देखते हुए मौखिक और दस्तावेजी दोनों ही साक्ष्यों पर विचार करेंगे। परिचय के तौर पर इस बात पर ध्यान रखा जा सकता है कि वर्तमान मामले में वादी राधाकृष्ण पर अपने पक्षकथन को यह दर्शा कर के साबित करने का स्पष्ट रूप से भार है कि वह स्वर्गीय महाराजा का अगला वंशज था और वंशक्रम में प्रत्येक ऐसा सम्बन्ध साबित हो गया था जो उसने वादपत्र में उल्लिखित किया था। उसके द्वारा उपर्युक्त तथ्यों को साबित करके अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करने के पश्चात ही प्रतिवादियों को उसके पक्षकथन को अभिखंडित करने के लिए कहा जा सकता है। साक्ष्य का बारीकी से परिशीलन करने के पश्चात यह प्रतीत होता है कि वादी ने जो कुछ किया है वह किसी भी और प्रत्येक दस्तावेज, अभिसाक्ष्य, कथन, घोषणा आदि को फाइल करना है जहां वंशावली को जो उसे बनारस के महाराजा से अथवा उसके गोत्र के लोगों से किसी ऐसे मुख्य स्रोत को साबित करने का प्रयत्न किए बिना उससे जोड़ती है जिस पर उसके पक्षकथन का सम्पूर्ण ढांचा आधारित है। परिणाम यह है कि वादियों ने स्वयं को ऐसे चक्रव्यूह और मायाजाल में फंसा दिया है जिससे निकलना उनके लिए कठिन है तथा उनके द्वारा पेश किया गया मामला छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गया है और वे अपने सब तरकीबों और उलझनों के बावजूद भी निर्णायक मुद्दों को अर्थात रामरछ सिंह, गजराज सिंह, देवी सिंह तथा बंसीधर सिंह के बीच सम्बन्ध साबित करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं।

145. इन प्रारम्भिक टिप्पणियों के पश्चात अब हम ऊपर उपदर्शित मुद्दों पर वादियों द्वारा दिए गए साक्ष्य पर चर्चा करेंगे।

146. दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करते समय हम दस्तावेज,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रदर्श पी-2, वी० डी० डी०/30 और डी०डी०/31 से प्रारम्भ करेंगे जो नजदीकी रूप से सम्बन्धित दस्तावेज है। वादियों के वंशक्रम को, जिसे सुविधा के लिए जिल्द 8 के पृष्ठ 131 पर एक स्थान पर रखा गया है और जिसे इस निर्णय में पहले उद्धृत किया जा चुका है, देखने से यह प्रतीत होगा कि बलभद्र सिंह पहलवान सिंह का पौत्र था और संगम कुंवर उसकी बहन थी जिसकी निःसंतान मृत्यु हो गई थी। भोला सिंह वंशावली के दाहिने क्रम में फरमान सिंह का पौत्र था और देव नारायण का पुत्र था, इसलिए यह बात स्पष्ट है कि जयमेत कुंवर की मृत्यु के पश्चात भोला सिंह उसका अगला वंशज नहीं हो सकता जो हरेन्द्र किशोर सिंह होगा। इस प्रकार भोला सिंह द्वारा एक विक्रय के अधीन, जो प्रदर्श डी०डी०/3 की विषयवस्तु थी, बनारस के महाराजा को अन्तरित टाइटल प्रबल साक्षी थी और इस तथ्य का एक निश्चित सबूत है कि प्रश्नगत संव्यवहार केवल एक बनावटी संव्यवहार था। विक्रय पत्र प्रदर्श वी की अन्तर्वस्तु भी यह दर्शाती है कि वह बिना प्रतिफल के थी क्योंकि उसमें ऐसी असाधारण शर्तें और परिवर्णन थे जिन पर हमारे द्वारा इस मामले में इसके पश्चात् चर्चा की जाएगी और जिन पर उस वाद में विचारण न्यायालय द्वारा किए गए निर्णय प्रदर्श डी० डी०/3 द्वारा गम्भीर रूप से टिप्पणी की गई थी।

147. अब खण्ड 3 में पृष्ठ 33—44 पर विक्रय-विलेख (प्रदर्श-5) की ओर देखने से ऐसा प्रकट होता है कि जिस सम्पत्ति को बेचने की मांग की गई है, वह वास्तव में मुसम्मात जयमेद कुंवर की थी, जिसकी कि 1881 में मृत्यु हो गई। विक्रय-विलेख में भोला सिंह ने, दावा किया (जो कि हमारी राय में झूठा है) कि वह जयमेद कुंवर का विधिक वारिस था जबकि असली वारिस स्वर्गीय महाराजा था। विक्रय-विलेख के अनुसार, प्रश्नगत सम्पत्तियां काशी (बनारस) के प्रभु नारायण सिंह को 25,000/-रुपए की राशि लेकर बेच दी गई थी। विक्रय-विलेख में भोला सिंह ने स्पष्ट रूप से अपने आपको मुसम्मात जयमेद कुंवर के अकेले वारिस के रूप में बताया जो कि स्वीकृत रूप से झूठ माना गया था क्योंकि स्वयं वादी की वंशावली के अनुसार भी निकटतम वारिस, जैसा कि हमने पहले ही बता दिया है, हरेन्द्र किशोर सिंह होगा न कि भोला सिंह। दूसरे, विक्रय-विलेख की एक और मुख्य बात यह है कि 25,000/-रुपए के प्रतिफल धन में से 12,500/-रुपए की राशि अर्थात् केवल आधी रकम क्रेता को संदत्त की गई थी। इसके अतिरिक्त, 9,979/10/8 रु० (नौ हजार नौ सौ उनासी रुपए, दस आने, आठ पाई) का मुजराई क्रेता को उसे संदेय रहन की रकम की बाबत दी गई थी जिसके बारे में कहा गया है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि उसे जयमेद कुंवर ने बनारस के महाराजा से लिया था। 5,000 रुपए की अन्य राशि उन सम्पत्तियों के, जो कि अन्य व्यक्तियों के कब्जे में थीं, खाली कराने के लिए व्ययों का वहन करने के लिए क्रेता के पास निक्षिप्त की गई थी। 10,022/5/4 रु० (दस हजार बाइस रुपए पांच आने चार पाई) के प्रतिफल का अतिशेष क्रेता, भोला सिंह ने नगद प्राप्त किया जिसमें से 2,020/5/4 रु० (दो हजार बीस रुपए पांच आने चार पाई) विक्रय-विलेख के निष्पादन पर खर्च किए गए और 8,000 रुपए क्रेता के पास दस्तावेजों के निष्पादित होने तक उसकी संतुष्टि के लिए रखे गए। चूंकि स्वयं भोला सिंह को पूरी तरह से इस बात का पता था कि विक्रय के समय सम्पत्तियों में उसका कोई हक नहीं था, उसने एक ओर तो सम्पूर्ण प्रतिफल रकम, एक बहुत ही छोटी रकम को छोड़कर, विक्रेता के पास निक्षिप्त करा दी और दूसरी ओर उसने इस बात को किसी से नहीं छिपाया कि इन रकमों को हक सम्बन्धी दोष से उद्भूत मुकदमेबाजी के व्ययों को पूरा करने के लिए क्रेता द्वारा खर्च किया जाना था। इस प्रकार विक्रय-विलेख के विवरणों का परिशीलन करने पर यह प्रकट होगा कि 25,000 रुपए की प्रतिफल रकम में से भोला सिंह ने 1,700 रुपए की मामूली राशि ली जो इस संव्यवहार की विचित्र और आडम्बरपूर्ण प्रकृति को दर्शित करती है। दूसरे शब्दों में, भोला सिंह ने इस बात को पूरी तरह से जानते हुए कि सम्पत्तियों में उसका कोई हित नहीं है, उन्हें कौड़ियों के मोल बेच दिया। यद्यपि विक्रय मौजा-मझवा, जिला मिर्जापुर की सम्पत्तियों की बाबत था, विक्रय-विलेख को बनारस शहर में रजिस्ट्रीकृत किया गया और बनारस के उप-रजिस्ट्रार को अधिकारिता देने के उद्देश्य से अत्यन्त मामूली सा कच्चा मकान, जो कच्ची टाइलों से ढका था, महाराजा प्रभु नारायण सिंह को दे दिया गया। विक्रय-विलेख के अधिकतर साक्षी मिर्जापुर के रहने वाले थे। वे सम्पत्तियां जो महादेव के पास बंधक थीं, इस दस्तावेज के अधीन बनारस के महाराजा को बेच दी गईं। विक्रय-विलेख के अधिकतर साक्षी मौजा-बरैनी या मझवा के रहने वाले थे और बनारस का केवल एक साक्षी था। अतः संव्यवहार से स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है चूंकि सभी सम्पत्तियां जिला मिर्जापुर में बेची गई थीं, बनारस की सम्पत्तियों की बाबत भी विक्रय को केवल दिखाने के लिए, विक्रय-विलेख में कच्चा मकान शामिल कर लिया गया। इस प्रकार वह मुख्य प्रयोजन जिसके लिए इस दस्तावेज का वादी-प्रत्यर्थियों द्वारा अवलम्ब लिया गया है, यह है कि इसमें वंशावली दी गई है, जो उनके अनुसार, इस बात का समर्थन करती है कि वे बंसीधर सिंह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के वंशज थे। उक्त वंशावली नीचे उद्धृत की जाती है:—

बाबू बंसीधर सिंह

पहली पत्नी	दूसरी पत्नी
बाबू रामरुच सिंह, मृत	बाबू देवी सिंह, मृत
बाबू गजराज सिंह, मृत	बाबू ऐनी सिंह, मृत
बाबू फरमान सिंह, मृत	बाबू पहलवान सिंह, मृत
बाबू देवनारायण सिंह, मृत	बाबू तिलक सिंह मृत
बाबू भोला सिंह, जीवित	बाबू बलभद्र सिंह,
	बाबू बलभद्र सिंह, मृतक की पत्नी ठकुराइन जयमेद कुंवर, मृतक।

148. श्री तारकुण्डे की दलील यह थी कि यह वंशावली उस समय फाइल की गई थी जब पक्षकारों के बीच कोई विवाद नहीं था और वादियों के मामले का यह पूरी तरह से समर्थन करती है क्योंकि इससे यह दर्शित होता है कि एक ओर भोला सिंह गजराज सिंह, रामरुच सिंह और बंसीधर सिंह का सीधा वंशज है और ठकुराइन जयमेद कुंवर देवी सिंह सुपुत्र बंसीधर सिंह की सीधी वंशज है। इस बात का अनुमान लगाना असंभव है कि यह वंशावली सही है और बाद में पेश किए गए वादियों के मामले को सिद्ध करने के उद्देश्य से सभी आवश्यक कड़ियों को जोड़ती है। उदाहरण के लिए, दीप नारायण सिंह का, जो कि भोला सिंह का बड़ा भाई है, इस वंशावली में सर्वथा उल्लेख नहीं किया गया है। इसी प्रकार से प्रताप नारायण सिंह का, जो कि गजराज सिंह का परपौत्र था, इस वंशावली में उल्लेख नहीं किया गया है और रघुनाथ सिंह के नाम का भी, जो कि ऐनी सिंह का पुत्र था, इसमें कोई उल्लेख नहीं है। इसके अतिरिक्त जब दस्तवेज के निबन्धनों और विवरणों को झूठा पाया गया है और उस न्यायालय की, जिस में विक्रय-विलेख पर आधारित वाद फाइल किया गया था, राय में यह स्पष्ट था कि सम्पूर्ण संव्यवहार एक ढोंग था, तो वंशावली को कोई भी विधिक मान या महत्व नहीं दिया जा सकता। इस प्रकार विक्रय-विलेख में भोला सिंह द्वारा किए गए कथन की सच्चाई की या उसके द्वारा दी गई वंशावली की भी गारण्टी नहीं दी जा सकती। अतः वंशावली गलत है, सही और पूर्ण नहीं है तथा इस दस्तावेज पर वादियों की वंशावली को सिद्ध करने के प्रयोजन के लिए इसका अवलम्ब नहीं लिया जा सकता। विचारण न्यायालय ने इस दस्तावेज (प्रदर्श-5) को रद्द कर दिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था और उच्च न्यायालय में एक न्यायाधीश (न्या० एम० एम० प्रसाद) ने भी ऐसा ही किया था और हमारी राय में यह ठीक ही था।

149. अन्त में, इस दस्तावेज के बारे में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि विक्रय-विलेख के निष्पादन के शीघ्र बाद, स्वर्गीय महाराजा को, जैसा कि दस्तावेज प्रदर्श यू०/3 और डी० डी०/43 द्वारा साबित कर दिया गया है, जयमेद कुंवर के वारिस की जगह पहले ही मान लिया गया और अन्ततोगत्वा इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने तारीख 13-4-80 के अपने निर्णय (प्रदर्श डी० डी०/43) द्वारा नरेन्द्र किशोर सिंह को जयमेद कौर का विधिक वारिस होना स्वीकार किया। इन परिस्थितियों में, उत्तराधिकार का प्रश्न पक्षकारों के बीच अनिर्णीत होने के कारण दस्तावेज, प्रदर्श-5 भी वाद आरम्भ होने के पश्चात् कथन/दस्तावेज प्रस्तुत करने (Post litem motam) के सिद्धांत के विरुद्ध होगा और इसलिए यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन साक्ष्य में अननुज्ञेय है और इसलिए इस पर विचार नहीं किया जा सकता।

150. अब प्रदर्श डी० डी०/30 (खण्ड 4, पृष्ठ 116) जो कि विक्रय-विलेख (प्रदर्श-बी०) की बाबत दिया गया निर्णय है और जिसके बारे में हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं, की ओर देखने से पता चलता है कि विचारण न्यायालय ने दस्तावेज की विषयवस्तु पर पूरा विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि भोला सिंह को विक्रय-विलेख के निष्पादन का कोई अधिकार नहीं था और यह कि वादी ने कोई विधिक अधिकार क्रय नहीं किया। न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि भोला सिंह मुसम्मात जयमेद कुंवर का निकटतम उत्तरभोगी नहीं था और प्रतिफल भी भ्रामक था। दूसरे शब्दों में, विचारण न्यायालय ने उस वाद में वादी के मामले को पूर्णतया रद्द कर दिया।

151. वादी की ओर से काउन्सेल ने वंशावली और न्यायालय के समक्ष परीक्षित कुछ साक्षियों के कथन की बाबत निर्णय में कुछ विवरणों का अवलम्ब लेने की मांग की। तथापि, इस प्रश्न पर हमें अधिक विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमने इस न्यायालय के और प्रिवी कौंसिल के भी प्रकाशित निर्णयों में यह पहले से ही अभिनिर्धारित कर दिया है कि निर्णयों में तथ्यों के विवरण या साक्ष्य या वंशावली भी, जो कि पक्षकारों से सम्बन्धित नहीं है, साक्ष्य में सर्वथा अननुज्ञेय है। निर्णय, प्रदर्श डी० डी०/30 पक्षकारों से सम्बन्धित निर्णय नहीं था और इसलिए उसमें दिया गया कोई विवरण या कथन वादी के मामले को साबित करने के लिए अनुज्ञेय नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होगा। श्री तारकुण्डे का यह तर्क कि प्रदर्श डी० डी०/30 परिवार की सम्पूर्ण वंशावली को सही रूप में बताता है, वंशावली का ठीक वर्णन नहीं होगा क्योंकि निर्णय में भी इस बात का उल्लेख है कि वंशावली विवादग्रस्त थी। तथापि, निर्णय पर प्रत्यक्षतः विचार करने से यह प्रतीत होगा कि प्रदर्श डी० डी०/30 का निष्कर्ष इस बात पर आधारित है कि भोला सिंह हरनन्दन सिंह के एकमात्र अभिसाक्ष्य पर बंसीधर का वंशज था किन्तु चूंकि इस साक्षी के अभिसाक्ष्य को इस मामले में पेश नहीं किया गया था, अतः हरनन्दन सिंह की बाबत किया गया कोई भी कथन पूर्णतः अननुज्ञेय है और इसे किसी भी प्रयोग के लिए, चाहे जो भी हो, विचार में नहीं लिया जा सकता। इसके अतिरिक्त, यह दर्शित नहीं किया गया है कि हरनन्दन सिंह का भोला सिंह के परिवार से या स्वर्गीय महाराजा से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध था जिससे उसे इसकी कोई विशेष जानकारी प्राप्त होती और इस कारण भी उसका कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(5) के विरुद्ध है। इसके अलावा, उस वाद में, जिसका प्रदर्श डी० डी०/30 द्वारा विनिश्चय किया गया था, हरनन्दन सिंह के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह दिखाई देता है कि बंसीधर का रहमत सिंह नाम का एक पुत्र था जिसके वंशज साक्षी के रूप में उपस्थित हुए थे किन्तु रहमत सिंह का वाद-वंशावली में कोई भी उल्लेख नहीं है। अतः इन परिस्थितियों में हम निर्णय, प्रदर्श डी० डी०/30 का कोई अवलम्ब नहीं ले सकते।

152. अब अपील निर्णय, प्रदर्श डी० डी०/31 (खण्ड 4, पृष्ठ 121) की ओर देखने से यह पता चलता है कि अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की अभिपुष्टि की थी और यह पाया कि भोला सिंह जयमेद कुंवर का उत्तरभोगी नहीं था और अतः, उसे स्वर्गीय महाराजा की सम्पत्तियां बेचने का कोई हक नहीं था। अपील न्यायालय ने आगे चलकर यह पाया कि विक्रय-विलेख के सम्पूर्ण भाव से यह दिखाई देता है कि बनारस के महाराजा ने मुकदमेबाजी मोल ले ली। श्री तारकुण्डे ने वंशावली से सम्बन्धित कतिपय विवरणों का अवलम्ब लिया किन्तु यद्यपि न्यायाधीश ने भी यह अभिनिर्धारित किया कि स्वर्गीय महाराजा रघुनाथ सिंह का वंशज था फिर भी उस वाद में दी गई वंशावली में रघुनाथ सिंह का कोई उल्लेख नहीं था। इसके अतिरिक्त प्रदर्श पी-2 में दी गई वंशावली वादियों द्वारा प्रतिपादित वंशावली के सर्वथा असंगत और भिन्न है। बंसीधर सिंह के दो वंश-क्रमों के बहुत से नाम और वारिस अर्थात् देवी सिंह और रामरुच सिंह का इस वंशावली में बिल्कुल भी उल्लेख नहीं किया गया है। मजवा गांव में हंसराज पोखरा नाम से ज्ञात

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तालाब की बाबत सुमन कुंवर द्वारा फाइल किए गए 1856 के बाद सं० 130 में रघुनाथ सिंह का नाम, जो कि ऐनी सिंह का एक पुत्र था, स्पष्ट रूप से गायब है। प्रत्यर्थियों की ओर से काउन्सेल द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण यह था कि बंसीधर सिंह या अथवा देवी सिंह के सभी वारिसों का नाम देना आवश्यक नहीं था; अत: वंशावली में लोप माना जा सकता था। तथापि हम इस स्पष्टीकरण को कदापि नहीं मान सकते क्योंकि कुछ नामों को जिनका प्रदर्श पी-2 में वंशावली में उल्लेख नहीं है, स्वर्गीय महाराजा के निकटतम उत्तरभोगी, जिसका नाम भी इस वंशावली में नहीं है, यद्यपि उसे देवी सिंह का प्रत्यक्ष वंशज होना चाहिए, बादी के ऐसा होने के अधिकार को साबित करने के उद्देश्य से कड़ी के रूप में आधार माना गया है।

153. ऊपर निर्दिष्ट दस्तावेजों, अर्थात् प्रदर्श-बी० डी०डी०/30 और डी०डी०/31 पर विचार-विमर्श समाप्त करने से पूर्व, उन तर्कों की ओर ध्यान देना आवश्यक होगा जिन्हें श्री तारकुण्डे ने कुछ जोर देकर प्रस्तुत किया है। जहां तक भोला सिंह द्वारा बनारस के महाराजा प्रभु नारायण के पक्ष में निष्पादित प्रदर्श-बी, विक्रय-विलेख का संबंध है, यह दलील दी गई कि यदि भोला जयमेद कुंवर का वास्तविक उत्तरभोगी न भी हो, तो भी चूंकि स्वर्गीय महाराजा प्रदर्श-बी. के अन्तर्गत आने वाली सम्पत्तियों में हितबद्ध नहीं था, उसने कोई आपत्ति नहीं उठाई हालांकि उसे उक्त विक्रय-विलेख के निष्पादन के बारे में ज्ञान था। अत:, यह उपधारणा की जा सकती थी कि भोला यदि विधित: नहीं तो वस्तुत: जयमेद कुंवर का उत्तरभोगी अवश्य था क्योंकि वंश-क्रम में स्वर्गीय महाराजा के पश्चात् वह ठीक उसके बाद था। इस बात की पुष्टि करने के लिए प्रत्यर्थियों की ओर से काउन्सेल द्वारा खण्ड 8, पैरा 69, पृष्ठ 219 में पाए गए न्यायाधिपति मुखर्जी के कुछ सम्प्रेक्षणों का अवलम्ब लिया गया। सम्यक् आदर सहित हम यह कह सकते हैं कि विद्वान न्यायाधीश द्वारा किए गए सम्प्रेक्षण अनुमान मात्र के आधार पर थे और उनका किसी विधिक साक्ष्य द्वारा समर्थन नहीं किया गया था। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह पता चले कि महाराजा को विक्रय-विलेख के बारे में पता था; न ही ऐसा कोई साक्ष्य है जिससे यह दर्शित हो कि स्वर्गीय महाराजा जयमेद कुंवर की सम्पत्तियों को विरासत में लेने की सर्वथा दिलचस्पी नहीं रखता था। संव्यवहार की बाबत महाराजा के उपरोक्त ज्ञान के लिए दिया गया कारण केवल यह था कि वह बनारस के महाराजा का निकट संबंधी था और इसलिए यह उपधारणा की जानी चाहिए कि उसे उपरोक्त संव्यवहार के बारे में ज्ञान होना चाहिए। इस तर्क के समर्थन में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हमारा ध्यान वर्ष 1885 के कुछ दस्तावेजों, अर्थात् प्रदर्श एफ-4, 5, 7 और 8 की ओर दिलाया गया जिससे यह दर्शित होता है कि 1885 में जयमेद कुंवर ने महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह को यह प्रस्ताव किया था कि वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तियों का उसे अभ्यर्पण या विक्रय करना चाहती है। तथापि, महाराजा ने अभ्यर्पण द्वारा या विक्रय द्वारा सम्पत्तियों को लेने से इन्कार कर दिया। इस व्यवहार से प्रत्यर्थियों के काउन्सेल ने यह अनुमान लगाने की मांग की कि महाराजा को जयमेद कुंवर की सम्पत्तियों में किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं थी। हमारी राय में, ये तर्क अनुमानों और अटकलों पर आधारित हैं और इनमें कोई विधिक आधार नहीं है। मात्र यह तथ्य कि महाराजा ने जयमेद कुंवर के, अपनी सम्पत्तियों के उसे अभ्यर्पित करने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया, यह नहीं दर्शाता कि उसकी सम्पत्तियों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी क्योंकि वह पूरी तरह से जानता था कि उसकी मृत्यु के बाद सम्पत्तियां निकटवर्ती उत्तरभोगी के रूप में उसी के पास आनी थीं और उसका उनमें आत्यंतिक हित होना था। यह बिल्कुल संभव है कि अभ्यर्पण के प्रस्ताव से महाराजा के आत्म-प्रदर्शन और आत्म-सम्मान को चोट पहुंची हो जिसके परिणामस्वरूप उसने प्रस्ताव को ठुकरा दिया हो। किसी भी दशा में "एलिस इन वंडरलैण्ड" की तरह कल्पना और अनुमान के क्षेत्र में इधर-उधर गलत ढंग से भटकने की बजाय तथ्य यह है कि महाराजा को सम्पत्तियां अवश्य मिलीं और उसने उनके विरुद्ध सभी दावों का विरोध किया जो कि दस्तावेजों प्रदर्श यू०/3 और डी०डी०/43 से प्रकट है जिसके आधार पर महाराजा को जयमेद कुंवर की मृत्यु पर उसके वारिस के रूप में माना गया और उसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 13 अप्रैल, 1888 के निर्णय (प्रदर्श डी०डी०/43) द्वारा विधिक वारिस के रूप में अभिनिर्धारित किया गया। उक्त निर्णय से यह दर्शित होता है कि महाराजा ने जयमेद कुंवर के विधिक प्रतिनिधि का वारिस होने की स्थिति को स्वीकार किया। अतः, इससे प्रत्यर्थियों की ओर से दी गई इस दलील का कि महाराजा जयमेद कुंवर की सम्पत्तियां लेने से बिल्कुल अनिच्छुक था, स्पष्ट रूप से खण्डन होता है। जयमेद कुंवर की सम्पत्तियों के स्वामित्व और विरासत को बिना किसी शर्त के मानने में महाराजा का व्यवहार श्री तारकुण्डे के इस अनुमानित तर्क को, कि महाराजा की या तो सम्पत्तियों में कोई दिलचस्पी नहीं थी या जयमेद कुंवर की, उसकी मृत्यु के पश्चात्, सम्पत्तियां लेने में उसके मन में कुछ संकोच था या वह किसी प्रकार अनिच्छुक था, बिल्कुल प्रभावहीन बना देता है। यदि सम्पत्तियों के महाराजा के पास विधिक रूप से आने से पूर्व किसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकार की अनिच्छा थी तो यह पूर्णतः न्यायोचित थी और जैसा कि ऊपर दर्शित है, महाराजा के आत्म-सम्मान को ध्यान में रखते हुए थी। वास्तव में प्रत्यर्थियों की ओर से काउन्सेल द्वारा प्रस्तुत किए गए तथ्यों में यदि कोई सच्चाई थी तो, महाराजा जयमेद कुंवर की सम्पत्तियों का वारिस बनने या उन्हें लेने से इन्कार कर सकता था। इस पारिस्थितिक साक्ष्य में प्रत्यर्थियों के इस संदिग्ध तर्क के, कि महाराजा को जयमेद कुंवर की सम्पत्तियों में कोई भी दिलचस्पी नहीं थी, विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया है। आगे चलकर श्री तारकुण्डे ने यह स्पष्ट करना चाहा कि सम्पत्तियां ग्रहण करने की महाराजा की अनिच्छा बेत्तिया राज के राजा वीर किशोर सिंह के समय से पारिवारिक इतिहास के कारण थी और महाराजा अपनी जेथरिया जाति को छोड़ना नहीं चाहता था और इस दावे पर टिका रहना चाहता था कि जुगल किशोर सिंह को राजा ध्रुव सिंह द्वारा उसे दत्तक-ग्रहण के कारण बेत्तिया राज मिला था। यह एक ऐसा तथ्य है जिसका हम इस निर्णय के पूर्वतर भाग में पहले ही वर्णन कर चुके हैं। यह भी प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा अपनाए गए तर्क की एक और अटकलबाज़ी की प्रक्रिया है।

154. वास्तव में, प्रत्यर्थियों द्वारा प्रदर्श-वी और दो निर्णयों का अवलम्ब इस बात पर दबाव डालने के लिए लिया गया था कि किसी न किसी प्रकार उनमें उल्लिखित वंशावली को सही और अनुज्ञेय साबित किया जा सके। तथापि यह विधिक रूप से संभव नहीं है क्योंकि उन दस्तावेज़ों के विवरणों को साक्ष्य में अननुज्ञेय माना गया है। इसके अतिरिक्त, यदि हमें दुहराना भी पड़े, हम यह कह सकते हैं कि रद्द किए गए, विवादयुक्त उपहसनीय और नकली संव्यवहार को इस काल्पनिक आधार पर न्यायोचित नहीं माना जा सकता कि भोला, निष्पादक, विधितः उत्तरभोगी न होते हुए, आभासी 'वस्तुतः' उत्तरभोगी की तरह था, और वह भी विचारण न्यायालय और अपील न्यायालय (प्रदर्श डी०डी०/30-31) के इस दस्तावेज़ के दिखावटी और कपटपूर्ण होने के कारण रद्द कर दिए जाने के निर्णय के 50 वर्ष के बाद, जो कि अन्तिम और अप्रतिसंहरणीय हो चुकी थी। यह सब प्रदर्श-वी और पी-2 में दी गई वंशावली को अवलम्ब मानकर व्यर्थ और बेढंगा है जो कि अननुज्ञेय और सही नहीं है।

155. डा० सिंघवी ने, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होते हुए, यह ठीक ही बताया कि प्रत्यर्थियों के तर्कों पर बनी सम्पूर्ण इमारत ऐसी गड्डियों पर आधारित है जो कि उसी क्षण ढह जाएगी ज्यों ही न्यायालय ने उसके विभिन्न संघटकों और ईंटों की पूरी जांच की जिन पर वह इमारत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खड़ी है। विद्वान् काउन्सेल ने यह भी बताया कि निर्णय (प्रदर्श डी०डी०/30) में भी यह नहीं कहा गया है कि वंशावली पूर्णतः और बिना किसी विवाद के सही है किन्तु सुनिश्चित अभिव्यक्ति यह है—"परिवार की सम्पूर्ण वंशावली जो कि विवादग्रस्त है"। चूंकि वंशावली को पक्षकारों ने विक्रय-विलेख में नहीं माना, अतः इसका उस समय कोई मूल्य नहीं हो सकता जब निर्णय पक्षकारों के बीच नहीं है। अतः, इन कारणों से श्री तारकुण्डे द्वारा दिए गए तर्क निश्चित रूप से असफल होने चाहिएं।

156. अन्त में, सभी तीनों दस्तावेजों, प्रदर्श-बी, डी०डी०/30 और डी०डी०/31 वाद आरंभ होने के पश्चात कथन/दस्तावेज प्रस्तुत करने (पोस्ट लाइटम मोटम) के सिद्धान्त के विरुद्ध है। अतः, हम इस मुद्दे पर न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हैं। जहां तक प्रदर्श पी-2 का प्रश्न है जो कि वादमेंकेवल एक वादपत्र है, जो प्रदर्श डी०डी/30 की विषयवस्तु थी, जो कुछ डी०डी०/30 में सच है, वह समान रूप से प्रदर्श पी-2(खण्ड 4, पृष्ठ 245) को लागू होता है।

157. प्रदर्श ओ/3 (खण्ड 3, पृष्ठ 85) 1893 के हक वाद सं० 55 (वह वाद जो कि प्रदर्श डी०डी०/30 और डी०डी०/31 की विषयवस्तु था) में फाइल किया गया लिखित कथन है जिसमें महादेव प्रसाद सिंह ने भोला सिंह द्वारा किए गए सभी अभिकथनों से इन्कार किया है और स्पष्ट रूप से यह कहा है कि भोला सिंह जयमेद कुंवर का वारिस नहीं था, और यह कि वादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय-विलेख और करारनामा किसी प्रतिफल के बिना था और विधिमान्य नहीं है। अतः, इस दस्तावेज से वादियों का न केवल समर्थन ही नहीं होता, बल्कि इससे उनके मामले का खण्डन होता है और इससे हमें कोई सहायता नहीं मिलती।

158. इसके बाद हम प्रदर्श क्यू-2 (खण्ड 5, पृष्ठ 239) पर विचार करेंगे जिस पर प्रत्यर्थियों की ओर से काउन्सेल ने जोरदार अवलम्ब लिया है। यह दस्तावेज वंशावली के रूप में दिखाई देता है जिसे प्रतिवादी राम रतन सिंह और हरखन सिंह की ओर से पेश किया गया कहा जाता है। इस दस्तावेज को मुख्य रूप से वादियों के मामले में उनकी वंशावली को सिद्ध करने के उद्देश्य से आधार के रूप में प्रयुक्त किया गया है। तथापि, दुर्भाग्यवश, इतिवृत्त, वह रीति और वे परिस्थितियां जिनके अधीन इस दस्तावेज ने कई रूप बदले हैं, इस दस्तावेज के असली और प्रामाणिक होने के बारे में पर्याप्त सन्देह उत्पन्न करता है। प्रदर्श क्यू-2 का एक विवरण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खण्ड 4 के पृष्ठ 437-440 और दूसरा खण्ड 5 के पृष्ठ 239 पर है और तीसरा विवरण वह है जिसे इस न्यायालय को पटना उच्च न्यायालय के उप-रजिस्ट्रार द्वारा भेजा गया था, जिसने यह दावा किया था कि उसने इसे समनों और वकालतनामों के साथ प्रकीर्ण कागजपत्रों के एक बण्डल में से निकाला था। उप-रजिस्ट्रार का दावा है कि यह दस्तावेज (प्रदर्श क्यू-2) वही है जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के समक्ष था और जिस पर उन्होंने विचार किया था किन्तु जिसका न्यायाधीश जी० एन० प्रसाद और न्यायाधीश मुखर्जी के बहुमत के निर्णय में अवलम्ब लिया गया प्रतीत होता है और जिसे न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद के अल्पमत के निर्णय में नामंजूर कर दिया गया था। तथापि, दुर्भाग्यवश हम यह अवधारणा नहीं कर पा रहे है कि प्रदर्श-क्यू-2 के किन विवरणों पर न्यायालय ने वास्तव में विचार किया था। अपीलार्थियों के अनुसार, प्रदर्श क्यू-2 असली दस्तावेज नहीं है जो कि ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान वादियों द्वारा अभिकथित वर्तमान वाद के अभिलेखों में पेश कर दिया गया।

159. सबसे पहले प्रदर्श क्यू-2 को सिविल और सेशन न्यायाधीश, मिर्जापुर का प्रधान-लिपिक विचारण न्यायालय में लाया था। मूल दस्तावेज भी मांगी गई थी और अपीलार्थियों ने यह दृष्टिकोण अपनाया था कि दस्तावेज अत्यन्त संदिग्ध प्रकृति की थी। चाहे जो भी हो, चूंकि मूल दस्तावेज साक्ष्य में अंकित था, अतः न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने ठीक ही मत व्यक्त किया था कि दस्तावेज़ के संदिग्ध होने के बारे में अपीलार्थियों ने जिन मुद्दों पर बल दिया है, वे कायम नहीं रखे जा सकते। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रधान लिपिक, जिसकी प्रतिवादी-साक्षी-6 के रूप में परीक्षा की गई थी, ने यह कथन किया कि प्रमाणित प्रति को प्रदर्श क्यू-2 के रूप में अंकित किया गया था, यद्यपि पूर्वतर प्रविष्टियों से यह पता चलता है कि मूल प्रति भी प्रदर्श क्यू-2 के रूप में अंकित थी। प्रतिवादी-साक्षी-6 ने आगे चलकर यह माना कि अभिलेखों के साथ एक विषय-सूची भी थी जिसे लेकर वह आया था, किन्तु पूर्वोक्त सूची में वाद सं० का उल्लेख नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, उसने यह स्वीकार किया कि वह विषय-सूची में मद सं० 5 का अर्थ नहीं निकाल पाया और इसलिए वह यह नहीं कह सकता था कि दस्तावेजों की पूर्वोक्त सूची के भाग के रूप में कोई वंशावली उल्लिखित थी।

160. अन्त में, विद्वान न्यायाधीश ने यह कहा कि प्रतिवादी-साक्षी यह सिद्ध नहीं कर सका कि सम्बद्ध हक-वाद सं० 130/1856 के अभिलेखों का भाग है। वास्तव में चूंकि उस समय के बहुत से दस्तावेज़ वर्तमान वाद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में पेश किए जा चुके थे, यदि यह दस्तावेज भी उक्त वाद में फाइल कर दिया गया होता, तो वादियों को मूल दस्तावेज (प्रदर्श क्यू-2) की प्रामाणिकता की बाबत किसी भी सन्देह को दूर करने के लिए आदेश-पर्णी या दस्तावेजों की सूची प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती थी।

161. न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने एक अन्य परिस्थिति का अवलम्ब लिया है। वह यह है कि न तो न्यायालय का नाम और न ही वाद का संख्यांक अथवा पक्षकारों के नाम दिए गए हैं, और न ही न्यायालय की कोई मुद्रा लगी हुई है जिससे इस दस्तावेज को पहचाना जा सके या उसे पूर्वोक्त वाद से जोड़ा जा सके। दस्तावेज पर केवल तारीख 15-8-1856 दी गई है। प्रदर्श डी०डी०/39, 1856 के वाद सं० 130 में निर्णय से यह पता चलता है कि रामधीन प्रतिवादियों का वकील नहीं था। कई और परिस्थितियां भी हैं जिनका अवलम्ब विद्वान न्यायाधीश ने इस दस्तावेज के सत्यापन पर सन्देह करने के उद्देश्य से लिया है। अनेक परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात्, जिन्हें वर्तमान मामले में विस्तार-पूर्वक देने की हमें आवश्यकता नहीं है, विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"अतः, इस बात का विश्वास करना असंभव है कि दस्तावेजों को फाइल करते समय वंशावली में वे पृष्ठांकन, यदि वे वाद में थे भी तो विद्यमान थे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता कि यह मान लेने पर भी कि दस्तावेज पूर्वोक्त वाद में फाइल किए गए थे, उनमें रद्दोबदल की गई थी। किसी भी व्यक्ति को जिसे बंसीधर और बेत्तिया परिवार के बीच सम्बन्ध दिखाने में दिलचस्पी थी, उसी ने बिना यह विचार किए कि इससे अन्य दस्तावेज झूठे पड़ जाएंगे, ऐसा किया होगा।

... .

यह नहीं कहा जा सकता कि इस तथ्य से कि प्रतिवादियों के वकील ने वंशावली फाइल की थी, निश्चायक रूप से यह प्रकट होता है कि इसमें अन्तर्विष्ट कथन दोनों प्रतिवादियों में से किसी एक के द्वारा या दोनों द्वारा किए गए थे। वंशावली दोनों प्रतिवादियों की ओर से वाद में पैरवी करने वाले व्यक्ति से भिन्न किसी व्यक्ति के निर्देश पर तैयार की गई प्रतीत होती है। यह किसी भी प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है। अतः इस वंशावली के लेखक को साबित किया गया हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह इसकी अनुज्ञेयता के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रास्ते में एक अन्य कठिनाई है।"

(खण्ड 8, पृष्ठ 515, 517)

162. पूर्वोक्त परिस्थितियों के अलावा विद्वान न्यायाधीश ने इस दस्तावेज की विषयवस्तु के असली होने के विरुद्ध निम्नलिखित परिस्थितियों का अवलम्ब लिया है—

(1) यद्यपि यह वह वंशावली थी जो पक्षकारों के मामले की आधारशिला थी, फिर भी दस्तावेजों पर कोई प्रदर्श चिह्न नहीं था जो कि किसी भी वाद में स्वीकृत दस्तावेजों पर प्रायः होता है।

(2) पूर्वोक्त वाद में फाइल किए गए सभी महत्वपूर्ण दस्तावेजों की गणना निर्णय (प्रदर्श डी०डी०/39) में की गई है या उनका उल्लेख किया गया है, किन्तु इस वंशावली-सारणी का कोई उल्लेख नहीं है।

(3) इस मामले में कोई ऐसा विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है जिससे यह पता चल सके कि हरखन और रामरतन, विक्रम साही या विक्रम सिंह नामक व्यक्ति के, जो कि बंसीधर सिंह का कथित भाई है, वंशज थे। न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने बहुत सी अन्य विसंगतियां बताई हैं जिनका प्रत्यर्थियों की ओर से बहुमत निर्णय द्वारा या काउन्सेल द्वारा पर्याप्त रूप से खण्डन नहीं किया गया है।

163. अब हम प्रदर्श क्यू-2 की विषयवस्तु के बारे में सबसे गम्भीर समस्या पर विचार करेंगे। यह भी उल्लेखनीय है कि प्रदर्श क्यू-2 का प्रत्येक विवरण स्पष्ट तथा भिन्न है और यह अभिनिश्चित करना और चयन करना कठिन है कि तीनों विवरणों में से कौन-सा सही है। एक अन्य पारिस्थितिक साक्ष्य, जो दस्तावेज के असली होने पर गम्भीर सन्देह डालता है, यह है कि उस दस्तावेज का क्या हुआ जिसका न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद के मतानुसार निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा अनुवाद करवाया गया था। पटना उच्च न्यायालय के उप-रजिस्ट्रार के पत्र से यह सुझाव प्रतीत होता है कि तीसरा विवरण जिसे उसने समनों और वकालतनामों वाले कागजपत्रों के बण्डल में अचानक पाया था, असली था। यह सर्वथा समझ नहीं आता कि किस प्रकार से प्रदर्श क्यू-2 जैसा महत्वपूर्ण दस्तावेज, जो कि उच्च न्यायालय में पक्षकारों के बीच एक अत्यन्त गम्भीर वाद-विवाद का विषय था, ऐसे प्रकीर्ण कागजों में पाया गया जिनमें कोई महत्वपूर्ण प्रदर्श या दस्तावेजें नहीं थीं किन्तु जो समनों, वकालतनामों आदि जैसे औपचारिक कागजपत्रों को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रखने के प्रयोजन के लिए ही थे। हमारे लिए पटना उच्च न्यायालय के उप-रजिस्ट्रार के इस स्पष्टीकरण पर विश्वास करना कठिन है कि उसने अचानक ही कागजों के बण्डल में असली प्रदर्श क्यू-2 प्राप्त कर लिया और तब इसे इस न्यायालय को भेज दिया। किन्तु यह तथ्य है कि यद्यपि अन्य दोनों विवरण भेजे गए थे। यह दस्तावेज उस समय नहीं भेजा गया जबकि इस न्यायालय को अभिलेख भेजे गए थे।

164. प्रदर्श डी०डी०/39 (खण्ड 4, पृष्ठ 108) से यह प्रतीत होता है कि सुमन कौर और जयमेद कौर बेत्तिया राज के अन्तिम पुरुष धारक से सम्बन्धित थीं और बाद में वादी थीं जबकि राम रतन और अन्य प्रतिवादी थे। राम रतन के स्वर्गीय महाराजा या वादी के परिवार से सम्बन्ध होने को साबित नहीं किया गया है। उसका नाम भी वर्तमान वाद में उनके द्वारा प्रतिपादित वंशावली में वादियों द्वारा उल्लिखित नहीं किया गया है। चूंकि राम रतन का न तो बंसीधर सिंह और न ही रामरुच सिंह से कोई सम्बन्ध था, उसके प्लीडर द्वारा फाइल की गई वंशावली-सारणी साक्ष्य में अनुज्ञेय नहीं होगी।

165. इन दोषों को देखते हुए, श्री तारकुण्डे ने यह निवेदन किया कि वर्तमान वाद में अभिलेख-पुस्तक के खण्ड 5 में पृष्ठ 239 पर लाए गए प्रदर्श क्यू-2 का अवलम्ब लेना ठीक समझेंगे यद्यपि उन्होंने उसके लिए कोई विशेष कारण या न्यायौचित्य नहीं दिया। यह मान लेने पर भी कि खण्ड 5 में मुद्रित प्रदर्श क्यू-2 सही विवरण है, पूर्वोक्त वंशावली में फिर भी बहुत सी गलतियां और लोप हैं। ऐसा दिखाई देता है कि ठाकुर हृदय नारायण सिंह के पांच पुत्र थे अर्थात् अमर सिंह, बंसीधर सिंह, रुद्र साही, छत्र साही और विक्रम साही। हृदय नारायण सिंह का नाम प्रदर्श-जे में स्पष्ट रूप से दिया गया है जहां दुर्गा प्रसाद ने अपने पुत्रों के नाम उल्लिखित किए किन्तु न तो बंसीधर, न अमर सिंह न रुद्र साही और छत्र साही को हृदय नारायण सिंह के पुत्रों के नामों में पाया गया। दूसरी बात यह है कि रामरुच सिंह के, किसी भी तरह से बंसीधर या देवी सिंह से किसी सम्बन्ध का कोई उल्लेख नहीं है जिससे वाद वंशावली पूर्ण रूप से झूठी सिद्ध होती है और वह मूल कड़ी जो वादियों को स्वर्गीय महाराजा से जोड़ती है, पूर्णतः गायब है और इस वंशावली में गजराज सिंह का नाम भी कहीं दिखाई नहीं देता।

166. और भी कई अन्य लोप और खण्डन हैं किन्तु हमारे लिए यह कहना पर्याप्त होगा कि चूंकि मुख्य कड़ियों को जोड़ा नहीं गया है, अतः इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वंशावली से वादियों को कोई सहायता नहीं मिल सकती। इसके अतिरिक्त, यह वंशावली लोक दस्तावेज नहीं है किन्तु यह पूरी तरह से एक निजी दस्तावेज है और यह नहीं दिखाया गया है कि इस वंशावली को किसने, किस रीति में किस समय पर और किन परिस्थितियों में तैयार किया। किसी भी व्यक्ति की, जो इस दस्तावेज में उल्लिखित विभिन्न वारिसों के ज्ञान के विशेष स्रोत हैं, परीक्षा नहीं की गई है। इन परिस्थितियों में और पूर्वगामी कारणों से, हम रहस्यमय और अंधकार दस्तावेज का, जो कि प्रदर्श क्यू-2 है, अवलम्ब लेने में असमर्थ हैं।

167. प्रदर्श क्यू-5 स्वर्गीय महाराजा की एक अन्य वंशावली-सारणी है जिससे यह दर्शित होता है कि वह देवी सिंह का प्रत्यक्ष वंशज था। तथापि, इस दस्तावेज का, एक भाग फटा हुआ है और इसलिए इससे यह नहीं पता चल सकता कि फरमान सिंह का पूर्वज कौन था, न ही रामरुच या गजराज सिंह के प्रति ही कोई निर्देश है। किसी भी दशा में उच्च न्यायालय के बहुमत और अल्पमत, दोनों निर्णयों और विचारण न्यायालय के निर्णय द्वारा भी इस दस्तावेज को बिल्कुल जाली होने के कारण रद्द किया गया है। इस सम्बन्ध में न्यायाधीश मुखर्जी ने, बहुमत की ओर से बोलते हुए यह स्पष्ट रूप से पाया है कि यह दस्तावेज साक्ष्य में अननुज्ञेय है क्योंकि इसका शीतल द्वारा लिखा जाना अभिकथित है जिसे इस परिवार के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं थी। विद्वान् न्यायाधीश ने अवध बिहारी, प्रतिवादी साक्षी-32, जिससे प्रदर्श क्यू-5 को साबित करना तात्पर्यित था, के साक्ष्य में अनेक असंगतियां और खण्डन भी पाए हैं। न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने भी बड़े परिश्रम से यह दिखाया है कि इस दस्तावेज को ऐसे ही असली नहीं माना जा सकता क्योंकि वह कागज जिस पर लिखा गया है, पुराना है किन्तु उस पर लिखावट नई है। उसने यह भी पाया कि इस दस्तावेज को किसी न किसी तरह उस बस्ते में डाल दिया था जिसमें बेत्तिया राज के मामले के कागजात रखे गए थे। वे न्यायाधीश मुखर्जी से पूरी तरह से सहमत थे कि प्रतिवादी-साक्षी-32 बिल्कुल विश्वसनीय साक्षी नहीं था जिसके द्वारा प्रदर्श क्यू-5 पर शीतल के हस्ताक्षरों को साबित करना तात्पर्यित है। अतः इन कारणों से अनुमान और कल्पनाओं की परिधि में अधिक विचार किए बिना हम इन दोनों दस्तावेजों, प्रदर्श क्यू 2 और क्यू-5 को सर्वथा असंगत होने से सर्वथा महत्वहीन होने के कारण रद्द करते हैं।

168. श्री तारकुण्डे ने वंशावलियों में बताए गए दोषों और उनमें मुख्य कड़ियों के न होने की, इस आधार पर, सफाई दी है कि फाइल की गई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुछ वंशावलियों के मामले में पूर्वजों या अन्य संबंधित सम्बन्धियों के पूर्ण वंश-क्रम का उल्लेख आवश्यक नहीं, वंशावलियों के पूर्ण न होने से वादी न्यायालय से बाहर ही नहीं निकाल दिए जाएंगे या इससे वंशावलियों के सही होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। तथापि, हम इस स्पष्टीकरण को, जो कि भ्रामक होने के इलावा, द्वयर्थी और रहस्यमय है, मानने में असमर्थ हैं क्योंकि किसी वंशावली का प्रयोजन ही सभी महत्वपूर्ण और आवश्यक कड़ियों को जोड़ना होता है और अगर उससे ऐसा नहीं हो सकता तो वह किसी विधिक प्रभाव से अकिंचन बन जाती है और उसे पूरी तरह से छोड़ देना पड़ता है।

169. वादियों में से एक के पिता भगवती प्रसाद सिंह ने प्रदर्श पी-5 (खण्ड 4, पृष्ठ 407) जो कि उप-न्यायाधीश मिर्जापुर के न्यायालय में 1909 के वाद सं० 108 में फाइल किया गया एक वादपत्र है, का भी अवलम्ब लिया है। इस दस्तावेज को उस वंशावली पर जोर देने के प्रयोजन के लिए फाइल किया गया है जिसे इस वाद में वादियों ने फाइल किया है और जिसका उन्होंने अवलम्ब लिया है। पहली बात तो यह है कि श्री तारकुण्डे ने इस दस्तावेज का अधिक अवलम्ब नहीं लिया है; दूसरे, चूंकि वाद में वादपत्र पक्षकारों के बीच नहीं है, उसमें दिए गए विवरण साक्ष्य में अननुज्ञेय हैं; तीसरे, यह वंशावली, यदि यह सही भी हो, गजराज सिंह पर समाप्त हो जाती है जिसे कि वादियों के अन्तिम पूर्वज के रूप में दिखाया गया है। अपीलार्थियों ने इस तथ्य का विवाद नहीं किया है क्योंकि, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, आवश्यक विवाद गजराज सिंह के वंश और कुल परम्परा के बारे में है और यह दस्तावेज इस मुख्य प्रश्न पर कोई रोशनी नहीं डालता।

170. विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श के० के०/1 (खण्ड 7, पृष्ठ 2) पर अवलम्ब लिया गया किन्तु वादी की ओर से उपस्थित हो रहे श्री तारकुण्डे ने न्यायालय से इस दस्तावेज को अप्रत्यक्ष अवलम्ब लेने के लिए कहे बिना इसका मात्र उल्लेख ही किया है और हमारी राय में यह ठीक ही है क्योंकि यह दस्तावेज विवादग्रस्त विवाद को साबित करने के लिए पूर्णतः असंगत है और केवल करारनामे से सम्बन्धित है जिसका राजेन्द्र किशोर सिंह ने अपने पुत्र चिरंजीव राजकुमार हरेन्द्र किशोर सिंह (स्वर्गीय महाराजा) की जब तक वह वयस्क नहीं हो गया, सम्पत्तियों के प्रबन्ध करने के प्रयोजन के लिए एक समिति का नाम-निर्देशन करने के लिए निष्पादन किया था। इससे केवल बनारस के महाराजा और बेत्तिया के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वर्गीय महराजा का सम्बन्ध पता चलता है। अतः यह दस्तावेज़ कदाचित् संगत नहीं है और इसलिए इसे जहां तक वंशावली की बाबत वर्तमान विवाद का सम्बन्ध है, विचार करने से निकाला जा सकता है।

171. प्रदर्श के० और के०-1 को न केवल बहुमत निर्णय द्वारा बल्कि विचारण न्यायालय द्वारा भी रद्द किया गया है। इन परिस्थितियों में, हमारे लिए इन दस्तावेज़ों पर विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, हम यह बताने के लिए कि इनसे वादियों के मामले में समर्थन नहीं मिलता, इनका केवल सरसरी तौर पर उल्लेख करेंगे। इन दस्तावेज़ों पर कोई मुद्रा या हस्ताक्षर नहीं हैं, न ही यह पता लगाना संभव है कि ये दस्तावेज़ कब, कैसे और किन परिस्थितियों में अस्तित्वशील हो। प्रत्यक्षतः ये लोक दस्तावेज़ नहीं हैं और ये साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन साक्ष्य में अनुज्ञेय नहीं है। न्यायाधीश मुखर्जी ने बहुमत की ओर से बोलते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि ये दस्तावेज़ साक्ष्य में अननुज्ञेय हैं और इस प्रकार से मत व्यक्त किया है—

> "ये दस्तावेज़, प्रदर्श के० और के०-1, लोक दस्तावेज़ और शासकीय दस्तावेज़ के रूप में अभिकथित हैं और 1961 के हक वाद सं० 5 के वादियों के अनुसार वे उस रिपोर्ट, प्रदर्श-जे के परिशिष्टों और उपाबन्धों के रूप में हैं, जिन्हें लोक दस्तावेज़ के रूप में कथित किया गया है। हमारी राय में, यह साबित नहीं किया गया है कि ये दस्तावेज़ें, प्रदर्श के० और के० 1, किसी भी तरह से प्रदर्श-जे से सम्बन्धित हैं। इन दस्तावेज़ों पर कोई मुद्रांक या हस्ताक्षर नहीं हैं और यह कहना कठिन है कि ये दस्तावेज़ें कब अस्तित्व में आईं। इन परिस्थितियों में, 1961 के हक वाद सं० 5 में वादियों की ओर से दी गई इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकता कि ये दस्तावेज़ें लोक दस्तावेज़ें हैं? इन दस्तावेज़ों को साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन साक्ष्य में अनुज्ञेय होता नहीं कहा जा सकता।"
>
> (खण्ड 7, पृष्ठ 207)

172. इसी प्रकार, न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने इन दोनों दस्तावेज़ों पर टिप्पणी करते हुए और उनकी कमजोरियां बताते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला—

> "इस बात के किसी मूलभूत या गौण साक्ष्य के न होने के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण ये ज्ञात नहीं है कि ये एक लोक दस्तावेज़ है या शासकीय दस्तावेज है । इन सभी कथनों पर विचार करते हुए दोनों दस्तावेज़ न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अधीन अनुज्ञेय है न ही उनका, यदि उन्हें अनुज्ञेय मान भी लिया जाए, कुछ भी साक्ष्यिक मूल्य है ।"

(खण्ड 8, पृष्ठ 489)

173. ये दस्तावेजें, प्रदर्श-जे, दुर्गा प्रसाद की रिपोर्ट, के परिशिष्ट माने गए हैं और इसमें पहलवान सिंह के इन दस्तावेजों में उल्लिखित कुछ व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध के बारे में कुछ विवरण दिए गए हैं । किन्तु इनमें यह बताने को कुछ नहीं है कि ये दस्तावेजें या तो परिशिष्ट थे या प्रदर्श-जे के भाग थे, न ही उनका रिपोर्ट, प्रदर्श-जे, में स्पष्ट रूप से या आवश्यक विवक्षा द्वारा किसी स्थान पर कोई निर्देश किया गया है । इसके अतिरिक्त, उसने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने आवश्यक सामग्रियां इकट्ठी करने के लिए 'तुमर' अर्थात लेखा-पुस्तकों की जांच की थी । ये दस्तावेजें लेखा-पुस्तकों के रूप में बिलकुल नहीं हैं । अतः इन परिस्थितियों में सभी न्यायालयों ने इन दोनों दस्तावेजों को अननुज्ञेय होने और किसी विश्वास के योग्य न होने के रूप में मानकर नामंजूर करके ठीक ही किया है ।

174. प्रदर्श पी-7 (खण्ड 5, पृष्ठ 148) उप-न्यायाधीश, मिर्जापुर के न्यायालय में 1895 के वाद सं० 139 में वादपत्र की प्रमाणित प्रति भी है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह वादपत्र 26 जुलाई, 1895 को अर्थात् महारानी शिव रतन कुअर की, स्वर्गीय महाराजा की ज्येष्ठ विधवा, मृत्यु के पश्चात् फाइल किया गया था । उस मामले में राम नन्दन सिंह वादी था । पहली बात तो यह है कि यह दस्तावेज वाद आरम्भ होने के पश्चात् कथन/दस्तावेज प्रस्तुत करने के सिद्धान्त के विरुद्ध है क्योंकि स्वर्गीय महाराजा (हरेन्द्र किशोर सिंह) के उत्तराधिकारी का विवाद वर्ष 1893 में उसकी मृत्यु के साथ ही आरम्भ हो गया था । और वाद उसके दो वर्ष पश्चात् फाइल किया गया था और अतः यह असंगत है । दूसरे, वाद में वादपत्र के पक्षकारों के बीच न होने से इसका विवरण साक्ष्य में अननुज्ञेय है । जो एकमात्र दावा किया गया था, वह यह था कि बेत्तिया राज सम्पदा अविभाज्य सम्पदा थी, स्वर्गीय महाराजा की विधवाएं सीमित स्वामियों के रूप में भी उसकी सम्पत्तियों की उत्तराधिकारी नहीं हो सकती थीं । इस दस्तावेज की अन्तर्वस्तुओं में कोई भी महत्वपूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बात नहीं निकलती और इसका न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने अवलम्ब न लेकर ठीक ही किया है ।

175. प्रदर्श जी-2 (खण्ड 3, पृ० 31) से केवल यह पता चलता है कि स्वर्गीय महाराजा ने बेतिया में रेल लाइन के निर्माण के लिए सड़क बनाने के लिए परगना मझवा, जिला चम्पारण में भूमि के एक टुकड़े को दान में दिया था। किन्तु हम वर्तमान मामले के तथ्यों से इस दस्तावेज की किसी सुसंगति को नहीं पाते हैं।

176. प्रदर्श जी-2 /1 (खण्ड 3, पृष्ठ 32) एक अन्य विलेख है जिसे स्वर्गीय महाराजा ने समान प्रयोजन के लिए भूमि का दान करके निष्पादित किया है। यह दस्तावेज भी पूर्णतः असंगत प्रकट होता है और किसी भी महत्व का साबित नहीं होता ।

177. प्रदर्श एच-2 (खण्ड 3, पृष्ठ 163) वर्तमान विवाद के उद्भूत हो चुकने के पश्चात् 1905 के हक वाद सं० 34 की वादी द्वारा फाइल की गई एक वंशावली है। इस तथ्य को छोड़कर कि इस वंशावली में बहुत से महत्वपूर्ण नाम गायब हैं, गजराज सिंह, रामरुच सिंह, देवीसिंह या बंसीधर सिंह के नामों का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु जो सबसे बड़े पूर्वज का उल्लेख है, वह राजा उग्रसेन सिंह का है। अतः यह वंशावली वाद आरम्भ होने के पश्चात कथन/दस्तावेज प्रस्तुत करने के सिद्धांत के विरुद्ध होने के अतिरिक्त वादियों को कोई सहायता पहुंचाने वाली नहीं लगती और अत: इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए ।

178. प्रदर्श आर० (2) (खण्ड 3, पृष्ठ 95) महाराजा नवल किशोर सिंह द्वारा उसके पुत्र, राजेन्द्र किशोर सिंह के पक्ष में निष्पादित की गई मात्र वसीयत है। इससे इस दस्तावेज़ के वर्तमान वाद में लाए गए वादियों के मामले के बीच कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। अत: यह दस्तावेज भी प्रश्नगत मुद्दे का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए पूर्णत: असंगत है।

179. प्रदर्श क्यू-3 (खण्ड 4, पृष्ठ 423) 1968 के हक वाद संख्या 254 में फाइल की गई वंशावली सारणी है और इसमें राजा गज सिंह के वारिसों का वर्णन है, और इसे शिवहर परिवार के महाराजा राजेन्द्र किशोर सिंह से, जोकि स्वर्गीय महाराजा का पिता था, सम्बन्ध को साबित करने के उद्देश्य से फाइल किया गया प्रकट होता है। इससे भी गजराज सिंह के रामरुच सिंह, बंशीधर सिंह और देवी सिंह के साथ सम्बन्ध पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता और अत: यह भी किसी महत्व की नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

180. अन्य दस्तावेज़ों, जैसे प्रदर्श एन० एन०/8 (खण्ड 5, पृष्ठ 219) और बी/3 (खण्ड 3, पृष्ठ 205) केवल स्वर्गीय महाराजा की वंशावली को दिखाने के लिए और यह साबित करने के लिए, कि भोला सिंह जानकी कुंवर का निकटवर्ती उत्तरभोगी था, फाइल किए गए हैं। इस तथ्य को कि भोला सिंह उस समय जानकी कुंवर का निकटवर्ती उत्तरभोगी नहीं था, जबकि विक्रय-विलेख किया गया था, निर्णय, प्रदर्श डी० डी०/30 और डी० डी०/31 द्वारा दिखाया गया है। यह अलग बात है कि वह कुछ समय बाद निकटतम उत्तरभोगी बन गया हो। इस दस्तावेज़ों से यह भी पता चलता है कि पहलवान सिंह और रघुनाथ सिंह भाई थे, फिर भी रघुनाथ सिंह का नाम, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, वादियों द्वारा फाइल की गई विभिन्न वंशावलियों में कहीं दिखाई नहीं देता। इन्हें केवल यह दिखाने के लिए फाइल किया गया कि रघुनाथ सिंह बेतिया के महाराजा का "गोतिया" था। यह तथ्य का प्रतिवादी साक्षी-36 द्वारा भी साबित हुआ है किन्तु इससे हमें कोई सहायता नहीं मिलती।

181. यह साबित करने के लिए कि भोला सिंह भगवती प्रसाद सिंह का पूर्वज था, वादियों ने दस्तावेज़ों की कई श्रृंखलाएं फाइल की हैं। यदि इन दस्तावेजों को साबित कर भी दिया जाए तो भी वह उन्हें भोला सिंह तक और उनमें से कुछ गजराज सिंह तक भी ले जाती हैं किन्तु यह कड़ी इस मामले में इस मुख्य प्रश्न का, अर्थात् गजराज सिंह कैसे रामरुच, देवी सिंह और बंशीधर सिंह से सम्बन्धित था, अवधारण करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उदाहरण के लिए प्रदर्श जी० जी० जी०/13, 14 और 16 घोषणा के लिए वादों में "रहन" विलेखों, बंधकों, और वाद-पत्रों के रूप में कई दस्तावेज़ों के विवरण हैं, जैसे कि प्रदर्श डी० डी०/33, डी० डी० डी०/4 और 5, जी० जी० जी०/8 भी हैं जो अधिक से अधिक यह साबित करते हैं कि वादी गजराज सिंह के प्रत्यक्ष वंशज थे और हम, जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया है, इस मामले के प्रयोजन के लिए इस तथ्य की कि वादी गजराज सिंह के प्रत्यक्ष वंशज थे, यह उपधारणा कर लेंगे कि दोनों प्रकार का मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर्याप्त मात्रा में साबित हो चुका है। इस तथ्य को दस्तावेजों के एक अन्य समूह द्वारा भी, अर्थात् प्रदर्श जी० जी० जी/3, 4, 5 और 8, डब्ल्यू डब्ल्यू/1, 3 और 4, डी०डी०/40 और 38, एक्स०एक्स०/20, डब्ल्यू० डब्ल्यू०/2, वाई० वाई०/4 तथा पी०/4, साबित किया गया है। सब मिलाकर ये सब दस्तावेजें वादियों के भोला सिंह और ठीक गजराज सिंह तक उसके पूर्वजों से सम्बन्ध को साबित करते हैं किन्तु वे मुख्य "कड़ियों"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को साबित करने में पूर्णतः कम हैं ।

182. प्रदर्श-एच से केवल यह पता चलता है कि वर्ष 1829 में किसी समय पहलवान सिंह की मृत्यु के पश्चात् बलभद्र सिंह का नाम प्रतिस्थापित किया गया था । इस तथ्य में, जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, कोई विवाद नहीं है । यह दस्तावेज भी गजराज सिंह, देवी सिंह और रामरुच सिंह के बीच सम्बन्ध के बारे में निर्णायक प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं डालता और इससे हमें कोई सहायता नहीं मिलती ।

183. ऐसी ही हालत प्रदर्श-एम (खण्ड 3, पृष्ठ 66) के साथ है, जोकि पहलवान सिंह द्वारा निष्पादित की गई सशर्त विक्रय-विलेख है और वह हमें अधिक से अधिक देवी सिंह तक ले जाती है और यह प्रकट होता है कि स्वर्गीय महाराजा देवी सिंह का प्रत्यक्ष वंशज था । यह प्रश्न फिर भी बना रहता है कि गजराज सिंह और रामरुच सिंह के बीच सीधा सम्बन्ध क्या था; न ही इससे गजराज सिंह का देवी सिंह या बंसीधर सिंह के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है । दूसरे सबूतों में इस दस्तावेज से इस प्रश्न पर कि (यदि यह मान भी लिया जाए कि ऐसा होना चाहिए) वादी, गजराज सिंह के वंशज थे या गजराज सिंह के वंश के प्रश्न पर और उसके रामरुच सिंह देवी सिंह और बंसीधर सिंह के सम्बन्ध पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता और जब तक यह न हो जाए, उक्त दस्तावेज हमारे किसी काम का नहीं है ।

184. इसी प्रकार प्रदर्श डी० डी०/44 एक खाकार है, जिससे यह प्रकट होता है कि देवी सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र था और इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है यद्यपि देवी सिंह और गजराज सिंह के बीच कोई मुख्य कड़ी नहीं दिखाई गई है । दूसरे शब्दों में वादियों को सफल होने के लिए यह साबित करना होगा कि वह देवी सिंह के सगे भाई, रामरुच सिंह का पुत्र होने के नाते देवी सिंह का अपना भतीजा था । इस कड़ी को इन दस्तावेजों में से किसी द्वारा सिद्ध नहीं किया गया । अतः इन दस्तावेजों को प्रत्यक्षतः देखने पर यह प्रकट होगा कि वे वादियों के मामले में कोई सहायता नहीं देते ।

185. प्रदर्श क्यू-1 और टी-68 से भी भगवतीप्रसाद सिंह, भोला सिंह और गजराज सिंह के बीच सम्बन्ध के सबूत से सम्बन्धित वर्ग के अधीन आने वाले दस्तावेज हैं किन्तु साक्ष्य यहीं का यहीं समाप्त हो जाता है ।

186. प्रदर्श एफ/1 और जी० तालुक मझना में भूमियों के बारे में देवी सिंह द्वारा की गई विभिन्न टिप्पणियां हैं जिनसे यह साबित होता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवी सिंह एक जमींदार था, जिसके कब्जे में, जैसा कि प्रदर्श-जे में उल्लिखित है, तालुक मझवा था। तथापि, इन तथ्यों पर विवाद नहीं है क्योंकि देवी सिंह जो कि बंसीधर सिंह का पुत्र था और जिसका अन्तिम पूर्वज हृदय नारायण सिंह, मझवा, भूमियां निस्संदेह उसके कब्जे में थीं। किन्तु उससे वादियों का मामला तब तक नहीं सुधरता जब तक कि देवी सिंह रामरुच और गजराज सिंह के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध साबित नहीं हो जाता।

187. प्रदर्श एन० एन०/6 में बनारस राजपत्र से लिए गए उद्धरण हैं, जिनसे यह पता चलता है कि मझवा का बरीसल सिंह वह व्यक्ति था जो कि मरुई की लड़ाई में, जोकि वर्ष 1719 के लगभग हुई थी, मारा गया था। यह तथ्य प्रदर्श-जे में भी उल्लिखित है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वादियों ने इन दस्तावेज़ों के आधार पर अपने मामले को सिद्ध कर दिया है।

188. अन्य दस्तावेज़ों पर, उन दस्तावेज़ों को निर्दिष्ट करते समय, जिनके बारे में कहा गया है कि वे प्रदर्श-जे की संपुष्टि करते हैं, हमने पहले ही विचार कर लिया है।

189. वादियों द्वारा, प्रस्तुत किया गया सभी दस्तावेज़ी साक्ष्य उनके मामले के समर्थन में है। इन दस्तावेज़ों पर विस्तारपूर्वक और सूक्ष्मता से विचार करने के पश्चात् हम न्या० एम० एम० प्रसाद के इस विसम्मत निर्णय से पूरी तरह सहमत हैं कि वादियों ने यह सिद्ध नहीं किया कि वे किसी भी तरह से रामरुच सिंह, बंसीधर सिंह या देवी सिंह से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित थे। बहुमत निर्णय वाले मामले में न्यायाधीशों के प्रति सम्यक् सम्मान प्रकट करते हुए हम विवश होकर यह टिप्पणी कर रहे हैं कि उन्होंने पेश किए गए दस्तावेज़ के तथ्यत: विधिक और सुसंगत पहलुओं पर पूरी तरह से विचार नहीं किया; न ही उन्होंने यह विचार किया कि इस मामले में अन्तर्वलित मुख्य बातों को ध्यान में रखते हुए अन्तिम विश्लेषण पर पूरी तरह से और उचित रूप में विवेक-बुद्धि का प्रयोग करने पर किन-किन सही निष्कर्षों पर पहुंचा जा सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुमत वाले न्यायाधीशों, दस्तावेज़ों के, उनकी विषय-वस्तु, सुसंगति और महत्व को देखने की बजाय, उनके पुराने होने और उनके स्वरूप से अधिक प्रभावित हुए हैं। वादियों के बारे में यह प्रतीत होता है कि उन्होंने विभिन्न संयोजनों और क्रम परिवर्तनों की प्रक्रिया द्वारा ऊपर से सच्चा लगने वाला एक ऐसा मामला प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो कि देखते ही अत्यन्त मनोहर और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आकर्षक लगता है, किन्तु वादियों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का निकट से विश्लेषण करने पर हम उस निष्कर्ष से भिन्न निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते जो न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद ने निकाला है। निस्संदेह, यह सच है कि न्यायाधिपति मुखर्जी और जी० एन० प्रसाद के निर्णयों से यह प्रकट होता है कि उन्होंने अपने समक्ष लाए गए दस्तावेजों पर अपनी विवेक-बुद्धि का प्रयोग करके कड़ा परिश्रम किया है, किन्तु दुर्भाग्यवश उन्होंने तथ्यों और विधि के दोनों व्यापक पहलुओं पर जो अब हमारे समक्ष लाए गए हैं, या तो कोई बहस नहीं की या सम्यक् सम्मान से हम यह कह सकते हैं कि उन पर दस्तावेजों के ऊपरी महत्व का, उनकी बाबत गहराई से जांच किए बिना या उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण को देखे बिना, गहरा प्रभाव पड़ा।

190. विद्वान् न्यायाधीशों के प्रति सम्यक् सम्मान प्रकट करते हुए, हालांकि यह पुनरावृत्ति होगी, फिर भी हम यह कहना चाहेंगे, कि उन्होंने मुख्य प्रश्न पर, अर्थात् कि वादियों ने यह साबित किया था या नहीं कि गजराज सिंह का, जोकि निस्संदेह वादियों का पूर्वज था, किसी भी प्रकार से रामरुच सिंह, देवी सिंह और बंसीधर सिंह से कोई सम्बन्ध था, अपना ध्यान केन्द्रित नहीं किया। हमने निश्चायक रूप से बता दिया है कि वादियों द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजों से, रामरुच सिंह, देवी सिंह, गजराज सिंह और बंसीधर सिंह के बीच मूल कड़ी को, जोकि गायब है, साबित नहीं किया गया है और हमें यह विश्वास है कि यदि बहुमत वाले न्यायाधीशों ने मामले के इस पहलू पर अधिक बल और ध्यान दिया होता तो, सभी संभाव्यताओं में, वे न्यायाधीश एम० एम० प्रसाद द्वारा दिए गए निर्णय से बहुत कुछ सहमत हो जाते।

191. इससे अब हम अब उस अत्यधिक जटिल और अत्यन्त पेचीदा ऐतिहासिक मामले के समापन की ओर बढ़ते हैं जिसमें हमें लगभग दो शताब्दियों की कालावधि में विविधि तथ्यों और आंकड़ों, आधार-सामग्रियों और दस्तावेजों में से गुजर कर उन्हें पार करना पड़ा है। अन्तिम अध्याय में वादियों द्वारा प्रतिपादित वंशावली का मौखिक साक्ष्य है और हम उसी का, चाहे उच्च न्यायालय के बहुमत और अल्पमत निर्णयों में अभिव्यक्त की गई रायों पर पूर्ण विचार करने के पश्चात् उसका जो भी महत्व हो, निपटारा करेंगे।

192. तथापि, इस अध्याय को खोलने से पूर्व, मौखिक साक्ष्य द्वारा वंशावली के सबूत को शासित करने वाले मानदंडों और सिद्धांतों का, जिनकी रोशनी में उक्त साक्ष्य की हम परीक्षा करेंगे, पुनः कथन करना आवश्यक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होगा। यह सच है कि वंशावली की बाबत मौखिक साक्ष्य पर विचार करके कोई पूर्ण रूप से गणितीय दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता क्योंकि जहां एक शताब्दी से भी अधिक के वंश-क्रम को साबित करना हो, वहां यह बात स्पष्ट है कि जिन साक्षियों की, वंशावली में अभिसाक्ष्य देने के लिए, परीक्षा की जाती है, उनको अपनी जानकारी के विशेष स्रोत पर निर्भर करना होता है जो उन्हें उनके पूर्वजों से मिल सकती है, किन्तु साथ ही केवल स्मरण-शक्ति से दिए गए साक्षियों के साक्ष्य पर अनन्य रूप से विश्वास करने में एक बहुत ही जोखिम भरा और गम्भीर खतरा हो सकता है क्योंकि साक्षी जोकि हितबद्ध होते हैं, सामान्यतः अपनी कल्पना से अधिक काम लेते हैं और अपने पूर्वजों से सुने-सुनाए तथ्यों को, उन पक्षकारों की सहायता के लिए जिनके लिए वे अभिसाक्ष्य दे रहे होते हैं, तोड़-मरोड़ देते हैं। अतः न्यायालय को ऐसे पूर्वोपाय करने चाहिएं जिससे कि ऐसे साक्षियों के साक्ष्य को जोकि पूर्णतया कल्पना पर आधारित हो या जो विधि द्वारा यथापेक्षित जानकारी के विशेष स्रोत की बजाय काल्पनिक अथवा भ्रामक हो, स्वीकार न किया जाए। इस मामले में साक्षियों का मौखिक साक्ष्य सुनी-सुनाई बात ही है और जहां सुनी-सुनाई बात वाला साक्ष्य अनुज्ञेय न हो, वहां उनका साक्ष्य साधारण नियम के अपवाद के रूप में अनुज्ञेय होगा। इसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के खण्ड (5) में अन्तर्विष्ट विधि से चुना गया है जिसकी भाषा और भाव का अर्थान्वयन उसी रूप में किया जाना चाहिए जिसमें वह पास किया गया है।

193. ऐसे साक्षियों के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के उद्देश्य से निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा—

(1) रिश्तेदारी या सम्बन्ध, जोकि साक्षी का उस वादी से है; जिसका वंशावली के बारे में उसने अभिसाक्ष्य देना है, कितना निकट हो सकता है।

(2) जानकारी के उस विशेष स्रोत का स्वरूप और प्रकृति, जिसके द्वारा साक्षी को वंशावली के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ।

(3) सम्बद्ध साक्षियों की हितबद्ध प्रकृति।

(4) कोई ऐसी पूर्वावधानी जो कि किसी वाद आरम्भ होने के पश्चात् कथन/दस्तावेज प्रस्तुत करने हेतु साक्षी द्वारा किए गए किसी मिथ्या कथन को अपास्त करने के लिए अवश्य अपनाई जानी चाहिए और इसी प्रकार उस मिथ्या कथन को भी नामंजूर करने हेतु इसका प्रयोग किया जाना चाहिए जो किसी ज्ञान विशेष के माध्यम से ग्रहण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न किया हो बल्कि मात्र उसकी कल्पना पर आधारित हो ; और

(5) साक्षियों के साक्ष्य की, जहां तक समय और स्मरण शक्ति ले जाएं, सारभूत रूप से सम्पुष्टि की जानी चाहिए।

194. ये मोटी-मोटी रूपरेखाएं हैं, जिनके आधार पर, ऐसे मामलों में जिनके तथ्य बहुत पुराने हो चुके होते हैं, ऐसे मौखिक साक्ष्य को परखना होता है और उसका मूल्यांकन करना होता है।

195. बहादुर सिंह और अन्य बनाम महान सिंह और अन्य[1] के मामले में प्रिवी कौंसिल ने ऐसे कथनों को मानने के विरुद्ध न्यायालयों को सावधान किया है जोकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के खण्ड (5) के अधीन अननुज्ञेय हो सकते हैं और जिन्हें वाद आरम्भ होने के पश्चात् कथन/दस्तावेज़ प्रस्तुत करने (post litem motam) के लिए बनाया गया है। मामले के इस पहलू का वाद आरम्भ होने के पश्चात् कथन/दस्तावेज प्रस्तुत करने के सिद्धांत की चर्चा करते समय निपटाया गया था। हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि इस विशिष्ट मामले में लगभग सभी साक्षियों का साक्ष्य वाद आरम्भ होने के पश्चात् कथन/दस्तावेज़ प्रस्तुत करने वाला है।

196. देवी प्रसाद चौधरी और अन्य बनाम रानी राधा चौधराईन और अन्य[2] के मामले में इस विषय पर विधि का बड़ी अच्छी तरह से प्रतिपादन और इसे स्पष्ट रूप से सुनिश्चित किया गया था और ऐसे मामलों में विश्वसनीय साक्ष्य की प्रकृति का वर्णन करते हुए प्रिवी कौंसिल ने निम्नलिखित संप्रेक्षण किए—

"इस बात में कोई संदेह नहीं है कि, इसकी विशेषता को देखते हुए, यह अनुज्ञेय साक्ष्य है। उच्च न्यायालय ने एकमात्र आलोचना यह की है कि यह अपीलार्थियों के सम्बन्धियों द्वारा दी गई है; किन्तु यह समझना कठिन है कि ऐसा साक्ष्य और किस जगह मिल सकता है या दूसरों के मुख से इसका कोई मूल्य हो भी सकता है। उस प्रत्येक व्यक्ति की, जिसने उस वंशावली के बारे में बताया है, ध्यानपूर्वक प्रतिपरीक्षा की गई है और प्रत्येक व्यक्ति ने, वंशावली से हटकर, ऐसी परिस्थितियों को साबित किया है जो उसकी जानकारी और मान्यता का समर्थन करती हैं। वंशावली का यह मामला रटे-रटाए

[1] (1902) 29 आई० ए० 1.

[2] (1904) 31 आई० ए० 160.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मामले जैसा नहीं है किन्तु जहां तक समय और स्मरण शक्ति ले जाते हैं, इसकी परिस्थितियों को देखते हुए संपुष्टि भी होती है।"

(रेखांकन हमने किया है)

197. अब्दुल गफ्फूर और अन्य बनाम हुसैन बीबी और अन्य[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने इस बाबत संक्षेप में विधि का निम्नलिखित शब्दों में निष्कर्ष निकाला—

"यह बात लम्बे समय से मानी गई है कि वंशावली के प्रश्नों पर, मैं इस आधार पर कल्पना करता हूं कि वे बहुत ही बीते हुए समय से सम्बन्धित मामले थे और वास्तव में न्याय करने के प्रयोजनों के लिए साक्ष्य के कठोर नियमों को शिथिल करना आवश्यक था, चाहे किन्हीं कारणों से, उन पर कोई संदेह करने से पूर्व, वाद-पूर्व कथन/दस्तावेज़ (ante litem motam) प्रस्तुत किए गए परिवार के मृत सदस्यों के कथन, वंशावली को साबित करने के लिए साक्ष्य हैं। और परिवार के मृत सदस्यों के ऐसे कथन न केवल यह दिखाकर कि वे वास्तव में उनके द्वारा किए गए कथन हैं बल्कि यह दिखाकर भी साबित किए जा सकते हैं कि उन्होंने उन पर अमल किया, उनकी मंजूरी दी या ऐसी कोई बात की जिससे यह पता चले कि उन्होंने उन्हें मान्यता दी।"

[स्टुर्ला बनाम फरेशिया—(1880) 5 ए० सी० 623]

"इस प्रकार से प्रतिपादित साक्ष्य का यह नियम भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 की उपधारा (6) के निबंधनों के अनुसार है जोकि वर्तमान मामले में लागू होता है।"

198. मेवा सिंह और अन्य बनाम बसंत सिंह और अन्य[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने उस रीति के बारे में बहुत ही उपयुक्त और मूल्यवान संप्रेक्षण किए हैं, जिनमें किसी वंशावली को साबित किया जा सकता है और यह बताया कि सफल होने के लिए वादियों को अपने आप को चौदहवीं पीढ़ी के भीतर लाना होगा और इस सम्बन्ध में उसने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"किसी वंशावली में सबसे पुराने नामों को पहले जान लेना

[1] (1931) 58 आई० ए० 188.
[2] ए० आई० आर० 1918 पी० सी० 49.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और पहले ही उनका विवरण देना स्वाभाविक है और ये पूर्वतम पीढ़ियों के नाम उनके जीवन की समस्त विश्वसनीय स्मरण-शक्ति के बीत जाने के पर्याप्त पश्चात् उनके उचित क्रम में बने रह सकते हैं।

... ...

वे लोग जो उत्तरभोगी वारिसों के रूप में दावा करते हैं उन्हें अपने आपको वंशावलियों की आवश्यक संख्या, अर्थात् चौदह, के भीतर लाना होगा। उन्हें यह अवश्य दर्शित करना होगा कि वे निकट वारिस हैं और काफी निकट हैं।"

199. इसी आशय का प्रिवी कौंसिल का एक अन्य विनिश्चय **भोजराज बनाम सीता राम और अन्य**[1] है। हम पहले ही बता चुके हैं कि पूर्वोक्त मामलों में हमने जो सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं, वे प्रिवी कौंसिल द्वारा कहे गए सिद्धांतों से पूर्णतः संगत हैं और हम उनका पूर्णतः समर्थन करते हैं। इन मामलों में से किसी में भी यह अभिकथित नहीं है कि न्यायालयों को वंशावली के मामलों में साक्षियों की सत्यता या विश्वसनीयता का वस्तुनिष्ठ आंकन निलम्बित कर देना चाहिए; न ही विनिश्चयों से मौखिक साक्ष्य पेश करने के लिए व्यापक रूप से लागू होने वाला कोई ठोस सूत्र ही मिलता है, जोकि न्यायिक संवीक्षा से गुजर सके।

200. श्री तारकुन्डे ने विशेष तौर से न्यायालय द्वारा किए गए संसर्ग को दिखाने के लिए ऊपर उद्धृत **देवी प्रसाद चौधरी**[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल के संप्रेक्षणों का अवलम्ब लिया है। उस मामले के अनुपात से किसी भी तरह से जो कुछ हमने ऊपर कहा है, असंगत नहीं है। प्रिवी कौंसिल ने उच्च न्यायालय के विचार को इसलिए नहीं माना क्योंकि उनकी राय में उच्च न्यायालय ने मौखिक साक्ष्य को केवल इस आधार पर रद्द कर दिया था कि साक्षी अपीलार्थियों से सम्बन्धित थे। यह बात स्पष्ट रूप से गलत थी।

201. इसी प्रकार अन्य मामले, जिनका अवलम्ब लिया गया और जिनके बारे में ऊपर पहले से चर्चा हो चुकी है, यह अभिकथन नहीं करते कि जहां कहीं साक्षी पुरानी वंशावली के बारे में बताते हैं, वहां उसे वेद-वाक्य के रूप में मान लेना चाहिए। साक्षियों के साक्ष्य की पूरी तरह से तथा प्रिवी कौंसिल और इस न्यायालय द्वारा अधिकथित मानकों के अनुसार बहुत ही

---

1 ए० आई० आर० 1936 पी० सी० 60.

2. (1904) 31 आई० ए० 160.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बारीकी से जांच की जानी चाहिए।

202. पूर्वोक्त नजीरों के अलावा कुछ ऐसी प्रसिद्ध पाठ्य-पुस्तकें हैं, जिनमें वंशावली साक्ष्य को आंकने के लिए कतिपय सिद्धांत भी अधिकथित किए गए हैं "साक्ष्य पर निबन्ध" (Treatise on Evidence) में टेलर ने पृष्ठ 414 के पैरा 648 पर यह कहा है कि मृत व्यक्तियों के सम्बन्धियों द्वारा की गई घोषणाओं का, जो हितबद्ध दावेदारों द्वारा अभिसाक्ष्य में दी जाती हैं, अधिक महत्व नहीं होगा क्योंकि ये घोषणाएं सम्बन्धियों द्वारा दावा उद्भूत हो चुकने के विरोध करने के पश्चात् पहली बार की जाती हैं। इस प्रकार के साक्ष्य को मानने में न्यायालय जान-बूझकर कपट द्वारा धोखे में आने की जोखिम उठाता है। आगे चलकर लेखक ने इस प्रकार कथन किया है—

> "उसके साक्ष्य के सही होने का अति न्यून अवलम्ब लिया जा सकता है, क्योंकि पुरुष जानबूझकर तथ्यों को झुठलाने के आशय के बिना, इस बात का विश्वास करने की अत्यंत प्रवृत्ति धारण करते हैं कि उन्होंने क्या चाहा, विश्वास किया, सुना और वे स्मरण शक्ति को ही आधार मानते हैं जोकि मात्र कल्पना का परिणाम होता है।"

203. ऐसा ही विचार लोवट पीरेज[1] वाले मामले में व्यक्त किया गया था जोकि यह बताने के लिए एक उदाहरण है कि किस प्रकार से कभी-कभी सुनी-सुनाई बात वाला साक्ष्य गम्भीर परिणामों से परिपूर्ण हो सकता है। इस मामले में, इस बात पर बल दिया गया कि किसी मृत संबंधी के कथन को साबित करने वाली वंशावली की जानकारी प्राप्त करने का समय; अवसर और रीति सत्यता को परखने के लिए निर्णायक होते हैं और साक्षी द्वारा सुनवाई गई काल्पनिक कथा अन्त में मात्र एक गप्प निकल सकती है। रिपोर्ट के पृष्ठ 783 पर लार्ड वाटसन ने यह बताया कि पुराने साक्षियों के अभिसाक्ष्यों को लेने में, न्यायालय को इस बात पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए कि उन लोगों के मन में, जिन्होंने दावेदार का मामला साबित किया है, गलत विचार हो सकता है।

204. "साक्ष्य" पर विगमोर ने खण्ड 5 के पृष्ठ 296 और 297 पर कुल मिलाकर ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं और निम्नलिखित रूप में

---

[1] (1884-85) 10 ए० सी० 763.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मत व्यक्त किया है—

> "तदनुसार वैयक्तिक घोषणाओं के प्रयोग के लिए एकमात्र साधार नियम यह है कि घोषणा करने वाला व्यक्ति अपने आपको यह दिखाए कि वह स्वयं अनुपलभ्य है।
>
> ....
>
> विश्वसनीयता का पारिस्थितिक संकेत इस संभाव्यता में पाया गया है कि उन लोगों का "प्राकृतिक स्राव" (लार्ड एल्डन के बहुधा कथित वाक्यांश का प्रयोग करके) जोकि पक्षपातपूर्ण होते हैं या भावावेश में रहते हैं पर्याप्त रूप से विश्वसनीय होते हैं और इन बातों पर न्यायाधीशों और जूरी को महत्व देना चाहिए क्योंकि ये बातें जीवन के सामान्य मामलों में होती हैं।"

205. लेखक ने यह भी बताया है कि ऐसी घोषणाएं जोकि किसी वाद-विवाद के उठने से पूर्व की गई थीं, अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। इस पहलू पर ऊपर निर्दिष्ट प्रिवी कौंसिल के मामलों में से एक में जोर भी दिया गया है।

206. बहुमत न्यायाधीशों और विसम्मत न्यायाधीशों के बीच मौखिक साक्ष्य के समर्थन में मोटे तौर पर मतभेद है किन्तु कुछ साक्षियों के मामले में सभी तीनों न्यायाधीशों ने उक्त साक्षियों के साक्ष्य का अवलम्ब लेने से इन्कार कर दिया है, जिसे आरम्भ में ही निकाल देना होगा। वादियों द्वारा परीक्षित साक्षियों को प्रतिवादी के रूप में दिखाया गया है क्योंकि एक समय ऐसा था जब वादी अन्य प्रतिवादी-दावेदारों द्वारा लाए गए वाद में प्रतिवादी थे किन्तु जब वादियों ने स्वर्गीय महाराजा के निकट उत्तरभोगी होने के नाते एक प्रबल दावा करते हुए वर्तमान वाद स्वयं फाइल किया तो उनके साक्षी प्रतिवादी साक्षियों के रूप में बने रहे हालांकि वे वास्तव में वादियों के साक्षी थे। विचारण न्यायालय को चाहिए था कि वादियों और प्रतिवादियों के साक्षियों के बीच भिन्नता दिखाने के लिए कोई चिह्न जरूर लगा देती किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं किया गया। तथापि, साक्षियों के पूर्वोक्त विवरण पर कोई विवाद नहीं है अतः इस मामले पर हमें अधिक विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

207. सबसे पहले वंशावली के मुद्दे के बारे में वादियों के साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करके हम मानव स्मृति की अपूर्णताओं और कमियों का वर्णन करना चाहेंगे क्योंकि इसी से यह अभिनिर्धारित किया जाएगा कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साक्ष्य पर कितना निर्भर किया जा सकता है।

208. वास्तव में नश्वर मनुष्य की तरह मानव स्मृति भी दोषरहित नहीं है। यह देखे गए तथ्यों और घटनाओं को कुछ सुनिश्चितता और विशुद्धता से अंकित करती है किन्तु जब तक कि तथ्य और घटनाएं निहित रूप में अंकित या अभिलिखित न कर ली जाएं, समय के अन्तराल या दूरी से तथ्य या घटनाएं धूमिल पड़ जाती हैं। घटना-क्रम भंग हो जाते हैं, सुसंगति नहीं रहती, यथार्थता का स्थान कल्पना ले लेती है। क्रमबद्धता धीरे-धीरे लुप्त होने लगती है। स्मृति मंद पड़ने लगती है। भ्रान्ति और भी जटिल हो जाती है। स्मृति का स्थान विस्मृति ले लेती है जिसके फलस्वरूप स्मृति द्वारा पहले अंकित किए गए तथ्यों का विखंडन हो जाता है। यह उन तथ्यों में भी उसी प्रकार लागू होता है जो एक व्यक्ति ने किसी से सुने मात्र हैं। इस प्रकार, यदि ऐसा व्यक्ति जो कुछ तथ्यों या घटनाओं को दूसरे से सुनता मात्र है, उन्हें गणितीय सुनिश्चितता या पूर्ण विशुद्धता से एक लम्बे अन्तराल के बाद दोहराता है तो यह अनैसर्गिक और अविश्वसनीय है तथा सामान्य मानव आचरण के विपरीत होने के कारण उसमें से मनगढ़न्त और बनावटी होने की गंध आती है जब तक कि वह किसी विशेष या अत्यन्त असाधारण जीवन की घटना को न दोहराए, जिसे कोई भी कभी नहीं भूल सकता अथवा जहां किसी व्यक्ति की किसी विशेष घटना के घटने पर किसी सदृश्य तथ्य की याद दिलाई जाती है जिससे भूतकाल पर प्रकाश पड़ता है, जैसे विवाह, मृत्यु, विवाह-विच्छेद, दुर्घटना, निराशा, असफलता, युद्ध, अकाल, भूचाल, महामारी (जिससे जनता पर व्यक्तिगत रूप से प्रभाव पड़ता है) आदि और वह व्यक्ति उपरोक्त घटनाओं की बाबत स्मृति को ताजा करता है। निस्संदेह यदि कोई व्यक्ति ऐसा अनुकरणीय, मेधावी या ज्ञानी महापुरुष है जिसकी स्मृति बहुत तीक्ष्ण और विलक्षण है तो बात भिन्न हो सकती है, किन्तु ऐसे व्यक्ति हर रोज पैदा नहीं होते। उदाहरण के लिए, इस मामले में यह कहना कि सभी साक्षी प्रतिभावान होते हैं, असंभव है। मानव-स्मृति की कमजोरी और अनिश्चितता एक सामान्य बात है। इस मामले में परीक्षित व्यक्तियों के साक्षी सामान्य मनुष्य हैं, जिनमें आम आदमी जैसी कमियां और त्रुटियां हैं।

209. मानव स्मृति की विचित्रताओं का उल्लेख करते हुए यूगो बेरी ने सुन्दर और सही ढंग से विचार व्यक्त किया है—

> "स्मृतियां पत्थरों की तरह होती हैं। समय और दूरी अम्ल की भान्ति उन्हें खण्डित कर देते हैं।"

(पृष्ठ 395, दि इन्टरनेशनल थेसोरस ऑफ कोटेशन्स : रोडा थामस ट्रिप)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

210. इसी दृष्टि से सर रिचर्ड बर्टन ने अपने लेख "सिन्द रिविजिटिड" में अपने विचारगर्भित पूर्ण अनुभवों का निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया है—

"स्मृति का इन्द्रजाल कितना अजीब है जोकि मनुष्य के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं के बारे में स्वप्न की भान्ति प्रायः धुंधली होती है और धार्मिक दृष्टि से बहुत छोटी-छोटी बातों को भी ध्यान में रखती है।"

(पृष्ठ 365, दी इन्टरनेशनल थेसोरस ऑफ कोटेशन्स : रोडा थामस ट्रिप)

211. इसी प्रकार "दी आर्ट आफ वल्र्डली विज्डम" में बाल्तशर ग्रेसियन ने मानव स्मृति की भंगुरता को बहुत ही सटीक शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—

"सबसे अधिक हमें वे बातें याद रहती हैं, जिनका भूलना अच्छा होता है।"

212. अब हम ऊपर प्रतिपादित सिद्धांतों के प्रकाश में वादियों के साक्ष्य पर विचार और विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

213. वादियों के समूह द्वारा पेश किए गए मौखिक साक्ष्य में प्रतिवादी साक्षी नम्बर 13, 21, 32, 33, 34, 35, 36 और कुछ सीमा तक वादी साक्षी 40 का परिसाक्ष्य आता है। इसमें से कुछ साक्षियों की परीक्षा कमीशन पर की गई जो अलग-अलग साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करते समय स्पष्ट हो जाएगा।

214. आरम्भ में, जहां तक प्रतिवादी साक्षी-32, अवध बिहारी लाल (जिल्द 1 पृष्ठ 411) के साक्ष्य का सम्बन्ध है, इसे उच्च न्यायालय के बहुमत और अल्पमत दोनों निर्णयों से तथा विचारण न्यायालय द्वारा भी अस्वीकार कर दिया गया है। बहुमत का निर्णय देते हुए न्या० मुखर्जी ने प्रतिवादी साक्षी 32 के साक्ष्य पर ध्यानपूर्वक बारीकी से विचार करने के बाद निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

"मैं निचले न्यायालय में प्रतिवादी साक्षी-32 द्वारा किए गए कथन के बारे में ऊपर पहले ही उल्लेख कर चुका हूं और चूंकि वह संग्राही साक्षी प्रतीत होता है और उसके साक्ष्य में अनेक असंगतियां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैं, इसलिए इस न्यायालय द्वारा उसके कथन का अवलम्ब लेना उचित नहीं होगा।"

—(जिल्द 8, पृष्ठ 241)

215. इसी प्रकार न्या० एम० एम० प्रसाद ने जिन्होंने विसम्मत निर्णय दिया था, इस साक्षी का कथन निम्नलिखित शब्दों में अस्वीकार कर दिया था—

> "अन्ततोगत्वा, साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि वह इन वादियों के पिता श्री भगवती प्रसाद सिंह का सहपाठी था। इससे साफ पता चलता है कि साक्षी एक विशिष्ट पक्ष का साक्षी है जो पक्षकार की सहायता के लिए कुछ भी कर सकता है तथा ऐसी सहायता की खातिर अपने आपको हास्यास्पद भी बना सकता है। मेरे मतानुसार इस साक्षी पर बिल्कुल भी निर्भर नहीं किया जा सकता।"

216. इस साक्षी के साक्ष्य का विचारण न्यायालय ने भी कोई अवलम्ब नहीं लिया। इन परिस्थितियों में, हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिवादी साक्षी-32 के साक्ष्य पर विचार किया जाए और उन प्रतिवादियों के काउन्सेल ने उसके साक्ष्य का अवलम्ब लिया।

217. प्रतिवादी साक्षी-33, भैरों प्रसाद का साक्ष्य (जिल्द 1; पृष्ठ 433) न्या० एम० एम० प्रसाद ने नामंजूर कर दिया, यद्यपि बहुमत ने स्वीकार कर लिया था, किन्तु हमारी राय में, ऐसा गलत किया गया। इस साक्षी के साक्ष्य पर विचार करने से पूर्व हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि विचारण न्यायालय ने इन दो साक्षियों को प्रतिवादी साक्षी-33 के रूप में साक्ष्यांकित किया अर्थात् भैरों प्रसाद जो विचारण वाद संख्या 5/1961 में मुख्य साक्षी था और कमला प्रसाद सिंह (जिल्द 1, पृष्ठ 299) जो विचारण वाद सं० 25/1985 में साक्षी था। विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय ने भी कमला प्रसाद सिंह के साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया जिससे हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। मुख्यतः हमारा सम्बन्ध प्रतिवादी साक्षी-33, भैरों प्रसाद सिंह से है, जिसे वाद संख्या 5/1961 में वंशावली के मुद्दे के रूप में परीक्षित किया गया था और प्रस्तुत मामले में हमें उसी के साक्ष्य पर विचार करना है।

218. यह सही है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के विसम्मत न्यायाधीश दोनों ने भैरों प्रसाद सिंह का साक्ष्य अस्वीकार कर दिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था किन्तु न्या० मुखर्जी बहुमत का निर्णय देते हुए एक भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचे थे और उन्होंने यह मत व्यक्त किया था कि भैरों प्रसाद एक हितबद्ध साक्षी नहीं है तथा उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। सम्यक् आदरपूर्वक, उसके साक्ष्य का परिशीलन करने के बाद हम न्या० मुखर्जी से सहमत होने में असमर्थ हैं और इसके बाद दिए गए कारणों से हमारा यह समाधान हो गया है कि इस साक्षी के साक्ष्य का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता।

219. आरम्भ में हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि वह उन साक्षियों में से है जो लगभग 80 वर्ष का है, जबकि साक्षी ने अपनी आयु 85-86 वर्ष बताई। उस कमिश्नर ने जिसके समक्ष उसकी परीक्षा की गई थी, उसकी आयु 75 वर्ष जांची जो न्या० मुखर्जी द्वारा स्वीकृत प्रतीत होती है। हालांकि यह एक बहुत छोटी-सी भूल है, ऐसा प्रतीत होता है कि न्या० मुखर्जी ने इस बात को अनदेखा कर दिया है कि अपनी आयु अधिक बतलाकर इस प्रकार के मामले में समर्थन देने के लिए ग्रामीण लोग ऐसा करते हैं जिससे कि पुरानी वंशावली साबित करने के लिए वे निजी जानकारी का पुट दे सकें। इसके विपरीत प्लीडर कमिश्नर, जिन्होंने साक्ष्य लेखबद्ध किया था, वकील और शिक्षित व्यक्ति होने के कारण साक्षी की सही आयु का अन्दाज़ा लगाने में कहीं बेहतर स्थिति में होगा। बहरहाल, इस त्रुटि का कोई खास महत्व नहीं है और हम यह मानकर चलेंगे कि साक्षी की वृद्धावस्था की दृष्टि से, उसके साक्ष्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह साक्षी वादी राधाकृष्ण सिंह के पिता भगवती प्रसाद सिंह के परिवार से निकट सम्बन्ध रखता था, क्योंकि उसने स्वीकार किया है कि उसने भगवती प्रसाद सिंह के परिवार की ओर से अनेक दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर किए हैं। न्या० मुखर्जी का यह भी निष्कर्ष था कि साक्षी का भगवती प्रसाद सिंह के परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध था क्योंकि इस साक्षी और उसके पूर्वजों ने परिवार के विभिन्न सदस्यों के लिए अनेक दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए हैं। अतः इस आधार पर विद्वान् न्यायाधीश ने सोचा कि किसी अन्य साक्षी की अपेक्षा वंशावली के बारे में साक्ष्य देने के लिए वह सबसे अधिक सक्षम साक्षी होगा। यदि यह मान लिया जाए कि न्या० मुखर्जी ने जो कुछ कहा है, वह सही है तो भी यह बात शेष रहती है कि वादियों के परिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वादी स्वतन्त्र साक्षी है और वह उनके मामले की सफलता में बहुत अधिक हितबद्ध था। यद्यपि यह उसके परिसाक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए एकमात्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आधार नहीं हो सकता, फिर भी उसके साक्ष्य पर बहुत सावधानी और ध्यानपूर्वक विचार करना होगा, विशेष रूप से जबकि वह प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में साक्ष्य नहीं दे रहा है बल्कि वंशावली के ऐसे साक्षी के बारे में साक्ष्य दे रहा है, जिसके बारे में उसने अपने पूर्वजों से सुना होगा। उसके साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए न्या० मुखर्जी ने जो दृष्टिकोण अपनाया है, वह सही प्रतीत नहीं होता। विद्वान् न्यायाधीश ने अनेक दस्तावेजों का हवाला दिया है, जिनका प्रश्नगत वंशावली से कोई सरोकार नहीं है। वंशावली के प्रश्न के बारे में जोकि अवधारण के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न था, विद्वान न्यायाधीश ने इस साक्षी के मौखिक साक्ष्य का गुणागुण के आधार पर विचार नहीं किया। अतः हम वंशावली सम्बन्धी प्रश्न के बारे में उसके साक्ष्य पर विचार करेंगे जोकि उस समय साबित करने के लिए एकमात्र मुद्दा था, जबकि उसकी परीक्षा की गई थी।

220. बंशीधर सिंह से लेकर वादियों की वंशावली का उल्लेख करने के बाद उसने कहा कि उसे उस वंशावली की जानकारी नन्द कुमार सिंह, जगत बहादुर सिंह से एवं उसके दादा, कामता प्रसाद, भगवती प्रसाद, महादेव सिंह से मिली है। इस साक्ष्य के अनुसार, महादेव को छोड़कर वे सब सम्बद्ध व्यक्ति, जिनसे उसे वंशावली की जानकारी मिली थी, सब मर चुके हैं। जहां तक महादेव सिंह से प्राप्त उसकी जानकारी का सम्बन्ध है, यह अननुज्ञात होने के कारण अग्राह्य है क्योंकि उसके अनुसार महादेव सिंह जीवित है। अपने साक्ष्य पृष्ठ 439, पैरा 51 पर उसने कहा है कि उसके द्वारा वर्णित व्यक्तियों द्वारा वंशावली का वृतांत चैत, 1894 (हिन्दी संवत् वर्ष) किया गया था—तत्स्थानी फसली वर्ष उसे याद नहीं था अर्थात् जिस समय वह 15 वर्ष का था, यदि अपनी आयु का उसका अनुमान सही है। यदि हम उसके साक्ष्य को लेखबद्ध करने वाले कमिश्नर का अनुमान स्वीकार करलें तो वह लगभग 5 वर्ष का रहा होगा और उस स्थिति में यह विश्वास करना असम्भव है कि वह इतने लम्बे समय के बाद इतनी चली आ रही लम्बी वंशावली को याद रखने की स्थिति में होगा, क्योंकि जब उसने यह सुना था। उस समय वह यथास्थिति 5 या 15 वर्ष का लड़का था न्या० मुखर्जी ने विषय के इस पहलू को पूर्णतः अनदेखा कर दिया है। किन्तु यदि यह मान लि जाए कि वह 85 वर्ष का था और इसलिए उस समय 15 वर्ष का था वृत्तान्त की घटना घटी थी, तो भी उसने ऐसा कोई विशिष्ट अवस बताया जब इतने सारे व्यक्तियों ने उसे वंशावली का वृत्तान्त सुनाय उसने स्वीकार किया है कि उसे वह पक्की तारीख याद नहीं है ऊपर

स नहीं

था, रोना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वृत्तान्त सुनाया गया था और न ही उसने किसी कागज़ पर इसे अंकित किया बल्कि वह पूर्णतः अपनी स्मृति से बता रहा है। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने जिन व्यक्तियों का उल्लेख किया है उन सबने वंशावली का उल्लेख एक ही बैठक में किया था, फिर भी वह उस विशेष अवसर को बताने में असमर्थ है जिस पर वह वृत्तान्त दिया गया था। जहां तक उसके दादा का सम्बन्ध है, उसका कहना है कि उसके दादा ने वंशावली का उल्लेख 1895 में किया था, यद्यपि उसे वह मास याद नहीं है, और न ही उसने किसी कागज़ पर उसे अंकित किया, फिर भी बड़ी अजीब बात है कि उसे वृत्तान्त का वह सही समय याद है जोकि उसके अनुसार शाम के 7 बजे था। एक और प्रासंगिक कथन जो उसने किया और जिससे उसका साक्ष्य पूरी तरह मिथ्या सिद्ध हो जाता है, इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है—

> "नन्द कुमार सिंह के परिवार के सदस्य महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह के देहान्त पर रो रहे थे और उक्त तथ्य उसके दादा को बताया था, जिसने उत्तर में मंझुवा वाले बाबू बन्शीधर के परिवार की वंशावली का वर्णन किया।"

221. उसके कथन के अनुसार यह स्पष्ट है कि नन्द कुमार सिंह के परिवार के सदस्य और उसके दादा दोनों ने ही बंशीधर के परिवार की वंशावली का वर्णन किया था जिस समय वे स्वर्गीय महाराजा (हरेन्द्र किशोर सिंह) के देहान्त पर रो रहे थे और वे ठाकुर नन्द कुमार सिंह के मकान पर रो रहे थे। यह सामान्य आधार है कि स्वर्गीय महाराजा का देहान्त सन् 1893 में हुआ था, जबकि यह इस वृत्तान्त की घटना 1895 में हुई थी। यह विश्वास करना गलत होगा कि परिवार के सदस्यों का रोना महाराजा के देहान्त के दो वर्ष बाद हुआ होगा। इसी प्रकार जब उस समय और रीति के बारे में उसकी और अधिक प्रतिपरीक्षा की गई, जिसके माध्यम से उसने वंशावली की जानकारी प्राप्त की थी तो उसने अनेक असंगत कथन किए, तभी उसने कहा कि उसे वंशावली की जानकारी नन्द कुमार सिंह से मिली किन्तु उसने उसे लेखबद्ध नहीं किया। एक अन्य प्रश्न के उत्तर में उसने स्वीकार किया कि सम्पूर्ण वंशावली का वर्णन उसके सामने एक ही बैठक में [illegible]या गया किन्तु उसे एक बार में याद नहीं हुई बल्कि समय-समय में याद ने [illegible] वह यह नहीं बता सका कि जिस समय वंशावली का वर्णन उसके सामने परि[illegible] [illegible]या तो उसे वंशावली कितनी याद हो गई थी और फिर कहा कि स्वतन्त्र [illegible]ने जाने पर उसे यह याद हो गई।
था। यद्यपि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

222. यदि उसकी स्मृति की यह आरम्भिक और मूल झलक है तो उसके परिसाक्ष्य पर विश्वास न करने के लिए यह बहुत प्रबल सम्भव परिस्थिति है और उसका अनिवार्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि वादी की वंशावली के बार-बार वर्णन की कहानी कुछ भी नहीं है बल्कि अपने नातेदार, मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक (भगवती प्रसाद सिंह) की मदद करने और कृतज्ञ करने के लिए मनगढ़न्त कल्पना है। पुन: उसने एक बहुत ही बिचित्र कथन किया जिससे वर्णन की कहानी पूरी तरह झूठी साबित हो जाती है। उसका कहना है कि स्वर्गीय महाराजा का देहान्त चैत 1894 ई० में हुआ था जबकि महाराजा का देहान्त एक वर्ष पूर्व 26 मार्च, 1893 को हुआ था। यह उसकी दुर्बल या हल्की स्मृति की सर्वोत्तम कसौटी और सबूत है जो व्यक्ति अपने निकट सम्बन्धी स्वर्गीय महाराजा के मरने की तारीख याद नहीं रख सकता, जिसकी वजह से कुटुम्ब के विभिन्न नातेदारों ने वंशावली का वर्णन किया था, उस व्यक्ति से स्वर्गीय महाराजा की मृत्यु से बहुत पहले की वंशावली को याद रखने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती। अत: इस परिस्थिति से वंशावली के सबूत सम्बन्धी उसका साक्ष्य पूरी तरह नष्ट हो जाता है। वंशावली सम्बन्धी मुद्दे के बारे में उसके साक्ष्य को सामान्य तौर से पढ़ने से ही हम आश्वस्त हैं कि वंशावली को साबित करने के लिए जो वस्तुत: उसे बताई गई, कभी भी प्रतीत नहीं होती, मनगढ़न्त कहानी को तोते की तरह रटने के लिए रखा गया है। अत: इस मुद्दे पर उसका साक्ष्य संदेहमुक्त नहीं है। हम उस पर निर्भर करने में असमर्थ हैं। हम यह मत व्यक्त करने के लिए बाध्य हैं कि इन गम्भीर त्रुटियों और प्रत्यक्ष दोषों के बावजूद न्या० मुखर्जी ने इस साक्षी के साक्ष्य पर विश्वास करने के लिए पूर्वोक्त त्रुटियों को अनदेखा कर दिया। इसके विपरीत, विसम्मत न्यायाधीश न्या० एम० एम० प्रसाद ने उसके साक्ष्य के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाया और अनेक दोषों एवं त्रुटियों का उल्लेख किया जिनसे ज्ञात होता है कि उसका साक्ष्य पूर्णत: हास्यास्पद है। उदाहरण के लिए प्रतिपरीक्षा में साक्षी से उसकी स्मृति परखने के लिए प्रश्न पूछे गए और उसने अपने निकट सम्बन्धियों के परिवारों की जानकारी से मना किया, जिनके नाम वह नहीं बता सका। फिर यह कैसे विश्वास किया जा सकता है कि यदि वह स्वयं अपने निकट सम्बन्धियों के नाम याद नहीं रख सकता तो वह 12 वंशों की वंशावली के नाम याद रखेगा। उसने ऊपर निर्दिष्ट तथ्य पर ही जोर डाला, और साक्षी ने यह किंचित महसूस नहीं किया कि यदि स्वर्गीय महाराजा का देहान्त 1893 में हुआ था, रोना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1895 यानी देहान्त के दो वर्ष बाद हुआ, जिसे विश्वास करना असम्भव है। विद्वान न्यायाधीश का मत है कि पूर्वोक्त त्रुटि से अधिक ऐसे साक्षी का कोई बेहतर सबूत नहीं हो सकता, जिसे कोई बात कहने के लिए किराए पर रखा गया हो और सिखाया-पढ़ाया गया हो। न्या० मुखर्जी ने इस साक्षी की स्मृति को पढ़ने के लिए किसी भी महत्वपूर्ण परिस्थिति पर विचार नहीं किया जिनका अवलम्ब विसम्मत न्यायाधीश ने लिया है। अतः इन कारणों से हम विसम्मत न्यायाधीश के इस निष्कर्ष से पूरी तरह सहमत हैं कि इस साक्षी के साक्ष्य पर निर्भर करना असम्भव है।

223. नर्बदेश्वर दत्त शर्मा, अभियोजन साक्षी 40 (जिल्द 1, पृष्ठ 158) जो 1955 के सहायक वाद संख्या 44 में वादियों का एक अनिवार्य साक्षी था, ने संयोगवश वादियों-प्रत्यर्थियों की वंशावली का अभिसाक्ष्य दिया है। बहुसंख्यक ने उसके साक्ष्य पर विचार किया और उसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि बंसीधर सिंह के परिवार से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है और चूंकि उसने फरमान सिंह या गजराज सिंह का नाम नहीं सुना था, इसलिए वह वादियों की वंशावली को साबित करने के लिए सक्षम नहीं है। इस सम्बन्ध में न्या० मुखर्जी ने इस प्रकार मत व्यक्त किया—

> "यह साक्षी भी एक बिना बुलाया गया साक्षी था। वह भगवती प्रसाद सिंह के पिता का नाम भी नहीं बता सका। उसने बरैनी गांव के फरमान सिंह या गजराज सिंह का नाम भी नहीं सुना था। इस परिस्थिति के अन्तर्गत यह साक्षी वंशावली के मुद्दे के बारे में सक्षम साक्षी प्रतीत नहीं होता।"
>
> (जिल्द 8, पृष्ठ 247, पैरा 108)

224. इस प्रकार हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि वादी साक्षी 40 के साक्ष्य के गुणागुण के बारे में और आगे विचार किया जाए, जिसे अस्वीकृत कर दिया गया है।

225. वंशावली के मुद्दे के बारे में अन्य सुसंगत साक्षी हैं। प्रतिवादी साक्षी 13, 21, 32, 34 और 35 तथा 36 (प्रतिवादी साक्षी 32 का साक्ष्य उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीशों ने अस्वीकार कर दिया है)। श्री तारकुन्डे ने मुख्यतः इन पांच साक्षियों के साक्ष्य का अवलम्ब लिया और अपनी बहस के दौरान यह निवेदन किया कि यदि यह न्यायालय को इन साक्षियों का साक्ष्य स्वीकृत करने के लिए राज़ी नहीं कर सका तो वादी-प्रत्यर्थी उसके द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य के आधार पर सफल नहीं हो सकता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

226. अब हम उपरोक्त साक्षियों के साक्ष्य पर अलग-अलग विचार करना चाहते हैं। किन्तु हम प्रतिवादी साक्षी 13, राधाकृष्ण सिंह (जिल्द-1, पृष्ठ 335) के साक्ष्य पर अन्त में विचार करेंगे क्योंकि वह मुख्य वादी-प्रत्यर्थियों में से है और इसीलिए अत्यन्त हितबद्ध साक्षी है। यह अपने आप में उसके साक्ष्य पर अविश्वास करने के लिए कोई आधार नहीं हो सकता किन्तु निस्संदेह, एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें उसका साक्ष्य ध्यानपूर्वक देखा-परखा जाना चाहिए।

227. अब हम प्रतिवादी साक्षी-21, भुवनेश्वर प्रसाद सिंह (खण्ड 1; पृष्ठ 385) के साक्ष्य पर आते हैं। सबसे पहले, साक्षी ने अपनी आयु केवल 38 वर्ष बताई है। अत: उसका कथन मानने से पहले उसकी जानकारी के स्रोत की संवीक्षा बड़ी सावधानी और सतर्कता से करनी आवश्यक होगी। साक्षी का कहना है कि बंशीधर के तीन पुत्र थे अर्थात्, रामरुच सिंह, राम फकीर और देवी सिंह और गजराज सिंह, जोकि वादी का अभिकथित पूर्वज है रामरुच सिंह का पुत्र था। यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि राम फकीर सिंह को जो बंसीधर का दूसरा पुत्र है, वादियों की वंशावली में बिलकुल भी नहीं दिखाया गया है। श्री तारकुन्डे ने इस दोष को इस आधार पर स्पष्ट करना चाहा कि राम फकीर सिंह पहले ही मर चुका था, अत: उसका नाम वंशावली में वर्णित नहीं है। चूंकि वंशावली में पूर्वजों की सूची में उन व्यक्तियों के नाम भी दिए गए हैं जो निस्संतान मर गए थे, अत: कोई कारण नहीं है कि राम फकीर सिंह का नाम वादियों की वंशावली में न दिखाया जाए। वह वंशावली में वास्तव में देवी सिंह का भाई था। अत: हम वादियों की वंशावली में राम फकीर सिंह का नाम न होने के सम्बन्ध में, श्री तारकुन्डे ने जो अविश्वासप्रद कारण दिए हैं, उन्हें स्वीकार करने में असमर्थ हैं। यह लोप अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे साक्षी की जानकारी के स्रोत और वंशावली के बारे में, अभिसाक्ष्य देने की उसकी क्षमता पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

228. साक्षी का यह भी कहना है कि बंसीधर सिंह के भाइयों में से एक उसका पूर्वज था। उसने आगे यह भी कहा कि हृदय नारायण सिंह जो, वादी के अनुसार, बंसीधर सिंह का पिता था, हंस राज सिंह का पुत्र था। साक्षी का कहना है कि माधो सिंह उसका पूर्वज था जो हृदय नारायण सिंह के 7 पुत्रों में से एक था। उल्लेखनीय है कि वाद-पत्र की वंशावली में हंसराज सिंह या हृदय नारायण सिंह या माधो सिंह में से किसी का या बंशीधर सिंह के भाइयों में से किसी का या रामहित सिंह का भी या उसके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वंशजों में से किसी का कोई भी उल्लेख नहीं है। इन परिस्थितियों में, इस साक्षी को अब यह कहने की इजाजत नहीं दी जा सकती कि रामरुच सिंह बंसीधर का पुत्र था न कि मंगल शाह का। साक्षी यह मानता है कि उसने ऐसी कोई लिखित वंशावली नहीं देखी, जिसकी बाबत उसने न्यायालय में साक्ष्य दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गौरी बाबू से उसका निकट सम्बन्ध है जो वादियों का पैरोकार है। उसने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि गौरी बाबू उसके अभिसाक्ष्य से 2-3 वर्ष पूर्व बरैनी गांव में उसके पास आया था अर्थात् वह अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार करता है कि उसे न्यायालय में साक्ष्य देने के लिए गौरी बाबू के कहने पर लाया गया था। यद्यपि साक्षी ने यह इन्कार किया है कि वह लगभग एक मास से गौरी बाबू के घर पर ठहरा हुआ है और उसे सिखाया-पढ़ाया जा रहा था, फिर भी उसके परि-साक्ष्य को देखने से यह पता चल जाता है कि गौरी बाबू निस्संदेह साक्षी को पटना लाया था और चूंकि गौरी वादियों का पैरोकार है, जैसाकि साक्षी द्वारा स्वीकार किया गया है, वह उसे किसी प्रयोजन के लिए लाया होगा।

229. उसके साक्ष्य के मूलभूत गुणागुण के सम्बन्ध में सबसे पहले हम इस साक्षी की जानकारी के स्रोत पर दृष्टिपात करेंगे। सबसे पहले, उसका कहना है कि उसके पिता ने लगभग 50 बार उसे वंशावली बताई थी किन्तु उसे यह याद नहीं है कि उसे अन्तिम बार वंशावली कब बताई गई थी। वह यह स्वीकार करता है कि ऐसा कोई विशेष अवसर नहीं था जब उसके पिता ने उसे वंशावली बताई थी। वह यह भी स्वीकार करता है कि उसके पास कोई लिखित वंशावली नहीं है। यह कथन प्रकटतः गलत है क्योंकि आमतौर पर वंशावली का वर्णन किसी उत्सव पर किया जाता है, जैसे विवाह, श्राद्ध आदि, न कि ऐसे ही। इसके अतिरिक्त यह विश्वास करना कठिन है कि यदि उसके पिता ने वंशावली का वर्णन किया था तो बिना किसी कारण के वह 50 बार उसे दोहराएगा। साक्षी ने तो यहां तक कहा कि उसके पिता ने गांव मझुवा, गरोली, बरैनी और अन्य अनेक गांवों में रहने वाले भूमिहर ब्राह्मणों के हजारों नाम उसे बताए थे। उसका यह भी कहना है कि उसे गोतियों के नाम भी बताए गए थे जो उपरोक्त गांव में रहते थे। उसके सम्पूर्ण साक्ष्य से पता चलता है कि उसकी जानकारी का स्रोत जोकि उसके पिता से है, दूषित प्रतीत होता है और इस मामले के प्रयोजन के लिए गढ़ा गया है। साक्षी ने यह भी स्वीकार किया है कि यदि ऐसे कोई कागज नहीं देखे जिनमें राजा जुगल किशोर सिंह को राजा ध्रुव सिंह की पुत्री का पुत्र दिखाया गया है। वह यह जानने का बहाना करने के लिए कि भगवती प्रसाद सिंह स्वर्गीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाराजा का निकटतम विधिक वारिस था, किन्तु उसने अपनी जानकारी का स्रोत प्रकट नहीं किया। इसके अतिरिक्त बनारस के महाराजा से संबंध के बारे में साक्ष्य देते हुए उसने कहा कि उसने ऐसे कोई कागज नहीं देखे जो यह दर्शित करते हों कि बनारस के महाराजा देवनवार उप-सम्प्रदाय के थे। उसका यह भी कहना है कि जब वह केवल 10-12 वर्ष का था तब यह बात उसने अपने पिता से सुनी थी।

230. भैरों प्रसाद सिंह, प्रतिवादी साक्षी-33 के साफ और स्पष्ट कथन से ज्ञात होता है कि बंशीधर के वंशजों में से कोई भी बरैनी गांव में नहीं बसा और बरैनी गांव के भगवती प्रसाद सिंह का मझुवा से कोई खानदानी सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार प्रतिवादी साक्षी-21 का प्रतिवादी साक्षी-33 के साक्ष्य से दुःखद खण्डन हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवादी साक्षी-21 के अनुसार बाबू देबी सिंह के पांच पुत्र थे किन्तु वादियों की वंशावली से और उनके द्वारा सिद्ध किए गए मामले और अन्य साक्षियों द्वारा साबित किए जाने के लिए ईप्सित मामले से भी यह पूरी तरह मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

231. श्री तारकुन्डे की अगली दलील यह थी कि प्रतिवादी साक्षी-21 के अनुसार वह हृदय नारायण सिंह का या माधो सिंह का वंशज है और इसीलिए वह स्वर्गीय महाराजा के उत्तरभोगी हित के दावे की पंक्ति में दूसरा होगा तथा इस प्रकार उसके लिए स्वयं अपने हितों के विरुद्ध अभिसाक्ष्य देना संभाव्य नहीं है। साक्षी एक नवयुवक आदमी है और हम यह पहले ही बता चुके हैं कि वादपत्र की वंशावली से सम्बन्धित उसकी जानकारी का स्रोत विश्वसनीय नहीं है। जिस ढंग से वादी का पैरोकार साक्षी को उसके गांव पटना से लाया था, उससे और वंशावली के बारे में उसके द्वारा किए गए गलत कथन से स्पष्ट पता चल जाता है कि वह चाहे कुछ भी मानता हो किन्तु उसका हृदय नारायण सिंह से किसी भी प्रकार से संबंध प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः स्वयं प्रतिवादी साक्षी-21 यह स्वीकार करता है कि बेतिया राज से उसका कोई सम्बन्ध या उसमें कोई हित नहीं था। अपने साक्ष्य के पैरा 18 में वह यह भी स्वीकार करता है कि उसे मामले की जानकारी वादी राधा कृष्ण सिंह से मिली थी और उसे दोनों पक्षकारों के दावे के बारे में ज्ञात नहीं था। वंशावली के संबंध में साक्ष्य देते समय वह अपने पूर्वजों में से किसी के मरने के बारे में नहीं बता सका और न ही वह यह बता सका कि किस काल में हंसराज और हृदय नारायण सिंह जीवित थे। वह यह स्वीकार करता है कि जब उसके पिता ने अपने पूर्वजों के नाम 50 बार दोहराए थे तो उस समय वह केवल 16 वर्ष का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था। यह विश्वास करना कठिन है कि 50 बार नामों का अकस्मात् वर्णन करने से वह 20 वर्ष से भी अधिक समय बीतने के बाद उन्हें याद रख पाएगा। न्या० एम० एम० प्रसाद ने इस साक्षी के साक्ष्य पर अविश्वास करने के लिए बहुत ही सटीक और सही कारण दिए हैं। ऊपर वर्णित तथ्यों के अलावा विद्वान् न्यायाधीश ने कहा है कि वादी के परिवार की तो बात क्या, साक्षी ने स्वयं अपने परिवार की कोई लिखित वंशावली नहीं देखी। अन्ततः साक्षी ने यह स्वीकार किया कि वह प्रतिवादी साक्षी-33, कमल सिंह का चचेरा भाई है। यदि ऐसी बात है तो कमल सिंह द्वारा और साक्षी द्वारा दी गई वंशावलियां आपस में मिलनी चाहिए किन्तु प्रतिवादी साक्षी-33 के साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि उसने इस साक्षी द्वारा दी गई वंशावली से भिन्न वंशावली दी है। परिस्थितियों और इस साक्षी द्वारा किए गए कथनों को ध्यान में रखते हुए हम इस साक्षी के साक्ष्य का परिसाक्ष्य लेना असम्भव महसूस करते हैं। अतः हम न्या० एम० एम० प्रसाद की इस राय से सहमत हैं कि इस साक्षी के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

232. नगेन्द्र कुमार, प्रतिवादी साक्षी-34 (जिल्द-1, पृष्ठ 445) ने परिवार की वंशावली को साबित करना चाहा। अपने अभिसाक्ष्य के समय साक्षी की आयु 60 वर्ष थी और वह मझुवा का निवासी था। वह अपने आप को हरी नारायण सिंह और हृदय नारायण सिंह के पिता हंसराज सिंह का वंशज बताता है। साक्षी के अनुसार हरी नारायण सिंह के साह मुकन्द नाम का एक पुत्र था और वह साक्षी अपने आपको साह मुकन्द की शाखा का बताता है। वंशावली के सम्बन्ध में उसका कहना है कि हृदय नारायण सिंह के एक पुत्र था, जिसका नाम था बंशीधर सिंह और बंशीधर सिंह के तीन पुत्र थे, राम फकीर, रामरुच और देबी सिंह। हम यह पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि यद्यपि हृदय नारायण सिंह का नाम प्रदर्श-जे० में है फिर भी बंशीधर के नाम का बिल्कुल भी उल्लेख नहीं है। अभी हम यह बतायेंगे कि प्रदर्श बी/32 बड़ा महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है (जिल्द-3 पृष्ठ 42) जिसमें रामरुच सिंह का बंशीधर सिंह के पुत्र के रूप में उल्लेख नहीं किया गया है बल्कि इसके बजाय बंशीधर सिंह के पुत्र के रूप में गजराज सिंह का नाम लिखा है। यह दस्तावेज अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह भूपराज नाम के एक व्यक्ति के अभिसाक्ष्य की एक प्रमाणित प्रति है। वह एक पूर्ववर्ती वाद में 1909 में साक्षी था। अतः इस साक्षी का यह कथन कि बंशीधर सिंह के तीन पुत्र थे, जिसमें रामरुच सिंह भी शामिल है, स्पष्ट रूप से प्रदर्श बी/32 से खण्डित हो जाता है। यह दस्तावेज 1961 के वादी के वाद के वर्तमान मामले के रूप में आने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से बहुत पहले अस्तित्व में आया था। इसके अतिरिक्त 1909 में भूपराज की स्मरण शक्ति इस साक्षी की स्मरण शक्ति से कहीं अधिक ताजा होगी।

233. इस न्यायालय द्वारा और प्रिवी कौंसिल द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों की कसौटी पर इस साक्षी की सत्यता को परखने के लिए हम उसकी जानकारी के स्रोत का हवाला देंगे। स्वीकृत रूप से साक्षी को वादियों के परिवार की वंशावली के बारे में कोई निजी जानकारी नहीं थी। फिर भी उसने अपने साक्ष्य में यह भी कहा है कि उसे वंशावली की जानकारी अपने दादा हरी शरण सिंह और भगवती प्रसाद सिंह जोकि वादियों में से एक के पिता थे, से मिली थी। अब वे दोनों मर चुके हैं। उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसके दादा (ग्रान्ड अंकल) हरी शरण सिंह का देहान्त सन् 1936 या के आसपास हुआ था। इसका अभिप्राय यह है कि जिस समय साक्षी ने वादियों की वंशावली के बारे में बताया था, उस समय वह केवल 14-15 वर्ष का था और माध्यमिक विद्यालय की छठी कक्षा में पढ़ता था। उसने तो यहां तक कहा कि जिस समय वंशावली का वर्णन किया गया था, उस समय उसके परिवार के 5-6 लोग उपस्थित थे किन्तु उसे उसमें से किसी का नाम भी याद नहीं है। बड़ी अजीब बात है कि उसे उन व्यक्तियों के नाम भी याद नहीं हैं, जिनकी उपस्थिति में उसके दादा (ग्रान्ड अंकल) ने वंशावली का वर्णन किया था। फिर भी उसका कहना है कि परिवार की वंशावली उसे लगभग 45 वर्ष पहले बताई गई थी। इस महत्त्वपूर्ण परिस्थिति से दर्शित होता है कि उसकी स्मरण शक्ति बहुत कमजोर है। ऐसी स्थिति में यह विश्वास करना पूरी तरह असम्भव है कि उसे अपने दादा द्वारा बताई गई वंशावली याद होगी, हालांकि वह उन लोगों के नाम नहीं बता सका, जिनकी उपस्थिति में वंशावली का उल्लेख किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने वंशावली को उस समय किसी कागज पर अंकित नहीं किया जब उसके दादा ने उसके सामने दोहरायी थी और न ही उसने किसी विशेष अवसर का उल्लेख किया जिस पर वह वंशावली उसे बताई गई थी, जिसके फलस्वरूप वह उसे याद रख सकता। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत हरी नारायण सिंह से लेकर हरेन्द्र किशोर सिंह तक के सम्बन्धों के बारे में आलेखी विवरण उसके द्वारा नहीं दिया जा सकता था। अतः जैसा कि अपीलार्थी ने ठीक ही दलील दी है ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि वह अत्यन्त हितबद्ध साक्षी है, इसलिए उसने समस्त बातचीत, अवसरों और संयोगों को गढ़ लिया जब उसके दादा ने उसके सामने वंशावली का वर्णन किया था। इसके अतिरिक्त मानव स्मरण शक्ति धुंधली और क्षयशील होती है, इसलिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह सम्भव नहीं है कि 40-50 वर्ष पहले के तथ्यों को व्यक्त कर सके जब तक कि किसी विशेष दस्तावेज, ढंग, अवसर या उसे ज्ञात दिलाने वाली किसी चीज के रूप में कुछ न हो। साथ ही जब साक्षी के सामने वंशावली का वर्णन किया गया था तो वह केवल 14-15 वर्ष का लड़का था और उस समय उसे इस बात का ध्यान भी नहीं होगा कि वंशावली का किसी विशेष ढ़ंग से वर्णन करे क्योंकि उस समय उसका उसमें बिल्कुल भी हित नहीं होगा। वह यह भी स्वीकार करता है कि उसके दादा ने उसके सामने वंशावली का वर्णन अपनी स्मरण शक्ति से किया था, किसी लिखित दस्तावेज से नहीं और न ही उक्त वंशावली किसी कागज पर लिखी गई थी।

234. साक्षी ने यह स्वीकार किया कि वह उस समय वंशावली का कुछ भाग ही याद रख सका था, सम्पूर्ण नहीं। अपने अभिसाक्ष्य में उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसे वंशावली की जानकारी महारानी जानकी कुवर के मरने के बाद शीत ऋतु में भगवती प्रसाद सिंह से मिली थी। कहने का अभिप्राय यह है कि वर्तमान विवाद पहले ही आरम्भ हो चुका था। अतः इन परिस्थितियों में उसका साक्ष्य विधि के मुद्दे पर अर्थात् "पोस्ट लिट्म मोटम" सिद्धांत के उल्लंघन में होने के कारण साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अनुसार अग्राह्य है। पुनः वह काल्पनिक उड़ान भरता है और उन तथ्यों का वर्णन करने लगता है जिन्हें वह कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक पुस्तक पढ़े बिना नहीं जान सकता था। वह मारुई के युद्ध के तथ्यों का वर्णन करता है जो पहले सन् 1719 में हुआ था।

235. अन्त में वह कहता है कि ये पांच पुत्र देवी सिंह के हैं जबकि वाद-पत्र में लिखा है कि देवी सिंह के एक पुत्र था ऐनी सिंह। इस प्रकार वंशावली की सम्पुष्टि होना तो क्या उसके साक्ष्य से वादी की वंशावली निश्चित रूप से खण्डित हो जाती है। वंशावली का वर्णन करने में उसने बहुत त्रुटियां की हैं जो वादी की वंशावली से मेल नहीं खाती। हमारी राय में, इस साक्षी का साक्ष्य गढ़ा हुआ प्रतीत होता है और विश्वसनीय नहीं है। यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि वह यह स्वीकार करता है कि वादी राधाकृष्ण सिंह ने मामले में साक्ष्य देने के लिए कहा था और फिर वह कहता है कि उसने कभी किसी राधाकृष्ण सिंह के सामने वंशावली का उल्लेख नहीं किया। वास्तव में यदि ऐसी बात है तो यह समझ में नहीं आता कि राधाकृष्ण सिंह ने उसे अपने 'पक्ष में' साक्ष्य देने के लिए क्यों कहा।

236. इन सबसे ऊपर प्रतिवादी साक्षी-34 यह स्वीकार करता है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि ऐसा कोई दस्तावेज नहीं है जिससे या तो यह दर्शित होता हो कि वह मूलतः मझवा का रहने वाला था या यह कि हंसराज सिंह इस साक्षी का और भगवती प्रसाद सिंह का सामान्य पूर्वज था। न्या० मुखर्जी ने, जिन्होंने बहुसंख्यक का निर्णय दिया था, इस साक्षी के साक्ष्य पर अपेक्षाकृत संक्षिप्त रूप में महत्त्वपूर्ण तथ्यों, त्रुटियों, कमियों और दोषों को स्पष्ट या व्यक्त किए बिना विचार किया है। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, इससे इस साक्षी का साक्ष्य त्रुटिपूर्ण और अपूर्ण दोनों हो जाता है। इन सब परिस्थितियों के संयुक्त प्रभाव से वह एक अविश्वसनीय साक्षी बन गया है।

237. अगला विचारार्थ साक्ष्य देवी सिंह, प्रतिवादी साक्षी-35 (जिल्द 1, पृष्ठ 453) का है जो मौजा मझवा का है। विचित्र बात है कि वह अपने को हरखान सिंह का वंशज बताता है जिसे सोमन कुवर और जैमद कुवर ने हंसराज तालाब (पोखर) से सम्बन्धित 1856 के वाद संख्या 130 में फाइल किए गए वाद-पत्र में अपना नहीं माना जिसके फलस्वरूप इस साक्षी का साक्ष्य आरम्भ में ही मिथ्या सिद्ध हो जाता है। साक्षी के अनुसार एक ओर हरखान सिंह तथा रामरतन सिंह तथा दूसरी ओर सोमन कुवर तथा जैमद कुवर ने हंसराज तालाब से सम्बन्धित कुछ मामले थे। साक्षी का कहना है कि वह रामरतन सिंह और हरखान सिंह के परिवार का है और ये दोनों बिक्रम शाह के वंशज हैं। वह यह स्वीकार करता है कि हरखान सिंह बेतिया राज्य की ओर सोमन कुवर तथा जैमद कुवर की सेना में था और वाद के फलस्वरूप उत्पन्न विवाद उठाने पर हरखान की सेवाएं समाप्त कर दी। उक्त वाद-पत्र में जैमद कुवर और सोमन कुवर ने बड़े जोरदार शब्दों में इस बात से इन्कार किया कि उसका हरखान सिंह या रामरतन से कोई सम्बन्ध है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उसने हरखान सिंह और बिक्रम शाह को अपना पूर्वज इसलिए बताया ताकि वह अपने साक्ष्य को ग्राह्य बना सके जिससे उसकी जानकारी का स्रोत उपरोक्त दो व्यक्ति माने जा सकें जो अब मृत हैं। वाद-पत्र की वंशावली में हरखान सिंह और बिक्रम शाह के नाम का उल्लेख जैमद कुवर या सोमन कुवर के साथ किसी सम्बन्ध के रूप में नहीं है। वादी के अपने पक्षकथन के अनुसार जैमद कुवर बलभद्र सिंह की पत्नी थी जबकि सोमन कुवर पहलवान सिंह के पुत्र तिलक सिंह की पत्नी थी। उसके साक्ष्य के अनुसार उसे वंशावली की जानकारी जदुनंदन सिंह, वशिष्ट सिंह, भूपराज उपाध्याय और भगवती प्रसाद सिंह से मिली थी। ये सब व्यक्ति मर चुके हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपनी जानकारी का स्रोत मृत व्यक्तियों के रूप में बताया है जिससे कि वह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपने साक्ष्य को साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 की उपधारा (5) के अधीन ग्राह्य बना सके । साक्षी ने तो यहां तक कहा कि जदुनंदन सिंह उसके दादा (ग्रान्ड अंकल) और बिक्रम शाह के वंशजों में से एक थे । सच्चाई का पुट देने के लिए और कानूनी ग्राह्यता के अन्तर्गत लाने के लिए उसने यह प्राख्यान करके एक मोड़ दे दिया है कि भूपराज उपाध्याय उसके परिवार के पुरोहित थे और वह हमें यह विश्वास दिलाना चाहता है कि चूंकि उसने वादी की वंशावली के बारे में पुरोहित से सुना था, इसलिए उक्त वंशावली के सही होने के बारे में कोई संदेह नहीं किया जा सकता ।

238. अन्य साक्षियों की भांति इस साक्षी का भी यह कहना है कि जदुनंदन सिंह ने बन्शीधर सिंह और बिक्रम शाह की वंशावली उस समय बताई थी जब वह केवल 15-16 वर्ष का था । उसका यह भी प्राख्यान है कि दलथुम्भन, प्रयाग सिंह और प्रसिद्ध सिंह भी उपस्थित थे और अन्य कोई नहीं था । इस साक्षी के साक्ष्य का पुष्ट करने के लिए कोई भी साक्षी पेश नहीं किया गया । उसे यह भी ज्ञात नहीं है कि ये साक्षी मर चुके हैं या जिन्दा हैं। इसके बाद उसने कहा कि जिस समय उसे वंशावली बताई गई थी, वह केवल 10 या 5 नाम याद रख सकता था किन्तु वह उन 10 या 5 नामों को सही-सही नहीं बता सका । जो व्यक्ति लगभग 40-46 वर्ष पहले बताए गए नामों को याद नहीं रख सकता, वह संभवत: इतने लम्बे अरसे के बाद जदुनंदन सिंह के सभी पूर्वजों के नाम याद नहीं रख सकता था । उसके साक्ष्य का यह भाग अधिसंभाव्यताओं के संतुलन के प्रतिकूल है और इसमें मानव स्मृति की त्रुटियों और कमियों को ध्यान में नहीं रखा गया है । वह यह स्वीकार करता है कि उसने बिक्रम शाह या बंशीधर सिंह की वंशावली को अंकित नहीं किया था बल्कि भगवती प्रसाद सिंह से उसे सुना था । उसका यह भी कहना है कि भगवती प्रसाद सिंह से वंशावली सुनने के बाद उसने एक बार अपने पुत्र, सरजू प्रसाद के सामने बताया था । उसके साक्ष्य का यह भाग पूर्णतः अबोधगम्य है क्योंकि यदि उसने स्वयं वंशावली के बारे में भगवती प्रसाद सिंह से नहीं सुना था तो वह सरजू प्रसाद सिंह को कैसे बता सकता था ।

239. उसकी स्मरण शक्ति को और अधिक परखने के लिए उससे कुछ प्रश्न पूछे गए । उसने यह स्वीकार किया कि उसे अपने विवाह का वर्ष याद नहीं है यद्यपि उसका विवाह 18 वर्ष की आयु में हुआ था । उसने यह भी स्वीकार किया कि उसे अपनी मां के मरने का वर्ष याद नहीं है । समझ में नहीं आता कि यदि वह उन तथ्यों को याद नहीं रख सकता और यदि वह उन तथ्यों को जो प्रत्यक्षत: उसकी निजी जानकारी में थे, अर्थात् अपने विवाह का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्ष या अपनी मां के मरने का वर्ष, याद नहीं रख सका तो बहुत पहले वर्णित वंशावली को वह कैसे याद रख सकता था। एक और व्यक्ति है जिसके बारे में साक्षी ने कहा कि उसने वंशावली की जानकारी उससे ली थी। वह है वशिष्ठ सिंह। वह स्वीकार करता है कि उसे वह समय, वर्ष या अवसर याद नहीं है जब उसने वशिष्ठ सिंह से वंशावली सुनी थी और न ही उसे यह याद है कि जिस समय वशिष्ठ सिंह ने वंशावली सुनाई थी, तो उस समय अन्य कौन-कौन लोग उपस्थित थे।

240. निस्संदेह, यह साक्षी अत्यन्त हितबद्ध है क्योंकि वह भगवती प्रसाद सिंह (वादी का पिता) का निकट सम्बन्धी और मित्र है। यद्यपि एक-मात्र यह परिस्थिति उसके साक्ष्य को अनदेखा करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी, फिर भी इस बात को ध्यान में रखना होगा कि इससे ज्ञात होता है कि इस साक्षी का परिसाक्ष्य दूषित है। चूंकि वर्तमान मामले का बहुत महत्त्व है, इसलिए इस साक्ष्य पर बड़ी सावधानी और सतर्कता से विचार करना होगा। हम साक्ष्य में उसके पूर्ववर्ती कथन का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, जिसमें उसने कहा है कि उसे जदुनंदन सिंह द्वारा बताई गई वंशावली में से 10 या 5 नामों से अधिक नाम याद नहीं हैं फिर भी उसका कहना है कि वशिष्ठ सिंह ने भी बिल्कुल वही वंशावली बताई जो जदुनंदन सिंह ने बतलाई थी, जिसमें वस्तुतः वंशीधर सिंह से लेकर भगवती प्रसाद सिंह तक की 8 डिग्रियां और 12 डिग्रियों तक बन्शीधर सिंह का समस्त परिवार शामिल है। इस प्रकार उसके कथन की इस स्पष्ट विसंगति से यह तथ्य पूरी तरह झूठा सिद्ध हो जाता है कि वशिष्ठ सिंह ने वंशावली का वर्णन किया था।

241. वंशावली के मुद्दे पर उसके साक्ष्य को झूठा सिद्ध करने के लिए एक दूसरी परिस्थिति भी है और वह यह है कि उन व्यक्तियों में से एक जिससे उसके अनुसार उसने वंशावली की जानकारी ली थी, स्वर्गीय भगवती प्रसाद सिंह—वादी का पुरोहित भूपराज उपाध्याय है। साक्षी का कहना है कि भूपराज ने वंशावली का बर्णन किया था किन्तु वह यह नहीं बता सकता कि 50 बार, 100 बार, 20 बार, 10 बार या केवल 5 बार किया था, न ही उसे वह समय याद है जब उसने यह वंशावली दूसरी या तीसरी बार दोहराई थी। जहां तक भूपराज उपाध्याय की जानकारी का सम्बन्ध है, इस मामले में यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुका है कि वह स्वर्गीय महाराजा के परिवार की सही वंशावली की बिलकुल भी जानकारी नहीं रख सकता था। स्वर्गीय वादी (भगवती प्रसाद सिंह) द्वारा फाइल किए गए 1908 के हक वाद में भूपराज ने साक्षी के रूप में साक्ष्य दिया था और उसके साक्ष्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की प्रमाणित प्रतिलिपि बी/32 है। उसके अभिसाक्ष्य के पढ़ने से पता चल जाएगा कि भूपराज ने स्वयं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर लिखित वंशावली दी थी और यह कहा था कि गजराज बंशीधर सिंह का पुत्र है। इसके द्वारा उसने वर्तमान वादियों के मामले को पूरी तरह छोड़ दिया कि गजराज सिंह रामरुच सिंह का पुत्र है। वस्तुतः अपने कथन में भूपराज ने रामरुच के अस्तित्व को बिल्कुल ही छोड़ दिया। वास्तव में यदि ऐसा था तो यह साक्षी (देबी सिंह) उस मुद्दे की बाबत भूपराज सिंह से वंशावली की जानकारी कैसे प्राप्त कर सकता था, जिस पर स्वयं भूपराज स्वयं अनभिज्ञ प्रतीत होता है। इस साक्षी के साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए यह एक अत्यन्त प्रबल मूलभूत परिस्थिति है। साथ ही जबकि साक्षी बहुत लम्बी और जटिल वंशावली देने का प्रयास करता है जिससे यह पता चलेगा कि उसके पास अत्यन्त विलक्षण और अनूठी स्मरण शक्ति है, वह यह स्वीकार करता है कि उसे स्वयं अपने मां-बाप के मरने की अथवा स्वयं अपनी शादी की भी तारीख याद नहीं है। यह विश्वास करना असंभव है कि जिस व्यक्ति की स्मरण-शक्ति इतनी कमजोर और दुर्बल है कि वह उन महत्त्वपूर्ण कथनों को भी याद नहीं रख सका जिनकी उसे निजी जानकारी है, वह एक शताब्दी से भी अधिक लम्बी और जटिल वंशावली को कैसे याद रखेगा। इस प्रकार वादियों के तथाकथित पूर्वजों के असंख्य नामों को जिनके बारे में कहा गया है कि वे उसे बताए गए थे, दोहराने की हो-हल्ला वाली क्षीण प्रक्रिया उसके अपने साक्ष्य के साथ अविश्वसनीय साबित हो गई है, जिसके फलस्वरूप उसने विभ्रम को और भी अधिक बुरी स्थिति में डाल दिया है। इससे पता चलता है कि वह सच्चाई के लिए उत्तरदायित्व या किसी आदरभाव के बिना पूरी तरह वादी के पक्षकथन को समर्थन देने के लिए आया था।

242. जहां तक इस तथ्य का सम्बन्ध है कि उसने वंशावली की जानकारी जानकी कुवर के श्राद्ध-अनुष्ठान पर सन् 1954 में भगवती प्रसाद सिंह से सुनी थी, यह वादोत्तर (पोस्ट लिट्म मोटम) होने के कारण साक्ष्य में अग्राह्य है क्योंकि जानकी कुवर के मरने के बाद विवाद पहले ही उठ चुका था और यह प्रश्न सामने आ चुका था कि निकटतम उत्तरभोगी कौन होगा।

243. अतः उसके कथन में बड़ी-बड़ी विसंगतियों और त्रुटियों, उसकी स्मरण-शक्ति की कमियों को ध्यान में रखते हुए जो यथा ऊपर निर्दिष्ट उसके पश्चात्‌वर्ती कथनों द्वारा प्रकटतः प्रदर्शित हो चुकी है, ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न व्यक्तियों द्वारा वंशावली के वर्णन से सम्बन्धित उसका साक्ष्य मुर्गे और सांड की कहानी के सिवाय और कुछ नहीं है। अतः इन कारणों से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हम उसके साक्ष्य पर बिल्कुल भी निर्भर करने के लिए तैयार नहीं है। हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि उल्लिखित उसके साक्ष्य में हमारे द्वारा बताई गई विभिन्न त्रुटियां, परिस्थितियां और कमियां न्या० मुखर्जी द्वारा दिए गए बहुमत निर्णय में स्पष्ट करने की तो बात क्या, उन पर ध्यान भी नहीं दिया गया। न्या० मुखर्जी द्वारा उपरोक्त साक्षियों के साक्ष्य के मूल्यांकन को दूषित करने के लिए इतना पर्याप्त है।

244. अब हम वादियों के अन्तिम साक्ष्य पर आते हैं जोकि स्वयं वादी सं० 1 अर्थात् राधाकृष्ण सिंह, प्रतिवादी साक्षी 13 है। प्रकट है कि भगवती प्रसाद सिंह का पुत्र और प्रमुख वादी होने के कारण वह अत्यन्त हितबद्ध व्यक्ति है और अपने पक्षकथन का समर्थन करने के लिए बाध्य है, जिस पर इसके सम्बन्ध में इस मुकदमे का परिणाम निर्भर करता है। अतः उसके साक्ष्य की भी प्रज्ञा के नियम के रूप में अत्यन्त सावधानी और सतर्कता से विचार करना होगा क्योंकि उसने हितबद्ध के रूप में कथन किए हैं जो उसके मामले में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इस पर भी उसके साक्ष्य से पता चलता है कि उसे मामले के संचालन के बारे में बहुत कम जानकारी है क्योंकि स्वयं वाद-पत्र में वर्णित वंशवृक्ष का उससे समर्थन नहीं होता। अपने कथन में उसने कहा है कि बंशीधर सिंह के तीन पुत्र थे अर्थात् रामरुच सिंह, अच्छू सिंह और फकीर सिंह और स्पष्ट कहा है कि देबी सिंह उसके तीन पुत्रों में से एक नहीं था जिससे वादी का सम्पूर्ण पक्षकथन निराधार हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसके साक्ष्य से उसकी मुख्य परीक्षा में भी देबी सिंह और ऐनी सिंह के बीच कोई सम्पर्क स्थापित नहीं होता, जिसके फलस्वरूप उसे बाध्य होकर अनेक दिनों बाद अपने कथन में सारवान् परिवर्तन करना पड़ा। जब उसने यह महसूस कर लिया कि उसने बहुत भारी भूलकर दी है जिससे उसका पूरा मामला ही उलट सकता है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए हम उसके पूर्वज बंशीधर सिंह के बारे में उसके साक्ष्य के भाग को उद्धृत करना चाहेंगे जिसमें उसने कहा है कि "बंशीधर सिंह के तीन पुत्र थे, अर्थात् रामरुच सिंह, अच्छू सिंह और फकीर सिंह"। यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि उसने गजराज सिंह का बिल्कुल भी नाम नहीं लिया। अपनी भूल समझकर उसने यह जोर दिया कि गजराज सिंह रामरुच सिंह का पुत्र था। प्रकट है कि न्यायालय में आने से पहले उसने कम से कम अपने परिवार की पूरी जानकारी हासिल की होगी, जिसके आधार पर वह अपने वाद में सफलता प्राप्त करना चाहता था और फिर भी प्रथम प्रक्रम पर गजराज सिंह के नाम का लोप होने से यह संकेत मिलता है कि उसका ज्ञान कितना कम है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

245. वंशावली के बारे में अपना ज्ञान प्रकट करते हुए साक्षी ने कहा कि उसे वंशावली की जानकारी अपने पिता भगवती प्रसाद सिंह और विश्वनाथ सिंह बेलवाड़िया नामक एक व्यक्ति से मिली थी। विश्वनाथ के बारे में उसका कहना है कि उसने वंशावली तब सुनी थी जब वह केवल 12 वर्ष का था। उसने बिल्कुल साफ स्वीकार किया जिससे उसकी स्मरण शक्ति की स्थिति दिखाई पड़ती है। अपने साक्ष्य के पैरा 26 में उसने कहा है कि वह हिन्दी संवत और फसली वर्ष के अनुसार अपना जन्म वर्ष और अपने भाई का जन्म वर्ष नहीं बता सकता। अपने ज्ञान की कमी को छिपाने की दृष्टि से उसने यह बात बनाई कि उसकी जन्म-कुण्डली और उसके भाई श्री किशन की जन्म-कुण्डली भी खो गई है। लेकिन बाद में उन्होंने अपना कथन बदल दिया और तुरन्त कहा कि वह नहीं बता सकता कि उसके दो अन्य भाइयों की जन्म-कुण्डलियां अभी भी उसके घर में हैं या वे भी खो गई हैं। उसकी स्मरण शक्ति परखने की खातिर उससे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे गए, जिनका उसने इस प्रकार उत्तर दिया—

> "मेरे पिता कभी-कभी भूमिहर ब्राह्मणों के विभिन्न उपपंथों के बारे में बताते थे। जब मैं 17 या 18 वर्ष का था तो मेरे पिता ने पहली बार मुझे भूमिहरों के विभिन्न उप पंथों के बारे में बताया था और यह उन्होंने मुझे लगभग 100 बार बताया था। किन्तु उन्होंने यह नहीं पूछा कि जो विभिन्न उपपथ उन्होंने मुझे बताए, वे मुझे याद हो गए हैं या नहीं।"

(जिल्द 1, पृष्ठ 343 पैरा 50)

246. जब वंशावली के सम्बन्ध में अभिव्यक्त रूप से प्रश्न पूछा गया तो साक्षी ने निम्नलिखित प्रासंगिक कथन किया—

> "लिखित वंशावली उन कागजों में से एक से यह पता चल जाएगा कि ऊपर वर्णित व्यक्ति मेरे परिवार के हैं, जैसा कि मैंने कहा है। उपरोक्त वंशावली मैंने लगभग दो वर्ष पूर्व देखी थी। मैं यह नहीं बता सकता कि वह वंशावली किसने लिखी थी। मैं यह नहीं बता सकता कि लेखक का नाम उस वंशावली में लिखा है या नहीं जोकि हंसराज के समय से लेकर आदित्य सिंह और उसके भाई के समय तक की है। विक्रम सिंह की पंक्ति में हरखान सिंह और छत्रसिंह की पंक्ति में राम रूपन सिंह के समय तक। मुझे याद नहीं है कि उनकी वंशावली में रुद्र सिंह की पंक्ति में के अन्तिम सदस्य का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उल्लेख किया गया है या नहीं । उस वंशावली में मुसम्मात जय राज कुअर और बंसीधर सिंह के पुत्रों में से एक देवी सिंह की पंक्ति में रघुनाथ सिंह का नाम वर्णित है । उस वंशावली में रामरुच के वंशजों के नामों का उल्लेख नहीं है क्योंकि वे बरैनी जा चुके थे । उस वंशावली में बंसीधर के भाइयों या उनके पुत्रों या बंसीधर के वंशजों का जो मभुआ गांव से जा चुके थे, उल्लेख नहीं है ।"

(जिल्द 1, पृष्ठ 349, पैरा 79)

247. इससे पता चलता है कि उसे अपने कुटुम्ब की वंशावली की भी बिल्कुल जानकारी नहीं थी जिससे यह तथ्य अन्तिम रूप से सिद्ध हो जाता है जोकि उसे साक्ष्य दिलवाने के लिए तोते की तरह रटाया गया था, जिससे कि वह अपने पक्षकथन का समर्थन कर सके । आरम्भ में, उसका कहना है कि जो कागज उसने देखे हैं, उनमें से एक लिखित वंशावली है, जिसमें कथन के आरम्भिक भाग में वर्णित नामों का उल्लेख है । वह स्वीकार करता है कि उसने वंशावली लगभग दो वर्ष पूर्व देखी थी किन्तु वह यह नहीं बता सका कि वह वंशावली किसने लिखी थी और उस वंशावली में उसके नाम का उल्लेख है या नहीं । उसने उस वंशावली विशेष को पेश करने की परवाह नहीं की या वादियों द्वारा फाइल की गई अनेक वंशावली सारणियों के साथ उसे साबित करने की कोशिश नहीं की । इसके अतिरिक्त, जिस वंशावली को उसने देखा बताया है, उसमें, उसके अनुसार, देवी सिंह की पंक्ति में मुसम्मात राज कुवर और रघुनाथ सिंह के नामों का उल्लेख है । वाद-पत्र की वंशावली को देखने से पता चलता है कि मुसम्मात राज कुवर का नाम उसमें बिलकुल भी नहीं है । साथ ही वह यह भी स्वीकार करता है कि रामरुच सिंह के वंशजों का भी कोई उल्लेख नहीं है जो कि वादियों के पक्षकथन की सत्यता अवधारित करने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है । रामरुच सिंह गजराज सिंह का पिता साबित नहीं हुआ, अतः वाद आवश्यक रूप से असफल रहेगा । साक्षी, जोकि स्वयं वादी है, इस गम्भीर कमी को स्पष्ट करने में असमर्थ है और उसने बहुत ही कमजोर एवं अविश्वासप्रद स्पष्टीकरण दिया है । यह लोप इसलिए हुआ कि रामरुच सिंह बरैनी चला गया था । वाद-पत्र की वंशावली में अन्य अनेक वारिसों के नामों का उल्लेख है जो बरैनी जा चुके थे । अतः उसने जो स्पष्टीकरण दिया है, वह अस्वीकार करना होगा । वह यह भी स्वीकार करता है कि उक्त वंशावली में बंशीधर के भाइयो या उनकी वंशावली का कोई उल्लेख नहीं है । अतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इससे उसका पक्षकथन पूरी तरह साबित हो जाता है।

248. साक्षी ने आगे यह भी कहा कि उसने गौरी बाबू से उसके द्वारा फाइल किए गए कागजों के बारे में नहीं पूछा और न ही गौरी बाबू ने उसे बताया कि कौन-से कागज फाइल किए गए हैं। गौरी बाबू इस मामले में वादियों में से एक वादी था और वह पैरोकार भी था। वह स्वीकार करता है कि गौरी बाबू कागजों को स्पष्ट करने के लिए वकीलों के पास गया था और जब से मामलों की सुनवाई आरम्भ हुई है, वह बराबर न्यायालयों में उपस्थित रहा है। विषय के इस दृष्टिकोण से, उसका कथन अत्यन्त अस्वाभाविक और असम्भव है। अतः यदि इस पर विश्वास कर लिया जाए तो भी महत्वपूर्ण लुप्त सूत्र साबित नहीं होता।

249. न्या० एम० एम० प्रसाद ने साक्षी के उपरोक्त कथन से यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला कि उसने सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज अर्थात् वंशावली पेश नहीं की जिसके बारे में उसने अपने ऊपरवर्णित साक्ष्य में कथन किया था। फिर भी प्रत्यर्थियों के काउन्सेल ने निवेदन किया कि विद्वान न्यायाधीश ने गलती की क्योंकि अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 79 में साक्षी द्वारा वर्णित वंशावली वास्तविक वंशावली थी (प्रदर्श क्यू-2)। हम प्रत्यर्थियों के काउन्सेल द्वारा पेश की गई दलील से सहमत नहीं हैं क्योंकि पहले तो प्रतिवादी साक्षी-13 ने यह बिलकुल भी नहीं कहा कि जो वंशावली उसने देखी थी, वह इस मामले में पेश की गई है। दूसरी वंशावली (प्रदर्श क्यू-2) वादी के काउन्सेल ने उसे बिलकुल भी नहीं दिखाई जिससे यह तथ्य स्पष्ट किया जा सके कि ऊपर उद्धृत पैरा 79 में उसके साक्ष्य में निर्दिष्ट यही वंशावली है। वस्तुतः, यदि (प्रदर्श क्यू-2) वही वंशावली है, जिसका साक्षी ने हवाला दिया है तो प्रत्यर्थियों की दलील के अनुसार वादियों के काउन्सेल को सबसे पहले काम यह करना चाहिए था कि वह (प्रदर्श क्यू-2) तुरन्त साक्षी के सामने रखता। अतः यह स्पष्ट है कि न्या० एम० एम० प्रसाद ने प्रतिवादी साक्षी-13 के साक्ष्य के इस भाग की बाबत विचार प्रकट करके ठीक किया।

250. श्री तारकुन्डे ने हमारे समक्ष दूसरा तर्क यह दिया कि प्रतिवादी साक्षी-13 के साक्ष्य के मूल्यांकन में एक अन्य भूल की गई और वह यह तथ्य था कि साक्षी के इस कथन को बहुत चढ़ा दिया गया कि बंशीधर सिंह के पुत्रों के नाम का उल्लेख करते समय देवी सिंह के बजाए अच्छू सिंह का उल्लेख किया गया। यह साक्षी द्वारा किया गया असंगत रूप से अस्पष्ट कथन है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और मामले के इस भाग पर कोई चूक होने का प्रश्न नहीं है। यह भिन्न बात है कि साक्षी को बाद में देवी सिंह के नाम का लोप समझ में आ गया हो, किन्तु सच्चाई तो सबसे पहले जबान पर आ जाती है। इसके अतिरिक्त, विद्वान विसम्मत न्यायाधीश ने प्रतिवादी साक्षी-13 पर विश्वास न करने के अनेक कारण दिए हैं। विद्वान न्यायाधीश ने शिवहर, मधुबन और सिरसा के बाबुओं की वंशावली बताने का साक्षी की ओर से जो लोप किया गया है, उसका अवलम्ब लिया। इसके अतिरिक्त विद्वान न्यायाधीश ने कहा है कि प्रतिवादी साक्षी-13 ने कथन किया है वंशावली की जानकारी का उसका स्रोत उसके पिता थे किन्तु इस पर संदेह है कि क्या स्वयं उसके पिता को उन सब शाखाओं की वंशावली ज्ञात थी। यदि, साक्षी के कथन के अनुसार वह बहुत समय से बरैनी में रहता था, जिसके फलस्वरूप उसका अपने सभी सम्बंधियों से सम्पर्क टूट गया होगा। इस सम्बन्ध में विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है—

> "क्या स्वयं उसके पिता को वंशीधर से लेकर स्वयं अपने तक की वंशावली, राजा ध्रुव और उसके परिवार के सदस्यों की वंशावली तथा राजा जुगल किशोर के पूर्वजों और वंशजों की वंशावली ज्ञात थी? परिस्थितियों से यह पता नहीं चलता कि उसे इन सबकी जानकारी हो सकती थी। इस प्रकार मात्र इसलिए कि साक्षी का कहना है कि उसने वंशावली की जानकारी उसने अपने पिता से प्राप्त की थी। यह सिद्ध नहीं माना जा सकता कि उसके पिता को इन सबकी जानकारी रही होगी और उसने इन शाखाओं की समस्त वंशावली की जानकारी उसे दी थी।"
>
> (जिल्द 8, पृष्ठ 492)

251. इन परिस्थितियों में, हम न्या० एम० एम० प्रसाद के मत से पूरी तरह सहमत हैं कि इस साक्षी अर्थात् प्रतिवादी साक्षी-13 के साक्ष्य का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता।

252. अन्तिम साक्षी, महादेव सिंह, प्रतिवादी साक्षी-36 (जिल्द 1, पृष्ठ 462) है, जिसके साक्ष्य पर श्री तारकुन्डे ने निर्भर नहीं किया है किन्तु चूंकि साक्षी 80 वर्षीय है, इसलिए हम उसके साक्ष्य पर संक्षेप में ही विचार करना चाहेंगे। आरम्भ में, साक्षी भगवती प्रसाद सिंह स्वर्गीय महाराजा की सम्पूर्ण वंशावली वंशीधर से लेकर वादी के पिता भगवती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रसाद सिंह का उल्लेख करता है और यह बताने का प्रयास करता है कि दोनों परिवारों का एक ही पूर्वज था और वह था बंशीधर सिंह। न्या० मुखर्जी ने यह अभिनिर्धारित किया है कि साक्षी भगवती प्रसाद सिंह और स्वर्गीय महाराजा के परिवार से निकट संबंध रखता था और चूंकि वह एक वृद्ध आदमी है, इसलिए यह मान लिया जाए कि उसकी जानकारी के विशेष साधन थे। बहरहाल, ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान न्यायाधीश ने इस साक्षी के साक्ष्य के मूलभूत गुणागुण पर विचार नहीं किया। पहले तो प्रतिवादी साक्षी-36 अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार करता है कि वह यह नहीं बता सकता कि बंसगोपाल सिंह देवी सिंह की पंक्ति में रघुनाथ सिंह से क्या नाता है। बंसगोपाल सिंह गजराज सिंह की पंक्ति का एक वंशज है। आगे वह यह स्वीकार करता है कि वह इस संबंध के बारे में भूल चुका है। यह एक महत्वपूर्ण परिस्थिति है जो इस तथ्य को नकार देती है कि उसे स्वर्गीय महाराजा के परिवार के पूर्वजों की जानकारी के कोई विशेष साधन सुलभ थे। ऐसा प्रतीत होता है कि न्या० मुखर्जी ने ऊपर वर्णित लोप को समझे बिना ही महत्वपूर्ण लोप पर ध्यान नहीं दिया। दूसरी ओर, न्या० एम० एम० प्रसाद ने इस साक्षी के साक्ष्य का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है और उनका यह निष्कर्ष था कि यह साक्षी एक अविश्वसनीय साक्षी है। वादियों के परिवार की वंशावली की जानकारी के उसके विशेष साधन को साबित करने की दृष्टि से उसने यह कहा कि वह वादियों का निकट पड़ोसी है और उनके परिवार के साथ उनका उठना-बैठना, खाना-पीना है।

253. उसका यह भी कहना है कि वह और उसके पूर्वज बेतिया राज की सेवा में रहे हैं, विशेषकर हनुमान, उसके दादा और सलीक सिंह उसके परदादा। किन्तु यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि बैजनाथ, सलीक सिंह और हनुमान बेतिया राज्य की सेवा में थे और न ही इस कथन के समर्थन में कोई दस्तावेज पेश किया गया। यह साबित करने के लिए भी कोई दस्तावेज पेश नहीं किया गया कि वह स्वर्गीय महाराजा का निजी परिचर था, जैसा कि उसका कहना है, यद्यपि वह यह बताता है कि वह तीन साल निजी परिचर रहा है किन्तु यह अपेक्षाकृत अजीब और विचित्र बात है कि वह यह नहीं बता सका कि मरने के समय महाराजा की आयु क्या थी या महाराजा के जानकी कुवर से विवाह के समय उनकी क्या आयु थी। वह अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह पक्षकार का एक स्वीकृत पक्षकथन है कि महाराजा हरेन्द्र किशोर सिंह जानकी कुवर से विवाह करने के एक महीने के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्दर चल बसे थे। उसने आगे कहा कि उसे वंशावली की जानकारी स्वर्गीय महाराजा और अपने चाचा राम कुमार सिंह, भगवती प्रसाद सिंह और भोला सिंह से मिली थी। पहले उसने कहा कि भोला सिंह दीप नारायण का पुत्र है किन्तु तुरन्त ही उसने अपना कथन बदल दिया कि भोला सिंह देव नारायण का पुत्र है।

254. उसकी स्मरण-शक्ति को परखने के लिए उससे कुछ प्रश्न पूछे गए। उसने इस आशय का एक विशेष कथन किया कि पांच डिग्रियों के सिवाय यानी बैजनाथ सिंह तक उसे अपनी वंशावली मालूम नहीं है। उसने यह भी स्वीकार किया कि वह अपने निकट सम्बन्धियों की यहां तक कि अपने निकट सम्बन्धियों में से कुछ के पिताओं के नाम भी ज्ञात नहीं हैं और न ही नाना के। वास्तव में यदि वह अभिसाक्षी अपने परिवार की वंशावली जानने की स्थिति में नहीं है तो उससे यह कैसे प्रत्याशा की जा सकती है कि वह स्वर्गीय महाराजा की वंशावली को याद रखे जिसके बारे में उसने कहा कि उसने उनकी सेवा मात्र की थी।

255. इसके अतिरिक्त उसके द्वारा बताई गई वंशावली की सच्चाई परखने के लिए उसे किसी भी वंशावली के 12 नाम दोहराने के लिए कहा गया जो उसे याद हों, परन्तु साक्षी इसका जवाब देने में असफल रहा। इसके बजाय उसने यह अभिवाक लिया कि चूंकि वह बहुत वृद्ध है, इसलिए उसकी स्मरण-शक्ति कमज़ोर हो गई है। यद्यपि उसे 20 साल की आयु तक ही तथ्य याद थे यह बड़ी अजीब बात है कि वह दावा करता है कि उसकी स्मरण-शक्ति इतनी खराब नहीं है कि उसे वे सभी नाम याद न हों जो उसने 16-17 वर्ष की आयु में सुने थे। किन्तु जिस समय वह साक्ष्य दे रहा था, उस समय उसकी स्मरण-शक्ति बिल्कुल असफल हो गई।

256. इसी प्रकार, जब उससे पूछा गया कि उसके पूर्वजों के भगवती प्रसाद सिंह के पूर्वजों के साथ आने-जाने के सम्बन्ध कब आरम्भ हुए तो साक्षी ने उत्तर दिया कि बंशीधर और बैजनाथ। यह निश्चित रूप से मिथ्या कथन था क्योंकि बैजनाथ छटी डिग्री में उसका वंशज था। वह बंशीधर का समकालीन नहीं हो सकता था। बंशीधर बैजनाथ से बहुत पहले जीवित था, अतः बंशीधर सिंह और बैजनाथ सिंह के आपस में आने-जाने के सम्बन्धों का कोई प्रश्न नहीं है।

257. इन परिस्थितियों में से अथवा इस साक्षी द्वारा की गई स्वीकृतियों में से किसी पर भी न्या० मुखर्जी ने ध्यान नहीं दिया या विचार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं किया। इन भ्रामक और परस्पर-विरोधी कथनों की दृष्टि से हम प्रतिवादी साक्षी-36 के साक्ष्य का अवलम्ब लेना कठिन समझते हैं, अतः हम न्या० एम० एम० प्रसाद से सहमत हैं कि साक्षी विश्वसनीय नहीं है।

258. कमजोर पड़ती और ढलती हुई मनुष्य की स्मरण-शक्ति की कमियों और दोषों से उत्पन्न ऐसी या इस जैसी स्थिति के सम्बन्ध में रोक्कम लक्ष्मी रेड्डी और एक अन्य बनाम रोक्कम वेंकट रेड्डी और अन्य[1] वाले मामले में सर जार्ज रेन्किन ने संत काउन्सेल की भांति निम्नलिखित उपदेशात्मक और शास्त्रीय शब्दों में चेतावनी दी है—

> "किसी कथन का कोई आधार है या नहीं, जो उसे महत्व या ग्राह्यता प्रदान कर सके, यह प्रकट करना समय या अवसर या प्रति परीक्षा पर छोड़ना ठीक नहीं हो सकता।"

259. सारांश में एक के बाद एक वादी के साक्षियों द्वारा वंशावलियों का निष्कपट और कल्पनात्मक, काल्पनिक और अस्पष्ट, अप्रिय और धुंधला वृतान्त स्वप्न सुन्दरी या चन्द्रेला के स्वप्न की तरह है अथवा ऐसा प्रतीत होता है, जैसे शेक्सपियर का मैक्बेथ कहता है कि "धूर्त द्वारा कही गई एक ऐसी कहानी जो आवाज और आक्रोश से ओत-प्रोत है, जिसका कोई अर्थ नहीं है।"

260. इस प्रकार, मौखिक साक्ष्य पर पूर्ण और ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद भी यह निष्कर्ष निकलता है कि वादी दो महत्वपूर्ण सूत्रों को साबित करने में बुरी तरह असफल रहे हैं, जो ये हैं कि गजराज सिंह रामरुच सिंह का पुत्र था और यह कि रामरुच सिंह बन्शीधर सिंह का पुत्र था और देवी सिंह का भाई था।

261. मौखिक साक्ष्य पर अपने विचार समाप्त करने से पहले हम उस पद्धति के बारे में कुछ शब्द कहना चाहेंगे जो न्या० मुखर्जी ने बहुमत का निर्णय देते हुए वादियों के साक्षियों के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय और विश्लेषण करते समय अपनाई है—

> (1) जिस ढंग से न्या० मुखर्जी ने साक्ष्य को समझा है, वह सही या वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता। इसके विपरीत, उन्होंने वादियों के साक्ष्य पर बहुत मामूली और सरसरी तौर पर विचार किया है, जैसा कि हमने उल्लेख किया था तथा उन महत्वपूर्ण तथ्यों और

---

[1] ए० आई० आर० 1937 पी० सी० 201, (203).

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिस्थितियों को पूरी तरह अनदेखा कर दिया है जिनके आधार पर साक्षियों का साक्ष्य विश्वास योग्य नहीं है।

(2) विद्वान न्यायाधीश ने हमारे द्वारा ऊपर बताई गई वंशावली के सबूत से सम्बन्धित साक्ष्य के नियमों पर चलने का प्रयास नहीं किया और न ही वादियों के साक्षियों के साक्ष्य के अत्यन्त उल्लेखनीय तत्व को कोई महत्व दिया जो यह था कि उनकी स्मरण-शक्ति को परखते समय जिससे कि यह पता लगाया जा सके कि वे उन नामों को वास्तव में याद रख सकते हैं जो उन्हें बताए गए थे, वे इन साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करते समय, पहले और बाद में नजीरों में अधिकथित सामान्य कसौटियों पर पूरी तरह असफल रहे।

(3) ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान न्यायाधीश ने वादियों के साक्षियों के साक्ष्य को सिद्ध मान लिया और उसे इन साक्षियों के साक्ष्य की प्रकट विसंगितयों और प्रत्यक्ष कमियों पर गहन विचार किए बिना प्रथमदृष्टया उन्हें सही मान लिया।

262. अत: हम वंशावली के मुद्दे पर मौखिक साक्ष्य की बावत बहुमत के निर्णय में अपनाए गए मत को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

263. ऐसा प्रतीत होता है कि दस्तावेजों के सम्बन्ध में भी बहुमत के निर्णय में यही दृष्टिकोण अपनाया गया है कि बहुमत के निर्णय में अधिकांश उन दस्तावेजों का अवलम्ब लिया गया जो या तो असंगत, अग्राहीय थे या जो वादियों के लिए सहायक नहीं थे। उदाहरण के लिए न्या० मुखर्जी ने बाद में वर्णित वंशावली को साबित करने के लिए प्रदर्श डी० डी० 30 और 31 का अवलम्ब लिया और यह बिल्कुल भी नहीं समझा कि पहले तो निर्णयों में जो वर्णन किया गया है, वह ग्राहीय नहीं है क्योंकि निर्णय परस्पर पक्षकारों में नहीं थे और उनमें दी गई वंशावलियां भी उस वर्णन का भाग थीं, अत: उसका विधि की दृष्टि में कोई उपयोग नहीं किया जा सकता। हमने उन दस्तावेजों की विधिक और वास्तविक स्थिति पर पूर्ण विवेचन किया है, जिसका वादियों द्वारा अवलम्ब लिया गया है। हमने प्रकट किया है कि उक्त दस्तावेजों का बहुमत के निर्णय में अवलम्ब नहीं लिया जाना चाहिए था। जो कुछ हम पहले कह चुके हैं, उसे दोहरा कर इस निर्णय को बोझिल करना आवश्यक नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

264. वास्तव में, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि बहुमत का निर्णय इस बात से अत्यधिक प्रभावित था कि चूंकि वादी ठीक गजराज सिंह की वंशावली तक की अपनी बात को साबित कर चुके हैं और तत्पश्चात् बिना किसी प्रासंगिक और विश्वसनीय साक्ष्य के यह उपधारित कर लिया जाए कि गजराज सिंह बंसीधर सिंह का प्रत्यक्षतः वंशज होना चाहिए, हालांकि इस तथ्य को साबित करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं था। इसके विपरीत, यह दर्शित करने के लिए निश्चित साक्ष्य था कि गजराज सिंह बंसीधर सिंह का पोता नहीं था और ऐसा उन परिस्थितियों और दस्तावेज़ों से पता चला है जिसमें गजराज सिंह के पिता के रूप में रामरुच सिंह के नाम को पूरी तरह छोड़ दिया गया है, जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं।

265. मौखिक और दस्तावेज़ी साक्ष्य के सूक्ष्म और गहन, विस्तृत और निःशेषी विवेचन पर हम जिन अनिवार्य निष्कर्षों और परिणामों पर पहुंचे हैं, वे निम्नलिखित हैं—

(1) वादी ने निस्संदेह यह साबित कर दिया है कि वह गजराज सिंह का सीधे वंशज है। किन्तु यह तब तक उसके लिए सहायक नहीं है जब तक यह न दिखा दिया जाए कि गजराज सिंह का रामरुच सिंह के साथ और रामरुच सिंह का बंसीधर सिंह के साथ क्या संबंध है तथा यह कि बंसीधर सिंह हृदय नारायण सिंह के पुत्रों में से एक था।

(2) वादी यह साबित करने में बुरी तरह असफल रहा है कि गजराज सिंह का बंसीधर सिंह से कोई संबंध था अथवा यह कि रामरुच सिंह बंसीधर सिंह का पुत्र और देवी सिंह का भाई था।

(3) यह कि प्रदर्श-जे साक्ष्य में ग्राह्य था यद्यपि वादियों को उससे कोई मदद नहीं मिलेगी।

(4) वादियों द्वारा पेश किए गए दस्तावेज़, संव्यवहार, निर्णय, रोबकार, वाद-पत्र, लिखित कथन, आदि या तो अग्राह्य हैं या असंगत हैं।

(5) वंशावली के मुद्दे पर मौखिक साक्ष्य एकदम अविश्वसनीय है और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

(6) वादी द्वारा पेश किया गया न तो दस्तावेज़ी और न ही मौखिक साक्ष्य उनके पक्षकथन को साबित करने के लिए पर्याप्त है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतः वादीगण आरम्भिक भार का निर्वहन करने में असफल रहे हैं जोकि अपना पक्षकथन साबित करने के लिए उन पर है।

(7) बहुमत का निर्णय विधि की दृष्टि से और तथ्यों के आधार पर गलत है तथा तथ्यात्मक दृष्टि से गलत और विधिक दृष्टि से त्रुटिपूर्ण निष्कर्षों पर पहुंचा है, अतः उसे बहाल नहीं रखा जा सकता।

(8) यह कि हम, जहां तक वादियों के पक्षकथन का सम्बन्ध है, न्या० एम० एम० प्रसाद के निर्णय से पूरी तरह सहमत हैं।

(9) वादीगण यह साबित नहीं कर सके हैं कि वे स्वर्गीय महाराजा (हरेन्द्र किशोर सिंह) के अगले और निकटतम उत्तरभोगी हैं।

266. किन्तु फिर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि सुसंगत या असंगत प्राचीन और अर्वाचीन, विभिन्न और विविध, विशाल और छुटपुट सामग्री के विशाल ढेर में से सत्य को खोजना और पता लगाना कोई खिलवाड़ नहीं है अपितु वास्तव में एक भीष्म कार्य है। बहुसंख्यक न्यायाधीशों के प्रति ससम्मान हम यह कहना चाहेंगे कि मामले में अन्तर्वलित महत्वपूर्ण मुद्दे पर विधिक दृष्टि से सही निष्कर्ष पर पहुंचने के अपने परिश्रम-साध्य और संभवतः वास्तविक प्रयासों के बावजूद अन्तिम विश्लेषण में वे विधि-न्याय की अपेक्षा काव्यात्मक न्याय करने में ही सफल रहे हैं। अतः हमने केवल उन दस्तावेजों या साक्ष्य का अवलम्ब लेने की बड़ी सावधानी बरती है जो हमें विश्वसनीय और निर्भर करने योग्य प्रतीत हुए जिससे कि भूल की कोई संभावना न रहे। कोई भी नश्वर मनुष्य चाहे वह न्यायाधीश हो या न्यायवेत्ता त्रुटिहीन होने का दावा नहीं कर सकता, केवल इतना आवश्यक है कि सामग्री और अभिलेख के आधार पर न्याय किया जाए और वह किन्हीं बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित और दूषित न हो। प्रस्तुत मामले में, हमने यही करने का प्रयास किया है। यह मामला हमारे समक्ष के अनेक मामलों में से एक है किन्तु निस्संदेह, अपील के पक्षकारों के लिए यह एक प्रतिष्ठा का मामला है।

267. पुनश्च यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रत्यर्थियों ने बिहार राज्य द्वारा इस न्यायालय में अपील करने की इजाज़त के अपने आवेदन में की गई स्वीकृति का बहुत अवलम्ब लिया जो इस आशय का है कि बंसीधर सिंह से देवी सिंह, ऐनी सिंह, पहलवान सिंह, तिलक सिंह और बलभद्र सिंह तक के सम्पर्क सूत्रों के बारे में कोई विवाद नहीं है। हम इससे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहले कई बार यह उल्लेख कर चुके हैं कि यद्यपि ये सम्पर्क सूत्र साबित कर दिए गए हैं किन्तु वे वादियों के लिए उपयोगी नहीं हैं जब तक कि रामरुच सिंह, देवी सिंह और बंसीधर सिंह के बीच का संबंध साबित न कर दिया जाए। हम यह पहले ही दिखा चुके हैं कि वादीगण इन महत्वपूर्ण संबंधों को साबित करने में बुरी तरह असफल रहे हैं। दूसरे शब्दों में, देवी सिंह से लेकर स्वर्गीय महाराजा तक की वादियों की वंशावली का वामपक्ष निस्संदेह साबित कर दिया गया है किन्तु स्वयं इससे यह दर्शित नहीं हो सकता कि वादी स्वर्गीय महाराजा के अगले या निकटतम उत्तरभोगी हैं।

268. उपरोक्त निष्कर्षों की दृष्टि से वादियों के वाद खारिज करने होंगे।

269. इस ऐतिहासिक विविधतापूर्ण अध्याय को समाप्त करने से पहले अब हम अन्तिम मुद्दे पर विचार करना चाहेंगे और वह प्रश्न राजगामी सम्पत्ति का प्रश्न है। जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, न्या० एम० एम० प्रसाद ने ठीक ही कहा है कि चूंकि बिहार राज्य यह अभिवचन करके सम्पत्तियों का दावा करने के लिए वादी के रूप में सामने नहीं आया कि स्वर्गीय महाराजा का कोई वारिस नहीं रहा, अतः सम्पत्तियां बिहार राज्य में निहित हो जानी चाहिएं, यह अभिनिर्धारित करना कठिन है कि वादियों के पक्षकथन के असफल होने मात्र से सम्पत्तियां बिहार राज्य में निहित हो जाएंगी।

270. यह सुस्थिर है कि जब राजगामी सम्पत्ति का दावा सरकार सामने रखती है तो यह साबित करने का भार अपीलार्थियों पर बहुत अधिक होता है, कि प्रत्यर्थियों का कोई भी वारिस दुनियां में कहीं भी नहीं है। आमतौर पर न्यायालय राजगामित्व द्वारा सम्पदा लिए जाने से अप्रसन्न होता है जब तक कि राजगामित्व की आवश्यक शर्तें पूरी तरह पूरी न कर दी जाएं। इसके अतिरिक्त राजगामित्व का अभिवाक् स्वीकार करने से पहले सरकार को एक सार्वजनिक सूचना निकालनी चाहिए जिससे कि यदि कोई दावेदार देश में कहीं भी है अथवा इस मामले के लिए विश्व में कहीं भी है तो वह राज्य के दावे का प्रतिवाद करने के लिए आगे आ सकता है। प्रस्तुत मामले में, बिहार राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य वादी प्रत्यर्थियों के दावे का प्रतिवाद करने के लिए हाजिर होकर ही संतुष्ट हो गए। यदि वे यह दर्शित करने में असफल हो जाएं कि वादी स्वर्गीय महाराजा के निकटतम उत्तरभोगी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं है तो भी तार्किक नियम के रूप में यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि वादियों के दावे के असफल होने से यह अनिवार्य निष्कर्ष निकलेगा कि ऐसा कोई अन्य वारिस नहीं है जो सम्पत्तियों का दावा करने के लिए किसी भी समय आगे आ सके।

271. विचारण न्यायालय ने राजगामित्व द्वारा राज्य में सम्पदाओं के निहित होने से सम्बन्धित सुविदित नियम और सिद्धांतों पर कोई विचार किए बिना अपीलार्थी द्वारा पेश किए गए राजगामित्व के पक्षकथन को स्वीकार करके गलती की। न्या० एम० एम० प्रसाद ने अपने निर्णय में स्थिति का बहुत स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार निष्कर्ष निकाला है—

> "किन्तु फिर भी, मैंने जो कुछ अभिनिर्धारित किया है, उसकी दृष्टि से कि बिहार राज्य में सम्पत्ति निहित होने से सम्बन्धित निष्कर्ष या घोषणा मात्र कायम नहीं रखी जा सकती, उत्तर प्रदेश राज्य में वादगत सम्पत्ति से सम्बन्धित इस राज्य के पक्ष में घोषणा करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।"

(जिल्द 8, पृष्ठ 535)

272. इस प्रश्न के बारे में हम विद्वान न्यायाधीश की राय से पूरी तरह सहमत हैं, फिर भी हम इस प्रश्न पर कोई राय व्यक्त किए बिना इसे अनिर्णीत छोड़ना चाहेंगे क्योंकि अपील का विनिश्चय करने के लिए राजगामित्व के प्रश्न पर विचार करना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है। इसका अवधारण तब किया जा सकता है जब बिहार राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य उचित रूप से फाइल की गई कार्यवाही में राजगामित्व का दावा करने के लिए आगे आएं। अतः राजगामित्व के प्रश्न पर दोनों राज्यों द्वारा लिया गया अभिवाक् अनिर्णीत छोड़ा जाता है।

273. यह प्रकट है कि बहुमत के निर्णय में किए गए इस निष्कर्ष की दृष्टि से कि वादियों का वाद डिक्री करना होगा, राजगामित्व के प्रश्न पर उनके निर्णय में कोई राय व्यक्त नहीं की गई।

274. इसके अतिरिक्त, हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि चूंकि सम्पत्तियां बिहार और उत्तर प्रदेश राज्यों के कोर्ट ऑफ वार्ड्‌स के प्रबन्ध में हैं, इसलिए तब तक यथावत् स्थिति रहेगी जब तक कोई राज्य उचित रूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से फाइल की गई कार्यवाही में राजगामित्व का अपना अभिवाक् साबित नहीं कर देता।

275. परिणामस्वरूप, अपीलें मंजूर की जाती हैं, न्या० एम० एम० प्रसाद का विसम्मत निर्णय अनुमोदित किया जाता है और वादियों का वाद आद्योपान्त खर्चे सहित खारिज किया जाता है।

अपीलें मंजूर की गई।

घ०/जै०/कृ०/भू०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पंजाब इंजीनियरिंग कालेज, चण्डीगढ़
(उसके प्रधानाचार्य की मार्फत)

बनाम

संजय गुलाटी और अन्य

(Punjab Engineering College, Chandigarh
through its Principal

v.

Sanjay Gulati and others),

पंजाब इंजीनियरिंग कालेज, चण्डीगढ़

बनाम

धर्मेन्द्र कुमार सिंहल और अन्य

(Punjab Engineering College, Chandigath

v.

Dharminder Kumar Singhal and others),

रोहित नारंग और अन्य

बनाम

चण्डीगढ़ प्रशासन, संघ राज्यक्षेत्र, चण्डीगढ़
(मुख्य आयुक्त की मार्फत) और अन्य

(Rohit Narang and others

v.

Chandigarh Administration, Union Territory,
Chandigarh (through Chief Commissioner) and others),

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रिक्की मल्होत्रा और अन्य
बनाम
चण्डीगढ़ प्रशासन और अन्य

(Ricky Malhotra and others
v.
Chandigarh Administration and others),

और

संजय वसन्दानी और अन्य
बनाम
चण्डीगढ़ प्रशासन

(Sanjay Vasandani and others
v.
Chandigarh Administration)

(20 अप्रैल, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और सव्यसाची मुखर्जी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—शिक्षण-संस्थाएं—छात्रों का प्रवेश—शिक्षण-संस्था में असंगत बातों के आधार पर और नियमों का अतिक्रमण करते हुए 'मौके पर प्रवेश' किया जाना—जिन छात्रों को नियमों का अतिलंघन करके गलत ढंग से प्रवेश दिया गया है, उन्हें संस्था से निकाल दिया जाना चाहिए और जिन छात्रों के नाम अन्यायोचित रीति से चयन किए गए छात्रों की सूची में से अपवर्जित किए गए हैं, उन्हें प्रवेश मिलना ही चाहिए—किन्तु वर्तमान परिस्थिति में, चिकित्सा महाविद्यालय में छात्रों के उतने स्थान बढ़ा देना न्यायोचित है, जितने छात्रों को गलत ढंग से प्रवेश किया गया था—दोनों वर्ग के छात्रों के बीच साम्या अपेक्षित है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—शिक्षण-संस्थाएं—छात्रों का प्रवेश—न्यायालय द्वारा यह घोषित किया जाना कि कतिपय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

छात्रों को अन्यायोचित रीति से प्रवेश दिया गया है—गुणागुण को ध्यान में लाए बिना, केवल उन्हीं को प्रवेश के लिए अधिमानता नहीं दी जा सकती जिन्होंने अन्यायोचित रीति से प्रवेश पा लिया था—अतः ऐसे सभी अभ्यर्थियों के मामलों पर भी, जिन्होंने रिट पिटीशन फाइल किया था या नहीं, किन्तु जिन्होंने प्रवेश के लिए आवेदन किया था, गुणागुण के आधार पर, विचार किया जाना चाहिए।

कुछ अभ्यर्थियों को चण्डीगढ़ स्थित पंजाब इंजीनियरिंग कालेज में शैक्षणिक वर्ष 1982-83 के लिए "मौके पर परीक्षा" लेकर प्रवेश किया गया। उनके विरुद्ध पिटीशन फाइल किए जाने पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने उनके प्रवेश को इस आधार पर अभिखण्डित कर दिया है कि यह संस्था के प्रवेशों को लागू होने वाले नियमों और विनियमों के प्रतिकूल है। उच्च न्यायालय के उसी निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत लेकर अपील फाइल की गई। अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—उन जैसे मामलों में, जिनमें शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को दिए गए प्रवेश अभिखण्डित किए जाते हैं, एक संवेदनशील मानवीय प्रश्न उत्पन्न होता है। यह निस्सन्देह सत्य है कि जिन प्राधिकारियों पर शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश करने का भार होता है, उन्हें ईमानदारी से और उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करना चाहिए। यदि इन संस्थाओं में असंगत बातों के आधार पर प्रवेश किए जाते हैं और प्राधिकारी नियमों और विनियमों में दिए गए मानदण्डों का अतिक्रमण करते हैं तो उन अभागे नवयुवक छात्रों के, जिन्हें गलत ढंग से या सप्रयोजन छोड़ दिया जाता है, मन में रोष और कुण्ठा की भावना उत्पन्न होना निश्चित है। शिक्षा-संस्थाओं में अनुशासनहीनता समान रूप से प्रशासकों और अध्यापकों में नैतिक मूल्यों की भावनाओं की कमी से पूर्णतः असम्बद्ध नहीं है। किन्तु ऐसे मामलों में न्यायालयों को जिस समस्या का सामना करना पड़ता है, वह यह है कि प्रवेश के पश्चात्, छह मास या एक वर्ष की अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात् ही न्यायालय का मध्यक्षेप शुरू होता है। उच्च न्यायालय ऐसे रिट पिटीशनों को जिनमें ऐसे प्रवेशों को चुनौती दी जाती है, साधारणतः उतनी शीघ्रता से अपने हाथ में लेते हैं जितनी संभव है, किन्तु फिर भी जो छात्र गलत ढंग से प्रवेश पा चुके होते हैं, वे उस समय तक, जबकि न्यायालय अपना निर्णय देते हैं, पाठ्य-क्रम के एक या दो सेमेस्टर समाप्त कर लेते हैं। इस न्यायालय में और आगे की जाने वाली अपील में और अधिक समय लगता है जिससे उन छात्रों के,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिन्हें गलत ढंग से प्रवेश किया जाता है या उनके जिन्हें अन्यायोचित रूप से छोड़ दिया जाता है, बीच न्याय करने में और कठिनाई उत्पन्न होती है। निश्चित रूप से, न्यायालय को विधि की वास्तविक स्थिति सम्बन्धी सैद्धांतिक निर्णय से ही सन्तोष करना पड़ता है। जिन छात्रों को गलत ढंग से प्रवेश मिल जाता है, जिन्हें हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा उनकी ओर से किए गए छल-साधनों के, यदि कोई हैं, तो परिणाम नहीं भुगतने पड़ते हैं। इसका असल में यह अर्थ होता है कि शिक्षा संस्थाओं में किसी भी तरीके से, चाहे वह उचित हो या अनुचित प्रवेश ले लेना चाहिए यदि आपको प्रवेश मिल जाता है, तो फिर आपको कोई भी बाहर नहीं निकाल पाएगा। विधिक विलम्ब के परिणाम विभिन्न रीतियों से आश्चर्यजनक होते हैं। (पैरा 4)

निष्कर्ष यह है कि इस स्थिति ने विभिन्न राज्यों के गलती करने वाले प्राधिकारियों और शिक्षा संस्थाओं को अदण्डित रहकर प्रवेश के मानदण्डों का उल्लंघन करने के लिए प्रोत्साहित किया है। वे ऐसे अनुभव करते प्रतीत होते हैं कि न्यायालय प्रवेशों को वैसे का वैसा रहने देंगे भले ही प्रवेश, नियमों और विनियमों के विरुद्ध क्यों न किए गए हों। यह सर्वाधिक असन्तोषप्रद स्थिति है। विधियां इसलिए बनाई जाती हैं कि उनका पालन किया जाए, न कि उनकी अवज्ञा की जाए। किसी दिन, जो दूर नहीं है, यदि प्रवेशों को इस कारण से अभिखण्डित कर दिया जाता है कि वे गलत ढंग से किए गए हैं, तो यह निदेश दिया जाएगा कि ऐसे छात्रों के नाम जिनको गलत ढंग से प्रवेश मिला है, संस्था की नामावली से हटा दिए जाएं। इस मामले में भी यह मार्ग अपनाना न्यायोचित होता, किन्तु ऐसा उतावला कदम उठाने से पहले हम स्पष्ट चेतावनी दे दें। इस बात के बावजूद कि उच्च न्यायालय ने अपने इस सतर्क और सारगभित निष्कर्ष में कि उनमें से कम से कम आठ का इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम में दिया गया प्रवेश सुसंगत नियमों और विधियों का अतिक्रमण करके किया गया है, पूर्वोक्त 16 छात्रों को अध्ययन जारी करने की इजाजत देने का सखेद विनिश्चय किया गया। (पैरा 5)

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे सभी मामलों में, ये प्राधिकारी जो प्रवेश नियमों की अवहेलना करके प्रवेश करते हैं, यह दलील देते हैं कि स्थान इस कारण से तदनुसार नहीं बढ़ाए जा सकते, क्योंकि राज्य सरकार उन स्थानों की संख्या के बढ़ाए जाने से होने वाले अतिरिक्त खर्च का वहन नहीं कर सकती या यह कि संस्था, छात्रों के अतिरिक्त आगम से निपट नहीं पाएगी। चिकित्सा महाविद्यालयों की बाबत एक अतिरिक्त दलील यह है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि भारतीय चिकित्सा परिषद् अतिरिक्त स्थानों की मंजूरी नहीं देगी। जो व्यक्ति नियमों का अतिलंघन करते हैं, उन्हें अपनी भूल की कीमत चुकानी पड़ेगी और उन योग्य छात्रों के साथ, जिन्हें प्रवेश मिलना चाहिए था, किए गए अन्याय का प्रतिकार होना चाहिए। इन परिस्थितियों में सबसे अच्छा हल यह सुनिश्चित करना है कि स्थानों की संख्या उस अनुपात में बढ़ा दी जाए जिसमें प्रवेश गलत ढंग से किए गए थे। (पैरा 6)

इसके अलावा, उन प्राधिकारियों का जिन पर शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश करने का कर्त्तव्य भार होता है, आचरण, सन्देह से परे होना चाहिए। वे प्राधिकारी ऐसे नवयुवक महत्वाकांक्षियों के, जो जीवन की दहलीज पर खड़े होते हैं और जो भविष्य की ओर आशा और प्रत्याशाओं के साथ निहारते हैं, जीवन और कैरियर से नहीं खेल सकते। (पैरा 11)

अत: यह निदेश दिया गया कि शैक्षणिक वर्ष 1983-84 के लिए सोलह अतिरिक्त रिक्तियों में प्रवेश गुणागुण के अनुसार ऐसी सूचियों के आधार पर किया जाए जो कि चण्डीगढ़ के छात्र समूह और सामान्य छात्र-समूह के संबंध में शैक्षणिक वर्ष 1982-83 के लिए तैयार की गई थीं। (पैरा 10)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1982]	[1982] 1 उम० नि० प० 595= [1981] 3 एस० सी० आर० 34 : आरती सप्रू बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य (Arti Sapru *v.* State of Jammu and Kashmir and others);	9
[1981]	[1981] 4 उम० नि० प० 419= [1981] 2 एस० सी० आर० 89 : अजय हसिया बनाम खालिद मुजीब सेहरावर्दी (Ajay Hasia *v.* Khalid Mujib Sehravardi);	9
[1980]	[1980] 1 उम० नि० प० 356= [1979] 2 एस० सी० आर० 974 : केरल राज्य बनाम कुमारी टी० पी० रोशना (State of Kerala *v.* Kumari T. P. Roshana).	9

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिविल अपीली अधिकारिता : 1982 की सिविल अपील सं० 3779, 3653-66, 3524-28, 3054 और 1983 की सिविल अपील सं० 4065.

1982 की क्रमशः सिविल रिट पिटीशन सं० 3669, 3706, 3499, 3443, 3498, 3919, 3958, 3525, 3750, 3912, 3572, 3663, 3680, 3731, 3566 और 3750 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 14 सितम्बर, 1982 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से (सिविल अपील सं० 3779/82 और सिविल अपील सं० 3653-67/82 में और शेष अपीलों में प्रत्यर्थियों की ओर से)	सर्वश्री कपिल सिब्बल, आर० सी० पाठक और अतुल सी० जैन
अपीलार्थी की ओर से (1982 की सिविल अपील सं० 3524-26)	सर्वश्री पी० आर० मृदुल और आर० के० आनन्द
अपीलार्थी की ओर से (सिविल अपील सं० 3527/82 में)	सर्वश्री प्रेम मल्होत्रा और सर्व मित्तर
अपीलार्थी की ओर से (सिविल अपील सं० 3528/82 में	श्री रामेश्वर दयाल
अपीलार्थी की ओर से (सिविल अपील सं० 3054/82 में)	श्रीमती जे० वाड
मध्यक्षेपी की ओर से	श्री रणधीर जैन
अपीलार्थी की ओर से (सिविल अपील सं० 4065/83 में)	सर्वश्री वधवानी, ए० मिनोचा, पी० सी खुंगर और हरबन्स लाल
अपीलार्थी सं० 3 की ओर से (सिविल अपील सं० 4065/83 में)	श्री एन० के० अग्रवाल
उपसंज्ञात होने वाले प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री आर० के० जैन०, पी० के० जैन, ए० के० गोयल, के० के० मोहन, रणधीर जैन, पी० आर० मृदुल, रवि कान्त चड्ढा और के० बी० रोहतगी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—

[आठ अभ्यर्थियों को चण्डीगढ़ स्थित पंजाब इन्जीनियरिंग कालेज, में शैक्षणिक वर्ष 1982-83 के लिए "मौके पर परीक्षा" लेकर प्रवेश दिया गया। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने उनके प्रवेश को इस आधार पर अभिखण्डित कर दिया है कि यह संस्था के प्रवेशों को लागू होने वाले नियमों और विनियमों के प्रतिकूल हैं। हमारी राय यह है कि चूंकि इन छात्रों ने एक या दो सेमेस्टर पहले से ही पूरे कर लिए हैं, इसलिए उनके प्रवेश को इस प्रक्रम में रद्द करना और कालेज की सूची से उनके नामों को हटाना न्यायोचित नहीं होगा। अतः हम निदेश देते हैं कि उन्हें कालेज में किसी विघ्न के बिना आगे का अपना अध्ययन जारी रखने दिया जाए।

2. इसी मानक के आधार पर यद्यपि उच्च न्यायालय ने पंजाब इन्जीनियरिंग कालेज के कर्मचारियों के सात प्रतिपाल्यों (वार्डों) के प्रवेश को इस आधार पर अभिखण्डित कर दिया है कि ऐसे प्रवेश, प्रवेश के सुसंगत नियमों के प्रतिकूल हैं, तथापि इस प्रक्रम में उनका प्रवेश रद्द करना उचित नहीं होगा। उन्होंने भी "मौके पर परीक्षा" देने वाले आठ छात्रों की तरह शैशणिक वर्ष 1982-83 के एक या दो सेमेस्टर पूरे कर लिए हैं। उन्हे कालेज में किसी विघ्न के बिना आगे अपना अध्ययन जारी रखने दिया जाए।

3. उच्च न्यायालय ने अभ्यर्थी अशोक कुमार कौशिक का प्रवेश भी इसी आधार पर अभिखण्डित किया है, किन्तु उसे भी कालेज में आगे का अपना अध्ययन जारी रखने दिया जाएगा। हम उसे उस मानक से भिन्न मानक लागू नहीं कर सकते, जो हमने ऊपर निर्दिष्ट पन्द्रह अभ्यर्थियों को लागू किया है जिन्हें अपना अध्ययन जारी रखने के लिए ऐसे अनुज्ञात किया जा रहा है, मानो कि कालेज में उनके प्रवेश में कोई दोष या अवैधता न हो।

4. उन जैसे मामलों में, जिनमें शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को दिए गए प्रवेश अभिखण्डित किए जाते हैं, एक संवेदनशील मानवीय प्रश्न उत्पन्न होता है। यह निस्सन्देह सत्य है कि जिन प्राधिकारियों पर शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश करने का भार होता है, उन्हें ईमानदारी से और उद्देश्यपूर्ण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ढंग से कार्य करना चाहिए। यदि इन संस्थाओं में असंगत बातों के आधार पर प्रवेश किए जाते हैं और प्राधिकारी नियमों और विनियमों में दिए गए मानदण्डों का अतिक्रमण करते हैं तो उन अभागे नवयुवक छात्रों के, जिन्हें गलत ढंग से या सप्रयोजन छोड़ दिया जाता है, मन में रोष और कुण्ठा की भावना उत्पन्न होना निश्चित है। शिक्षा-संस्थाओं में अनुशासनहीनता समान रूप से प्रशासकों और अध्यापकों में नैतिक मूल्यों की भावनाओं की कमी से पूर्णतः असंबद्ध नहीं हैं। किन्तु ऐसे मामलों में न्यायालयों को जिस समस्या का सामना करना पड़ता है, वह यह है कि प्रवेश के पश्चात्, छह मास या एक वर्ष की अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात ही न्यायालय का मध्यक्षेप शुरू होता है। उच्च न्यायालय ऐसे रिट पिटीशनों को जिनमें ऐसे प्रवेशों को चुनौती दी जाती है, साधारणतः उतनी शीघ्रता से अपने हाथ में लेते हैं जितनी सम्भव है, किन्तु फिर भी जो छात्र गलत ढंग से प्रवेश पा चुके होते हैं, वे उस समय तक, जबकि न्यायालय अपना निर्णय देते है, पाठ्य-क्रम के एक या दो सेमेस्टर समाप्त कर लेते हैं। इस न्यायालय में और आगे की जाने वाली अपील में और अधिक समय लगता है जिससे उन छात्रों के, जिन्हें गलत ढंग से प्रवेश किया जाता है या उनके जिन्हें अन्यायोचित रूप से छोड़ दिया जाता है, बीच न्याय करने में और कठिनाई उत्पन्न होती है। निश्चित रूप से, न्यायालय को विधि की वास्तविक स्थिति सम्बन्धी सैद्धान्तिक निर्णय से ही संतोष करना पड़ता है। जिन छात्रों को गलत ढंग से प्रवेश मिल जाता है, उन्हें हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा उनकी ओर से किए गए छल-साधनों के, यदि कोई हैं तो, परिणाम नहीं भुगतने पड़ते हैं। इसका असल में यह अर्थ होता है कि शिक्षा संस्थाओं में किसी भी तरीके से, चाहे वह उचित हो या अनुचित प्रवेश ले लेना चाहिए यदि आप को प्रवेश मिल जाता है, तो फिर आपको कोई भी बाहर नहीं निकाल पाएगा। विधिक विलम्ब के परिणाम विभिन्न रीतियों से आश्चर्यजनक होते हैं।

5. हमारा निष्कर्ष यह है कि इस स्थिति ने विभिन्न राज्यों के गलती करने वाले प्राधिकारियों और शिक्षा-संस्थाओं को अदण्डित रहकर प्रवेश के मानदण्डों का उल्लंघन करने के लिए प्रोत्साहित किया है। वे ऐसे अनुभव करते प्रतीत होते हैं कि न्यायालय प्रवेशों को वैसे का वैसा बने रहने देंगे भले ही प्रवेश, नियमों और विनियमों के विरुद्ध क्यों न किए गए हों। यह सर्वाधिक असंतोषप्रद स्थिति है। विधियां इसलिए बनाई जाती हैं कि उनका पालन किया जाए, न कि उनकी अवज्ञा की जाए। किसी दिन,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जो दूर नहीं है, यदि प्रवेशों को इस कारण से अभिखण्डित कर दिया जाता है कि वे गलत ढंग से किए गए हैं, तो यह निदेश दिया जाएगा कि ऐसे छात्रों के नाम जिनको गलत ढंग से प्रवेश मिला है, संस्था की नामावली से हटा दिए जाएं। इस मामले में भी हमारा यह मार्ग अपनाना न्यायोचित होता, किन्तु हमने यह सोचा कि ऐसा उतावला कदम उठाने से पहले हम स्पष्ट चेतावनी दे दें। हमने इस बात के बावजूद कि उच्च न्यायालय ने अपने इस सतर्क और सारगर्भित निष्कर्ष में कि उनमें से कम से कम आठ का, अर्थात् कर्मचारियों के सात प्रतिपाल्यों और अशोक कुमार कौशिक को, इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम में दिया गया प्रवेश सुसंगत नियमों और विधियों का अतिक्रमण करके किया गया है, पूर्वोक्त 16 छात्रों को अध्ययन जारी करने की इजाजत देने का सखेद विनिश्चय किया है।

6. यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे सभी मामलों में, वे प्राधिकारी जो प्रवेश-नियमों की अवहेलना करके प्रवेश करते हैं, यह दलील देते हैं कि स्थान इस कारण से तदनुसार नहीं बढ़ाए जा सकते, क्योंकि राज्य सरकार उन स्थानों की संख्या के बढ़ाए जाने से होने वाले अतिरिक्त खर्च का वहन नहीं कर सकती या यह कि संस्था, छात्रों के अतिरिक्त आगम से निपट नहीं पाएगी। चिकित्सा महाविद्यालयों की बाबत एक अतिरिक्त दलील यह है कि भारतीय चिकित्सा परिषद् अतिरिक्त स्थानों की मंजूरी नहीं देगी। हम यह तर्क स्वीकार नहीं कर सकते। जो व्यक्ति नियमों का अतिलंघन करते हैं, उन्हें अपनी भूल की कीमत चुकानी पड़ेगी और उन योग्य छात्रों के साथ जिन्हें प्रवेश मिलना चाहिए था, किए गए अन्याय का प्रतिकार होना चाहिए। इन परिस्थितियों में सबसे अच्छा हल यह सुनिश्चित करना है कि स्थानों की संख्या उस अनुपात में बढ़ा दी जाए जिसमें प्रवेश गलत ढंग से किए गए थे।

7. चूंकि इस मामले में आठ छात्रों, और शायद सोलह छात्रों को गलत ढंग से प्रवेश किया गया था, इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि जुलाई, 1983 में प्रारम्भ होने वाले अगले शैक्षणिक वर्ष के लिए मंजूर की गई स्थान-संख्या के अलावा, सोलह अतिरिक्त स्थान सृष्ट किए जाएंगे जिनमें शैक्षणिक वर्ष 1982-83 के लिए तैयार की गई सूचियों से पंजाब इंजीनियरिंग कालेज में सोलह छात्रों को प्रवेश किया जाएगा। इन सोलह स्थानों को चण्डीगढ़ के स्थानीय छात्रों और चण्डीगढ़ के बाहर के क्षेत्रों के साधारण छात्रों के बीच समान रूप से प्रभाजित किया जाएगा। इसका अर्थ यह है कि आठ छात्रों को चण्डीगढ़ की छात्र-सूची से और आठ छात्रों को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साधारण छात्र-सूची से, जोकि पिछले शैक्षणिक वर्ष अर्थात 1982-83 के लिए तैयार की गई थीं, प्रवेश किया जाएगा।

8. केवल एक प्रश्न जो बचता है, वह यह है कि क्या उन सोलह रिट पिटीशनरों को उन सोलह स्थानों पर प्रवेश किया जाए या उन स्थानों पर प्रवेश गुणागुण के अनुसार यथार्थत: किया जाए। हम पिटीशनरों की यह दलील नहीं मान सकते कि उन्हें गुणागुण को विचार में लाए बिना, अधिमानता दी जाए। यह परिस्थिति कि उन्होंने ही उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल किए, किन्तु अन्य लोगों ने जोकि इसी प्रकार से व्यथित थे, फाइल नहीं किया, उन अन्य लोगों की उपेक्षा करके जो कि योग्यता-सूची में उच्चतर थे, प्रवेश करने की बात को न्यायोचित नहीं ठहराएगी।

9. जब इसी प्रकार का प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष केरल राज्य बनाम **कुमारी टी० पी० रोशना**[1] वाले मामले में उठा, तो न्यायालय ने राज्य सरकार को तीस और छात्रों को प्रवेश करने का निदेश दिया। न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने यह मत व्यक्त किया :—

> "इन तीस छात्रों के चयन को ऐसे छात्रों तक सीमित नहीं रखा जाएगा जिन्होंने इस न्यायालय में अथवा उच्च न्यायालय में रिट कार्यवाहियों द्वारा अथवा अपील के माध्यम से समावेदन किया है। अध्युपाय शिक्षा सम्बन्धी सर्वोच्चता के रूप में, न कि मुकदमे के बल पर कार्यशील होगा। प्रथम तीस छात्रों को इस बात की स्वतन्त्रता होगी कि वे यथार्थ रूप से गुणागुण के आधार पर जिसकी गणना उनके द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर की जाएगी, प्रवेश पा सकें।"

अजल हसिया बनाम खालिद मुजीब सेहरावर्दी[2] के मामले में राज्य सरकार, कालेज और वह सोसायटी जो कालेज को चला रही थी -- सभी इस न्यायालय के समक्ष सहमत थे कि उन छात्रों में से सबसे योग्य पचास ऐसे छात्रों को जिन्होंने शैक्षणिक वर्ष 1979-80 के प्रवेश के लिए आवेदन दिए थे और जो प्रवेश प्राप्त नहीं कर सके थे,—शैक्षणिक वर्ष 1981-82 के लिए प्रवेश

---

[1] [1980] 1 उम० नि० प० 356=[1979] एस० सी० आर० 974.
[2] [1981] 4 उम० नि० प० 419=[1981] 2 एस० सी० आर० 89.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिया जाएगा और यह कि जो स्थान आबंटित किए जाएंगे, वे कालेज में छात्रों की सामान्य भर्ती के अतिरिक्त होंगे। आरती सप्रू बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य[1] वाले मामले में उन अभ्यर्थियों के जिन्हें मेडिकल कालेज में प्रवेश किए जाने से गलत ढंग से वंचित किया गया था, रिट पिटीशन मंजूर करने के बाद हम में से एक, अर्थात न्या० पाठक ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :

> "परिणामस्वरूप, जिन अभ्यर्थियों को विस्थापित करना पड़ेगा उन्होंने पहले ही अध्ययन के कुछ मास पूरे कर लिए हैं और उनके जीवन अनुक्रम में गम्भीर प्रतिकूलता तथा ह्रास से बचने के लिए यह आशा की जाती है कि राज्य सरकार उनके मामलों के सम्बन्ध में सहानुभूतिपूर्वक कार्यवाही करेगी जिससे कि जब कि इस न्यायालय के निर्णय को कार्यान्वित किया जाता है नियमों को औचित्यपूर्वक ढील दी जाएगी और यदि सम्भव हो तो स्थानों की संख्या में अस्थायी रूप से वृद्धि कर दी जाएगी ताकि विस्थापित अभ्यर्थियों को स्थान मिला रहे।"

इस न्यायालय ने प्राधिकारियों को निदेश दिया कि वे अतिरिक्त रिक्तियों को "खुली प्रतियोगिया के आधार पर" भरें।

10. इन विनिश्चयों का अनुसरण करते हुए, हम यह निदेश देते हैं कि शैक्षणिक वर्ष 1983-84 के लिए सोलह अतिरिक्त रिक्तियों में प्रवेश गुणागुण के अनुसार ऐसी सूचियों के आधार पर किया जाए जो कि चण्डीगढ़ के छात्र-समूह और सामान्य छात्र-समूह के सम्बन्धों में शैक्षणिक वर्ष 1982-83 के लिए तैयार की गई थीं।

11. हम यह भी कहना चाहेंगे कि यद्यपि इस बात से हमारा समाधान हो गया है कि कालेज के कर्मचारियों के सात प्रतिपाल्यों का और अशोक कुमार कौशिक का प्रवेश नियमों और विनियमों के प्रतिकूल है, तथापि हमने "मौके पर परीक्षा" के आधार पर प्रविष्ट किए गए आठ छात्रों के प्रवेश की अभिकथित अवैधता की बाबत उच्च न्यायालय के निष्कर्ष की परिशुद्धता की परीक्षा नहीं की है। हम इस पश्चातकथित प्रकार के प्रवेशों के बारे में केवल यह दोहराएंगे कि उन प्राधिकारियों का

---

[1] [1982] 1 उम० नि० प० 595=[1981] 3 एस० सी० आर० 34.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिन पर शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश करने का कर्तव्य-भार होता है, आचरण, सन्देह से परे होना चाहिए। वे प्राधिकारी ऐसे नवयुवक महत्वकांक्षियों के, जो जीवन की दलहीज पर खड़े होते हैं और जो भविष्य की ओर आशा और प्रत्याशाओं के साथ निहारते रहते हैं, जीवन और कैरियर से नहीं खेल सकते।

12. इस आदेश के अनुसार इन अपीलों का निपटारा किया जाता है।

अपीलें भागतः मंजूर की गई।

घ०/श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवकी नन्दन प्रसाद

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

(Devaki Nandan Prasad

v.

State of Bihar and Others).

(22 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 और 300-क [सपठित बिहार पेंशन रूल्स, 1950 का नियम 5 और नियम 5 की अनुसूची की मद सं० 3]—4 मई, 1971 में ही संविधान न्यायपीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना कि पेंशन का अधिकार सम्पत्ति का अधिकार है और सरकार कार्यपालक आदेश निकालकर उस आदेश को छीन नहीं सकती—राज्य सरकार का उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के उक्त निदेश का अनुपालन करने में किया गया विलम्ब अनुचित है, अतः वह पेंशन और उपदान की रकम का संदाय निश्चित तारीख तक करने के लिए बाध्य है।

पिटीशनर 1 सितम्बर, 1928 को सेवा में आया था और स्वीकृततः वह 10 जनवरी, 1967 को अधिवर्षिता पर सेवा-निवृत्त हुआ है। वह बिहार पेंशन रूल्स, 1950 के अधीन पेंशन प्राप्त करने का हकदार है। विवाद यह है कि क्या पिटीशनर बिहार एजूकेशन सर्विस (बिहार शिक्षा सेवा) का सदस्य है और उसकी पेंशन की संगणना का ढंग क्या होना चाहिए? प्रथम मुद्दे के सम्बन्ध में यह मामला अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है, क्योंकि उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने 4 मई, 1971 को यह अभिनिर्धारित किया था कि पेंशन नियम के नियम 5 के प्रति जो निर्देश किया गया है, उससे यह दर्शित होता है कि उसमें उल्लिखित अधिकारी पेंशन प्राप्त करने के हकदार हैं। इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि पिटीशनर बिहार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिक्षा सेवा के शिक्षा विभाग में अधिकारी है और इस विभाग का नाम नियम 5 की अनुसूची की मद सं० 3 के सामने दिखाया गया है। अतः पक्षकारों के बीच इस विनिश्चय द्वारा यह संविवाद समाप्त हो गया है कि पिटीशनर बिहार शिक्षा सेवा का सदस्य है और यह कि पेंशन नियम के नियम 5 के अधीन वह पेंशन प्राप्त करने का हकदार है। इस न्यायालय द्वारा 4 मई, 1971 को परमादेश के रिट जारी किए जाने के बाद पिटीशनर अन्य व्यक्तियों के बीच बिहार के तत्समय मुख्यमंत्री के पास इस दृष्टि से गया था जिससे कि उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी परमादेश को कार्यान्वित और प्रभावी किया जा सके। मुख्यमंत्री ने यह निदेश दिया कि यद्यपि उस परमादेश के जारी किए जाने के बाद दो वर्ष की अवधि व्यतीत हो चुकी है और मुख्यमंत्री ने स्वयं ही 25 जून, 1973 से दस महीने पहले यह निदेश दिया था कि पिटीशनर के दावे का संदाय यथा-संभवशीघ्र कर दिया जाए और सम्बन्धित फाइल के विषय में कार्यवाही करने सम्बन्धी रिपोर्ट की साप्ताहिक प्रगति पर और इस बात पर जोर दिया था कि उसके समक्ष वह फाइल प्रस्तुत की जाए, फिर भी मुख्यमंत्री ने अपनी असहायता व्यक्त की। निस्संदेह, मुख्यमंत्री को इस बात की आशंका थी कि यह बिल्कुल ही सम्भाव्य है कि उच्चतम न्यायालय न केवल इस गड़बड़ के लिए उत्तरदायी अधिकारियों से, बल्कि राज्य सरकार से भी इस बात का स्पष्टीकरण मांग सकता है कि परमादेश की उपेक्षा क्यों की गई। उसके बाद उसने यह अलंघनीय आदेश दिया कि फाइल उनके समक्ष प्रस्तुत की जाए। किन्तु कुछ भी आगे नहीं हुआ। अन्त में वह फाइल मुख्यमंत्री के पास 1974 में उस समय पहुंची जबकि उन्होंने अपने पास मंगवायी। मुकदमे का इतिहास पिटीशनर के साथ किए गए अन्याय, सम्बन्धित अधिकारियों की पूरी तरह से लापरवाही और असहानुभूति की कहानी बहुत लम्बी है और उसके बाद मुख्यमंत्री ने इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए परमादेश के अनुरूप पिटीशनर के दावे का निपटारा करने के सम्बन्ध में कार्यवाही की। पिटीशनर की पेंशन और उपदान की जो रकम निश्चित की गई, उसकी संगणना पिटीशनर के मतानुसार, गलत ढंग से की गई थी। अतः उसने उच्चतम न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट पिटीशन फाइल किया। पिटीशन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—प्रस्तुत पिटीशन का निपटारा करने में 4 मई, 1971 वाले उच्चतम न्यायालय के जिस तात्विक प्रभाग से न्यायालय को सहायता मिली है, उसमें यह परिवर्णित किया गया है कि पिटीशनर को उस समय से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जबकि उसकी प्रोन्नति हुई थी, बिहार शिक्षा सेवा के वर्ग-II पदों में माना जाएगा और 1-1-1952 से उसकी बाबत यह समझा जाएगा कि वह अपनी ज्येष्ठता के अनुसार या सीधी नियुक्ति की तारीख से, जिसने कि पिटीशनर को समान अवसर से वंचित कर दिया था, वर्ग-I पद का है और उसे चयन श्रेणी प्राप्त है, जिसका कि वह पूरी तरह से हकदार था। किन्तु न्याय के उद्देश्यों के लिए, पिटीशनर को एक मास के भीतर उसके दावे का संदाय कर दिया जाना चाहिए जिसके लिए शिक्षा विभाग का कोई अधिकारी उत्तरदायी होना चाहिए। उच्चतम न्यायालय के निदेश के कार्यान्वयन में असम्यक् विलम्ब हुआ है जो अनुचित है। (पैरा 6)

उच्चतम न्यायालय के परमादेश को प्रभावी बनाने की दृष्टि से प्रत्यर्थी-राज्य पिटीशनर को संदेय वेतन की संगणना उस तारीख से करेगा जिसको उसकी प्रोन्नति वर्ग-II सेवा में की गई थी और इस उपधारणा के आधार पर करेगा कि वह तत्समय उसे ग्राह्य वेतनमान में, जो कि बिहार शिक्षा सेवा में वर्ग-II श्रेणी के समतुल्य था, वर्ग-II में कार्य कर रहा था। यह उस तारीख से प्रारम्भ होगा जिससे कि उसे सरायकेला स्थित विद्यालय उप-निरीक्षक के रूप में प्रोन्नत किया गया था। संगणना के प्रयोजनार्थ, वेतन की संगणना करने में उस पद के लिए तत्समय प्रचलित वर्ग-II का वेतनमान दिया जाएगा और पिटीशनर के बारे में यह समझा जाएगा कि उसे उसी वेतनमान में नियुक्त कर दिया गया है। 1-1-1952 तक वार्षिक वेतन वृद्धियां जोड़ी जानी हैं, जबकि उसके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि उसे बिहार शिक्षा सेवा में वर्ग-I पद पर, प्रोन्नत कर दिया गया था। प्रत्यर्थी-राज्य इसी प्रक्रिया को पुनः दोहराएगा, क्योंकि तत्समय प्रचलित वर्ग-I वेतनमान के बारे में यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह 1-1-1952 से पिटीशनर के लिए ग्राह्य था। उसके बारे में यह अवश्य ही समझा जाना चाहिए कि उसकी नियुक्ति उसी वेतनमान में कर दी गई थी, और उसकी वार्षिक वेतन वृद्धियों का हिसाब लगाया जाए। यदि इसी प्रक्रिया में वह चयन श्रेणी प्राप्त करने का हकदार हो जाता है, तो उसका भी हिसाब लगाया जाना चाहिए और यह संगणना 10-1-1967 तक की जानी चाहिए, जबकि पिटीशनर अधिवर्षिता प्राप्त करने पर सेवा से निवृत्त हुआ था। वेतन की इस संगणना के आधार पर उसकी पेंशन की संगणना बिहार पेंशन नियम के सुसंगत नियमों के अधीन की जाएगी, जैसा कि 1967 तक समय-समय पर उन्हें उदार बनाया गया है, और उसकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पेंशन का अवधारण पूर्वोक्त संगणना-पत्र के आधार पर 10-1-1967 को की जाएगी। (पैरा 9)

राज्य और इस कार्य के लिए उत्तरदायी अधीनस्थ अधिकारियों को परमादेश के रिट द्वारा यह निदेश किया गया कि वे 31 जुलाई, 1983 तक यह संगणना पूरी कर लें और उस तारीख तक पेंशन-संदाय- आदेश, जो कि यहां पर दिए गए निदेश के अनुसार ठीक और सुसंगत होना चाहिए, पिटीशनर को निश्चित रूप से दे दिया जाना चाहिए। राज्य को इस न्यायालय के परमादेश द्वारा यह भी निदेश दिया गया कि वह उसी कालावधि के भीतर पूर्वोक्त संगणना के आधार पर पेंशन की बकाया का संदाय 10-1-1967 से 6% ब्याज सहित करे। चूंकि राज्य के अधिकारियों ने पिटीशनर को तंग किया है जिसकी बाबत न्यायालय ने यह महसूस किया कि वह साशय, जानबूझकर और दुष्प्रेरित है, इसलिए न्यायालय ने उदाहरणात्मक खर्चा दिलवाया जो कि 25,000/-रुपए की रकम थी और जिसका संदाय 31 जुलाई, 1983 के पूर्व पिटीशनर को कर देना था। (पैरा 10)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1971]	[1971] 3 उम० नि० प० 305=[1971] (सप्लीमेंट) एस० सी० आर० 634 : **देवकी नन्दन प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य** (Devaki Nandan Prasad *v.* State of Bihar and Others).	2

आरम्भिक अधिकारिता : 1980 का रिट पिटीशन सं० 3053.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किया गया रिट पिटीशन।

अपीलार्थी की ओर से	डॉ० एल० एम० सिंघवी, सर्वश्री एस० के० सिन्हा, एस० के० वर्मा, ए० एम० सिंघवी और लक्ष्मी कान्त पाण्डे
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री डी० गोवर्धन

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायाधिपति देसाई—

आदेश

16 वर्षों से एक पेंशनर कठिनाई से उपार्जित अपनी पेंशन की खोज में न्यायालय और कार्यपालिका के द्वार खटखटा रहा है और वे लोग जिनका हश्र भी समय के व्यतीत होने के साथ-साथ वही होगा, उसकी कोई सुनवाई नहीं कर रहे हैं, किन्तु फिर भी वह अपने थोड़े से साधनों के साथ 12 वर्ष की अवधि व्यतीत होने के बाद जिस दुख:दायी लम्बी अवधि के दौरान इस न्यायालय के परमादेश को कागज के एक टुकड़े के रूप में माना गया है, दूसरी बार उच्चतम न्यायालय में विवश होकर आया हुआ है। कितने दुःख की बात है और कितनी असहायता की स्थिति है।

2. संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन किए गए इस पिटीशन के निपटारे के लिए जो सुसंगत तथ्य हैं, वे विस्तार से देवकी नन्दन प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य[1] वाले मामले में उपवर्णित हैं और इसी कारण से उन्हें फिर से दोहराने की यहां पर आवश्यकता नहीं है। संविधान न्यायपीठ ने, जिसकी अध्यक्षता तत्समय के मुख्य न्यायाधिपति श्री सीकरी ने की थी, प्रस्तुत पिटीशन द्वारा फाइल किए गए रिट पिटीशन में परमादेश का रिट जारी किया था, जो कि निम्नलिखित रूप में है—

> "तारीख 5 अगस्त, 1966 वाला यह आदेश जिसमें सर्विस कोड के नियम 76 के अधीन यह घोषणा की गई थी कि पिटीशनर सरकारी नियोजन में नहीं रह गया है, अपास्त और अभिखंडित किया जाता है। तारीख 12 जून, 1968 वाला वह आदेश, जिसमें यह कथन किया गया है कि पेंशन रूल्स के नियम 46 के अधीन विभाग पिटीशनर को पेंशन मंजूर करने में असमर्थ है, भी अपास्त और अभिखंडित किया जाता है। क्योंकि पिटीशनर ने स्वयं यह दावा किया है कि वह अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेने पर सेवा से निवृत्त कर दिया गया है, इसलिए मैंडेमस का रिट प्रत्यर्थियों पर इस निदेश के साथ जारी किया जाएगा कि वे विधि के अनुसार पेंशन संदाय करने के लिए पिटीशनर के दावे पर विचार करें।"

न्यायालय की राय 4 मई, 1971 को व्यक्त की गई थी और तब से पिटीशनर बिहार राज्य के विभिन्न विभागों में इधर से उधर मारा-मारा

[1] [1971] 3 उम० नि० प० 305=[1971] (सप्लीमेंट) एस० सी० आर० 634.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फिर रहा है और अन्त में इस न्यायालय के दरवाजे खटखटाने के लिए विवश हुआ है।

3. इसी सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि पिटीशनर 1 सितम्बर, 1928 को सेवा में आया था और स्वीकृततः वह 10 जनवरी, 1967 को अधिवर्षिता पर सेवा-निवृत्त हुआ है। वह बिहार पेंशन रूल्स, 1950 के अधीन पेंशन प्राप्त करने का हकदार है। विवाद यह है कि क्या पिटीशनर बिहार एजूकेशन सर्विस (बिहार शिक्षा सेवा) का सदस्य है और उसकी पेंशन की संगणना का ढंग क्या होना चाहिए? प्रथम मुद्दे के सम्बन्ध में यह मामला अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है, क्योंकि संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि पेंशन नियम के नियम 5 के प्रति जो निर्देश दिया गया है, उससे यह दर्शित होता है कि उसमें उन्नति अधिकारी पेंशन प्राप्त करने के हकदार हैं। इसके अलावा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस सम्बन्ध में कोई भी विवाद नहीं है कि पिटीशनर बिहार शिक्षा सेवा के शिक्षा विभाग में अधिकारी है और इस विभाग का नाम नियम 5 की अनुसूची की मद सं० 3 के सामने दिखाया गया है। अतः पक्षकारों के बीच इस विनिश्चय द्वारा यह संविवाद समाप्त हो गया है कि पिटीशनर बिहार शिक्षा सेवा का सदस्य है और यह कि पेंशन नियम के नियम 5 के अधीन वह पेंशन प्राप्त करने का हकदार है।

4. इस न्यायालय द्वारा परमादेश के रिट जारी किए जाने के बाद पिटीशनर अन्य व्यक्तियों के बीच बिहार के तत्समय मुख्यमंत्री स्वर्गीय श्री केदार पांडे के पास इस दृष्टि से गया था जिससे कि उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी परमादेश को कार्यान्वित और प्रभावी किया जा सके। मुख्यमंत्री ने यह निदेश दिया कि यद्यपि उस परमादेश के जारी किए जाने के बाद दो वर्ष की अवधि व्यतीत हो चुकी है और मुख्यमंत्री ने स्वयं ही 25 जून, 1973 से दस महीने पहले यह निदेश दिया था कि पिटीशनर के दावे का संदाय यथा-सम्भवशीघ्र कर दिया जाए और सम्बन्धित फाइल के विषय में कार्यवाही करने सम्बन्धी रिपोर्ट की साप्ताहिक प्रगति पर और इस बात पर जोर दिया था कि उसके समक्ष वह फाइल प्रस्तुत की जाए, फिर भी मुख्यमंत्री ने अपनी असहायता व्यक्त करते हुए यह लिखा कि मुझे न तो साप्ताहिक रिपोर्ट ही प्राप्त हो रही है और न ही परमादेश कार्यान्वित किया गया है और न ही मेरे समक्ष वह फाइल मेरे अवलोकनार्थ प्रस्तुत ही की गई है। यदि लोकप्रिय निर्वाचित सरकार के मुख्यमंत्री की दशा यह है, तो फिर एक कमजोर व्यक्ति के बारे में क्या बात की जाए और पिटीशनर जैसी स्थिति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के व्यक्ति के लिए कितने आंसू बहाए जा सकते हैं, जिसने लगभग 40 वर्ष की सेवा की है और जो थोड़ी-सी पेंशन-रूपी मृग-तृष्णा के पीछे भाग रहा है। मुख्यमंत्री को इस बात की आशंका थी कि यह बिल्कुल ही संभाव्य है कि उच्चतम न्यायालय न केवल इस गड़बड़ के लिए उत्तरदायी अधिकारियों से, बल्कि राज्य सरकार से भी इस बात का स्पष्टीकरण मांग सकता है कि परमादेश की उपेक्षा क्यों की गई। उसके बाद उसने यह अलंघनीय आदेश दिया कि फाइल उनके समक्ष प्रस्तुत की जाए।

5. जैसा कि दुखपूर्ण अनुभव होता है, कुछ भी आगे नहीं हुआ। कोई भी बात तब तक नहीं होती है जब तक कि अवस्थितित्व की विधि की भांति कोई बाह्य शक्ति उस पर कार्य नहीं करती और फाइल को आगे नहीं बढ़ाती। हमें इस बात के सम्बन्ध में समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है कि वह बाहरी शक्ति कौन सी है। अन्त में वह फाइल मुख्यमंत्री के पास 1974 में उस समय पहुंची जबकि उन्होंने उसे अपने पास मंगवाया। मुकदमे का इतिहास पिटीशनर के साथ किए गए अन्याय, सम्बन्धित अधिकारियों की पूरी तरह से लापरवाही और असहानुभूति की कहानी बहुत लम्बी है और उसके बाद मुख्यमंत्री ने इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए परमादेश के अनुरूप पिटीशनर के दावे का निपटारा करने के सम्बन्ध में कार्यवाही की।

6. प्रस्तुत पिटीशन का निपटारा करने में जिस तात्विक प्रभाग से हमें सहायता ही मिलेगी, उसमें यह परिवर्णित किया गया है कि पिटीशनर को उस समय से ही जबकि उसकी प्रोन्नति हुई थी, बिहार शिक्षा सेवा के वर्ग-II पदों में माना जाएगा और 1-1-1952 से उसकी बाबत यह समझा जाएगा कि वह अपनी ज्येष्ठता के अनुसार या सीधी नियुक्ति की तारीख से, जिसने कि पिटीशनर को समान अवसर से वंचित कर दिया था, वर्ग-I पद का है और उसे चयन श्रेणी प्राप्त है, जिसका कि वह पूरी तरह से हकदार था। किन्तु वह टिप्पण मुख्यमंत्री के शिष्टाचार से परिपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने शिक्षा मंत्री से यह निवेदन किया था कि न्याय के उद्देश्यों के लिए, जो कि ऐसी शब्दावली है जिसका उपयोग, प्रायः, न्यायालय करने के आदी हैं, पिटीशनर को एक मास के भीतर उसके दावे का संदाय कर दिया जाना चाहिए जिसके लिए शिक्षा विभाग का कोई अधिकारी उत्तरदायी होना चाहिए। उच्चतम न्यायालय के निदेश के कार्यान्वयन में असम्यक् विलम्ब हुआ है और मैं यह कभी पसन्द नहीं करूंगा कि श्री प्रसाद पुनः न्यायालय में जाने के लिए विवश हों। क्या काल्पनिक विचार है ?—क्योंकि श्री प्रसाद इस न्यायालय में पुनः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आने के लिए विवश हुए हैं और उसके बाद मुख्यमंत्री इस संसार को छोड़कर चले गए हैं।

7. यदि इस बात को संक्षेप में कहें, तो पिटीशनर को 6 फरवरी, 1976 वाला—मुख्यमंत्री द्वारा दिए गए निदेश के तीन वर्ष बाद—इस प्रभाव का पत्र मिला कि पेंशन सम्बन्धी उसके मामले को अन्तिम रूप दे दिया गया है और 156 रु० 55 पैसे प्रति मास का पेंशन संदाय आदेश और 5,850/-रुपए का उपदान संदाय आदेश जारी किया जाने वाला है। सरसरी तौर से देखने पर यह प्रतीत होगा कि उन अधिकारियों के मन में जो कि पेंशन के इस मामले के सम्बन्ध में कार्यवाही कर रहे थे, उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के प्रति तनिक भी सम्मान नहीं है, क्योंकि समझी गई तारीखों से वर्ग-II में प्रोन्नति और उसके बाद वर्ग-I में प्रोन्नति इन दोनों की ही उपेक्षा कर दी गई थी और पेंशन की संगणना इस आधार पर की गई थी, मानो कि पिटीशनर वर्ग-III में ही सेवा-निवृत्त हुआ हो। उसके बाद पिटीशनर के सभी अभ्यावेदनों के परिणामस्वरूप न तो सहानुभूतिपूर्ण उत्तर ही प्राप्त हुआ और न ही न्यायोचित विनिश्चय ही किया गया और इसी कारण से पिटीशनर पुनः इस न्यायालय में आया है।

8. प्रत्यर्थी-राज्य और उसके सभी अधिकारी पिटीशनर की पेंशन की संगणना न केवल इस आधार पर करने के लिए आबद्ध हैं कि वह बिहार शिक्षा सेवा का सदस्य है, बल्कि इस आधार पर भी कि उसे पूर्वतर निर्णय में उलिखित तारीख तक वर्ग-II में और 1-1-1952 से वर्ग-I में प्रोन्नत किया गया था जैसा कि स्वयं मुख्यमंत्री ने ठीक तौर से ही अभिनिर्धारित किया था। श्री गोवर्धन ने हमारे समक्ष ऐसी कोई बात नहीं बताई जिससे कि इसके प्रतिकूल अभिनिर्धारित किया जा सके और न ही राज्य को इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के पवित्र विनिश्चय के साथ खिलवाड़ करने की इजाजत ही दी जा सकती है।

9. इस न्यायालय के परमादेश को प्रभावी बनाने की दृष्टि से, प्रत्यर्थी-राज्य पिटीशनर को संदेय वेतन की संगणना उस तारीख से करेगा जिसको उसकी प्रोन्नति वर्ग-II सेवा में की गई थी और इस उपधारणा के आधार पर करेगा कि वह तत्समय उसे प्राह्य वेतनमान में, जो कि बिहार शिक्षा सेवा में वर्ग-II श्रेणी के समतुल्य था, वर्ग-II में कार्य कर रहा था। यह उस तारीख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से प्रारम्भ होगा जिससे कि उसे सरायकेला स्थित विद्यालय उप-निरीक्षक के रूप में, जैसा कि पूर्वतर निर्णय में उपवर्णित है, प्रोन्नत किया गया था। संगणना के प्रयोजनार्थ वेतन की संगणना करने में उस पद के लिए तत्समय प्रचलित वर्ग-II का वेतनमान दिया जाएगा और पिटीशनर के बारे में यह समझा जाएगा कि उसे उसी वेतनमान में नियुक्त कर दिया गया है। 1-1-1952 तक वार्षिक वेतनवृद्धियां जोड़ी जानी हैं, जबकि उसके बारे में यह समझा जाना चाहिए कि उसे बिहार शिक्षा सेवा में वर्ग-I पद पर, जैसा कि मुख्यमंत्री ने स्वयं स्वीकार किया है, प्रोन्नत कर दिया गया था। प्रत्यर्थी-राज्य इसी प्रक्रिया को पुनः दोहराएगा क्योंकि तत्समय प्रचलित वर्ग-I वेतनमान के बारे में यह अवश्य ही अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह 1-1-1952 से पिटीशनर के लिए ग्राह्य था। उसके बारे में यह अवश्य ही समझा जाना चाहिए कि उसकी नियुक्ति उसी वेतनमान में कर दी गई थी, और उसकी वार्षिक वेतन वृद्धियों का हिसाब लगाया जाए। यदि इसी प्रक्रिया में वह चयन श्रेणी प्राप्त करने का हकदार हो जाता है, तो उसका भी हिसाब लगाया जाना चाहिए और यह संगणना 10-1-1967 तक की जानी चाहिए, जबकि पिटीशनर अधिवर्षिता प्राप्त करने पर सेवा से निवृत्त हुआ था। वेतन की इस संगणना के आधार पर उसकी पेंशन की संगणना बिहार पेंशन नियम के सुसंगत नियमों के अधीन की जाएगी जैसा कि 1967 तक समय-समय पर उन्हें उदार बनाया गया है और उसकी पेंशन का अवधारण पूर्वोक्त संगणना-पत्र के आधार पर 10-1-1967 को की जाएगी।

10. राज्य और इस कार्य के लिए उत्तरदायी अधीनस्थ अधिकारियों को परमादेश के रिट द्वारा यह निदेश दिया जाता है कि वे 31 जुलाई, 1983 तक यह संगणना पूरी कर लें और उस तारीख तक पेंशन संदाय आदेश, जो कि यहां पर दिए गए निदेश के अनुसार ठीक और सुसंगत होना चाहिए, पिटीशनर को निश्चित रूप से दे दिया जाना चाहिए। राज्य को इस न्यायालय के परमादेश द्वारा यह भी निदेश दिया जाता है कि वह उसी कालावधि के भीतर पूर्वोक्त संगणना के आधार पर पेंशन की बकाया का संदाय 10-1-1967 से 6% ब्याज सहित करे। चूंकि राज्य के अधिकारियों ने पिटीशनर को तंग किया है जिसकी बाबत हम यह महसूस करते हैं कि वह साशय, जानबूझकर और दुष्प्रेरित है, इसलिए हमें इस बात के लिए अत्यधिक खेद है कि हम उदाहरणात्मक खर्चा दिलवा रहे हैं जो कि 25,000/-रुपए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होगा और जिसका संदाय 31 जुलाई, 1983 के पूर्व पिटीशनर को कर देना होगा ।

11. हम इस सम्बन्ध में तनिक भी संदेह नहीं छोड़ना चाहते कि इस परमादेश का पालन करने में जो समय निश्चित किया गया है, उसमें यदि तनिक भी असफलता होगी या उससे विचलन होगा, तो उसके परिणामस्वरूप निश्चित रूप से (न्यायालय के) अवमान की कार्रवाई की जाएगी ।

पिटीशन मंजूर किया गया ।

श्री०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रामजी द्विवेदी (डा०)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(Dr. Ramji Dwivedi

v.

State of Uttar Pradesh and Others)

(26 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

(यू० पी०) इण्टरमीडिएट एजूकेशन ऐक्ट, 1921 (1921 का यू० पी० अधिनियम सं० 2)—धारा 9(4) और 16-ङ—नियुक्ति—प्रभावी होने का समय—गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त संस्था की प्रबंध-समिति द्वारा प्रधानाचार्य की नियुक्ति उस समय की जानी जब कि उत्तर प्रदेश सरकार ने विनियम द्वारा प्रदत्त नियुक्ति की शक्ति निलम्बित कर दी थी—चूंकि धारा 9(4) के अधीन विद्यमान विनिमय को उपांतरित या विखंडित करने वाला आदेश विधिमान्य है, इसलिए ऐसी नियुक्ति अप्रभावी है, यद्यपि वह अविधिमान्य नहीं है—अतः ऐसी नियुक्ति रद्द करने के पूर्व धारा 16-ङ(10) के अधीन सुनवाई का अवसर दिया जाना अपेक्षित नहीं है, यद्यपि नियुक्त व्यक्ति उस अवधि के लिए वेतन पाने का हकदार है, जिसके दौरान उसने प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया था।

अपीलार्थी ने उस विज्ञापन के उत्तर में आवेदन किया था जो कि जिला बलिया स्थित श्रीनाथ इण्टरमीडिएट कालेज, गड़मलपुर सहुली के प्रधानाचार्य के पद के लिए तारीख 18 मई, 1930 को हिन्दी दैनिक भृगु चेतना और दैनिक जागरण में निकाला गया था और जिसे महाविद्यालय की प्रबंध समिति ने निकाला था। जैसा कि इण्टरमीडिएट एजूकेशन ऐक्ट (माध्यमिक शिक्षा अधिनियम), 1921 की धारा 16-च द्वारा अनुध्यात है; चयन समिति ने 12 अप्रैल, 1981 को साक्षात्कार किया। चयन समिति ने सर्वसम्मति से प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति के लिए अपीलार्थी को चुना। चयन समिति ने इस विनिश्चय के अनुसरण में, महाविद्यालय की प्रबन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समिति के प्रबन्धक ने अपीलार्थी को यह सूचना देते हुए 27 अप्रैल, 1981 को नियुक्ति-आदेश भेजा कि महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति ने तारीख 19 अप्रैल, 1981 के अपने संकल्प सं० 3 द्वारा अपीलार्थी को नियमों के अधीन ग्राह्य महंगाई भत्ता सहित, 550—1200/-रुपए के वेतनमान में, प्रारम्भिक वेतन पर एक वर्ष की परिवीक्षा पर प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किया है। अपीलार्थी से यह अपेक्षा की गई की वह महाविद्यालय के प्रबन्धक के समक्ष उपस्थित हो और नियुक्ति-आदेश प्राप्त होने के 10 दिनों के भीतर अपना कार्य-भार सम्भाल ले और ऐसा न करने की स्थिति में नियुक्ति शून्य हो जाएगी। नियुक्ति-पत्र प्राप्त होने पर, अपीलार्थी 1 मई, 1981 को महाविद्यालय में स्वयं उपस्थित हुआ और प्रबन्धक से यह निवेदन किया कि उसे उसका कार्यभार सौंप दिया जाए। प्रबन्धक ने इस संसूचना के नीचे यह पृष्ठांकन अंकित किया कि अपीलार्थी को अपना कार्यभार संभालने की इजाजत दी गई। उसी दिन अपीलार्थी ने महाविद्यालय के प्रबन्धक को यह लिखा कि, जैसा कि आपने अनुज्ञा दी है, मैने पूर्वाह्न 7-30 बजे प्रधानाचार्य के पद का कार्यभार संभाल लिया है और कार्य करना आरम्भ कर दिया है। उस सम्बन्ध में बलिया के जिला विद्यालय निरीक्षक के पास सूचना भेजी गई। उसी दिन अपीलार्थी ने स्टाफ को यह सूचना देते हुए उनके बीच यह सूचना परिचालित करवाई कि मैंने प्रधानाचार्य के पद का कार्यभार सम्भाल लिया है और स्टाफ की एक आवश्यक बैठक बुलवाई जो कि शिक्षक-कक्ष में महाविद्यालय के बन्द होने के बाद उसी दिन होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त विद्यालयों में शिक्षण से सम्बन्धित स्टाफ की नियुक्ति के ढंग, उसकी पद्धति और शक्ति में पर्याप्त तब्दीली करने की बात सोच रही थी और तदनुसार उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग के सचिव ने, तारीख 7 अप्रैल, 1981 को आदेश जारी किया और उस आदेश द्वारा उसने विभिन्न प्राधिकारियों को रेडियो-तार के जरिए से यह संसूचित किया कि अल्पसंख्यक संस्थाओं को छोड़कर, गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त सभी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में प्रोन्नति द्वारा भर्ती सहित, प्रधानाचार्य, प्रधानाध्यापकों और अध्यापकों के सभी नए चयनों और नियुक्तियों को आगे आदेश होने तक रोक दिया जाए। रेडियो तार के प्राप्त होने के बाद बलिया के जिला विद्यालय निरीक्षक ने उसकी प्रति महाविद्यालय के पास भेजी। गम्भीर विवाद यह उत्पन्न हुआ कि क्या प्रधानाचार्य के रूप में अपीलार्थी की नियुक्ति विधिमान्य है। एक पर-व्यक्ति के आचरण के परिणामस्वरूप यह संविवाद और बढ़ गया जो कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वयं प्रधानाचार्य बनने की आकांक्षा रखता था और जिसका कुछ स्थानीय प्रभाव भी है। प्रबन्धतन्त्र ने अपीलार्थी को कोई भी वेतन नहीं दिया, यद्यपि उसने प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया और अन्त में अपीलार्थी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन परमादेश का रिट जारी किए जाने की प्रार्थना करते हुए उच्च न्यायालय में यह समावेदन किया कि वह महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति की यह निदेश दे कि वह महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में अपीलार्थी के कर्तव्यों के निर्वहन में उसके कार्य में हस्तक्षेप न करे और उसका वेतन भी दे। उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए इस अन्तरिम अनुतोष के अनुसरण में अपीलार्थी को उसका वेतन दिया गया। उच्च न्यायालय ने अन्तिम रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि तारीख 7 अप्रैल, 1981 वाले रेडियो-तार में राज्य सरकार का ऐसा आदेश था जो कि प्रधानाचार्य सहित, शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति को निलम्बित करते हुए और वापस लेते हुए, कार्यपालक शक्ति के निर्वहन में जारी किया गया था और इसी कारण से महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति को चयन समिति नियुक्त करने की कोई भी शक्ति नहीं थी और न ही चयन समिति को नियुक्ति करने विषयक कोई शक्ति थी और इसी कारण से अपीलार्थी की वह नियुक्ति जिसकी बाबत यह अभिकथित है कि वह 1 मई, 1981 को की गई थी, विधिमान्य नहीं है। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशन खारिज कर दिया। इसलिए विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में यह अपील की गई है। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—(यू० पी०) इण्टरमीडिएट एजूकेशन ऐक्ट, 1921 की धारा 9 की उपधारा (4), बोर्ड के प्रति कोई निर्देश किए बिना, राज्य सरकार को इस बात की शक्ति प्रदत्त करती है कि वह अधिनियम के उपबंधों से संगत कोई ऐसा आदेश या कोई अन्य ऐसी कार्यवाही कर सकेगी जैसी कि वह आवश्यक समझे और विशिष्टतः ऐसे विषय के सम्बन्ध में कोई विनिमय उपांतरित या विखंडित कर सकेगी या बना सकेगी। इस शक्ति से लैस होकर राज्य सरकार ने सभी गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलों में प्रधानाचार्य आदि के नए चयन और नियुक्तियों पर रोक लगाते हुए तारीख 7 जुलाई, 1981 को आदेश निकाला। विस्तृत आयाम की उक्त शक्ति की परिधि के भीतर तत्समय की गई सभी नियुक्तियों पर रोक लगाने की शक्ति आएगी और ऐसा प्रतीत होता है कि इस शक्ति का प्रयोग किया गया है; क्योंकि राज्य सरकार गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त विद्यालयों के निजी प्रबन्धतन्त्र की, प्रधानाचार्यों सहित अध्यापकों की नियुक्ति करने सम्बन्धी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शक्ति को छीनने पर विचार कर रही थी। निजी प्रबन्धतन्त्रों द्वारा सरकारी कार्यवाही के सम्बन्ध में पूर्वानुमान करने से बचने की दृष्टि से नियुक्ति करने की शक्ति तत्समय निलम्बित कर दी गई है। विनिमय प्रबन्ध समिति को नियुक्ति करने की शक्ति प्रदत्त करता है। वह विनियम बोर्ड द्वारा राज्य सरकार की पूर्व-मंजूरी से अधिनियमित किया था। राज्य सरकार के बारे में यह कहा जा सकता था कि उसने नियुक्त करने की शक्ति प्रदत्त करने वाले उस विनियम को विखंडित कर दिया है या किसी भी स्थिति में नियुक्त करने सम्बन्धी प्रबन्ध समिति को प्रदत्त शक्ति निलम्बित कर दी है। वह आदेश उसी समय प्रभावी हो गया जिस समय वह निकाला गया था। इस आदेश का प्रभाव यह है कि चयन समिति को अपीलार्थी का चयन करने का कोई भी अधिकार नहीं था और न ही प्रबन्ध समिति को कोई नियुक्ति करने की शक्ति प्राप्त थी। (पैरा 12)

तारीख 7 अप्रैल, 1981 को रेडियो-तार में अन्तर्विष्ट आदेश संस्था के प्रबन्धक को संसूचित कर दिया गया था। संस्था के तत्समय प्रबन्धक या प्रबन्धतन्त्र के तत्समय प्रभारी किसी भी उत्तरदायी व्यक्ति ने 1 मई, 1981 वाले पत्र की प्राप्ति के इनकार करते हुए विरोध में कोई भी शपथपत्र पेश नहीं किया है। इस पत्र से यह दर्शित होता है कि 8 अप्रैल, 1981 को यह आदेश संस्था को मिल गया था कि प्रधानाचार्य की नियुक्ति की शक्ति वापस ले ली गयी है या निलम्बित कर दी गयी है। यदि वह आदेश विधिमान्य था और नियुक्ति करने की शक्ति वापस ले ली गई थी या निलम्बित कर दी गई थी, तो चयन समिति को यह अधिकार नहीं था कि वह अपीलार्थी का चयन करे और न ही प्रबन्ध समिति की ओर से प्रबन्धक तारीख 27 अप्रैल, 1981 वाला नियुक्ति सम्बन्धी आदेश अपीलार्थी को दे सकता था तथा अपीलार्थी की नियुक्ति ऐसे निकाय ने की थी जो कि नियुक्त करने के लिए प्राधिकृत नहीं था और इसीलिए वह अप्रभावी है यद्यपि वह अविधिमान्य नहीं हो सकती। (पैरा 13)

इसमें सन्देह नहीं है कि वह नियुक्ति अन्यथा विधिमान्य थी, यद्यपि वह अप्रभावी थी और यदि अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आदेश के अधीन प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया था, अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया था और उसे (वेतन) संदत्त किया गया था, तो उसे संदत्त की गई रकम की वसूली का कोई भी प्रश्न उत्पन्न नहीं हो सकता और न सरकार, न प्रबन्धतन्त्र और न ही संस्था अपीलार्थी को संदत्त किसी भी वेतन की वसूली करने की हकदार होगी। (पैरा 17)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिविल अपीली अधिकारिता : **1982 की सिविल अपील सं० 1340.**

1981 के सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 6933 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 1 मार्च, 1982 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री जी० एल० सांघी, आर० डी० उपाध्याय, बी० के पंडित और एस० श्रीनिवासन्
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री आर० के० गर्ग और एस० एन० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया।

न्यायाधिपति देसाई—

यह बात कि शैक्षणिक संस्थाओं के निजी प्रबन्धतन्त्र पर राज्य के सदैव बढ़ते हुए नियंत्रण के बावजूद भी, निजी प्रबन्धतन्त्र न्यूनतम अवशिष्टीय शक्ति का प्रयोग उच्च अर्हित शिक्षक को सफलतापूर्वक तंग करने के लिए कर सकता है, इस मुकदमे का त्रासदीपूर्ण परिणाम है।

2. अपीलार्थी ने, जो कि डबल एम० ए० है और जिसके पास डाक्टरेट की डिग्री है, उस विज्ञापन के उत्तर में आवेदन किया था जो कि जिला बलिया स्थित श्रीनाथ इण्टरमीडिएट कालेज, गढ़मलपुर सहुली (जिसे संक्षेप में महाविद्यालय कहा गया है) के प्रधानाचार्य के पद के लिए तारीख 18 मई, 1980 को हिन्दी दैनिक भृगु चेतना और दैनिक जागरण में निकाला गया था और जिसे महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति ने निकाला था। जैसा कि इण्टरमीडिएट एजूकेशन ऐक्ट (माध्यमिक शिक्षा अधिनियम), 1921 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 16-च द्वारा अनुध्यात है, चयन समिति ने 12 अप्रैल, 1981 को साक्षात्कार किया। चयन समिति में प्रबन्धक और चयन समिति के अध्यक्ष श्री सुधाकर तिवारी, जौनपुर के नागरिक डिग्री कालेज के प्रधानाचार्य श्री राम दुलारे त्रिपाठी और जिला जौनपुर स्थित नारीसुन डिग्री कालेज, हरिहान के प्रधानाचार्य के डा० गौरी शंकर मिश्र थे। चयन समिति ने सर्वसम्मति से प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति के लिए अपीलार्थी को चुना। चयन समिति के इस विनिश्चय के अनुसरण में, महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति के प्रबन्धक ने अपीलार्थी को यह सूचना देते हुए 27 अप्रैल, 1981 को नियुक्ति-आदेश भेजा कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाविद्यालय की प्रबन्धक समिति ने तारीख 19 अप्रैल, 1981 के अपने संकल्प सं० 3 द्वारा अपीलार्थी को नियमों के अधीन ग्राह्य महंगाई भत्ता सहित, 550—1200/-रुपए के वेतनमान में, प्रारम्भिक वेतन पर एक वर्ष की परिवीक्षा पर प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किया है। अपीलार्थी से यह अपेक्षा की गई कि वह महाविद्यालय के प्रबन्धक के समक्ष उपस्थित हो और नियुक्ति-आदेश प्राप्त होने के 10 दिनों के भीतर अपना कार्य-भार संभाल ले और ऐसा न करने की स्थिति में नियुक्ति शून्य हो जाएगी। नियुक्ति-पत्र प्राप्त होने पर, अपीलार्थी 1 मई, 1981 को महाविद्यालय में स्वयं उपस्थित हुआ और प्रबन्धक से यह निवेदन किया कि उसे उसका कार्यभार सौंप दिया जाए। प्रबन्धक ने इस संसूचना के नीचे यह पृष्ठांकन अंकित किया कि अपीलार्थी को अपना कार्यभार संभालने की इजाजत दी गई। उसी दिन अपीलार्थी ने महाविद्यालय के प्रबन्धक को यह लिखा कि, जैसा कि आपने अनुज्ञा दी है, मैंने पूर्वाह्न 7-30 बजे प्रधानाचार्य के पद का कार्यभार सम्भाल लिया है और कार्य करना आरम्भ कर दिया है। उस सम्बन्ध में बलिया के जिला विद्यालय निरीक्षक के पास भी सूचना भेजी गई। उसी दिन अपीलार्थी ने स्टाफ को यह सूचना देते हुए उनके बीच यह सूचना परिचालित करवाई कि मैंने प्रधानाचार्य के पद का कार्यभार सम्भाल लिया है और स्टाफ की एक आवश्यक बैठक बुलवाई है जो कि शिक्षक-कक्ष में महाविद्यालय के बन्द होने के बाद उसी दिन होगी।

3. ऐसा प्रतीत होता हैं कि राज्य सरकार गैर सरकारी सहायता-प्राप्त विद्यालयों में शिक्षण से सम्बन्धित स्टाफ की नियुक्ति के ढंग, उसकी पद्धति और शक्ति में पर्याप्त तब्दीली करने की बात सोच रही थी तदनुसार उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग के सचिव ने, तारीख 7 अप्रैल, 1981 को आदेश जारी किया और वह आदेश उसने विभिन्न प्राधिकारियों को रेडियो-तार के जरिए से संसूचित किया। वह इस प्रकार से है—

"प्रेषक :
सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार,
शिक्षा विभाग।
शासकीय आदेश सं० 1701/15-7-एफ० आई०-1(27)/81
तारीख 1-4-81.

अल्पसंख्यक संस्थाओं को छोड़कर, गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त सभी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में प्रोन्नति द्वारा भर्ती सहित,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रधानाचार्य, प्रधानाध्यापकों और अध्यापकों के सभी नए चयनों और नियुक्तियों को आगे आदेश होने तक रोक दिया जाए। जिला निरीक्षक इस बात को सुनिश्चित करेंगे कि इस तारीख के बाद नियुक्त किए गए अध्यापकों का वेतन न निकाला जाए—विस्तृत अनुदेश भेजे जा रहे हैं।"

4. रेडियों-तार के प्राप्त होने के बाद बलिया के जिला विद्यालय निरिक्षक ने उसकी प्रति महाविद्यालय के पास भेजी। पक्षकारों के बीच इस सम्बन्ध में कुछ विवाद है कि क्या इस रेडियो-तार की प्रति महाविद्यालय के प्रबन्धतन्त्र को प्राप्त हो गई थी। किन्तु बलिया के जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा श्री नाथ इण्टरमीडिएट कालेज के प्रबन्ध को सम्बोधित तारीख 1 मई, 1981 का पत्र मौजूद है जो कि इस प्रकार से है—

"पत्र सं० 2/26-62/80-81 तारीख 1-5-81

विषय : प्रधानाचार्यो की नियुक्ति—के संदर्भ में।

महोदय;

ऊपर उल्लिखित विषय के सम्बन्ध में तारीख 27-4-1981 वाले श्रीनाथ इण्टर कालेज को सम्बोधित पत्र के प्रति निर्देश करते हुए, यह सूचना दी जाती है कि जैसे ही नियुक्तियों पर प्रतिषेध के सम्बन्ध में तारीख 7-4-1981 वाले शासकीय आदेश सं० 1701/15-7एफ-1-1(27)/81 प्राप्त हो गया, वह 8-4-1981 को के पत्र सं० 60/81-82 वाले पत्र के जरिए भेज दिया गया और उसे 8-4-1981 को आपके कार्यालय के लिपिक ने प्राप्त कर लिया है और शासकीय आदेश का संदेश तार के जरिए विशेषज्ञों को भी भेज दिया गया है।

इसलिए ऐसी स्थिति में प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्ति का कोई प्रश्न ही नहीं है।

ह०/बी० एन० पाण्डे
जिला विद्यालय निरीक्षक, बलिया
1-5-1981"

5. गम्भीर विवाद यह उत्पन्न हुआ कि क्या प्रधानाचार्य के रूप में अपीलार्थी की नियुक्ति विधिमान्य है। जगन्नाथ नाम के एक व्यक्ति आचरण के परिणामस्वरूप वह संविवाद और बढ़ गया जो कि स्वयं प्रधानाचार्य बनने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की आकांक्षा रखता था और जैसा कि अभिकथित है, जिसका कुछ स्थानीय प्रभाव भी है। प्रबन्धतन्त्र ने अपीलार्थी को भी वेतन नहीं दिया, यद्यपि उसने प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया और अंत में अपीलार्थी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन परमादेश का रिट जारी किए जाने की प्रार्थना करते हुए उच्च न्यायालय में यह समावेदन किया कि वह महाविद्यालय की प्रबन्धक समिति अर्थात् प्रत्यर्थी सं० 5 को यह निदेश दे कि वह महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में अपीलार्थी के कर्तव्यों के निर्वहन में उसके कार्य में हस्तक्षेप न करे और उसका वेतन भी दे। उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए इस अन्तरिम अनुतोष के अनुसरण में अपीलार्थी को उसका वेतन दिया गया। अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए रिट पिटीशन में उसने पांच प्रत्यर्थियों को शामिल किया जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य, उत्तर प्रदेश के शिक्षा निदेशक, वाराणसी के क्षेत्र सं० 6 के शिक्षा उप-निदेशक, बलिया के जिला विद्यालय निरीक्षक और महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति शामिल है। इस पिटीशन का विरोध मुख्यतः पांचवें प्रत्यर्थी अर्थात् प्रबन्ध समिति ने किया। फूलदेव पांण्डे नाम के एक व्यक्ति ने प्रबन्ध समिति की ओर से विरोध करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील देते हुए शपथपत्र फाइल किया कि अपीलार्थी की नियुक्ति विधिमान्य नहीं है क्योंकि नियुक्ति करने की शक्ति राज्य सरकार ने वापस ले ली थी। इस सम्बन्ध में रेडियो-तार का अवलम्ब लिया गया।

6. उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि तारीख 7 अप्रैल, 1981 वाले रेडियो-तार में राज्य सरकार का ऐसा आदेश था जो कि प्रधानाचार्य सहित, शिक्षण स्टाफ की नियुक्ति को निलम्बित करते हुए और वापस लेते हुए, कार्यपालक शक्ति के निर्वहन में जारी किया गया था और इसी कारण से महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति को चयन समिति नियुक्त करने की कोई भी शक्ति नहीं थी और न ही चयन समिति को नियुक्ति करने की कोई शक्ति थी और इसी कारण से अपीलार्थी की वह नियुक्ति जिसकी बाबत यह अभिकथित है कि वह 1 मई, 1981 को की गई थी, विधिमान्य नहीं है। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशन खारिज कर दिया। इसलिए विशेष इजाजत लेकर यह अपील की गई है।

7. विद्वान् काउन्सेल श्री जी० एल० सांघी ने, जो कि अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए थे, इस अपील की सुनवाई पर दो दलीलें पेश की है इस बात पर जोर दिया गया कि उस दिन अर्थात् 1 मई, 1981 को, जिसको अपीलार्थी की नियुक्ति महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में हुई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

थी, प्रबन्ध समिति को आवश्यक नियुक्ति करने की शक्ति थी और रेडियो-तार में अन्तर्विष्ट आदेश नियुक्ति की विधिमान्यता के सम्बन्ध में प्रभावी नहीं था। इसके बाद यह दलील दी गई कि रेडियो-तार निकालने सम्बन्धी ऐसी शक्ति की उपधारणा करते हुए जो कि राज्य सरकार को उपलभ्य थी, यदि नियुक्ति रेडियो-तार में अन्तर्विष्ट आदेश के सम्बन्ध में ज्ञान रखे बिना की गई थी, तो नियुक्ति विधिमान्य होगी। आनुकल्पिक रूप से, यह दलील दी गई की किसी भी स्थिति में, यदि एक बार नियुक्ति कर दी जाती है, तो जब तक कि अधिनियम की धारा 16-ङ की उपधारा (10) में विहित प्रक्रिया का अनुसरण न किया गया हो, अपीलार्थी की नियुक्ति को अविधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता है, और इसी कारण से यह घोषित किया जाए कि अपीलार्थी महाविद्यालय के प्रधानाचार्य का पद अब भी धारण कर रहा है।

8. इन दलीलों पर विचार करने के पूर्व, हमारे लिए अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों के प्रति संक्षेप में निर्देश करना लाभदायक होगा। यह अधिनियम संविधान-अधिनियम के पूर्व 1921 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय का स्थान लेने के लिए ऐसा बोर्ड स्थापित करने की शक्ति अर्जित करने के वास्ते अधिनियमित किया गया था जिससे कि संयुक्त प्रान्त में हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट शिक्षा-पद्धति को विनियमित और उसका पर्यवेक्षण किया जा सके। न्यूनाधिक रूप से वह अनपकारी अधिनियमित थी। शैक्षणिक संस्थाओं के निजी प्रबन्धतन्त्र जिस शक्ति और प्राधिकार का उपयोग करते थे, वह अछूती छोड़ दी गयी। किन्तु 1975 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 26 द्वारा अधिनियम का व्यापक संशोधन किया गया। अधिनियम के उपबन्धों को कार्यान्वित करने के लिए, धारा 3 में बोर्ड के गठन की परिकल्पना की गई थी। धारा 7 में बोर्ड की शक्ति के बारे में विहित किया गया है जिसमें बोर्ड के कर्तव्य और कृत्य अन्तर्निहित हैं। धारा 9 में राज्य सरकार की शक्तियों को परिरक्षित और संरक्षित किया गया है। उपधारा (4) तात्विक है और उसे इस प्रकार उद्धृत किया जा सकता है :—

*"(4) जब कभी, राज्य सरकार की राय में, तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक या समीचीन है, तो वह, पूर्वगामी उपबंधों के अधीन

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(4) Whenever, in the opinion of the State Government, it is necessary or expedient to take

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बोर्ड को कोई निर्देश किए बिना, इस अधिनियम के उपबंधों से संगत ऐसा आदेश कर सकेगी या ऐसी अन्य कार्रवाई कर सकेगी जैसी कि वह आवश्यक समझे, और विशिष्टता, ऐसे आदेश द्वारा किसी विषय के सम्बन्ध में किसी विनियम को उपांतरित या विखंडित कर सकेगी या बना सकेगी और वह तदनुसार बोर्ड को तुरन्त सूचना देगी।"

धारा 13 बोर्ड को विभिन्न समितियां नियुक्त करने की शक्ति प्रदत्त करती है। धारा 15 बोर्ड को अधिनियम के उपबन्धों को प्रभावी बनाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार की पूर्व-मंजूरी से विनियम बनाने की शक्ति (धारा 16 देखिए) प्रदत्त करती है। धारा 16क से 16झ 1958 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 35 द्वारा अन्तः स्थापित की गई थीं। धारा 16क में प्रत्येक संस्था के लिए प्रशासन की स्कीम के लिए उपबन्ध किया गया है, चाहे उसे 1958 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 35 के पूर्व या पश्चात् मान्यता मिली हो। प्रशासन स्कीम में, अन्य बातों के साथ-साथ, प्रबन्ध समिति के गठन के लिए उपबंध किया गया था, जिसमें संस्था का प्रबन्ध करने और उसके कार्यकलाप का संचालन करने का प्राधिकार निहित था। धारा 16च(1) में किसी संस्था के प्रधान (आचार्य या अध्यापक) की नियुक्ति के लिए चयन समिति स्थापित करने के सम्बन्ध में उपबन्ध किया गया है और उपधारा (2) में अध्यापकों के रूप में नियुक्त करने के लिए अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए समिति का गठन करने के लिए उपबन्ध किया है। धारा 16छ शिक्षा निदेशक को यह शक्ति प्रदत्त करती है कि वह समय-समय पर मान्यता-प्राप्त संस्थाओं का निरीक्षण करवा सकेगा और उपधारा (3) के उपखण्ड (2) में अन्य बातों के साथ-साथ निरीक्षण के अनुक्रम में यह अभिनिश्चित करने की अपेक्षा की गई है कि क्या प्रबन्ध समिति ऐसा शिक्षण स्टाफ नियुक्त करने में असफल रही है जिसके पास ऐसी अर्हताएं हों जोकि संस्था में शैक्षणिक मानक के प्रबन्धन को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ आवश्यक हैं या यह कि क्या अधिनियम या विनियमों के उपबन्धों का उल्लंघन करते हुए उसने किसी शिक्षण या गैर-शिक्षण स्टाफ को नियुक्त किया है या सेवा में बनाए रखा है।

---

immediate action, it may, without making any reference to the Board under or take such other action consistent with the provisions of this Act as it deems necessary, and in particular, may by such order modify o rescind or make any regulation in respect of any matter and shall forthwith inform the Board accordingly."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

9. सुसंगत उपबन्धों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् अब हम श्री सांघी द्वारा पेश की गई दलीलों पर विचार करें।

10. जो दलील सबसे पहले पेश की गई, वह यह थी कि जिस तारीख को अपीलार्थी को प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था, क्या उस तारीख को इस तथ्य के बावजूद कि रेडियो-तार में अन्तर्विष्ट आदेश में उसकी शक्ति को निलम्बित कर दिया था या वापस ले लिया था, प्रबन्ध समिति को नियुक्ति करने की शक्ति प्राप्त थी। जिन घटनाओं के परिणामस्वरूप यह पिटीशन फाइल किया गया है, उन्हें क्रमानुसार उपवर्णित करते हुए हमने यह मत व्यक्त किया था कि 12 अप्रैल, 1981 को हुई चयन-समिति की बैठक में प्रधानाचार्य के रूप में अपीलार्थी का चयन किया गया था। प्रश्न यह है कि क्या चयन समिति को 12 अप्रैल, 1981 को चयन करने की कोई शक्ति प्राप्त थी और यह कि क्या उस चयन के अनुसरण में प्रबन्ध समिति को 27 अप्रैल, 1981 को नियुक्ति आदेश निकालने की शक्ति प्राप्त थी। यह स्वीकार किया गया है कि सुसंगत विनियमों ने प्रबन्ध समिति को यह शक्ति दी थी कि वह चयन समिति की सिफारिश पर नियुक्त कर सकेगी। नियुक्त करने की शक्ति विनियमों द्वारा प्रदत्त की गई है। धारा 15 के अधीन बोर्ड को विनियम बनाने की शक्ति है और इस शक्ति का प्रयोग केवल राज्य सरकार की पूर्व-मंजूरी से ही किया जा सकता है। इस प्रकार राज्य सरकार को बोर्ड द्वारा प्रस्थापित विनियम को मंजूरी देने या न देने का प्राधिकार प्राप्त है। ऐसी प्रत्येक मान्यता-प्राप्त संस्था के पास धारा 16क द्वारा यथा-अनुध्यात प्रशासन स्कीम होनी चाहिए और प्रशासन स्कीम में प्रबन्ध समिति के स्थापित किए जाने के बारे में अनुध्यात है तथा प्रबन्ध समिति को धारा 16च में यथा-उपबन्धित, किसी संस्था के प्रधान के रूप में नियुक्त करने के लिए अभ्यर्थी के चयन के प्रयोजनार्थ चयन-समिति स्थापित करने की शक्ति प्राप्त है। यह शक्ति विनियमों द्वारा विनियमित की गई है।

11. इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बोर्ड विनियम अधिनियमित करता है। विनियम नियुक्तियों की शक्ति प्रदत्त करते हैं जिसके अन्तर्गत संस्थान के प्रधान की और अध्यापकों की नियुक्ति की शक्ति भी है।

12. धारा 9 की उपधारा (4) जोकि इसके पूर्व प्रोद्धृत की गई है, बोर्ड के प्रति कोई निर्देश किए बिना, राज्य सरकार को इस बात की शक्ति प्रदत्त करती है कि वह अधिनियम के उपबन्धों से संगत कोई ऐसा आदेश या कोई अन्य ऐसी कार्यवाही कर सकेगी जैसी कि वह आवश्यक समझे और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशिष्टत:, ऐसे विषय के सम्बन्ध में कोई विनियम उपांतरित या विखंडित कर सकेगी या बना सकेगी। इस शक्ति से लैस होकर राज्य सरकार ने सभी गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलों में प्रधानाचार्य आदि के नए चयन और नियुक्तियों पर रोक लगाते हुए तारीख 7 जुलाई, 1981 को आदेश निकाला। श्रीनाथ इण्टरमीडिएट कालेज एक गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त विद्यालय है। रेडियो-तार द्वारा जो आदेश मिला था, उसका प्रभाव प्रबन्ध समिति की नियुक्ति करने सम्बन्धी शक्ति प्रदत्त करने वाले या प्रधानाचार्य और अध्यापकों की नियुक्ति करने की शक्ति को वापस लेने और/या निलम्बित करने वाले विनियम को विखंडित करना होगा। आदेश के निकाले जाने की बात विवाद्य नहीं है। उच्च न्यायालय में दलील यह दी गई थी कि राज्य सरकार को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं है और यदि उपधारा (4) के बारे में यह समझा जाता है कि वह ऐसी शक्ति प्रदत्त करती है, तो उसे धारा 9 की उपधारा (4) के पहले आने वाली उपधारा (1), (2) और (3) द्वारा राज्य सरकार को प्रदत्त शक्ति के साथ-साथ पढ़ना होगा। अतः उच्च न्यायालय को राज्य सरकार की कार्यपालक शक्ति के विस्तार और परिधि की परीक्षा करनी थी जिसका प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय के मतानुसार, रेडियो-तार में अन्तर्विष्ट आदेश निकाला गया था। हमें उतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारी राय में उपधारा (4) राज्य सरकार को, बोर्ड के प्रति कोई निर्देश किए बिना, ऐसी शक्ति प्रदत्त करती है कि वह कोई विनियम बना सकेगी, उपांतरित कर सकेगी या विखंडित कर सकेगी और अधिनियम के उपबन्धों से संगत अन्य ऐसे आदेश कर सकेगी। विस्तृत आयाम की इस शक्ति की परिधि के भीतर तत्समय की गई सभी नियुक्तियों पर रोक लगाने की शक्ति आएगी और ऐसा प्रतीत होता है कि इस शक्ति का प्रयोग किया गया है क्योंकि राज्य सरकार गैर-सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों के निजी प्रबन्धतंत्र की, प्रधानाचार्यों सहित अध्यापकों की नियुक्ति करने संबंधी शक्ति को छीनने पर विचार कर रही थी। निजी प्रबन्धतंत्रों द्वारा सरकारी कार्यवाही के संबंध में पूर्वानुमान करने से बचने की दृष्टि से नियुक्ति करने की शक्ति तत्समय निलम्बित कर दी गई है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, विनियम प्रबन्ध समिति को नियुक्ति करने की शक्ति प्रदत्त करता है। वह विनियम बोर्ड द्वारा राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी से अधिनियमित किया गया था। राज्य सरकार के बारे में यह कहा जा सकता था कि उसने नियुक्त करने की शक्ति प्रदत्त करने वाले उस विनियम को विखंडित कर दिया है या किसी भी स्थिति में नियुक्त करने संबंधी प्रबन्ध समिति को प्रदत्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शक्ति निलम्बित कर दी है। वह आदेश उसी समय प्रभावी हो गया जिस समय वह निकाला गया था। इस आदेश का प्रभाव यह है कि चयन समिति को अपीलार्थी का चयन करने का कोई भी अधिकार नहीं था और न ही प्रबन्ध समिति को कोई नियुक्ति करने की शक्ति प्राप्त थी।

13. इसके अलावा, श्री सांघी ने यह दलील दी कि यह आदेश संस्था को कभी भी नहीं मिला और इसी कारण से इस तथ्य के बावजूद कि प्रबन्ध समिति की नियुक्त करने की शक्ति निलम्बित कर दी गई थी, उसकी शक्ति यथावत् बनी हुई थी और इसी कारण से अपीलार्थी की नियुक्ति विधिमान्य होगी। इस दलील में कोई भी सार नहीं है कि क्योंकि तारीख 1 मई, 1978 वाले पत्र से, जो इसके पहले प्रोद्धृत किया गया है, स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि 7 अप्रैल, 1981 को रेडियो-तार में अन्तर्विष्ट आदेश संस्था के प्रबंध को संसूचित कर दिया गया था। संस्था के तत्समय प्रबन्धक या प्रबंधतंत्र के तत्समय प्रभारी किसी भी उत्तरदायी व्यक्ति ने 1 मई, 1981 वाले पत्र की प्राप्ति से इनकार करते हुए विरोध में कोई भी शपथपत्र पेश नहीं किया है। इस पत्र से यह दर्शित होता है कि 8 अप्रैल, 1981 को यह आदेश संस्था को मिल गया था कि प्रधानाचार्य की नियुक्ति की शक्ति वापस ले ली गई है या निलम्बित कर दी गई है। यदि वह आदेश विधिमान्य था और नियुक्ति करने की शक्ति वापस ले ली गई थी या निलम्बित कर दी गई थी, तो चयन समिति को यह अधिकार नहीं था कि वह अपीलार्थी का चयन करे और न ही प्रबन्ध समिति की ओर से प्रबन्धक तारीख 27 अप्रैल, 1981 वाला नियुक्ति सम्बन्धी आदेश अपीलार्थी को दे सकता था तथा अपीलार्थी की नियुक्ति ऐसे निकाय ने की थी जोकि नियुक्त करने के लिए प्राधिकृत नहीं था और इसीलिए वह अप्रभावी है यद्यपि वह अविधिमान्य नहीं हो सकती।

14. इस निष्कर्ष को देखते हुए कि धारा 9 की उपधारा (4) राज्य सरकार को यह शक्ति प्रदत्त नहीं करती कि वह अधिनियम के उपबन्धों से संगत कोई विनियम बनाए, उपांतरित करे या विखंडित करे या कोई अन्य आदेश करे, श्री सांघी की दूसरी दलील उसी प्रकार से असफल होगी।

15. अतः अब धारा 16-ङ की उपधारा (10) पर आधारित आनुकल्पिक दलील पर विचार करना आवश्यक है। धारा 16-ङ का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पार्श्व-टिप्पण इस प्रकार है—

*"संस्थाओं के अध्यापकों और प्रधान के चयन की प्रक्रिया। उपधारा (1) प्रबन्ध समिति को नियुक्ति करने की शक्ति प्रदत्त करती है।"

उपधारा (10) में निम्नलिखित रूप में उपबन्ध किया गया है—

**"(10) जहां कि संस्था के प्रधान की नियुक्ति की दशा में, राज्य सरकार को और किसी संस्था के अध्यापक की नियुक्ति की दशा में, निदेशक का यह समाधान हो जाता है कि कोई व्यक्ति, यथास्थिति, संस्थान के प्रधान या अध्यापक के रूप में, इस अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करते हुए, नियुक्त किया गया है, वहां यथा-स्थिति, राज्य सरकार या निदेशक, ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने के बाद, ऐसी नियुक्ति रद्द कर सकेगा और ऐसा पारिणामिक आदेश पारित कर सकेगा, जैसा आवश्यक हो।"

16. इस बात पर जोर दिया गया कि यदि राज्य सरकार का समाधान हो गया है कि कोई व्यक्ति अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करते हुए किसी संस्था के प्रधान के रूप में नियुक्त किया गया है, तो राज्य सरकार, ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने के बाद, ऐसी नियुक्ति रद्द कर सकेगी और ऐसा पारिणामिक आदेश पारित कर सकेगी, जैसाकि आवश्यक हो। श्री सांघी ने बहुत जोर देकर यह दलील दी कि यदि अपीलार्थी की

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"Procedure for selection of teachers and head of institutions. Sub-sec (1) confers power on the Committee of the Management to make appointment."

**"(10) Where the State Govt. in case of the appointment of Head of Institution, and the Director in the case of the appointment of teacher of an institution is satisfied that any person has been appointed as Head of Institution or teacher, as the case may be, in contravention of the provisions of this Act, the State Government or, as the case may be, the Director may, after affording an opportunity of being heard to such person, cancel such appointment and pass such consequential order as may be necessary."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियुक्ति अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करते हुए की गई है तो राज्य, सरकार इस बात के लिए आबद्ध है कि वह कोई पारिणामिक आदेश करने के पूर्व अपीलार्थी की सुनवाई करती। उपधारा (10) में ऐसी आकस्मिकता के लिए उपबन्ध किया गया है जिसमें कि नियुक्ति की जाती है और राज्य सरकार को बाद में यह पता चलता है कि वह नियुक्ति किसी विशिष्ट व्यक्ति के सम्बन्ध में अधिनियम का उल्लंघन करते हुई की गई है; यह कि नैसर्गिक न्याय के नियम इस बात की अपेक्षा करते हैं कि ऐसे व्यक्ति के प्रतिकूल आदेश करने से पूर्व उसकी सुनवाई की जाए। प्रस्तुत मामला ऐसा मामला नहीं है जिसके संबंध में उपधारा (10) के अधीन कार्यवाही की जा सकती हो या कार्यवाही की जानी अपेक्षित हो। स्थिति यह है कि सभी गैर-सरकारी सहायता-प्राप्त संस्थाओं की प्रबन्ध समिति को विनियम द्वारा प्रदत्त नियुक्ति सम्बन्धी शक्ति वापस ले ली गई थी या निलम्बित कर दी गई थी। प्रबन्ध समिति को नियुक्त करने की कोई भी शक्ति नहीं थी। यह नहीं कहा जा सकता है कि वह नियुक्ति अधिनियम के किसी भी उपबन्ध का उल्लंघन करते हुए की गई थी। अतः उपधारा (10) इस मामले को लागू नहीं होती और इसी कारण से उस दलील को अवश्य ही असफल होना चाहिए।

17. निस्सन्देह अपीलार्थी उच्च अर्हित व्यक्ति है और उसकी नियुक्ति में कोई भी छल-छद्म नहीं था। यदि नियुक्त करने की शक्ति निलम्बित न की गई होती, तो हमें अपीलार्थी की नियुक्ति को कायम रखने में कोई भी कठिनाई न होती और हम श्री जगन्नाथ के षड्यंत्र से अनभिज्ञ नहीं हैं जिसने संभवतः यह सोचा है कि अपीलार्थी उसका बहुत ही शक्तिशाली प्रतिद्वंदी होगा और वह उसे रास्ते से हटाना चाहता था। ऐसा प्रतीत होता है कि निजी प्रबन्धतंत्र श्री जगन्नाथ की प्रार्थना पर अपीलार्थी की नियुक्ति करने से, बाद में चलकर, मुकर भी गया था जिसे एक प्रक्रम में वे लोग संरक्षा प्रदान करने के लिए रजामन्द थे। किन्तु चूंकि नियुक्ति की शक्ति नहीं थी, इसलिए हम अपीलार्थी की सहायता करने में असमर्थ हैं। तथापि हम इसे बहुत ही स्पष्ट करना चाहेंगे कि वह नियुक्ति अन्यथा विधिमान्य थी, यद्यपि वह अप्रभावी थी और यदि अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आदेश के अधीन प्रधानाचार्य के रूप में कार्य किया था, अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया था और उसे (वेतन) संदत्त किया गया था, तो उसे संदत्त की गई रकम की वसूली का कोई भी प्रश्न उत्पन्न नहीं हो सकता और न सरकार, न प्रबन्धतंत्र और न ही संस्था अपीलार्थी को संदत्त किसी भी वेतन की वसूली करने की हकदार होगी।

18. उत्तर प्रदेश सरकार ने यू० पी० सेकेंडरी एजुकेशन सर्विस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कमीशन एण्ड सेलैक्शन बोर्ड आर्डिनेंस, 1981 [उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग और चयन बोर्ड अध्यादेश, 1981] (1981 का 8) प्रख्यापित किया जिसका स्थान ऐसे अधिनियम ने लिया था जिसका नाम भी समान था। उस अधिनियम में संस्था के, प्रधानाचार्यों सहित, अध्यापकों का चयन करना और उनकी नियुक्ति करने की सिफारिश करने के लिए आयोग स्थापित करना अनुध्यात है। महाविद्यालय में कोई भी प्रधानाचार्य नहीं है और जगन्नाथ, प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किए जाने संबंधी जिसके अधिकार का अभी भी अन्वेषण किया जाना है, इस स्थिति का अनुचित फायदा उठा रहा है। आयोग का यह कानूनी कर्तव्य है कि वह महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के पद को भरने के लिए प्रभावी कदम उठाए। यह आवश्यक है कि राज्य सरकार आयोग को यह निदेश दे कि वह आज से तीन मास के भीतर बलिया के श्रीनाथ इण्टरमीडिएट कालेज, गढ़मलपुर के प्रधानाचार्य का पद भरने के लिए आवश्यक कदम उठाए। अपीलार्थी उस पद के लिए आवेदन करने का पात्र होगा। हम तदनुसार निदेश देते हैं।

19. चूंकि हमें अपीलार्थियों की ओर से पेश की गई किसी भी दलील में सार दिखाई नहीं देता है, इसलिए अपील असफल होती है और उसे पूर्वगामी पैरा में दिए गए निदेशों के अध्यधीन रहते हुए खारिज किया जाता है, किन्तु मामले की परिस्थितियों में, खर्चे के संबंध में कोई भी आदेश नहीं किया जाता है।

अपील खारिज की गई।

श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रंजन द्विवेदी

बनाम

भारत संघ

(Ranjan Dwivedi

v.

Union of India)

(26 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति आर० एस० पाठक और ए० पी० सेन)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 22(1)—उक्त अनुच्छेद के अधीन "अपनी पसन्द के विधि व्यवसायी द्वारा प्रतिरक्षा किए जाने का अधिकार"—उक्त अधिकार अभियुक्त के सांविधानिक अधिकारों के अन्तर्गत विधि-व्यवसायी प्रदान किए जाने को अन्तर्विष्ट नहीं करता है—इस विषय में परमादेश का रिट जारी नहीं किया जा सकता।

इस मामले में पिटीशनर एक अभिलेख-अधिवक्ता है। वह उच्चतम न्यायालय में वकालत कर रहा है। उसके विरुद्ध चार अन्य व्यक्तियों सहित भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120-ख के साथ पठित धारा 302 के अधीन दण्डनीय आपराधिक षड्यंत्र के अनुसरण में हत्या का अभिकथित अपराध किए जाने के लिए विचारण चल रहा है। यह मामला समस्तीपुर बम्ब विस्फोट काण्ड वाले मामले के नाम से प्रसिद्ध है और अपर सेशन न्यायाधीश, दिल्ली के न्यायालय में इसकी पैरवी की जा रही है। मुख्य अभियुक्त द्वारा दो चोटी के वकील वरिष्ठ काउन्सेल के रूप में वृत्तिक शालीनता के आधार पर, विधिज्ञ परिषद् के उसके एक साथी सदस्य होने के नाते, न्यायालय में हाजिर हो रहे हैं। इसी बीच मुख्य अभियुक्त को जिन वरिष्ठ अधिवक्ताओं ने सेवाएं प्रदान की थीं उनके नाम वापस ले लिए गए और तत्पश्चात् स्वयं पिटीशनर अपने मामले की पैरवी करता रहा है। पिटीशनर का यह कहना है कि हालांकि वह अकिंचन व्यक्ति नहीं है, वह एक ऐसा अधिवक्ता है जो कशमकश करके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कठिनाई से ऊपर उठने की चेष्टा कर रहा है और उसके पास न तो इतनी क्षमता है और न ही इतने साधन मौजूद हैं कि वह अपनी प्रतिरक्षा हेतु किसी सक्षम अधिवक्ता को संलग्न कर सके। उसने यह शिकायत की है कि दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियमों के अधीन 24 रुपए प्रतिदिन की भारी रकम सेशन न्यायालय में न्यायमित्र के रूप में हाजिर होने के लिए अधिवक्ता को संदेय फीस के तौर पर नियत की गई है और चूंकि सेशन विचारण, जिसमें कि वह अन्तर्वलित है, वह प्रति सप्ताह औसतन तीन दिन चलता है, अतः पर्याप्त अनुभवशील किसी भी अधिवक्ता द्वारा उसकी प्रतिरक्षा करने के लिए काउन्सेल के रूप में हाजिर होना संभाव्य नहीं है। दूसरी ओर विशेष लोक अभियोजक सरकार की ओर से नियुक्त किया है और उसकी सहायता में पर्याप्त संख्या में वकील कार्य कर रहे हैं। ऐसी दशा में राज्य के लिए यह विवश्यक है कि वह उसे संविधान के अनुच्छेद 39क के अधीन यथागारन्टीकृत समान अवसर के आधार पर उसकी प्रतिरक्षा हेतु एक काउन्सेल की सेवाएं प्रदान करे। इस प्रकार उसने परमादेश की प्रकृति के रिट की मांग की है और यह याचना की है कि उसकी पसन्द का अनुभवशील विधि-व्यवसायी उसे दिया जाए ताकि वह अपने मामले को सुचारु रूप से आगे चला सके। इस मामले के दौरान न्यायालय ने अन्तरिम आदेश देकर वकील की समस्याओं को समझते हुए यह निदेश दिया कि राज्य को चाहिए कि वह उसकी प्रतिरक्षा हेतु उसकी मदद करे और जिस काउन्सेल को वह अपनी प्रतिरक्षा हेतु लेना चाहता है, उसे समुचित फीस का संदाय करने की व्यवस्था करे। उसने यह निदेश दिया कि पिटीशनर सेशन न्यायालय को उस काउन्सेल के नाम से अवगत कराए जो कि उसकी ओर से हाजिर होगा और इन विषय में राज्य को यह निदेश दिया गया है कि वह उस काउन्सेल को आवश्यक फीस का संदाय करेगा। सरकार की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महासालिसिटर ने इसका विरोध किया और यह कहा कि सरकार इस बात के लिए आबद्ध नहीं है कि वह उसे उसकी पसन्द का काउन्सेल प्रदान करे। उसका मामला ऐसा है कि यदि अपर सेशन न्यायाधीश का समाधान हो जाता है तो उसे निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान की जाए और यदि ऐसा समुचित नहीं समझा जाता है तो वह अपनी पसन्द का काउन्सेल सरकार के खर्च पर नहीं ले सकता और इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन कोई भी पिटीशन कायम रखने योग्य नहीं है। वस्तुतः उसका मामला संविधान के निदेशक तत्वों (अनुच्छेद 39-क) के अन्तर्गत आता है और यह मात्र लोक कल्याण के उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए ही है। यह विधि की दृष्टि से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आबद्धकर नहीं है उच्चतम न्यायालय के समक्ष पेश किए गए रिट पिटीशन को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पिटीशनर अनुच्छेद 39क में निहित निदेशक तत्वों के प्रवर्तन के लिए उस परमादेश के रिट की मंजूरी का हकदार नहीं है जिसमें भारत संघ से उसे अपनी पसंद के काउन्सेल की नियुक्ति के लिए उस पैमाने पर वित्तीय सहायता देने के लिए आदेश दिया जा सके जो राज्य की ओर से पेश होने वाले काउन्सेल को संदत्त की जाने वाली फीस के समतुल्य हो या उसके आनुपातिक हो। जैसा कि अनुच्छेद 39-क की भाषा से स्पष्ट है, समान न्यायालय और निःशुल्क विधिक सहायता के सामाजिक उद्देश्य को उपयुक्त विधान या निःशुल्क विधिक सहायता के लिए स्कीमें बनाकर क्रियान्वित किया जाना है। पिटीशनर का उपचार, यदि कोई है तो, यह है कि वह दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 304 की उपधारा (1) के अधीन विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष आवेदन कर सकता है और वह संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन द्वारा ऐसा नहीं कर सकता। (पैरा 7)

यद्यपि पूर्वतर विनिश्चियों में इस न्यायालय ने निदेशक तत्वों पर इस कारण कम ध्यान दिया है कि न्यायालयों को उनसे कोई सरोकार नहीं था क्योंकि इन पर मूल अधिकारों के समान न तो न्यायालयों में विचार किया जा सकता था और न ही ये उनकी तरह प्रवर्तनीय थे, तथापि पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में न्यायालय के कर्तव्यों पर बल दिया गया है। यह बात केशवानन्द भारती बनाम भारत संघ वाले मामले में अपने चरम बिन्दु पर पहुंची जिसमें कतिपय मोटी-मोटी प्रतिपादनाएं अधिकथित की गईं। उनमें से एक यह है कि निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों के बीच कोई असंगति नहीं है क्योंकि ये दोनों ही सामाजिक क्रांति लाने और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने, जो कि उद्देशिका में परिकल्पित है, के समान उद्देश्य को प्राप्त करने में एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं। अतः न्यायालयों की यह जिम्मेदारी है कि वे संविधान का ऐसा निर्वचन करें जिससे निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन सुनिश्चित बन सके और वैयक्तिक अधिकारों के साथ निदेशक तत्वों के मूल आधार पर सामाजिक उद्देश्यों को संगत बनाया जा सके। अनुच्छेद 39-क में दिया गया आदेश मुख्य रूप से विधानमण्डल और कार्यपालिका के लिए है, किन्तु जहां तक न्यायालय संविधान के अन्तरालों के भीतर न्यायिक विधि बनाने या अपने समक्ष कानूनों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के गर्थान्वियन के कार्य में लीन होते हैं, न्यायालय भी इस आदेश द्वारा आबद्ध हैं। (पैरा 9)

विधि आयोग ने अपनी 48वीं रिपोर्ट में यह सुझाव दिया है कि उन सभी अभियुक्तों को, जिनकी साधनों के अभाव के कारण किसी वकील द्वारा प्रतिरक्षा नहीं की जाती है, राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सहायता के लिए उपबंध किया जाए। इस सिफारिश को अभी क्रियान्वित किया जाना है। कई बार अभियुक्त के लिए यह कठिन हो सकता है कि वह किसी सक्षम वकील की नियुक्ति के लिए पर्याप्त साधन जुटा पाए। ऐसे मामले में यदि न्याय के उद्देश्य में ऐसी अपेक्षा हो, तो न्यायालय को निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करने की शक्ति है। अतः पिटीशनर का उपचार यह है कि वह निःशुल्क विधिक सहायता की मंजूरी के लिए मामला तैयार करके अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष आवेदन करे और यदि विद्वान अपर सेशन न्यायाधीश का यह समाधान हो जाता है कि संहिता की धारा 304 की उपधारा (1) की अपेक्षाओं की पूर्ति हो गई है तो वह इस बाबत आवश्यक निदेश दे सकेगा। पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले काउन्सेल की फीस नियत करते समय विद्वान अपर सेशन न्यायाधीश इस न्यायालय द्वारा पारित अन्तरिम आदेशों को ध्यान में रखते हुए फीस की रकम नियत करेगा। किन्तु यदि वह यह अनुभव करे कि पैनल पर रखे गए वकीलों के लिए पारिश्रमिक के मापमान विहित करने वाले दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के प्रतिबंधों से आबद्ध है तो वह उपयुक्त निदेशों के लिए उच्च न्यायालय को निर्देश कर सकेगा। ऐसा निर्देश किए जाने पर, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227(3) के अधीन अपनी असंदिग्ध अधिकारिता में इस बात पर विचार करेगा कि सेशन विचारणों में उपस्थित होने वाले पैनल पर रखे गए वकीलों के लिए विहित पारिश्रमिक के मापमान कुल मिलाकर अपर्याप्त तो नहीं है और उसके पुनरीक्षण की मांग करेगा। (पैरा 14)

उच्च न्यायालय को वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले काउन्सेल को संदेय फीस के रूप में युक्तियुक्त रकम नियत करने की पूरी शक्ति है। (पैरा 15)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1980]	[1980] 1 उम० नि० प० 1019=[1979] 3 एस० सी० आर० 184 : हरियाणा राज्य बनाम दर्शना देवी और अन्य (State of Haryana v. Darshna Devi and Others);	10
[1980]	[1980] 2 उम० नि० प० 961=[1979] 3 एस० सी० आर० 1014 : आर० डी० शेट्टी बनाम भारत का अन्तर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण और अन्य (R. D. Shetty v. The International Airport Authority of India and Others);	8
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 2 एस० सी० आर० 621 : मेनका गांधी बनाम भारत संघ (Maneka Gandhi v. Union of India).	8
[1979]	[1979] 3 उम० नि० प० 65=[1979] 1 एस० सी० आर० 192 : एम० एच० होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य (M. H. Hoskot v. The State of Maharashtra);	10
[1974]	[1974] 1 उम० नि० प० 577=[1974] 2 एस० सी० आर० 348 : ई० पी० रॉयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य (E. P. Royappa v. State of Tamil Nadu);	8
[1973]	[1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] 4 एस० सी० सी० 225 : केशवानन्द भारती बनाम भारत संघ (Keshavanand Bharti v. Union of India);	9

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रभेदित निर्णय

[1932]	77 लाइयर्स एडीशन 158 : पावेल बनाम अलबामा (Powel *v*. Albama).	8, 10, 11

निर्दिष्ट निर्णय

[1980]	[1980] 2 उम० नि० प० 772=[1979] 3 एस० सी० आर० 532 : हुसैनआरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना (Hussainara Khatoon and Others *v*. Home Secretary, State of Bihar, Patna);	10
[1951]	[1951] एस० सी० आर० 344 : जनार्दन रेड्डी और अन्य बनाम हैदराबाद राज्य और अन्य (Janardan Reddy and Other *v*. The State of Hyderabad and Others);	8
[1835-42]	9 लाइयर्स एडीशन सेकेंड 799 : गिडियन बनाम वेनराइट (Gideon *v*. Wainright);	12
[1941]	86 लाइयर्स एडीशन 1595 : बेट्स बनाम ब्रेडी (Betts *v*. Brady).	12

आरम्भिक अधिकारिता : 1981 का रिट पिटीशन (दाण्डिक) सं० 1792.

[भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन]

पिटीशनर की ओर से — **श्री वी० एम० तारकुण्डे, ज्येष्ठ अधिवक्ता सर्वश्री जी० सी० पटेल, के० प्रसाद और स्वयं पिटीशनर**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री एम० के० बेनर्जी, अतिरिक्त महा-सालिसिटर, कुमारी ए० सुभाषिणी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ए० पी० सेन ने दिया।

न्यायाधिपति सेन—

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस पिटीशन में किञ्चित सूक्ष्म प्रश्न उठा है। प्रश्न यह है कि क्या संविधान के अनुच्छेद 22(1) के अधीन "अपनी पसन्द के विधि व्यवसायी द्वारा प्रतिरक्षा का अधिकार" यह अधिकार प्रदान करता है कि राज्य अभियुक्त के लिए किसी वकील का प्रबन्ध करे।

2. पिटीशनर इस न्यायालय में विधि-व्यवसायी अभिलेख अधिवक्ता है और उसे दिल्ली के अतिरिक्त सेशन न्यायाधीश के न्यायालय में समस्तीपुर बम्ब विस्फोट काण्ड वाले मामले में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120-ख के साथ पठित धारा 302 के अधीन दण्डनीय आपराधिक षड्यंत्र को अग्रसर करने में हत्या के अभिकथित अपराध के किए जाने के लिए अपने विचारण में चार अन्य व्यक्तियों के साथ दोषारोपित किया गया है। बावा गुरुचरण सिंह, जिसे मुख्य अभियुक्त संतोष आनन्द और सुदेव आनन्द ने वरिष्ठ काउन्सेल के रूप में नियुक्त किया था, पिटीशनर की ओर से भी इसके विधिज्ञ परिषद् के साथी सदस्य होने की वृत्तिक शालीनता के नाते उपस्थित हो रहा था। प्रथम इकबाली साक्षी, अभियोजन साक्षी 1 मदन मोहन श्रीवास्तव उर्फ विशेश्वर आनन्द का साक्ष्य 25 मार्च, 1981 को समाप्त हो गया। मुख्य अभियुक्त तथा पिटीशनर की ओर से बावा गुरुचरण सिंह द्वारा और अन्य दो अभियुक्तों अर्तेश आनन्द और गोपालजी की ओर से उपस्थित होने वाले पी० पी० ग्रोवर द्वारा उसकी प्रतिपरीक्षा की गई थी। उसी दिन बावा गुरुचरण सिंह ने पिटीशनर की ओर से अपना नाम वापिस ले लिया और उसके पश्चात् से पिटीशनर स्वयं अपने मामले का संचालन कर रहा है। दूसरे इकबाली साक्षी, अभियोजन साक्षी 2, जलधर दास उर्फ विक्रम के साक्ष्य को अभिलिखित किया जाना पहले से ही प्रारम्भ हो चुका है।

3. पिटीशनर की दलील यह है कि हालांकि कोई अकिन्चन व्यक्ति नहीं है, संघर्षरत वकील के रूप में न तो उसकी यह क्षमता है और न ही उसके पास साधन हैं कि वह अपनी प्रतिरक्षा के लिए किसी सक्षम वकील को नियुक्त कर सके। उसकी यह शिकायत है कि दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन न्याय-मित्र के रूप में सेशन न्यायालय में उपस्थित होने वाले वकील को संदेय फीस के रूप में 24 रुपए की राजसी राशि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निश्चित की है और चूंकि सेशन विचारण, जिसमें वह अन्तर्वलित है, सप्ताह में औसतन तीन दिन चलता है, ऐसी दशा में किसी भी पर्याप्त प्रतिष्ठा के वकील के लिए उसकी प्रतिरक्षा के वास्ते काउन्सेल के रूप में पेश होना संभव नहीं है। उसका अभिकथन है कि अभियोजन का संचालन विशेष लोक अभियोजक कर रहा है, जिसकी सहायता राज्य द्वारा विशिष्टतया नियुक्त का मण्डल है और उनकी फीसों के रूप में बड़ी-बड़ी रकमों का संदाय किया जा रहा है। अभियोग सम्बन्धी निष्पक्ष व्यवहार की दृष्टि से राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह उसे संविधान के अनुच्छेद 39-क के अधीन गारंटीकृत समान अवसर के आधार पर उसकी प्रतिरक्षा के लिए काउन्सेल की व्यवस्था करे। इस आधार पर उसने परमादेश रिट और अन्य उपयुक्त रिटों, निदेशों और आदेशों को जारी करके भारत संघ से यह व्यादेश देने की मांग की है कि उसे अपनी पसंद के वकील की नियुक्ति करने के लिए उस पैमाने पर वित्तीय सहायता दी जाए, जो उस फीस के, जो राज्य की ओर से पेश होने वाले काउन्सेल को संदत्त की जा रही है, समतुल्य हो या उसके आनुपातिक हो।

4. रिट पिटीशन के लम्बित रहने के दौरान, न्यायालय ने तारीख 4 जनवरी, 1981 के अपने अन्तरिम आदेश द्वारा इस बात को ध्यान में रखते हुए कि पिटीशनर विधि-व्यवसाय करने वाला वकील है और सेशन विचारण में लम्बे समय तक अन्तर्वलित रहा है, यह निदेश दिया कि उसकी प्रतिरक्षा के मामले में, जहां तक विचारण में उसकी प्रतिरक्षा के लिए उसके काउन्सेल की फीसों के संदाय का सम्बन्ध है, राज्य उसकी सहायता करेगा। न्यायालय ने यह निदेश दिया कि पिटीशनर सेशन न्यायालय को उस काउन्सेल का नाम बताए जो उसकी ओर से पेश होगा। उसने यह भी निदेश दिया कि राज्य रिट पिटीशन के परिणाम पर किए गए अन्तिम लेखे-जोखे के अधीन रहते हुए उसकी फीसों पर खर्च होने वाली अपेक्षित रकम के संदाय का आवश्यक प्रबन्ध करेगा। तारीख 18 अगस्त, 1981 के पश्चातवर्ती आदेश द्वारा न्यायालय ने पूर्वतर आदेश में परिवर्तन करके यह निर्धारित कर दिया कि राज्य पिटीशनर का प्रतिनिधित्व करने वाले ज्येष्ठ काउन्सेल को 500 रुपए प्रति दिन और कनिष्ट काउन्सेल को 250 रुपए प्रति दिन के हिसाब से राशि का संदाय करेगा।

5. सुनवाई के समय पिटीशनर के विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि उस न्याय-मित्र की, जो विचारण में पिटीशनर की ओर से पेश होगा, फीस के रूप में उचित रकम के संदाय के लिए न्यायालय द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पारित अन्तरिम आदेशों के अनुरूप उपयुक्त निदेश जारी किया जाए। इसके विपरीत, विद्वान् अपर महा सालिसिटर ने न्यायालय द्वारा किए गए निदेशों पर गम्भीर आपत्ति की है और यह दलील दी है कि पिटीशनर को इस बात का कोई विधिक अधिकार नहीं है कि राज्य उसके लिए वकील की व्यवस्था करे; न ही राज्य पर कोई तत्संबंधी बाध्यता है कि वह उसे उसकी पसन्द के काउन्सेल की नियुक्ति के लिए वित्तीय सहायता दे। उसके अनुसार, पिटीशनर के लिए उपचार यह है कि वह निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 304 की उपधारा (1) के अधीन विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष आवेदन करे और यह विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश पर निर्भर करता है कि वह अपने समक्ष रखी गई सामग्री के आधार पर अपना यह समाधान करे कि पिटीशनर के पास काउन्सेल की नियुक्ति के लिए पर्याप्त साधन हैं या नहीं। निवेदन यह है कि इस शर्त की पूर्ति पर ही राज्य के खर्चे पर उसकी प्रतिरक्षा के लिए उसे काउन्सेल के दिए जाने के लिए निदेश दिया जा सकता है। तदनुसार, उसकी यह दलील है कि संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन कोई पिटीशन चलने योग्य नहीं है।

6. पिटीशन मुख्यतः संविधान के अनुच्छेद 39-क में निहित राज्य की नीति के निदेशक तत्व के प्रवर्तन के लिए है जिसमें यह कहा गया है :—

> "39-क. राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रूप से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।"

7. इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पिटीशनर अनुच्छेद 39-क में निहित निदेशक तत्वों के प्रवर्तन के लिए उस परमादेश के रिट की मंजूरी का हकदार नहीं है जिसमें भारत संघ से उसे अपनी पसंद के काउन्सेल की नियुक्ति के लिए उस पैमाने पर वित्तीय सहायता देने के लिए आदेश दिया जा सके जो राज्य की ओर से पेश होने वाले काउन्सेल को संदत्त की जाने वाली फीस के समतुल्य हो या उसके आनुपातिक हो। जैसा कि 39-क की भाषा से स्पष्ट है, समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता के सामाजिक उद्देश्य को उपयुक्त विधान या निःशुल्क विधिक सहायता के लिए स्कीमें बनाकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रियान्वित किया जाना है। पिटीशनर का उपचार, यदि कोई है तो, यह है कि वह दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 304 की उपधारा (1) के अधीन विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष आवेदन कर सकता है और वह संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन पिटीशन द्वारा ऐसा नहीं कर सकता।

8. जनार्दन रेड्डी और अन्य बनाम हैदराबाद राज्य और अन्य[1] वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 22(1) के निर्वचन पर इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त यह पारम्परिक दृष्टिकोण कि 'अपनी पसंद के विधि-व्यवसायी द्वारा प्रतिरक्षा का अधिकार' से केवल यह अभिप्रेत है कि अभियुक्त वकील की नियुक्ति कर सकता है और यह अधिकार उसे इस आत्यंतिक अधिकार की गारंटी नहीं देता है कि राज्य उसके लिए वकील की व्यवस्था करे। उस दृष्टिकोण में संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अनुच्छेद 39-क में सम्मिलित राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को पुरःस्थापित करके और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 की उपधारा (1) का अधिनियमन करके अब परिवर्तन कर दिया गया है। इसी मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि 'सम्यक् प्रक्रिया' के सिद्धान्त पर आधारित पावेल बनाम अलबामा[2] के मामले में प्रतिपादित अमेरिकी नियम भारत में लागू नहीं है और यह कि अनुच्छेद 22(1) के अधीन अभियुक्त को यह आत्यंतिक अधिकार नहीं दिया गया है कि राज्य उसके लिए वकील की व्यवस्था करेगा। इस न्यायालय द्वारा मेनका गांधी बनाम भारत संघ,[3] ई० पी० रायप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य[4] और आर० डी शेट्टी बनाम भारत का अन्तर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण और अन्य[5] वाले मामलों के विनिश्चयों को अपनाकर इस अवस्थिति में निश्चित परिवर्तन हुआ है। मेनका गांधी वाले मामले[3] में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि नैसर्गिक न्याय के अनुपालन की अपेक्षा अनुच्छेद 21 में विवक्षित है और यह कि यदि कोई दण्ड विधि उसे प्रभावित करने से पूर्व सुने जाने की अपेक्षा अधिकथित नहीं करती तो भी ऐसी अपेक्षा न्यायालय द्वारा विवक्षित होगी ताकि विधि द्वारा विहित प्रक्रिया युक्तियुक्त हो सके

---

1 [1951] एस० सी० आर० 344.

2 [1932] 77 लाइयर्स एडीशन 158.

3 [1979] 1 उम० नि० 243=[1978] 2 एस० सी० आर० 621.

4 [1974] 1 उम० नि० प० 577=[1974] 2 एस० सी० आर० 348.

5 [1980] 2 उम० नि० प० 961=[1979] 3 एस० सी० आर० 1014.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और वह मनमानी प्रक्रिया न हो जाए। वह प्रक्रिया जो 'मनमानी, अन्यायपूर्ण या काल्पनिक' हो उसे सर्वथा 'प्रक्रिया' नहीं माना जा सकता। वह प्रक्रिया जो अयुक्तियुक्त हो, अनुच्छेद 14 के अनुरूप नहीं कही जा सकती क्योंकि युक्तियुक्तता की धारणा उस अनुच्छेद में व्याप्त है और मनमानापन अनुच्छेद 14 के अधीन गारंटीकृत समानता के विपरीत है। इन विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए ऐसा कहना कठिन है कि 'सम्यक् प्रक्रिया' के अमेरिकी सिद्धान्त का सार अनुच्छेद 21 के रूढ़िवादी मूल-पाठ के भीतर अभी भी नहीं आया है।

9. यद्यपि पूर्वतर विनिश्चयों में इस न्यायालय ने निदेशक तत्वों पर इस कारण से कम ध्यान दिया है कि न्यायालयों को उनसे कोई सरोकार नहीं था क्योंकि इन पर मूल अधिकारों के समान न तो न्यायालयों में विचार किया जा सकता था और न ही ये उनकी तरह प्रवर्तनीय थे तथापि पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में निदेशक तत्वों के सम्बन्ध में न्यायालय के कर्तव्यों पर बल दिया गया है। यह बात **केशवानन्द भारती बनाम भारत संघ**[1] वाले मामले में अपने चरम-बिन्दु पर पहुंची जिसमें कतिपय मोटी-मोटी प्रतिपादनाएं अधिकथित की गईं। उनमें से एक यह है कि निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों के बीच कोई असंगति नहीं है क्योंकि ये दोनों ही सामाजिक क्रान्ति लाने और कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने, जो कि उद्देशिका में परिकल्पित है, के समान उद्देश्य को प्राप्त करने में एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं। अतः, न्यायालयों की यह जिम्मेदारी है कि वे संविधान का ऐसा निर्वचन करें जिससे निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन सुनिश्चित बन सके और वैयक्तिक अधिकारों के साथ निदेशक तत्वों के मूल में सामाजिक उद्देश्यों को संगत बनाया जा सके। अनुच्छेद 39-क में दिया गया आदेश मुख्य रूप से विधानमण्डल और कार्यपालिका के लिए है, किन्तु जहां तक न्यायालय संविधान के अन्तरालों के भीतर न्यायिक विधि बनाने या अपने समक्ष कानूनों के अर्थान्वयन के कार्य में लीन होते हैं, न्यायालय भी इस आदेश द्वारा आबद्ध हैं।

10. अनुच्छेद 21 के साथ पठित अनुच्छेद 39-क में दिए गए निदेशक तत्वों को इस न्यायालय ने न्याय के प्रशासन में कतिपय मार्गदर्शनों पर चलने के लिए **एम० एच० होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य**[2],

[1] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] 4 एस० सी० सी० 225.
[2] [1979] 3 उम० नि० प० 65=[1979] 1 एस० सी० आर० 192.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हरियाणा राज्य बनाम दर्शना देवी और अन्य[1] और हुसैनआरा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना[2] वाले मामलों में मान्यता दी है। इनमें से एक यह है कि जब अभियुक्त अकिंचनता या ऐसी ही परिस्थितियों के कारण काउन्सेल की नियुक्ति नहीं कर सकता है तो जब तक राज्य उसे अपनी प्रतिरक्षा के लिए उस वकील की नियुक्ति, जिसकी नियुक्ति पर अभियुक्त कोई आपत्ति नहीं करता, करने के लिए निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान नहीं करता, तब तक वह विचारण दूषित कहलाएगा। इस बात में पावेल वाले मामले[3] में न्यायाधिपति सदरलैंड के हृदयस्पर्शी शब्द गूंजते हैं। न्यायाधिपति सदरलैंड ने लिखा है कि 'काउन्सेल की सहायता का अधिकार मूल प्रकृति का है।' इस देश (अर्थात् संयुक्त राज्य अमेरिका) में 'ऐतिहासिक रूप से और व्यवहार में' किसी सुनवाई में 'काउन्सेल की सहायता के अधिकार को, जब उसकी वांछा की जाए, अधिकार जताने वाले पक्षकार द्वारा उसकी व्यवस्था करने के लिए' सदा सम्मिलित किया गया है। न्यायाधिपति सदरलैंड ने आगे चलकर यह बताया कि ऐसा क्यों होना चाहिए :—

> "बहुत से ऐसे मामले हैं जिसमें यदि काउन्सेल के द्वारा 'सुने जाने का अधिकार' नहीं होगा, तो सुने जाने के अधिकार का महत्व नाममात्र रह जाएगा। कई बार बुद्धिमान और शिक्षित अविशेषज्ञ व्यक्ति को भी विधि का बहुत कम या नितान्त ज्ञान नहीं होता। यदि उस पर किसी अपराध का आरोप लगता है तो वह साधारणतः अपने लिए यह अवधारण करने मे असमर्थ होता है कि अभियोग साधार है या निराधार। उसे साक्ष्य के नियमों का पता नहीं होता। यदि वह काउन्सेल की सहायता के बिना रह जाता है तो हो सकता है कि बिना किसी उचित आरोप के ही उसका विचारण कर लिया जाए और उसे अक्षम साक्ष्य या ऐसे साक्ष्य, जो उस मुद्दे से असंगत हों या अन्यथा अननुज्ञेय हों, पर दोषसिद्ध ठहरा दिया जाए। उसके पास पूर्ण निपुणता और ज्ञान होते हुए भी, अपनी प्रतिरक्षा करने में इन दोनों बातों की पर्याप्त रूप से कमी हो सकती है। उसे अपने विरुद्ध कार्यवाहियों में, हर कदम पर काउन्सेल के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। इसके बिना, यद्यपि वह दोषी न भी हो, उसे

---

[1] [1980] 1 उम० नि० प० 1019=[1979] 3 एस० सी० आर० 184.

[2] [1980] 2 उम० नि० प० 772=[1979] 3 एस० सी० आर० 532.

[3] (1932) 77 लाइयर्स एडीशन 158.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दोषसिद्धि के खतरे का सामना करना पड़ता है क्योंकि उसे यह नहीं पता कि वह अपनी निर्दोषिता कैसे सिद्ध करे।"

किन्तु उसने अपनी बात यहीं समाप्त नहीं की। यदि अभियुक्त, अवसर दिए जाने पर भी, काउन्सेल की सहायता प्राप्त नहीं कर पाता तो चौदहवें संशोधन में 'सम्यक् प्रक्रिया' खण्ड से यह अपेक्षित है कि विचारण न्यायालय 'काउन्सेल की प्रभावी नियुक्ति करे'। यह एक नई विधि थी और इसलिए यह स्वाभाविक था कि न्यायालय नए सिद्धान्त का अनुसरण करने के लिए ध्यानपूर्वक निम्नलिखित परिसीमाएं तय करे :—

"हमें यह अवधारण करने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा ही अन्य दाण्डिक अभियोजनों में या अन्य परिस्थितियों के अधीन रहते हुए होगा या नहीं। जिस बात का विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता है, और जैसा कि हम विनिश्चय भी करेंगे, वह यह है कि मृत्यु से दण्डनीय मामले में जहां प्रतिवादी काउन्सेल की नियुक्ति नहीं कर सकता है और अपनी अज्ञानता, मंदबुद्धि, निरक्षरता या इसी प्रकार की अन्य बातों के कारण अपनी प्रतिरक्षा करने में काफी असमर्थ है वहां न्यायालय का यह कर्तव्य होगा कि चाहे इस बात की प्रार्थना की गई हो या न की गई हो, विधि की सम्यक् प्रक्रिया की आवश्यक अपेक्षा के रूप में उसके लिए काउन्सेल की व्यवस्था करे; और उस कर्तव्य का ऐसे समय पर और ऐसी परिस्थितियों के अधीन सलाह देने में असमर्थ नहीं माना जाएगा जिससे वह मामले की तैयारी और विचारण में प्रभावी सहायता से वंचित रह जाए।"

11. यह बता देना आवश्यक होगा कि पावेल के मामले[1] में मृत्यु दण्डादेश अन्तर्वलित था जहां अभियुक्त अपनी निर्धनता के कारण काउन्सेल की नियुक्ति नहीं कर सकता था और इसीलिए अपनी प्रतिरक्षा करने में पर्याप्त रूप से असमर्थ था और उच्चतम न्यायालय के अनुसार विचारण न्यायालय द्वारा उसे काउन्सेल की नियुक्ति करने में युक्तियुक्त समय और अवसर न दिए जाने के कारण सम्यक् प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से खण्डन हुआ था।

12. बेट्स बनाम ब्रेडी[2] के मामले में संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट विचलन किया गया था जहां न्यायालय ने इसे

[1] (1932) 77 लाइयर्स एडीशन 158.
[2] (1941) 86 लाइयर्स एडीशन 1595.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकाएक तोड़ा और यह अभिनिर्धारित किया कि चौदहवें संशोधन का 'सम्यक् प्रक्रिया' खण्ड राज्यों पर दाण्डिक मामलों में सभी निर्धन अभियुक्तों के लिए काउन्सेल की नियुक्ति की आत्यंतिक अपेक्षा को इस प्रकार से अधिरोपित नहीं करता जैसा कि छठा संशोधन संघ सरकार पर अधिरोपित करता है। इसमें राज्य से यह अपेक्षित है कि वह केवल तभी काउन्सेल की व्यवस्था करे जब मामले की विशिष्ट परिस्थितियों से यह दर्शित हो कि विचारण में काउन्सेल के न होने से 'मूल निष्पक्षता' की त्रुटि होगी। बैट्स वाले मामले[1] के विनिश्चय से लेकर किसी राज्य न्यायालय में अभियुक्त के संवैधानिक अधिकार की समस्या तब तक वाद-विवाद का स्रोत बनी रही है जब तक गिडियन बनाम वेनराइट[2] नामक प्रसिद्ध मामले में इसका समाधान नहीं कर दिया गया। बैट्स के मामले[1] में अधिकथित नियम के अधीन न्यायालय को प्रत्येक मामले में यह अवधारण करने के लिए 'विशेष परिस्थितियों' पर विचार करना पड़ता था कि विचारण में काउन्सेल का उपलब्ध न किया जाना संवैधानिक दोष की कोटि में आता है या नहीं और राज्य की दाण्डिक प्रक्रियाओं पर निरंतर बढ़ रहे संघीय निर्बन्धनों के युग में यह चौंका देने वाली बात नहीं कि इस न्यायालय ने बैट्स के मामले[1] में अधिकथित नियम को गिडियन के मामले[2] में स्पष्टतः रद्द कर दिया था और यह अभिनिर्धारित किया था कि "सभी अकिंचन अभियुक्तों के लिए काउन्सेल की गारण्टी देने वाला छठा संशोधन (बिना किसी शर्त के) था जो चौदहवें संशोधन द्वारा बनाया गया था राज्य पर मूल अधिकार हेतु आबद्धकर था'। तथापि हम संयुक्त राज्य अमेरिका में नहीं रह रहे हैं और इसलिए सही अर्थ में हम चौदहवें संशोधन के 'सम्यक् प्रक्रिया' खण्ड द्वारा शासित नहीं हैं। अतः हमें इस विषय पर और विस्तृत विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है।

13. हाल ही के वर्षों में यह बात अत्यधिक महसूस की गई है कि जब तक अभियुक्त का उस पर लगाए गए आरोपों के विरुद्ध प्रतिरक्षा का निष्पक्ष विचारण नहीं हो जाता और जब तक उसे सक्षम वृत्तिक सहायता नहीं मिल जाती तब तक दाण्डिक मामलों में कोई वास्तविक समानता नहीं हो सकती। विधि आयोग ने "न्यायिक प्रशासन में सुधार" विषय पर अपनी चौदहवीं रिपोर्ट, खण्ड 1 में राज्य सहायता के लिए कतिपय सिफारिशें कीं। उनमें से एक यह थी कि "सेशन न्यायालयों द्वारा विचारण के सभी मामलों में उन अभियुक्त व्यक्तियों का, जिनके पास कोई साधन नहीं है, वकील द्वारा

1 (1941) 86 लाइयर्स एडीशन 1595.

2 (1935-42) 9 लाइयर्स एडीशन सेकेंड 799.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिनिधित्व सरकारी व्यय पर उपलब्ध कराया जाए।" इस सिफारिश को अब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 की उपधारा (1) में संहिताबद्ध कर दिया गया है, जो निम्नलिखित रूप में है :—

"304. कुछ मामलों में अभियुक्त को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता :—

(1) जहां सेशन न्यायालय के समक्ष किसी विचारण में, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी प्लीडर द्वारा नहीं किया जाता है, और जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त के पास किसी प्लीडर को नियुक्त करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं, वहां न्यायालय उसकी प्रतिरक्षा के लिए राज्य के व्यय पर प्लीडर उपलब्ध करेगा।"

14. विधि आयोग ने अपनी 48वीं रिपोर्ट में यह सुझाव दिया है कि उन सभी अभियुक्तों को, जिनकी कि साधनों के अभाव के कारण किसी वकील द्वारा प्रतिरक्षा नहीं की जाती है, राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सहायता के लिए उपबन्ध किया जाए। इस सिफारिश को कभी क्रियान्वित किया जाना है। कई बार अभियुक्त के लिए यह कठिन हो सकता है कि वह किसी सक्षम वकील की नियुक्ति के लिए पर्याप्त साधन जुटा पाए। ऐसे मामले में यदि न्याय के उद्देश्यों में ऐसी अपेक्षा हो तो न्यायालय को निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करने की शक्ति है। अतः पिटीशनर का उपचार यह है कि वह निःशुल्क विधिक सहायता की मंजूरी के लिए मामला तैयार करके अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष आवेदन करे और यदि विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश का यह समाधान हो जाता है कि संहिता की धारा 304 की उपधारा (1) की अपेक्षाओं की पूर्ति हो गई है तो वह इस बाबत आवश्यक निदेश दे सकेगा। पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले काउन्सेल की फीस नियत करते समय विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश इस न्यायालय द्वारा पारित अन्तरिम आदेशों को ध्यान में रखते हुए फीस की रकम नियत करेगा। किन्तु यदि वह यह अनुभव करे कि पेनिल पर रखे गए वकीलों के लिए पारिश्रमिक के मापमान विहित करने वाले दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के प्रतिबन्धों से आबद्ध है तो वह उपयुक्त निदेशों के लिए उच्च न्यायालय को निर्देश कर सकेगा। ऐसा निर्देश किए जाने पर, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227(3) के अधीन अपनी असंदिग्ध अधिकारिता में इस बात पर विचार करेगा कि सेशन विचारणों में उपस्थित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होने वाले पेनिल पर रखे गए वकीलों के लिए विहित पारिश्रमिक के मापमान कुल मिलाकर अपर्याप्त तो नहीं है और उसके पुनरीक्षण की मांग करेगा। तथापि यह विषय स्पष्टतः उच्च न्यायालय से सम्बन्धित है और हम इससे अधिक कुछ कहना नहीं चाहेंगे।

15. हम केवल इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि हमारे समक्ष दी गई दलील यह रही है कि विद्यमान नियम पूरी तरह से पुराने हो चुके हैं और परिस्थितियों की वास्तविकताओं को ध्यान में नहीं रखते। इस बात पर जोर दिया गया कि सेशन विचारणों में उपस्थित होने वाले पेनिल पर रखे गए वकीलों के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा यथाविहित फीस के वर्तमान मापमानों के अधीन मृत्यु से दण्डनीय आरोप पर सेशन विचारण का सामना करने वाले व्यक्तियों के लिए यह असंभव है कि वह सक्षम वृत्तिक सहायता प्राप्त कर सके। यह निश्चित है कि उच्च न्यायालय को वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पिटीशनर की ओर से उपस्थित होने वाले काउन्सेल को संदेय फीस के रूप में युक्तियुक्त रकम नियत करने की पूरी शक्ति है। हम यह निदेश देते हैं कि यदि इस प्रकार नियत की गई रकम इस न्यायालय द्वारा, इसके अन्तरिम आदेशों द्वारा, नियत की गई फीस के मापमान से निम्नतर हो तो उसके निबंधनों में पिटीशनर को संदत्त की गई रकम का आधिक्य वसूल नहीं किया जाएगा।

16. इन संप्रेक्षणों के साथ रिट पिटीशन असफल होता है और उसे खर्चे के आदेश के बिना खारिज किया जाता है।

रिट पिटीशन खारिज किया गया।

अ०/मू०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आजाद सिंह और अन्य

बनाम

बरकतुल्ला खां और अन्य

(Azad Singh and others
v.
Barkat Ullah Khan and others)

(26 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 (1951 का उ० प्र० अधिनियम सं० 1)—धारा 12—आनुवंशिक अभिधारी—1 मई, 1950 को कतिपय भूमि का ठेकेदार के कब्जे में होना—अन्य अभिधारियों से लगान संगृहीत करने जैसे किसी कर्त्तव्य के बिना उस भूमि पर उसके द्वारा खुदकाश्त का किया जाना—जब ठेका उस भूमि पर अनन्य रूप से खुदकाश्त करने की दृष्टि से सृष्ट किया जाता है, तो ठेकेदार आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत अर्जित कर लेता है—यदि उसे उक्त तारीख के बाद बेदखल किया गया हो, तो वह संबंधित भूमि का कब्जा पुनः प्राप्त कर लेता है।

उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था (अनुपूरक) अधिनियम, 1952 (1952 का उ० प्र० अधिनियम सं० 31)—धारा 3—"खेती के सम्बन्ध में कब्जा"—विधिपूर्ण भूमि-कब्जा—ऐसा कोई अतिचारी जो किसी भूमि में बलात् प्रवेश करता है, यह दावा नहीं कर सकता कि वह भूमि खेती करने के सम्बन्ध में (उसके) कब्जे में है—जहां कि ऐसे ठेकेदार ने 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 के अधीन सन् 1359 फसली तक आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत अर्जित कर ली है, वहां जमींदार को यह अधिकार नहीं होता कि वह ठेकेदार को बेकब्जा करके किसी ऐसे पट्टेदार को उसका कब्जा दे जिसका कब्जा ठेकेदार के विरुद्ध अविधिपूर्ण है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वादी-प्रत्यर्थी ठेकेदार थे और ठेका, भूमि पर खुदकाश्त करने के लिए किया गया था। वे इसी कारण से उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 12 के अधीन आनुवंशिक अभिधारी हो गए थे और वह भूमि 1 अप्रैल, 1950 को उनके कब्जे में थी। यह अभिकथन किया गया कि वादियों के आनुवंशिक अभिधारी होने के बाद वह भूमि पट्टे पर देने का जमींदारों को कोई भी अधिकार नहीं था, फिर भी 'प' और 'न' ने जमींदारों से यह भूमि पट्टे पर ले ली और 1-4-1950 के बाद उसका कब्जा प्राप्त कर लिया। यह अभिकथन किया गया है कि जिन लोगों ने वह भूमि जमींदार से पट्टे पर ली थी, उन्हें आनुवंशिक अभिधारियों के विरुद्ध कब्जे में बने रहने का कोई भी अधिकार नहीं था। इसी आधार पर वादियों ने उस भूमि का कब्जा प्राप्त करने की कोशिश की। जमींदार और दो पट्टेदारों ने प्रतिवादी के रूप में उस वाद का विरोध किया। पट्टेदारों की ओर से जो एकमात्र अभिवाक् पेश किया गया, वह यह है कि सन् 1359-फसली वाले वर्ष के दौरान उन पट्टेदारों के कब्जे में (वह भूमि) काश्तकार के रूप में थी और चूंकि वे ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो कि भूमिधर, सीरदार, अधिवासी या असामी हो गए थे, इसलिए वे उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था (अनुपूरक) अधिनियम, 1952 के अधीन अधिवासियों के सभी अधिकार प्राप्त करने के हकदार हैं। विचारण न्यायालय ने इस आधार पर वाद खारिज कर दिया कि वादी भूमि के ठेकेदार थे और उन्होंने 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 के अधीन आनुवंशिक अभिधारियों के अधिकार अर्जित कर लिए थे किन्तु वह भूमि 1350-फसली में पट्टेदारों के कब्जे में काश्तकार के रूप में थी और इसलिए उन्होंने अधिवासी के अधिकार अर्जित कर लिए हैं। ठेकेनामा के सम्बन्ध में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वह इस प्रश्न के सम्बन्ध में त्रुटिपूर्ण है कि वह ठेका अनन्य रूप से खुदकाश्त के लिए ही दिया गया था। दोनों वादियों ने अलग-अलग अपीलें कीं। दोनों अपीलें खारिज कर दी गई। मूल वादियों ने उस मामले में द्वितीय अपील की। दो अलए-अलग अपीलें की गईं। किन्तु उस समय जबकि वे अपीलें सुनवाई के लिए पेश की गईं, यह कथन किया गया कि दोनों वादियों ने उस विवाद के सम्बन्ध में परस्पर समझौता कर लिया है और यह कि उनके बारे में यह माना जाए कि वे एक ही वाद हैं और यदि अपील मंजूर की जाए, तो दोनों अपीलार्थियों को प्रत्यर्थियों के विरुद्ध संयुक्त रूप से कब्जा दिलवाया जाए। विद्वान न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के विनिश्चय को उलटते हुए एक ही निर्णय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा उन दोनों अपीलों का निपटारा यह अभिनिर्धारित करते हुए किया कि वादियों ने आनुवंशिक अभिधारियों की हैसियत अर्जित कर ली थी और वह भूमि 1-5-50 को उनके कब्जे में थी और इसी कारण से जमींदारों को ऐसा कोई हक प्राप्त नहीं था कि वे वादियों को बेकब्जा करें और उनके कब्जे के स्थान पर दोनों पट्टेदारों को कब्जा दें। इसके अलावा, यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि उन पट्टेदारों को ऐसे जमींदारों के अधीन कब्जा मिला था जिन्हें कब्जा अनुदत्त करने का कोई भी अधिकार नहीं था, इसलिए पट्टेदारों का वह कब्जा वादियों के विरुद्ध अविधिपूर्ण है और इसी कारण से वे अधिवासी अधिकार अर्जित नहीं कर सकते। तदनुसार, वाद की डिक्री कर दी गई और कब्जे की डिक्री वादियों के पक्ष में अनुदत्त कर दी गई। इसलिए विशेष इजाजत लेकर ये दोनों अपीलें उच्चतम न्यायालय में की गई हैं। अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—यह सुस्थिर है कि किसी ठेकेदार द्वारा आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत का दावा किए जाने के पूर्व, उसे न केवल ठेकेदार होना चाहिए, बल्कि ठेका, ठेकेदार द्वारा ठेका में सम्मिलित भूमि की खुदकाश्त के लिए अनुदत्त किया जाना चाहिए। जहां 1 मई, 1950 को कोई भूमि किसी व्यक्ति की, उसके ठेकेदार के रूप में खुदकाश्त भूमि हैं और वह ठेका ऐसे ठेकेदारों द्वारा वैयक्तिक रूप से उस भूमि में खेती करने की दृष्टि से दिया गया था, वहां किसी विधि, दस्तावेज या न्यायालय के आदेश में किसी बात के होते हुए भी उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह उसके आनुवंशिक अभिधारी के रूप में धारणा करने का और जबकि उसे उक्त तारीख के बाद उस भूमि से बेदखल कर दिया गया है, तो उसका कब्जा पुनः प्राप्त करने का, हकदार है। और वह अभिधारी आनुवंशिक दर से लगान देने के दायित्वाधीन है किसी सम्पदा के ठेकेदार का, किसी सम्पदा के निहित होने की तारीख से ऐसी सम्पदा में कोई भूमि धारण करने या के रूप में कब्जा करने का अधिकार नहीं रहता। किन्तु यह दो अपवादों के अधीन है; इनमें से एक ऐसा अपवाद है जो कि धारा 12 में अधिकथित किया गया था जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि यदि 1 मई, 1950 को कोई व्यक्ति उस भूमि पर उसके ठेकेदार के रूप में खुदकाश्त कर रहा था और यदि वह ठेका ऐसे ठेकेदार द्वारा स्वयं ही भूमि की खेती करने की दृष्टि से किया गया था, तब अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (1) में आए हुए सर्वोपरि खण्ड के कारण उस ठेकेदार के बारे में यह समझा जाएगा कि वह भूमि का ऐसा आनुवंशिक अभिधारी है जो कि उस रूप में भूमि धारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने का हकदार है और आनुवंशिक दर से लगान देने के दायित्वाधीन है। यदि ऐसे आनुवंशिक अभिधारी का कब्जा नहीं रह गया है, तो उसका कब्जा पुनः प्राप्त करने का हकदार है। इसके अलावा, यदि उस भूमि पर मात्र ऐसे ठेकेदार के रूप में वह ठेकेदार खुदकाश्त कर रहा था, जो कि अन्य अभिधारियों से ही लगान संगृहीत करने के लिए नियुक्त किया गया हो और जिसे प्रसंगवश पट्टेदार की सीर या खुदकाश्त भूमि पर खेती करने की इजाजत दी गई हो, तो वह अधिनियम की धारा 13(2) के अनुसार मात्र असामी होगा। (पैरा 8)

यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई बात मौजूद नहीं है कि वह ठेका जमींदारों के लिये ठेकेदारों द्वारा किए गए अन्य किन्हीं कर्त्तव्यों के लिए प्रतिफल के रूप में था। अतः यह निष्कर्ष निकाले बिना नहीं रहा जा सकता है कि वह ठेका ठेकेदारों द्वारा ठेके में अन्तर्ग्रस्त भूमि पर अनन्य रूप से खुदकाश्त करने के लिए सृष्ट किया गया था। (पैरा 9)

यह बात स्पष्ट रूप से साबित हो गई है कि वह ठेका ठेकेदारों द्वारा उस भूमि पर खुदकाश्त करने के लिए अनन्य रूप से सृष्ट किया गया था, इस न्यायालय के विनिश्चयाधार पर यह निष्कर्ष निकलेगा कि ठेकेदारों ने 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 के अधीन आनुवंशिक अभिधारियों की हैसियत अर्जित कर ली थी। (पैरा 10)

जो एकमात्र प्रश्न विचार के लिए रह जाता है, वह यह है कि क्या मूल पट्टेदारों ने 1952 वाले अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिवासी अधिकार अर्जित कर लिया था। धारा 3 में यह उपबंध किया गया है कि ऐसा कोई व्यक्ति जो कि 1950 वाले अधिनियम के अधीन भूमिधर, सीरदार, अधिवासी या असामी नहीं हो गया है, यदि सन् 1359-फसली के दौरान कोई भी भूमि उसके खेती करने के सम्बन्ध में कब्जे में है और यदि ऐसा व्यक्ति भूमिधर या सीरदार नहीं है, तो ऐसा व्यक्ति जिसके कब्जे में (वह भूमि) खेती करने के लिए है, अधिवासी की हैसियत अर्जित कर लेगा। यदि ठेकेदारों ने आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत अर्जित कर ली थी, क्योंकि ठेका 1359-फसली तक था और उस फसली को सम्मिलित करने वाली अवधि तक था, तो जमींदारों को ठेकेदारों के कब्जे से उन्हें वंचित करने के बाद पट्टेदारों को कब्जा दिलवाने का कोई भी अधिकार नहीं था और इसी कारण से पट्टेदारों का कब्जा ठेकेदारों के विरुद्ध विधिपूर्ण नहीं था। अतः पट्टेदारों की बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि नियत दिन वह भूमि उनके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खेती करने के सम्बन्ध में कब्जे में थी। अतः 1952 वाले अधिनियम की धारा 3 का फायदा प्राप्त करने की दृष्टि से, ऐसे व्यक्ति को जो कि यह दावा कर रहा हो कि भूमि उसके खेती करने के सम्बन्ध में कब्जे में है, यह अवश्य ही दर्शित करना चाहिए कि उसका कब्जा विधिपूर्ण है। उच्च न्यायालय ने जो निष्कर्ष निकाला है, उससे निश्चित रूप से यह अर्थ निकलता है कि नियत दिन अर्थात 1 मई, 1950 को विवाद्य भूखण्ड ठकेदारों के खेती करने विषयक कब्जे में थे और एतद्द्वारा वे आनुवंशिक अभिधारियों के अधिकार अर्जित करने के हकदार हो गए थे। (पैरा 11)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1981]	[1981] 1 उम० नि० प० 479=[1980]2 एस० सी० आर 1083: रघुनन्दन सिंह और अन्य बनाम बृजमोहन सिंह और अन्य (Raghunandan Singh and others v. Brij Mohan Singh and others);	8
[1980]	[1980]3 उम० नि० प० 1327= [1980]1 एस० सी० आर० 977 : बाबू नुरुल हसन खां बनाम राम प्रसाद सिंह और अन्य (Babu Noorul Hasan Khan v. Ram Parsad Singh and others).	8

अनुमोदित निर्णय

[1968]	[1968] 1 एस० सी० आर० 617 : सोनावती और अन्य बनाम श्रीराम और एक अन्य (Sonawati and Others v. Sri Ram and Another).	11

सिविल अपीली अधिकारिता : 1969 की सिविल अपील सं० 282-283.

1959 की द्वितीय सिविल अपील सं० 11 और 1958 की सं० 978 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 15 अक्तूबर, 1968 वाले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपीलें।

अपीलार्थियों की ओर से — श्री एस० रंगराजन, श्रीमती एस० बग्गा और श्रीमती उमा जैन

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री के० एल० हाथी, पी० सी० कपूर, आर० एस० मेहता, ओ० पी० वर्मा और एस० एन० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया।

न्यायाधिपति देसाई—

विशेष इजाजत लेकर ये दोनों अपीलें भूमि के कब्जे के लिए बरकतुल्ला और शफीउल्ला द्वारा फाइल किए गए उन दो वादों के परिणामस्वरूप जो कि वादपत्र के पाद में विशिष्टत: उपवर्णित हैं, जमींदार और प्रेम कुमारी तथा नूर मोहम्मद के विरुद्ध की गई हैं। यदि वादियों के मामले के बारे में संक्षेप में बताया जाए, तो वह यह था कि वे ठेकेदार थे और ठेका, भूमि पर खुदकाश्त करने के लिए किया गया था और इसी कारण से उत्तर प्रदेश जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 (संक्षेप में जिसे 1950 वाला अधिनियम कहा गया है) की धारा 12 के अधीन वे आनुवंशिक अभिधारी हो गए थे और वह भूमि 1 अप्रैल, 1950 को उनके कब्जे में थी। यह अभिकथन किया गया कि वादियों के आनुवंशिक अभिधारी होने के बाद वह भूमि पट्टे पर देने का जमींदारों को कोई भी अधिकार नहीं था, फिर भी प्रेमकुमारी और नूर मोहम्मद ने जमींदारों से वह भूमि पट्टे पर ले ली और 1-4-1950 के बाद उसका कब्जा प्राप्त कर लिया। यह अभिकथन किया गया है कि जिन लोगों ने वह भूमि जमींदार से पट्टे पर ली थी, उन्हें आनुवंशिक अभिधारियों के विरुद्ध कब्जे में बने रहने का कोई भी अधिकार नहीं था। इस संक्षिप्त आधार पर ही वादियों ने उस भूमि का कब्जा प्राप्त करने की कोशिश की।

2. जमींदार और दो पट्टेदार प्रतिवादी थे, जिन्होंने उस वाद का विरोध किया। वादपत्र के पैरा 4 में जो प्रकथन किए गए थे, उनका प्रतिवाद विनिर्दिष्ट रूप से नहीं किया गया और केवल यह कथन किया गया कि उनके सम्बन्ध में अतिरिक्त अभिवाक् पेश किए जाएं। पट्टेदारों की ओर से जो एकमात्र अभिवाक् पेश किया गया और जिसकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए, वह यह है कि सन् 1359-फसली वाले वर्ष के दौरान उन पट्टेदारों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के कब्जे में (वह भूमि काश्तकार के रूप में थी और चूंकि वे ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो कि भूमिधर, सीरदार, अधिवासी या असामी हो गए थे, इसलिए वे उत्तर प्रदेश भूमि व्यवस्था (अनुपूरक) अधिनियम, 1952 (जिसे संक्षेप में 1952 वाला अधिनियम कहा गया है) के अधीन अधिवासियों के सभी अधिकार प्राप्त करने के हक़दार हैं।

3. विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए वाद खारिज कर दिया कि वादी भूमि के ठेकेदार थे और उन्होंने 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 के अधीन आनुवंशिक अभिधारियों के अधिकार अर्जित कर लिए थे किन्तु वह भूमि 359-फसली में पट्टेदारों के कब्जे में काश्तकार के रूप में थी और इसलिए उन्होंने अधिवासी के अधिकार अर्जित कर लिए हैं। ठेकानामा के सम्बन्ध में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वह इस प्रश्न के सम्बन्ध में त्रुटिपूर्ण है कि वह ठेका अनन्य रूप से खुदकाश्त के लिए ही दिया गया था। दोनों वादियों ने अलग-अलग अपीलें कीं और गोंडा के प्रथम अपर सिविल और सेशन न्यायाधीश ने तारीख 1 सितम्बर, 1958 वाले निर्णय के द्वारा दोनों अपीलों का निपटारा किया। मोटे तौर से विद्वान न्यायाधीश विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत हुआ और वे दोनों अपीलें खारिज कर दीं। मूल वादियों ने उस मामले में द्वितीय अपील की। दो अलग-अलग अपीलें की गईं। किन्तु उस समय जब कि वे अपीलें सुनवाई के लिए पेश की गईं, यह कथन किया गया कि दोनों वादियों ने उस विवाद के सम्बन्ध में परस्पर समझौता कर लिया है और यह कि उनके बारे में यह माना जाए कि वे एक ही वाद हैं और यदि अपील मंजूर की जाए, तो दोनों अपीलार्थियों को प्रत्यर्थियों के विरुद्ध संयुक्त रूप से कब्जा दिलवाया जाए।

4. विद्वान न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के विनिश्चय को उलटते हुए एक ही निर्णय द्वारा उन दोनों अपीलों का निपटारा यह अभिनिर्धारित करते हुए किया कि वादियों ने आनुवंशिक अभिधारियों की हैसियत अर्जित कर ली थी और वह भूमि 1-5-50 को उनके कब्जे में थी और इसी कारण से जमींदारों को ऐसा कोई हक प्राप्त नहीं था कि वे वादियों को बेकब्जा करें और उनके कब्जे के स्थान पर दोनों पट्टेदारों को कब्जा दें। इसके अलावा, यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि उन पट्टेदारों को ऐसे जमींदारों के अधीन कब्जा मिला था जिन्हें कब्जा अनुदत्त करने का कोई भी अधिकार नहीं था, इसलिए पट्टेदारों का वह कब्जा वादियों के विरुद्ध अविधिपूर्ण है और इसी कारण से वे अधिवासी अधिकार अर्जित नहीं कर सकते। तदनुसार, वाद की डिक्री कर दी गई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और कब्जे की डिक्री वादियों के पक्ष में अनुदत्त कर दी गई। इसलिए विशेष इजाजत लेकर ये दोनों अपीलें की गई हैं।

5. दोनों ही मूल पट्टेदारों की मृत्यु हो गई है और उनके वारिस तथा विधिक प्रतिनिधि इन अपीलों की पैरवी कर रहे हैं।

6. अपीलार्थियों के विद्वान् काउन्सेल श्री रंगराजन ने इस बात पर जोर दिया कि विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष को देखते हुए कि उन भूमियों की जो कि ठेके में समाविष्ट थीं, खुदकाश्त के लिए ठेकेदारों को कोई भी विनिर्दिष्ट प्राधिकार नहीं दिया गया था, इसलिए ठेकेदार-वादियों ने 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 के अधीन आनुवंशिक अभिधारियों के अधिकार अर्जित नहीं किए। यही वह मुख्य दलील थी जिस पर इन दोनों अपीलों में जोर दिया गया था।

7. 1950 वाला अधिनियम भूमि सुधार का ऐसा अध्युपाय था जो कि जमींदारी-पद्धति समाप्त करने की दृष्टि से और बिचौलियों के अधिकारों को अर्जित करने के लिए अधिनियमित किया गया था। धारा 4 में यह उपबन्ध किया गया था कि सम्पदाएं उस तारीख से, जो कि अधिसूचना में राज्य सरकार विनिर्दिष्ट करे, सभी विल्लंगमों से मुक्त राज्य में निहित होंगी। अन्य बातों के साथ-साथ धारा 6 में यह उपबन्ध किया गया था कि राज्य में किसी सम्पदा के निहित होने के क्या परिणाम होंगे। उनमें से एक ऐसा ही परिणाम यह था कि सभी बिचौलियों के सभी अधिकार, हक और हित समाप्त हो जाएंगे और राज्य में निहित हो जाएंगे। धारा 12 में यह उपबन्ध किया गया था कि ठेकेदार कतिपय परिस्थितियों में आनुवंशिक अभिधारियों के अधिकार अर्जित कर लेंगे। वह इस प्रकार से है—

> "(1) यदि कोई भूमि 1 मई, 1950 को किसी व्यक्ति की निजी जोत में ठेकेदार की हैसियत से रही हो और ठेका इस ध्येय से दिया गया हो कि वह व्यक्ति उस भूमि में स्वयं खेती करे तो किसी विधि, लेख्य या न्यायालय की आज्ञा में किसी बात के रहते हुए भी, उसके विषय में यह समझा जाएगा कि उस भूमि का ऐसा मौरूसी काश्तकार है जिसे उस भूमि को अपने कब्जे में मौरूसी काश्तकार की हैसियत से रखने और यदि उक्त दिनांक के बाद वह बेदखल हो गया हो, तो उसको उस हैसियत से फिर से कब्जा पाने का अधिकार है और वह उस भूमि के लिए मौरूसी दर से लगान का देनदार होगा। (2) उक्त भूमि का ठेके के प्रारम्भ से ठेकेदार की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निजी जोत में रहना, इंडियन एविडेंस ऐक्ट, 1872 की धाराओं 91 और 92 में किसी बात के रहते हुए भी इस बात के प्रमाण में ग्राह्य होगा कि ठेका उपधारा (1) में अभिदिष्ट प्रकार का था।"

1952 वाले अधिनियम में, 1950 वाले अधिनियम के सम्बन्ध में कतिपय अनुपूरक उपबन्ध किया गया था। 1952 वाले अधिनियम की धारा 3 में यह उपबन्ध किया गया था कि ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जिसके कब्जे में वर्ष 1359-फसली के दौरान वह भूमि काश्तकार से रूप में थीं, किन्तु जो ऐसा व्यक्ति नहीं है जो 1950 वाले अधिनियम की धारा 4 के अधीन नियमित होने के परिणामस्वरूप, उक्त अधिनियम की धारा 18 से लेकर 21 के अधीन भूमिधर, सीरदार, अधिवासी या असामी हो गया है, नियत तारीख से (ख) उस दशा में यदि ऐसा व्यक्ति भूमिधर, सीरदार नहीं है, अधिवासी होगा और उसे एतद्द्वारा अधिवासी घोषित किया जाता है और वह असामी या अधिवासी को प्रदत्त सभी अधिकार प्राप्त करने का हकदार होगा या अधिरोपित सभी दायित्वों के अध्यधीन होगा। उस धारा का स्पष्टीकरण है जो तात्विक नहीं है। मूल पट्टेदारों का दावा यह था कि उन्होंने 1952 वाले अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिवासी की हैसियत अर्जित कर ली है।

8. यह विवाद्य नहीं है कि मूल वादी ठेकेदार थे। किन्तु यह दलील दी गई कि जब तक कि ठेके में समाविष्ट भूमि की खुदकाश्त के लिए अनन्य रूप से न रहा हो, तब तक ठेकेदार आनुवंशिक अभिधारियों की हैसियत अर्जित नहीं करेगा। धारा 12 में, जो कि इसके पहले प्रोद्धृत की गई हैं, विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबन्ध किया गया है कि जहां 1 मई, 1950 को कोई भूमि किसी व्यक्ति की, उसके ठेकेदार के रूप में खुदकाश्त भूमि है और वह ठेका ऐसे ठेकेदारों द्वारा वैयक्तिक रूप से उस भूमि में खेती करने की दृष्टि से दिया गया था, वहां किसी विधि, दस्तावेज या न्यायालय के आदेश में किसी बात के होते हुए भी उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह उसके आनुवंशिक अभिधारी के रूप में धारण करने का और जबकि उसे उक्त तारीख के बाद उस भूमि से बेदखल कर दिया गया है, तो उसका कब्जा पुनः प्राप्त करने का, हकदार है और वह अभिधारी आनुवंशिक दर से लगान देने के दायित्वाधीन है। इस धारा का निर्वचन **बाबू नुरुल हसन खां बनाम राम प्रसाद सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में किया गया था जिसमें यह

[1] [1980] 3 उम० नि० प० 1327=[1980] 1 एस० सी० आर० 977.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी सम्पदा के ठेकेदार का, किसी सम्पदा के निहित होने की तारीख से ऐसी सम्पदा में कोई भूमि धारण करने या के रूप में कब्जा करने का अधिकार नहीं रहता। किन्तु यह दो अपवादों के अधीन है : इनमें से एक ऐसा अपवाद है जो कि धारा 12 में अधिकथित किया गया था जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि यदि 1 मई, 1950 को कोई व्यक्ति उस भूमि पर उसके ठेकेदार के रूप में खुदकाश्त कर रहा था और यदि वह ठेका ऐसे ठेकेदार द्वारा स्वयं ही भूमि की खेती करने की दृष्टि से किया गया था, तब अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (1) में आए हुए सर्वोपरि खण्ड के कारण उस ठेकेदार के बारे में यह समझा जाएगा कि वह भूमि का ऐसा आनुवंशिक अभिधारी है जो कि उस रूप में भूमि धारण करने का हकदार है और आनुवंशिक दर से लगान देने के दायित्वाधीन है। यदि ऐसे आनुवंशिक अभिधारी का कब्जा नहीं रह गया है तो वह उसका कब्जा पुनः प्राप्त करने का हकदार है। इसके अलावा, यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि यदि उस भूमि पर मात्र ऐसे ठेकेदार के रूप में वह ठेकेदार खुदकाश्त कर रहा था, जो कि अन्य अभिधारियों से ही लगान संगृहीत करने के लिए नियुक्त किया गया हो और जिसे प्रसंगवश पट्टेदार की सीर या खुदकाश्त भूमि पर खेती करने की इजाजत दी गई हो तो वह अधिनियम की धारा 13(2) के अनुसार मात्र असामी होगा। धारा 12 का जो यह निर्वचन किया गया था, उसकी पुनः अभिपुष्टि **रघुनन्दन सिंह और** बनाम **बृज मोहन सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में की गई थी। इस प्रकार यह सुस्थिर प्रतीत होगा कि किसी ठेकेदार द्वारा आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत का दावा दिए जाने के पूर्व, उसे न केवल ठेकेदार होना चाहिए बल्कि ठेका ठेकेदार द्वारा ठेका में सम्मिलित भूमि की खुदकाश्त के लिए अनुदत्त किया जाना चाहिए।

9. इसलिए प्रश्न यह कि क्या इस मामले में मूल वादी के ठेके में सम्मिलित भूमि के सम्बन्ध में यह उपबंध किया गया था कि ठेकेदार द्वारा उस भूमि पर खुदकाश्त की जाएगी, या यह कि क्या खुदकाश्त अन्य अधिकारों और बाध्यताओं जैसे कि अन्य अभिधारियों से लगान के संग्रहण का आनुषंगिक था? इसके परिणामस्वरूप ठेका सृष्ट करने वाली मूल दस्तावेज की परीक्षा की आवश्यकता होगी। उसे हमारे समक्ष पढ़कर नहीं सुनाया गया किन्तु श्री रंगराजन ने विद्वान विचारण न्यायाधीश के निर्णय में निम्नलिखित मत

---

[1] [1981] 1 उम० नि० प० 479=[1980] 2 एस० सी० आर० 1083.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का अवलम्ब लिया—

"मैंने ठेकानामा का संदर्भ (जैसा कि मूल में दिया हुआ है) (कदाचित वह शब्द 'संविदा' है) पढ़ा है। ठेका में समाविष्ट भूमि पर ठेकेदारों द्वारा खुदकाश्त करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से या विवक्षित रूप से कोई भी प्राधिकार नहीं दिया गया है; जब तक कि ऐसा उपबन्ध न हो, तब तक मुझे इस बात का भय है कि आनुवंशिक अभिधृति संबंधी कोई भी अधिकार वादियों द्वारा अर्जित नहीं किए जा सकते थे।"

इस बात पर जोर दिया गया कि विद्वान न्यायाधीश ने (विनिर्दिष्ट रूप से) यह निष्कर्ष निकाला था कि वह ठेका अनन्य रूप से और विनिर्दिष्ट रूप से ठेका में अन्तर्विष्ट भूमियों की खुदकाश्त के लिए सृष्ट नहीं किया गया था। विद्वान अपील न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि 11 वर्षों की कालावधि तक वह भूमि ठेकेदारों के वास्तविक कब्जे और खुदकाश्त में रही है। इसके अलावा, उसका निष्कर्ष यह था कि उस ठेके के बारे में यह समझा जाएगा कि वह खुदकाश्त के लिए अनुदत्त किया गया है और यदि वादियों (ठेकेदारों) के बारे में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि 1 मई, 1950 को ठेकेदारों के रूप में वादगत भूमि पर वे खुदकाश्त कर रहे थे, तो वे 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 का फायदा प्राप्त करने के हकदार होंगे। उसके बाद विद्वान अपील न्यायाधीश का निष्कर्ष यह था कि समाधानकारी रूप से यह साबित हो गया है कि 1 मई, 1950 को वादियों-ठेकेदारों के कब्जे में (वह भूमि) थी। तथापि, विद्वान न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष के आधार पर वादियों को अनुतोष देने से इनकार किया कि पट्टेदारों ने 1952 वाले अधिनियम के अधीन अधिवासी अधिकार अर्जित कर लिए हैं। प्रथम अपील न्यायालय के निष्कर्षों से यह बात खुलकर स्पष्ट सामने आती है जो कि अन्तिम तथ्य अन्वेषक न्यायालय है, ठेके में अन्तर्विष्ट भूमि पर खुदकाश्त करने के लिए वह ठेका था और ठेकेदार 11 वर्ष तक उस भूमि पर खुदकाश्त करते आ रहे थे। उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील में इस बात की ओर ध्यान दिया कि ठेकेदार उस भूमि पर खुदकाश्त कर रहे थे। हमारे समक्ष यह दर्शित करने के लिए कोई भी बात नहीं बताई कि ठेकेदारों के पास अन्य अभिधारियों से लगान संगृहीत करने जैसा कोई भी अन्य कर्त्तव्य था। यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई बात मौजूद नहीं है कि वह ठेका जमींदारों के लिए ठेकेदारों द्वारा किए गए अन्य किन्हीं कर्त्तव्यों के लिए प्रतिफल के रूप में था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतः यह निष्कर्ष निकाले बिना नहीं रहा जा सकता कि वह ठेका ठेकेदारों द्वारा ठेके में अन्तर्ग्रस्त भूमि पर अनन्य रूप से खुदकाश्त करने के लिए सृष्ट किया गया था।

10. यह बात स्पष्ट रूप से साबित हो गई है कि वह ठेका ठेकेदारों द्वारा उस भूमि पर खुदकाश्त करने के लिए अनन्य रूप से सृष्ट किया गया था, इस न्यायालय के विनिश्चयाधार पर यह निष्कर्ष निकलेगा कि ठेकेदारों ने 1950 वाले अधिनियम की धारा 12 के अधीन आनुवंशिक अभिधारियों की हैसियत अर्जित कर ली थी।

11. तो फिर जो एकमात्र प्रश्न विचार के लिए रह जाता है, वह यह है कि क्या मूल पट्टेदारों ने 1952 वाले अधिनियम की धारा 3 के अधीन अधिवासी अधिकार अर्जित कर लिया था। धारा 3 में जो कि इसके पहले प्रोद्धृत कर दी गई है, यह उपबन्ध किया गया है कि ऐसा कोई व्यक्ति जो कि 1950 वाले अधिनियम के अधीन भूमिधर, सीरदार, अधिवासी या असामी नहीं हो गया है, यदि सन् 1359-फसली के दौरान कोई भूमि उसके खेती करने के संबंध में कब्जे में है और यदि ऐसा व्यक्ति भूमिधर या सीरदार नहीं है, तो ऐसा व्यक्ति जिसके कब्जे में (वह भूमि) खेती करने के लिए है, अधिवासी की हैसियत अर्जित कर लेगा। उसके बाद, उच्च न्यायालय ने इस बात की परीक्षा की कि धारा 3 में आई हुई 'खेती करने के सम्बन्ध में कब्जा' अभिव्यक्ति का क्या महत्व है। उच्च न्यायालय ने ठीक तौर से ही यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि ठेकेदारों ने आनुवंशिक अभिधारी की हैसियत अर्जित कर ली थी क्योंकि ठेका 1359-फसली तक था और उस फसली को सम्मिलित करने वाली अवधि तक था, तो जमींदारों को ठेकेदारों के कब्जे से उन्हें वंचित करने के बाद पट्टेदारों को कब्जा दिलवाने का कोई भी अधिकार नहीं था और इसी कारण से पट्टेदारों का कब्जा ठेकेदारों के विरुद्ध विधिपूर्ण नहीं था। उच्च न्यायालय ने ठीक तौर से ही यह अभिनिर्धारित किया कि पट्टेदारों की बाबत यह नहीं कहा जा सकता कि नियत दिन वह भूमि उनके खेती करने के संबंध में कब्जे में थी। यह निष्कर्ष निकालते समय उच्च न्यायालय ने **सोनावती और अन्य बनाम श्रीराम और अन्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलम्ब लिया। इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया :—

"'खेती करने के संबंध में कब्जा' अभिव्यक्ति की परिभाषा

---

[1] [1968] 1 एस० सी० आर० 617.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिनियम में नहीं दी गई है किन्तु स्पष्टीकरण से स्पष्टतः यह विवक्षित है कि दावेदार का उस भूमि पर जो कब्जा हो, वह उसका विधिपूर्ण अधिकार होना चाहिए और स्पष्टीकरण में विनिर्दिष्ट वर्गों से संबंधित नहीं होना चाहिए। अधिनियम के प्रयोजनार्थ मान्य होने के लिए, 'खेती करने के संबंध में कब्जा' विधिपूर्ण होना चाहिए और उसे 1359 सम्पूर्ण फसली के लिए होना चाहिए। ऐसे अतिचारी के बारे में जिसे बलात् या चोरी-छिपे उस भूमि में मात्र प्रवेश करके कब्जा न होने का कोई भी अधिकार नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता है कि 1952 वाले उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 3 के अर्थान्तर्गत (वह भूमि) उस व्यक्ति के खेती करने के संबंध में कब्जे में है। हमारा मत यह है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय का रामकृष्ण बनाम भगवान बख्श सिंह [(1961) ए० एल० जे० 301] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित करना ठीक था कि ऐसे व्यक्ति के बारे में जो कि किसी भूमि पर बलात् प्रवेश करता है और उस पर अधिभोग जारी रखने में सफल रहता है, यह नहीं कहा जा सकता है कि वह भूमि खेती करने के संबंध में उसके कब्जें में इस प्रकार है जिससे कि उसमें असामी या अधिवासी के अधिकार विनिहित हो जाएं और हम नानूमल बनाम मलू और और अन्य, (आई० एल० आर० 1963 इलाहाबाद 751) वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के बाद वाले इस विनिश्चय से सहमत होने में असमर्थ हैं, कि भूमि पर किसी अधिकार के बिना गलत ढंग से कब्जा करने वाले व्यक्ति द्वारा किया गया अधिभोग 1952 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं० 31 की धारा 3 के अर्थान्तर्गत 'खेती करने के संबंध में कब्जा' है।"

अतः 1952 वाले अधिनियम की धारा 3 का फायदा प्राप्त करने की दृष्टि से, ऐसे व्यक्ति को जो कि यह दावा कर रहा हो कि कोई भूमि उसके खेती करने के संबंध में कब्जे में है, यह अवश्य ही दर्शित करना चाहिए कि उसका कब्जा विधिपूर्ण है। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय के कतिपय निष्कर्षों से सहमत होते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि 1359-फसली में पट्टेदारों का जो कब्जा था, वह विधिपूर्ण नहीं था और न्यायालय ने जो निष्कर्ष निकाला है, उससे निश्चित रूप से यह अर्थ निकलता है कि नियत दिन अर्थात् 1 मई, 1950 को विवाद्य भूखण्ड ठेकेदारों के खेती करने के संबंध में कब्जे में थे और एतद्द्वारा वे आनुवंशिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिधारियों के अधिकार अर्जित करने के हकदार हो गए थे। उच्च न्यायालय ने जो निष्कर्ष निकाला है, उससे हम सहमत हैं।

12. अतः आवश्यक परिणामस्वरूप यह अर्थ निकलता है कि पट्टेदारों ने अधिवासी का अधिकार अर्जित नहीं किया था और आनुवंशिक अभिधारी पट्टा प्राप्त करने संबंधी डिक्री प्राप्त करने का हकदार होंगे। तदनुसार अपीलें असफल होती हैं और उन्हें अवश्य ही खारिज करना होगा। इस प्रकार ये अपीलें खर्चे सहित खारिज की जाती हैं।

अपीलें खारिज की गईं।

श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ए० जनार्धन

बनाम

भारत संघ और अन्य

(A. Janardhana

v.

Union of India and Others)

(26 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और वी० बालकृष्ण इराडि)

मिलिटरी इंजीनियर सर्विस क्लास 1 [रिक्रूटमेंट, प्रमोशन एण्ड सोनियोरिटी] रूल्स, 1949 के परिशिष्ट 5 का पैरा 3 एवं नियम 3 और 4 [सपठित मिलिटरी इंजीनियर सर्विस क्लास 1 रिक्रूटमेंट रूल्स, 1953 के परिशिष्ट 5 का पैरा 3 तथा मिलिटरी इंजीनियर सर्विस क्लास 1 रूल्स, 1961 और 1962 के परिशिष्ट 4 का पैरा 3]—ज्येष्ठता का अवधारण—ज्येष्ठता सूची को चुनौती दिया जाना—संघ लोक सेवा आयोग द्वारा साक्षात्कार किए जाने के पश्चात् सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त व्यक्तियों की और विभागीय प्रोन्नति के आधार पर नियुक्त व्यक्तियों की स्थायी पदों पर पुष्टि करने में ज्येष्ठता का प्रश्न—कोटा नियम में एक बार छूट द देने पर स्थायीकरण के लिए अनुक्रम समाप्त हो जाता है तथा सतत् रूप से पद धारण करना पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए एकमात्र नियम है। प्रत्येक वर्ग के कोटे के अनुसार नियुक्तियां करना और स्थायी पदों पर उनकी पुष्टि करना वैध है।

अपीलार्थी ने सन् 1953 में सैनिक इंजीनियर सेवा में सुपरवाइजर के रूप में प्रवेश किया। उसकी सन् 1962 में सहायक कार्यपालिक इंजीनियर के रूप में प्रोन्नति हुई। सन् 1963 में तैयार की गई सहायक कार्यपालिक इंजीनियरों की ज्येष्ठता सूची में उसको क्रम सं० 37 पर दर्शाया गया था। पिटीशन में आक्षेपित तारीख 4 जून, 1974 की पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपीलार्थी को किसी भी स्थान पर नहीं दर्शाया गया था क्योंकि कोटा नियम के अनुसार जिसके आधार पर 1974 को आक्षेपित पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची तैयार की गई थी अपीलार्थी अधिशिष्ट था और वह ज्येष्ठता सूची में स्थान नहीं पा सकता था। मध्यक्षेपी और एक अन्य व्यक्ति क्रमशः सन् 1958 और वर्ष 1959 में सहायक कार्यपालिक इंजीनियर के पद पर प्रोन्नत होने वाले दो व्यक्तियों ने "एम० ई० एस०" में कई सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की नियुक्ति को इस आधार पर चुनौती देते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल किया था कि उनकी नियुक्ति विवादास्पद और भर्ती नियमावली के अतिक्रमण में थी तथा वे वैध रूप से नियुक्त नहीं किए गए थे और इसलिए वे सेवा के सदस्य नहीं बन सकते थे। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रिट पिटीशन खारिज कर दिया गया था तथा मामला उच्चतम न्यायालय में अपील में लाया गया था। उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय का भारत संघ ने यह निर्वचन किया था कि सीधी भर्ती, जो प्रतियोगी परीक्षा द्वारा नहीं किन्तु साक्षात्कार और मौखिक परीक्षा द्वारा की गई थी विधिमान्य थी और ऐसी नियुक्तियां नीयमावली के अनुसार होने से उक्त सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों का स्थायीकरण स्थायी रिक्तियों में सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के कोटे में था और इसलिए विधिमान्य था। भारत संघ ने विनिश्चय को इस अर्थ में समझा था कि वर्ष 1951 से "ए० ई० ई०" काडर में भर्ती के लिए और एम० ई० एस० वर्ग 1 में भर्ती कोटा 9 सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और एक प्रोन्नित वाले व्यक्ति (9 : 1) का कोटा था तथा कोटा स्थायीकरण के लिए व्यक्तियों की सूची के अनुसार ही होना चाहिए तथा उसने सन् 1974 में ज्येष्ठता सूची पुनः तैयार की थी तथा अपीलार्थी और इसके समान स्थिति वाले कई व्यक्तियों को किसी भी स्थान पर नहीं दर्शाया था। अपीलार्थी ने अपने रिट पिटीशन में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयाधार पर आधारित विभिन्न आधारों पर जून, 1974 में पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची तैयार करने के लिए अपनाए गए आधार को चुनौती दी है। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—1949 की नियमावली का नियम 3 केवल दो स्रोतों से अर्थात् प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा और प्रोन्नति द्वारा भर्ती अनुज्ञात करता है। नियम 4 सरकार को कोई विशेष रिक्ति या ऐसी रिक्तियां जो किसी विशेष कालावधि के दौरान भरी जाने के लिए अपेक्षित हो, भरने के लिए सरकार को अनुज्ञात करता है। नियम 4 सरकार को किन्हीं विशेष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रिक्तियों को भरने के लिए प्रयोग की जाने वाली कोई पद्धति पद्धतियां और प्रत्येक पद्धति द्वारा भर्ती किए जाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या तय करने के लिए भी अनुज्ञात करता है। नियम 3 भर्ती के स्रोतों अर्थात् सीधी भर्ती और प्रोन्नति द्वारा भर्ती के लिए उपबन्ध करता है। नियम 4 सरकार को उसके परन्तुक के अधीन किसी भी सेवा से रिक्तियां भरने के लिए विवेकाधिकार देता है। नियम 4 कोटा विहित करता है। नियम 24 जो वर्ष 1967 में पुरःस्थापित किया गया था, लिखित में लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों के आधार पर केन्द्रीय सरकार को संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श के पश्चात् व्यक्तियों/पदों के वर्ग या प्रवर्ग के सम्बन्ध में सब नियमों में अथवा किन्हीं नियमों में शिथिलता बरतने के लिए शक्ति प्रदत्त करता है। 1949 के नियम वर्ष 1969 तक गैर-कानूनी स्वरूप के थे तथा 1949 के नियमों छूट देने की शक्ति वर्ष 1969 तक थी तथा वर्ष 1961, 1962 और 1963 के दौरान छूट देने की शक्ति का प्रयोग किया गया था क्योंकि इस कालावधि के दौरान आपात स्थिति थी। सरकार को बहुत से इंजीनियरों की आवश्यकता थी इसलिए उसे नियमों में छूट देकर नियमों द्वारा विहित पद्धति का प्रयोग न करके भर्ती करनी पड़ी थी तथा इसी मत के अनुसार बहुत से व्यक्तियों की विभागीय प्रोन्नति की गई थी जो कोटा नियम से छूट देने की कोटि में आएगा। सरकार को 1949 के नियमों में तब तक छूट देने की शक्ति थी जब तक कि उन्हें वर्ष 1969 में कानूनी स्वरूप प्राप्त नहीं हो गया था तथा सरकार ने नियमों में छूट देने की शक्ति का प्रयोग करने के पश्चात् दोनों ही स्रोतों से भर्ती की थी। (पैरा 19)

यदि नियम 3, उन स्रोतों को, जिनसे भर्ती की जा सकती है, उपदर्शित करते हुए भर्ती की पद्धतियों के लिए उपबन्ध करता है, तथा यदि नियम 3 सरकार को किसी भी स्रोत से भर्ती करने के लिए विवेकाधिकार प्रदत्त करता है तो नियम 4 एक सीमा से प्रारम्भ होता है वह नियम 3 के अधीन है। 1949 के नियम कोटा विहित करते समय केन्द्रीय सरकार को नियमावली में छूट देकर भर्ती करने के लिए शक्ति प्रदत्त करते हैं तो इस शक्ति में कोटा नियम में छूट देकर भर्ती करना विवक्षित है तथा यह बात स्वीकार की गई है कि आपात स्थिति और सेवा की अत्यावश्यकता के कारण नियमों में छूट देकर के भर्ती की गई थी। अब जहां नियम दो स्रोतों से भर्ती के लिए उपबन्ध करता और इसके साथ ही कोटा भी विहित करता है वहां जब तक कि नियमों में छूट देने की शक्ति न हो, किसी भी स्रोत से कोटे से अधिक की गई भर्ती अवैध होगी तथा अधिक भर्ती किए गए व्यक्ति, जब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तक कि वे पश्चत्‌वर्ती वर्षों में कोटे में समायोजित हो करके अपना स्थान प्राप्त नहीं कर लेते तब तक वे सेवा के सदस्य नहीं होंगे। (पैरा 21)

जहां नियम सरकार को सेवा की अत्यावश्यकता का सामना करने के लिए नियमों में छूट देकर विवेकाधिकार प्रदत्त करते हों वहां नियमों में छूट देकर की गई कोई भी भर्ती अविधिमान्य नहीं होगी। नियम का अर्थ यह है कि जहां तक सम्भव हो कोटा पद्धति अवश्य ही कायम रखी जानी चाहिए और यदि वह व्यवहार्य न हो तो अनिश्चित काल तक स्थान खाली पटक रखने की बजाय नियमित प्रक्रिया को लागू करके सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के स्थान पर प्रोन्नत व्यक्ति और प्रोन्नत व्यक्ति के स्थान पर सीधी भर्ती वले व्यक्ति पदासीन किए जा सकते हैं। जब भर्ती विहित कोटा के अध्यधीन दो स्वतन्त्र स्रोतों से की गई हो किन्तु सरकार को नियमों में छूट देकर के भर्ती करने की शक्ति भी प्रदत्त की गई हो तो कोटा नियम के प्रतिकूल की गई कोई भी भर्ती तब तक अविधिमान्य नहीं होगी जब तक कि यह न दर्शाया गया हो कि छूट देने की शक्ति का असद्‌भाविक रूप से प्रयोग किया गया था। आपात स्थिति और इंजीनियरों की तुरन्त भर्ती की अत्यावश्यकता के कारण ही सरकार को प्रतियोगिता परीक्षा को छोड़कर वर्ग 1 सेवा में अधीनस्थ रैंक के व्यक्तियों को प्रोन्नत करके कोटा नियम में छूट देकर के भर्ती करनी पड़ी थी। पिटीशनर और उसके समान पद वाले व्यक्ति कोटा नियम में छूट देकर सेवा की अत्यावश्यकता को पूरा करने के लिए इस प्रकार प्रोन्नत किए गए थे। (पैरा 22)

अब यदि नियम 3 के प्रतिकूल अर्थात्‌ संघ लोक सेवा आयोग की मार्फत साक्षात्तार द्वारा, जो कि भर्ती का मान्यता प्राप्त ढंग नहीं है, की गई भर्ती को इस आधार पर विधिमान्य ठहराया गया है कि भर्ती नियमों में छूट देकर की गई थी तो उसका इस बात के परिणामस्वरूप अवश्य ही अनुसरण किया जाना चाहिए, कि उसी आपात्‌ स्थिति ने सरकार को छूट देने की शक्ति का प्रयोग करते हुए कोटा से अधिक ए० ई० ई० वर्ग 1 के पद पर इंजीनियरों की प्रोन्नति द्वारा भर्ती के लिए सरकार को बाध्य किया था तथा ऐसी भर्ती स्वतः ही विधिमान्य होगी। प्रोन्नत व्यक्ति विधिमान्य रूप से प्रोन्नत किए जाने से सेवा के सदस्य हो जाएंगे चूंकि कोटा नियम में छूट दी गयी थी। क्या रिक्तियां स्थायी काडर में अथवा अस्थायी काडर में थीं, यह बात असंगत है चूंकि उनमें से किसी भी व्यक्ति को इस आधार पर पदावनत नहीं किया गया है कि अब कोई रिक्ति उपलभ्य नहीं है। अपीलार्थी और उसी के समान स्थिति वाले व्यक्ति नियम 3(2) में उपबंध किए गए अनुसार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रोन्नति द्वारा भर्ती किए गए थे तथा यह बात अवश्य ही स्वीकार की जानी चाहिए कि इन वर्षों के दौरान प्रोन्नति द्वारा भर्ती नियम 4 में उपबंध किए गए कोटा से अधिक थी । किन्तु भर्ती कोटा नियम सहित नियमों में छूट देकर के सेवा की अत्यावश्यकता को पूरा करने के लिए की गई थी इसलिए कोटा से अधिक प्रोन्नति विधिमान्य होगी । इस संबंध में इस बात का स्मरण कराया जा सकता है कि "सेवा" पद को मिलिटरी इंजीनियरिंग सर्विस क्लास I के अर्थ के रूप में परिभाषित किया गया गया है । नियम सेवा की संख्या के प्रश्न पर मौन है । सेवा की अत्यावश्यकता और राज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अस्थायी पद काडर की संख्या के अतिरिक्त तब तक अस्थायी होंगे जब तक कि इसके प्रतिकूल यह बात स्पष्ट नहीं कर दी जाती है कि अस्थायी पद कतिपय कालावधि के लिए ही अथवा अस्थायी पदों पर नियुक्तियां ऐसे समय तक तदर्थ प्रकृति की हैं जब तक कि नियमों के अनुसार भर्ती नहीं की जाती है । ऐसे किसी उपबंध के अभाव में स्थायी पद और अस्थायी पद धारण करने वाले व्यक्ति सेवा के सदस्य हो जाएंगे जब कि अस्थायी पदों पर भर्ती वैध और विधिमान्य है । एक बार भर्ती के वैध और विधिमान्य हो जाने पर स्थायी पदों और अस्थायी पदों के धारकों के बीच कोई अन्तर नहीं है जहां तक कि वह सेवा के सब सदस्यों से संबंधित है । इस प्रकार का कोई सर्वमान्य नियम नहीं है कि किसी काडर में स्थायी और अस्थायी कर्मचारी दोनों ही नहीं हो सकते अथवा उसमें दोनों ही प्रकार के कर्मचारी होने चाहिएं । प्राथमिक रूप से यह बात ऐसी किसी विशेष सेवा को, जिसके काडर के गठन के संबंध में प्रश्न उद्भूत हुआ है, लागू होने वाले नियमों और विनियमों की विषयवस्तु है । 1949 के नियम इस पहलू पर कोई प्रकाश नहीं डालते और इसलिए यदि भर्ती किसी भी स्रोत से की जाती है ओक वह अन्यथा वैध और विधिमान्य है तो अस्थाई पदों पर भर्ती किए गए व्यक्ति सेवा के सदस्य हो जाएंगे । (पैरा 23)

सेवा विधि शास्त्र का यह अच्छी तरह से सुस्थिर सिद्धांत है कि ज्येष्ठता के किसी भी नियम को अनुच्छेद 16 में उल्लिखित लोक सेवा में समता के अवसर की कसौटी को पूरा करना होता है । इसके समान ही सेवा विधि शास्त्र की यह अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त कसौटी है कि एक ही सेवा के सदस्यों की पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए किसी अन्य विधिमान्य नियम के अभाव में सतत रूप से पद धारण करने अथवा सेवा की कालावधि अथवा सेवा में प्रवेश करने की तारीख और उसके पश्चात् बिना किसी हस्तक्षेप के सतत रूप से सेवा का नियम विधिमान्य होगा और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुच्छेद 16 की कसौटी को पूरा करेगा। पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए इस सामान्य सिद्धांत से पीछे हटने की आवश्कता नहीं है क्योंकि हमारे मत में एम० ई० एस० वर्ग 1 सेवा में सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच पारस्परिक ज्येष्ठता को लागू होने वाला विनिर्दिष्ट नियम है और वह वर्ष 1974 तक प्रवृत्त रहा था जब कि आक्षेपित ज्येष्ठता सूची तैयार की गई थी। (पैरा 28)

1949 के नियमों में, जो तारीख 1 अप्रैल, 1951 से प्रवृत्त हुए थे, सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए एक उपबंध किया गया था। 1949 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) में यह उपबंध किया गया था कि एक रोस्टर रखा जाएगा जिसमें वह क्रम दर्शाया जाएगा जिसमें भर्ती नियमावली में भर्ती की प्रत्येक पद्धति के लिए नियत प्रतिशत के अनुसार सीधी भर्ती और प्रोन्नति द्वारा नियुक्तियां की जानी हैं। प्रोन्नत व्यक्तियों और सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता उन तारीखों द्वारा अवधारित की जाएगी जिन पर सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए आरक्षित रिक्तियां होती हैं। अतः यह नियम नियम 4 में विहित सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच 9 : 1 के कोटा से संबंधित था। नियम 4 और परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह बात स्पष्ट रूप से सामने आएगी कि कोटा से सुसंगत एक रोस्टर रखा जाना चाहिए ताकि प्रोन्नत व्यक्तियों और सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों का सापेक्षित पारस्परिक ज्येष्ठता उस तारीख से अवधरित की जा सके जिस पर रिक्तियां हुई हैं तथा रिक्ति सीधी भर्ती वाले व्यक्ति अथवा प्रोन्नत व्यक्ति के लिए है। यदि नियम 4 द्वारा विहित कोटे का पालन किया जाता है अथवा उसका अतिक्रमण नहीं किया जाता तो परिशिष्ट 5 के भाग 3(iii) में प्रतिपादित ज्येष्ठता के नियम को पूर्ण रूप से लागू करना होगा तथा ज्येष्ठता सूची उसके अनुसार तैयार करनी होगी। चूंकि कोटा नियम प्रत्यक्ष रूप से ज्येष्ठता नियम से आन्तरिक रूप से संबंधित था और कोटा नियम को एक बार छोड़ देने पर परिशिष्ट 5 के 3(iii) में प्रतिपादित ज्येष्ठता का नियय पूर्ण रूप से विफल और निष्प्रभावी हो जाएगा। इसके समान ही इस बात को भी अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है कि जहां कोटा नियम ज्येष्ठता नियम से जुड़ा हुआ है और यदि कोटा नियम का भंग किया जाता है अथवा ज्येष्ठता नियम को प्रभावी करने के लिए उसका वैध रूप से पालन नहीं किया जाता है तो ज्येष्ठता नियम को प्रभावी करना अन्यायोचित, अयुक्तियुक्त और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुचित होगा। इसलिए एक बार कोटा नियम में सेवा की अपेक्षाओं के अनुसार वर्ष 1959 और 1969 के बीच पूर्णरूप से छूट दे दी गई थी तथा कोटा नियम में छूट देकर के की गई भर्ती तथा सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के लिए न्यूनतम अर्हता के नियम को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था और पैरा 3(iii) में प्रतिपादित ज्येष्ठता नियम को प्रभावी नहीं किया जा सकता था जो कि कोटा नियम से पूर्ण रूप से जुड़ा हुआ था और अपने स्वयं के बल पर वह पृथक रूप से अस्तित्व में नहीं रह सकता था। (पैरा 29)

भर्ती कोटा में छूट देकर के की गई थी। कोटा नियम में एक बार छूट देने पर स्थायीकरण के लिए अनुक्रम समाप्त हो जाता है। सन् 1968 तक सेना अनुदेश के साथ किसी अन्य नियम के अभाव में सतत रूप से पद धारण करना पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए एकमात्र उपलब्ध नियम होगा। 1963 और 1967 दोनों की ही ज्येष्ठता सूचियाँ इसी सिद्धांत के अनुसार तैयार की गई थीं। इस प्रकार दो मूलभूत उपधारणाएं, जिन पर आक्षेपित ज्येष्ठता सूची तैयार की गई थी, पूर्णतया अविधिमान्य है और सुसंगत नियमों के प्रतिकूल है तथा उन पर आधारित कोई भी ज्येष्ठता सूची अवश्य ही असफल होनी चाहिए। किन्तु एकमात्र यह निष्कर्ष पुन: मामले को प्रथम प्रत्यर्थी के हाथों में छोड़ देगा और इसके लिए नवीन रूप से कार्यवाही करनी होगी। (पैरा 31)

1949 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के पैरा 3 द्वारा प्रतिपादित कोटा नियम का सन् 1969 तक कोई विधिक प्रभाव नहीं रहा था। 1 सितम्बर, 1949 के सेना अनुदेशों में सतत रूप से पद धारण करने के सिद्धांत के अनुसार एक ज्येष्ठता सूची तैयार करने का निदेश दिया गया था। किसी अन्य विधिमान्य सिद्धांत के अभाव में सतत रूप से पद धारण करने के आधार पर नियत की गई ज्येष्ठता विधिमान्य है क्योंकि वह अनुच्छेद 16 की कसौटी को पूरा करती है। यह सुझाव देने के लिए कोई बात नहीं है कि सन् 1963 और सन् 1967 की ज्येष्ठता सूचियां अनंतिम थीं अथवा उनके पुन: तैयार किए जाने की सम्भावना थी इसलिए 1949 के नियमों को सन् 1969 में कानूनी स्वरूप प्राप्त होते तक ए० ई० ई० के सम्बन्ध में सन् 1963 और 1967 की ज्येष्ठता सूचियां पूर्णरूप से वैध और विधिमान्य थीं और उस सिद्धांत के आधार पर तैयार की गई थीं जो अनुच्छेद 16 की कसौटी को पूरा करता है। (पैरा 33)

एक ही सेवा या काडर के व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए सरकार इस बात के लिए सिद्धांत विहित करने हेतु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वतन्त्र है कि ऐसे किसी भी सिद्धांत को अनुच्छेद 16 की कसौटी को अवश्य ही पूरा करना चाहिए। इसके समान ही सरकार सेवा नियमों को भूतलक्षी रूप के पुनरीक्षित करने हेतु स्वतन्त्र है यदि वह निहित अधिकारों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करती है। किन्तु यदि पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के नियम को पुनरीक्षित किया जाता है या कोई नवीन नियम विरचित किया जाता है तो वह सांविधिनिक रूप से अवश्य ही विधिमान्य होना चाहिए। आधार, जिस पर 1974 की ज्येष्ठता सूची आधारित है, स्पष्ट रूप से अवैध और अविधिमान्य है तथा यह बात इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित मामलों को गलत समझने और उसका गलत अर्थान्वयन करने से उद्‌भूत होती है। वह वर्ष 1959 से 1969 तक की कालावधि के दौरान की गई नियुक्ति के स्वरूप की भी उपेक्षा करता है। वह विधिमान्य नियुक्तियों को संदेहास्पद रूप से विधिमान्य होने के रूप में मानता है। वह वैध रूप से नियुक्त व्यक्तियों को ऐसे होने के रूप में मानता है। वह वैध रूप से नियुक्त व्यक्तियों को ऐसे व्यक्तियों के नीचे लाता है जो कभी भी सेवा में नहीं थे और ऐसे कारणों से, उसे सन् 1951 से प्रभावी बनाया गया है। सन् 1969 से पूर्व भर्ती किए या प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों को प्रभावित करने वाली ज्येष्ठता सूची पुनः तैयार करने के लिए कोई औचित्य नहीं था जब कि नियमों को कानूनी स्वरूप प्राप्त हुआ था। इसलिए सन् 1974 की ज्येष्ठता सूची अभिखंडित किए जाने योग्य है तथा सन् 1963 और 1967 की दो ज्येष्ठता सूचियां अवश्य ही कायम रहनी चाहिएं। (पैरा 34)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1972]	[1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898 : **बचन सिंह और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य** **(Bachan Singh and Another *v.* Union of India and Others)**	3

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्दिष्ट निर्णय

[1977] [1977] 4 उम० नि० प० 615=[1977] 1 एस० सी० आर० 1037 :
एन० के० चौहान और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य
(N. K. Chauhan and Others *v.* State of Gujarat and Others); 22

[1977] [1977] 3 एस० सी० आर० 775 :
एस० बी० पटवर्धन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य
(S. B. Patwardhan and Others *v.* State of Maharashtra); 23

[1975] [1975] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 491 :
बी० एस० गुप्त बनाम भारत संघ और अन्य
(B. S. Gupta *v.* Union of India and Others); 22

[1975] [1975] 1 एस० सी० आर० 104 :
बी० एस० गुप्त और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
(B. S. Gupta and Others *v.* Union of India and Others); 22

[1974] [1974] उम० नि० प० 1826=[1974] 3 एस० सी० आर 207 :
महाप्रबन्धक, दक्षिण मध्य रेलवे, सिकन्दराबाद और एक अन्य बनाम ए० वी० आर० सिद्धांती और अन्य
(General Manager, South Central Railway, Secunderabad and Another *v.* A. V. R. Sidhanti and Others); 36

[1967] [1967] 2 एस० सी० आर० 718 :
एस० जी० जयसिंघानी बनाम भारत संघ और अन्य
(S. G. Jaisinghani *v.* Union of India and Others). 21

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिविल अपीली अधिकारिता : 1980 की सिविल अपील सं० 360.

1975 के सिविल रिट पिटीशन सं० 4293 में बंगलौर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 15 और 17 मई, 1979 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री जी० एल० सांघी और ए० के० सांघी ।
प्रत्यर्थी सं० 1 और 2 की ओर से	सर्वश्री अब्दुल कादिर और एन० सी० तालुकदार तथा कुमारी ए० सुभाषिणी।
प्रत्यर्थी सं० 3 से 11 की ओर से	सर्वश्री पी० आर० मृदुल तथा एच० के० पुरी ।
प्रत्यर्थी सं० 12 की ओर से	सर्वश्री एम० के राममूर्ति और जतिन्द्र शर्मा ।
मध्यक्षेपी की ओर से	डाक्टर वाई० एस० चितले और श्री ए० के० सांघी ।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डी० ए० देसाई ने दिया ।

न्यायाधिपति देसाई—

अपीलार्थी ए० जनार्धन ने तारीख 14 जून, 1974 के पत्र के साथ परिचालित पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची प्रदर्श "डी" की, जिसके साथ पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची प्रदर्श "सी" संलग्न की गई थी, विधिमान्यता और वैधता को चुनौती देते हुए 1979 का रिट पिटीशन सं० 4279 फाइल किया था और इसके परिणामस्वरूप 102 अधिकारियों के सम्बन्ध में तैयार किए गए तारीख 13 जून, 1975 के प्रोन्नति के पेनल को रद्द करने की भी प्रार्थना की थी । तारीख 11 मार्च, 1965 के अधिसूचना ज्ञापन में उल्लिखित रूप में सेवाकाल तथा सतत स्थानापन्नता के सिद्धांत के आधार पर तैयार की गई 1963 की ज्येष्ठता सूची को प्रभावी करने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश देने हेतु परमादेश भी चाहा गया था । मंजूनाथ नामक व्यक्ति द्वारा फाइल किए गए एक समान रिट पिटीशन (1979 का रिट पिटीशन सं० 4273) की भी सुनवाई की गयी थी तथा न्यायालय द्वारा अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए रिट पिटीशन के साथ उसका भी निपटारा किया गया था ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2. सुसंगत नियमों से निकटता के ताथ्यिक आधार को भी विस्तारपूर्वक उल्लिखित किया जा सकता है क्योंकि घटनाक्रम को उल्लिखित किए जाने से विवाद की रूपरेखा पर प्रकाश पड़ेगा।

3. अपीलार्थी ने वर्ष 1953 में सुपरवाइजर के रूप में सेवा में प्रवेश किया था जिसे सैनिक इंजीनियरिंग सेवा (संक्षेप में एम० ई० एस०) कहा गया है उसकी सन् 1962 में सहायक कार्यपालिक इंजीनियर (ए० ई० ई०) के रूप में प्रोन्नति हुई थी। वर्ष 1963 में तैयार की गई "ए० ई० ई०" की ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी को क्रम सं० 357 पर दर्शाया गया था। पिटीशन में आक्षेपित तारीख 14 जून, 1974 की पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी को किसी भी स्थान पर नहीं दर्शाया गया था क्योंकि कोटा नियम जिसके आधार पर 1974 की आक्षेपित पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची तैयार की गई थी, के अनुसार अपीलार्थी फालतू था और वह ज्येष्ठता सूची में स्थान नहीं पा सकता था। एक मध्यक्षेपी का उल्लेख करना आवश्यक है। बचन सिंह और एक अन्य व्यक्ति ने, क्रमशः सन् 1958 और 1959 वर्ष में "ए० ई० ई०" के पद पर प्रोन्नत होने वाले दो व्यक्तियों ने "एम० ई० एस०" में कई सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की नियुक्ति को इस आधार पर चुनौती देते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल किया था कि उनकी नियुक्ति विवादास्पद और भर्ती नियमावली के अतिक्रमण में थी तथा वे वैध रूप से नियुक्त नहीं किए गए थे और इसलिए वे सेवा के सदस्य नहीं बन सकते थे। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रिट पिटीशन खारिज कर दिया गया था तथा मामला इस न्यायालय में अपील में लाया गया था। बचन सिंह और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य[1] के मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय का प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा यह निर्वचन किया था कि सीधी भर्ती, जो प्रतियोगी परीक्षा द्वारा नहीं किन्तु साक्षात्कार और मौखिक परीक्षा द्वारा की गई थी, विधिमान्य थी और ऐसी नियुक्तियां नियमावली के अनुसार होने से उक्त सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों का स्थायीकरण स्थायी रिक्तियों में सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के कोटे में था और इसलिए विधिमान्य था प्रथम प्रत्यर्थी ने विनिश्चय को इस अर्थ में समझा था कि वर्ष 1951 से "ए० ई० ई०" के काडर में भर्ती के लिए और एम० ई० एस० वर्ग 1 में भर्ती का कोटा 9 सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और 1 प्रोन्नति वाले व्यक्ति (9 : 1) का कोटा था तथा

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कोटा स्थायीकरण के लिए व्यक्तियों की सूची के अनुसार ही होना चाहिए था तथा उसने सन् 1974 में ज्येष्ठता सूची पुनः तैयार की थी तथा अपीलार्थी और इसके समान स्थिति वाले कई व्यक्तियों के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक परिणाम निकले थे जिन्हें इसमें इसके पूर्व उल्लिखित किया जा चुका है। अपीलार्थी ने अपने रिट पिटीशन में बचन सिंह के मामले[1] के विनिश्चयाधार पर आधारित विभिन्न आधारों पर जून, 1974 में पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची तैयार करने के लिए अपनाए गए आधार को चुनौती दी थी। तारीख 14 जून, 1974 की ज्येष्ठता सूची को सम्मिलित करने वाले ज्ञापन से आधार उद्धृत किए जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं—

"(क) सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और विभागीय प्रोन्नत व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता समय-समय पर एम० ई० (आर० पी० एस०) रूल्स, 1951 में अधिकथित कोटा के अनुसार तय की जानी चाहिए। वही कोटा स्थायीकरण और ज्येष्ठता के नियत किए जाने के दोनों ही मामलों में लागू किया जाना है।

(ख) सहायक कार्यपालिक इन्जीनियरों की ज्येष्ठता सूची सन् 1968 तक तैयार की जानी है और विभागीय प्रोन्नति वाले ऐसे अधिक व्यक्तियों को, जो काडर में नहीं लाए जा सकते हैं, पृथक् रूप से दर्शाना चाहिए और जब कभी भी रिक्तियां उपलभ्य हों कोटा के आधार पर उन्हें काडर में लाया जाना चाहिए।

(ग) तारीख 1 फरवरी, 1969 से तारीख जिस पर नियमावली ने कानूनी रूप ग्रहण किया था, सूची के अधिक विभागीय प्रोन्नत व्यक्तियों (उपाबंध "बी") की ज्येष्ठता निम्नलिखित रूप में विनियमित की जानी है—

(i) विभागीय प्रोन्नत व्यक्तियों की, जो सन् 1969 से आगे काडर में लाए गए हैं, ज्येष्ठता की गणना उस वर्ष के, जिसमें प्रोन्नत व्यक्ति काडर में लाए गए हैं, सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के साथ की जाएगी और उच्च पदों पर आगे प्रोन्नति के लिए किसी सेवा की भी गणना की जाएगी, उदाहरण के लिए सन् 1966 का विभागीय प्रोन्नत व्यक्ति, सन् 1970 में काडर की सूची में लाया जाता है तो ई० ई० के रूप में आगे

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रोन्नत के लिए ए० ई० ई० के ग्रेड में ज्येष्ठता के लिए सन् 1970 के पश्चात् केवल ए० ई० ई० ग्रेड की सेवा की ही गणना की जाएगी।

(ii) सब अधिक प्रोन्नत व्यक्ति, जो उच्चतर पद धारित किए हुए हैं, काडर में उनके समायोजन के पश्चात् अपेक्षित सेवा के पूरे होने पर आगे प्रोन्नति के लिए विचारार्थ पात्र होंगे।

(घ) उपर्युक्त विनिश्चयों के आधार पर आधारित पुनरीक्षित ज्येष्ठता सूची आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में लम्बित रिट पिटीशन के निर्णय और किसी अन्य विधिक निर्णय के, जो इस निमित्त किए जाएं, अध्यधीन होगी। इस ज्येष्ठता सूची पर आधारित सब शर्तें रिट पिटीशन के निर्णय के उपलभ्य होने पर पुनरीक्षण के अध्यधीन होंगी, इसलिए प्रोन्नतियां करते समय यह बात स्पष्ट की जानी चाहिए कि यह प्रोन्नति न्यायालय के किसी अन्य आगे के विनिश्चय के अध्यधीन होगी।"

4. इस बात का उल्लेख करना लाभप्रद होगा कि आधार **बचन सिंह के मामले**[1] के विनिश्चय को पढ़ने और समझने से निकाला था। यदि **बचन सिंह के मामले**[1] के विनिश्चयाधार को समझना या उसका निर्वचन करना सही नहीं है या जो कुछ भी अधिकथित किया गया है उसके प्रतिकूल है तो उसका अपरिहार्य परिणाम यह होगा कि ऐसे अशुद्ध या गलत निर्वचन किए गए आधार पर तैयार की गई ज्येष्ठता सूची न केवल असफल हो जाएगी किन्तु उसे अभिखण्डित भी करना होगा। इसलिए हमें प्रथमतः उन विभिन्न प्रक्रमों को निर्दिष्ट करना होगा जिनके माध्यम से सुसंगत नियम के आधार पर **बचन सिंह के मामले**[1] में विनिश्चय किया गया है। इन नियमों का इस विषय से बहुत ही गहरा सम्बन्ध है और हम उन्हें संक्षेप में निर्दिष्ट कर सकते हैं।

5. तारीख 17 सितम्बर, 1949 की अधिसूचना द्वारा रक्षा मंत्रालय ने मिलिटरी इन्जीनियर सर्विसेज, क्लास 1 (रिक्रूटमेंट, प्रमोशन एण्ड सीनियोरिटी रूल्स, 1949 जिन्हें संक्षेप में 1949 के नियम कहा गया है) के रूप में नियम प्रकाशित किए थे। "सेवा" (सर्विस) को सैनिक इन्जीनियर सेवा, वर्ग 1 के रूप में परिभाषित किया गया था। नियम 3 और 4 में इस अपील में दी गई सब दलीलों के आधार उपबन्धित किए गए हैं, और उन्हें

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यहां पर उद्धृत किया जा सकता है, जो इस प्रकार है—

*"3. सेवा में (भवन निर्माण सेवा, बैरक और स्टोर सेवा से भिन्न) निम्नलिखित पद्धतियों द्वारा भर्ती की जाएगी—

(i) इन नियमों के भाग II के अनुसार भारत में हुई प्रतियोगी परीक्षा द्वारा,

(ii) इन नियमों के भाग III के अनुसार प्रोन्नति द्वारा।

4. नियम 3 के उपबन्धों के अध्यधीन सरकार किन्हीं विशेष रिक्तियों को या ऐसी रिक्तियों को, जो किसी विशेष कालावधि के दौरान भरी जाने के लिए अपेक्षित हों, भरे जाने के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली पद्धति या पद्धतियां और प्रत्येक पद्धति द्वारा भरे जाने के लिए अभ्यर्थियों की संख्या अवधारित करेगी परन्तु सेवा में रिक्तियों की संख्या से दस प्रतिशत से अनधिक रिक्तियां (जो सेवा में एक ग्रेड से दूसरे ग्रेड में प्रोन्नति द्वारा भरी जाने वाली रिक्तियां न हों) उपर्युक्त नियम 3 के खंड (ii) में विनिर्दिष्ट पद्धति द्वारा भरी जाएंगी।"

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"3. The service (other than the Architects's Service and the Barrack and Stores service) shall be recruited by the following methods :—

(i) By competitive examination held in India in accordance with Part II of these Rules.

(ii) By promotion in accordance with Part III of these rules.

4. Subject to the provisions of Rule 3, Government shall determine the method or methods to be employed for the purpose of filling any particular vacancies or such vacancies as may require to be filled during any particular period, and the number of candidates to be recruited by each method, provided that not more than 10 per cent, of the vacancies in the service (not being vacancies filled by promotion from one grade to another within the service) shall be filled by the method specified in clause (ii) of Rule 3 above."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

6. भर्ती दो स्रोतों से की जानी थीं—(i) प्रतियोगी परीक्षा द्वारा सीधी भर्ती से और (ii) नियमावली के भाग 3 के अनुसार प्रोन्नति द्वारा। नियम 4 किन्हीं विशेष रिक्तियों को या ऐसी रिक्तियों को, जो किसी विशेष कालावधि के दौरान भरी जाने के लिए अपेक्षित हों, भरे जाने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली पद्धति या पद्धतियां और प्रत्येक पद्धति द्वारा भर्ती किए जाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या का अवधारण करने के लिए सरकार को समर्थ बनाने वाले नियम 3 के उपबन्ध द्वारा नियंत्रित सरकार को विवेकाधिकार प्रदत्त करता है। नियम 4 का एक परन्तुक है और वह न्यायालय में उग्र विवाद की विषयवस्तु है। सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के विद्वान् काउन्सेल श्री पी० आर० मृदुल की एक दलील यह थी कि परन्तु नियम 3 के उपनियम (ii) का परन्तुक है और वह सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच 9 : 1 कोटा नियत करता है। दूसरी ओर यह दलील दी गई थी कि वह केवल अधिकतम सीमा उपबन्धित करता है न कि कोई अनुल्लंघनीय कोटा नियम। हम इसके कुछ पश्चात् दोनों दलीलों की परीक्षा करेंगे। नियमावली का भाग 2 सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों का चयन करने के लिए भारत में ली जाने वाली प्रतियोगी परिक्षा के लिए विस्तृत उपबन्ध करता है। 1949 की नियमावली के भाग 3 के नियम 21 से 23 प्रोन्नति द्वारा भर्ती के लिए अर्हता और पद्धति विहित करते हैं। नियम 23 एक महत्वपूर्ण नियम है जो यह विहित करता है कि कोई भी व्यक्ति सेवा में प्रोन्नति के लिए तब तक पात्र नहीं होगा जब तक कि वह आयु के सिवाय भाग 2 के अधीन प्रतियोगी परीक्षा में प्रवेश के लिए अर्हित न हो जाए, इसका यह अर्थ होगा कि आयु के सिवाय सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए शैक्षणिक अर्हता सहित सब अन्य अर्हताएं समान हैं। 1949 की नियमावली में पांच परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट 5 का पैरा 3 सीधी भर्ती वाले और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच पारस्परिक ज्येष्ठता के लिए उपबन्ध करता है। पैरा 3 का उप-पैरा (iii) सुसंगत है और उसे यहां पर उद्धृत किया जा सकता है—

*"(iii) आदेश, जिसमें भर्ती नियमावली में भर्ती की प्रत्येक पद्धति के लिए नियत प्रतिशत के अनुसार सीधी भर्ती और प्रोन्नति द्वारा नियुक्तियां की जानी हैं, उपदर्शित करने वाला एक रोस्टर रखा

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(iii) A roster shall be maintained indicating the order in which appointments are to be made by recruitment and promotion in accordance with the percentages

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाएगा। प्रोन्नत और सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की सापेक्षिक ज्येष्ठता उन तारीखों द्वारा अवधारित की जाएगी जिन पर सीधी भर्ती और प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए आरक्षित रिक्तियां होती हैं।"

यद्यपि 1949 की नियमावली तारीख 17 सितम्बर, 1949 को प्रकाशित की गई थी किन्तु वह रक्षा मंत्रालय की तारीख 29 जुलाई, 1950 की अधिसूचना द्वारा 1 अप्रैल, 1951 से प्रवृत्त की गई थी। 1949 की नियमावली जब अधिनियमित की गई थी तब स्वीकार्यतः वह गैर-कानूनी स्वरूप की थी।

7. रक्षा मंत्रालय की तारीख 18 जुलाई, 1953 की अधिसूचना द्वारा मिलिटरी इन्जीनियर सर्विसेज क्लास I रिक्रूटमेंट रूल्स नामक नियम प्रख्यापित किए गए थे। नियम 3 और 4, 1949 की नियमावली के नियम 3 और 4 के समविषयक हैं। नियमावली का भाग 2 प्रतियोगी परीक्षा के लिए विस्तृत उपबन्ध बनाता है तथा नियमावली का भाग 3 प्रोन्नति द्वारा नियुक्त से सम्बन्धित है। यह बात स्पष्ट नहीं की गई थी कि क्या 1953 की नियमावली द्वारा 1949 की नियमावली अतिष्ठित कर दी गई थी। परिशिष्ट 5 के उपबन्ध के सिवाय वे उपबन्ध अधिकांशतः समान हैं। 1949 की नियमावली के परिशिष्ट का पैरा 3 सीधी भर्ती वाले और प्रोन्नत व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता के लिए उपबन्ध करता है जब कि 1953 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के पैरा 3 में यह वर्णन किया गया है कि ज्येष्ठता अवधारित करने के सिद्धांत बिचाराधीन हैं। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि 1949 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के पैरा 3 को निराकृत किया गया था तथा ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए नवीन सिद्धांत अभी भी बनाए जाने हैं। एक ही क्षेत्र के नियमों के इन दो समूहों से उद्‌भूत होने वाली दलील सन् 1969 में जो कुछ भी किया गया है उसके आधार पर कुछ समय के दौरान बहुत ही निरर्थक हो जाएगी किन्तु यह बात बाद में होगी।

8. अगले प्रक्रम पर आगे बढ़ते समय रक्षा मंत्रालय ने तारीख 7 जनवरी, 1961 की अपनी अधिसूचना द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिनियमित

---

fixed for each method of recruitment in the recruitment rules. The relative seniority of promotees and direct recruits shall be determined by the dates on which the vacancies reserved for the direct recruits and the promotees occur........"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कानूनी नियम प्रख्यापित किए थे। इन नियमों (जिन्हें संक्षेप में 1961 की नियमावली कहा गया है) द्वारा सैनिक इन्जीनियर सेवा वर्ग 1 की भर्ती विनियमित की जानी थी। अधिकांशतः ये नियम सीधी भर्ती के लिए अंगीकृत की जाने वाली पद्धति, परीक्षा लेने की रीति और परीक्षा में प्रवेश के लिए पात्र व्यक्तियों से सम्बन्धित है। एक प्रकार से 1961 की नियमावली ने 1949 की नियमावली के नियम 3 और 4 छोड़ दिए थे तथा 1953 की नियमावली के नियम 3 और 4 परिशिष्ट 4 के पैरा 8 में उपबन्धित सीमा के सिवाय अस्पर्शित रहे थे। परिशिष्ट 4 के पैरा 8 में यह कहा गया है कि वरिष्ट और प्रशासनिक पदों पर प्रोन्नतियां स्वीकृत स्थापना में रिक्तियों के होने पर आश्रित हैं तथा वे पूर्णतया गृह मंत्रालय के कार्यालय ज्ञापन सं० 33/46-स्थापना (आर०) तारीख 17 जून, 1946 में अधिकथित किए गए अनुसार विभागीय प्रोन्नति समिति और आयोग के परामर्श से चयन द्वारा की जाती है तथा प्रोन्नति के बारे में कोई दावा न होने देने के लिए केवल ज्येष्ठता पर ही विचार किया जाता है। यद्यपि इस नियमावली में, जिसे मिलिटरी इन्जीनियर सर्विसेज क्लास 1 रिक्रूटमेंट रूल्स के रूप में सम्बोधित किया गया है, प्रोन्नति द्वारा भर्ती के बारे में किसी भी निर्देश को छोड़ दिया गया है और उसमें उसका पूर्णतया अभाव है फिर भी परिशिष्ट 4 के नियम 3 द्वारा इस स्थिति को पुनः कायम कर दिया गया है कि ज्येष्ठता के अवधारण के लिए सिद्धांत विचाराधीन हैं। 1961 की नियमावली में 1949 की नियमावली के बारे में भी कोई निर्देश नहीं किया गया है। किन्तु इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि 1961 की नियमावली को 1962 की नियमावली द्वारा अतिष्ठित कर दिया गया था।

9. सन् 1962 में रक्षा मंत्रालय ने 1961 की नियमावली को अतिष्ठित करते हुए सैनिक इन्जीनियर सेवा वर्ग । में भर्ती को विनियमित करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए नियम विरचित किए थे। 1961 और 1962 की दोनों ही नियमावलियां प्रोन्नति द्वारा भर्ती तथा प्रोन्नति द्वारा भर्ती की अनुज्ञेय सीमा अनुज्ञात करने वाले न तो नियम 3 और न ही नियम 4 के प्रति निर्देश करती है। 1962 की नियमावली के परिशिष्ट 4 के नियम 3 में पुनः यह बात अधिकथित की गई है कि ज्येष्ठता के अवधारण के सिद्धांत विचाराधीन हैं। पुनः परिशिष्ट 4 का पैरा 8 उसी स्थान पर दोहराया गया था जैसाकि वह 1961 की नियमावली में था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

10. रक्षा मंत्रालय ने तारीख 17 अप्रैल, 1965 की अधिसूचना द्वारा 1962 की नियमावली का नियम 7 का संशोधन किया था। किन्तु उसका विचाराधीन प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके पश्चात् एक महत्वपूर्ण उपबन्ध आता है। 1962 की नियमावली के परिशिष्ट 4 का नियम 3, जो यह उपबन्ध करता है कि ज्येष्ठता के अवधारण के सिद्धांत विचाराधीन हैं, इस प्रकार प्रतिस्थापित किया गया था—

> *"3. संयुक्त इन्जीनियर सेवा परीक्षा के आधार पर या अन्यथा सेवा में नियुक्त अधिकारियों की सापेक्षिक ज्येष्ठता समय-समय पर सरकार द्वारा जारी किए गए आदेशों के अनुसार अवधारित की जाएगी।"

11. रक्षा मंत्रालय की तारीख 18 फरवरी, 1967 की अधिसूचना द्वारा ऐसे व्यक्तियों की, जो प्रतियोगी परीक्षा के लिए अभ्यर्थियों के रूप में स्वयं का प्रस्तार कर सकते हैं, पात्रता के सम्बन्ध में 1962 की नियमावली में एक और संशोधन किया गया था।

12. गैर कानूनी स्वरूप की तारीख 25 फरवरी, 1967 की रक्षा मंत्रालय की अधिसूचना द्वारा 1949 की नियमावली के भाग 3 के नियम 20 में उपनियम (एच) जोड़ा गया था जिसमें ऐसे स्नातक इंजीनियरों को, जिन्हें आपात स्थिति के दौरान अस्थायी आधार पर सशस्त्र बलों में कमीशन दिया गया था और जो तत्पश्चात् उसमें विहित कतिपय शर्तों के अध्यधीन मुक्त किए गए थे, तारीख 17 मई, 1963 के पश्चात् सीधी भर्ती द्वारा भरी जाने वाली स्थाई रिक्तियों के 50 प्रतिशत के आरक्षण के लिए उपबन्ध किया गया था।

13. इसके पश्चात् सन् 1969 में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ था। तारीख 1 फरवरी, 1969 को राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए 1949 की नियमावली में कुछ संशोधन विरचित और प्रख्यापित किए थे जिन्हें मिलिट्री इंजीनियर

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Relative seniority of officers appointed to service on the basis of the combined Engineering Services Examination or otherwise will be determined in accordance with the orders issued by the Government from time to time."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्विस क्लास i (रिक्रूटमेंट, प्रमोशन एंड सीनियोरिटी) अमेंडमेंट रूल्स, 1969 कहा गया है और जो तारीख 1 फरवरी, 1969 से प्रवृत्त हुए थे। "नियम 4 रिक्तियों के 10 प्रतिशत के स्थान पर रिक्तियों के 25 प्रतिशत" शब्द प्रतिस्थापित करके संशोधित किया गया था। अन्य शब्दों में सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच कोटा 9 : 1 से उपांतरित करके 3 : 1 कर दिया गया था।

14. हम इस प्रक्रम पर 1950 का सेना अनुदेश सं० 241 पर ध्यान दे सकते हैं। वह निचले काडर में सिविल कर्मचारियों की ज्येष्ठता के लिए उपबन्ध करता है। अनुदेश रक्षा मंत्रालय के कार्यालय ज्ञापन सं० 0240/6362/0-12 तारीख 1 सितम्बर, 1949 के पैरा 2 में अन्तर्विष्ट आदेश को निर्दिष्ट करता है जो अनुदेश के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित किया गया था। अनुदेश यह है कि सहायकों के बीच ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए हाल ही में बनाए गए नियम का आदर्श नमूने के रूप में अवश्य ही अनुसरण किया जाना चाहिए। आदर्श नमूना यह था कि किसी विशेष ग्रेड में सामान्य नियम के रूप में ज्येष्ठता उस ग्रेड में तथा समतुल्य ग्रेड में सेवा अवधि के आधार पर इस बात पर इस बात के बावजूद भी अवधारित की जानी चाहिए कि समतुल्य ग्रेड भारत या पाकिस्तान में केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार के अधीन था।

15. बहुत से नियमों का अध्ययन करने के पश्चात् अब हम इस अपील में दी गई प्राथमिक दलील पर विचार करेंगे। ऐसा करने से पूर्व इस बात का स्मरण कराया जा सकता है कि अपीलार्थी वर्ष 1962 की एम० ई० एस० वर्ग I सेवा में ए० ई०ई० के रूप में प्रोन्नत व्यक्ति था तथा तारीख 14 जून, 1974 की आक्षेपित ज्येष्ठता सूची द्वारा उसका नाम ज्येष्ठता सूची में नहीं था तथा वह अभी भी भविष्य में आमेलित किए जाने वाले अधिशेष व्यक्तियों की सूची में था तथा अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री साहनी ने बहुत जोर से इस बात पर बल दिया है कि वह वर्ष 1989 तक सेवा में नहीं आ सकता जब कि वह समय उसके लिए सेवा-निवृत्ति का समय हो सकता है। अन्य शब्दों में सेवा में सम्मिलित पद सेवा करने के पश्चात् भी वह सेवा में कोई स्थान पाए बिना सेवा से बाहर लटका हुआ है, जब कि सन 1976 की सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों को सेवा में स्थान प्राप्त हो चुका है। यह स्थिति ऐसी है जिसका कोटा-अनुक्रम नियम और किसी व्यक्ति की सेवा पर उसके प्रभाव का निर्वचन करते समय सामना करना पड़ेगा। किन्तु इस समस्या के प्रति किसी भी मानवीय निष्कर्ष को टालते हुए हम सुसंगत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियमों और पूर्वोदाहरणों तथा सेवा के सदस्यों पर नियमों के प्रभाव के आधार पर ही यथावत विचार करेंगे और इस बात का अवधारण करेंगे कि क्या आक्षेपित ज्येष्ठता सूची विधिमान्य है अथवा नहीं। किन्तु यह करने के बाद हम इस पूर्वोदाहरण से सेवा विधि-शास्त्र में उद्‌भूत होने वाली बहुत ही अवांछनीय, अन्यायोचित और असाम्य स्थिति की परीक्षा करने का प्रस्ताव करते हैं कि प्रोन्नत व्यक्ति के रूप में पहले से ही सेवा करने वाले व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति से नीचे होना होगा जो प्रोन्नत व्यक्ति के सेवा में प्रवेश करने के कई दशाब्दी पश्चात् सेवा में प्रवेश करता है और अपरिपक्व नहीं नौसीखिया हो सकता है जब कि प्रोन्नत व्यक्ति सरकार की अपेक्षानुसार सेवा की आवश्यकता के कारण प्रोन्नत किए जाने पर सेवा करना प्रारम्भ करता है। अब समय आ गया है जब कि हमें इस स्थति को सुधारने के लिए विषय से सम्बन्धित सब पूर्वोदाहरणों की परीक्षा करके बहुत ही निष्पक्ष और न्यायोचित आधार पर सेवा विधि-शास्त्र की पुनः रचना करना है।

16. इस ग्रुप की पिटीशनों की सुनवाई के समय उच्च न्यायालय के समक्ष दी गई दलीलें इस प्रकार हैं (i) 1949 के नियमों का स्वरूप क्या है जब वे अधिनियमित किए गए थे और क्या तब उन्हें कानूनी स्वरूप प्राप्त हो चुका था ? (ii) क्या भर्ती करने में, जिस रीति में 1949 के नियमों को कानूनी स्वरूप प्राप्त होने तक भर्ती की गई थी, यह उपधारणा करने पर कि 1949 की नियमावली के नियम 4 में विहित कोटा था, कोटा नियम का अतिक्रमण हुआ था। (iii) यदि 1949 की नियमावली में सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच 9 : 1 का कोटा विहित था तो क्या सरकार को जब कभी भी आवश्यक हो अथवा कतिपय परिस्थितियों में कोटा नियम में छूट देने की शक्ति थी ? (iv) कोटा नियम में छूट देने से सेवा में प्रोन्नत व्यक्तियों की हैसियत पर कोई प्रभाव, यदि कोई हो, पड़ा है ? (v) क्या ऐसे प्रोन्नत व्यक्ति सेवा के सदस्य बन गए थे ताकि उन्हें ज्येष्ठता सूची में कोई स्थान समनुदेशित किया जा सके ? (vi) यदि 1969 में 1949 के नियमों को कानूनी स्वरूप प्राप्त होने से पूर्व कोटा से अधिक प्रोन्नतियां की गई थीं तो पश्चात्‌वर्ती सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और पूर्ववर्ती प्रोन्नत व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता के अवधारण को कौन-सा सिद्धान्त लागू होता है ? (vii) यदि 1963 की ज्येष्ठता सूची को, जब वह तत्समय प्रदत्त नियमों के अनुसार तैयार की गई थी, सन 1974 में परिकल्पित पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के पुनरीक्षित नियम द्वारा निष्प्रभावी किया जा सकता है और उसे भूतलक्षी रूप से प्रभावी किया जा सकता है। इन तथा इनसे सम्बन्धित प्रश्नों का इस अपील में उत्तर देना है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

17. हमें सुनवाई के दौरान प्रायः यह स्मरण कराया जाता है कि न्यायालय बिल्कुल अनभिज्ञ नहीं है तथा इस अपील में दी गई दलीलों में से कुछ का निपटारा बचन सिंह और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य[1] के मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा कर दिया गया है। यह अवश्य ही स्वीकार किया जाना चाहिए कि बचन सिंह के मामले[1] में कई नियमों के बारे में जिनकी ओर निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है, संविधान न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया था। इसलिए दोनों ही पक्षकारों की ओर से विनिश्चय में अभिलिखित विभिन्न मतों और निष्कर्षों को विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट किया गया है तथा यह बात अविवादास्पद है कि यह विनिश्चय हम पर आबद्धकर है और इसलिए हमारे समक्ष दी गई दलीलों का संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय की परिधि के भीतर ही उत्तर देना होगा। इस आबद्धकर विनिश्चय के बारे में स्पष्ट मत होने के लिए बचन सिंह के मामले[1] में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चयाधार को कुछ विस्तारपूर्वक उल्लिखित करना आवश्यक है।

18. बचन सिंह और एक अन्य को वर्ष 1958 में प्रोन्नत किया गया था और वर्ष 1959 में क्रमशः एम० ई० एस० वर्ग 1 सेवा में ए० ई० ई० के रूप में प्रोन्नत किया गया था। उस मामले के प्रत्यर्थियों में से कुछ को प्रतियोगी परीक्षा में उनके बैठने के पश्चात् सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त किया गया था। किन्तु सभी प्रत्यर्थियों को वर्ष 1962, 1963 और 1964 में सेवा में नियुक्त किया गया था। प्रोन्नत व्यक्तियों-अपीलार्थियों की ओर से दी गई प्रथम दलील यह थी कि सीधी भर्ती के रूप में कुछ प्रत्यर्थियों की भर्ती नियमों में उपबन्ध किए गए अनुसार प्रतियोगिता परीक्षा के परिणामस्वरूप नहीं की गई थी किन्तु संघ लोक सेवा आयोग द्वारा केवल साक्षात्कार के आधार पर की गई थी जो सुसंगत नियमों के प्रतिकूल और अतिक्रमण में थी। इस प्रकार भर्ती अविधिमान्य होने से वे सेवा के सदस्य नहीं बने थे। यह कहा गया था कि यदि वे सेवा के सदस्य नहीं हैं तो वे उस मामले में प्रोन्नत व्यक्तियों-पिटीशनरों के ऊपर ज्येष्ठता का दावा नहीं कर सकते। दूसरी दलील यह थी कि ऐसे प्रत्यर्थी, जो साक्षात्कार द्वारा तथा अपीलार्थियों की सेवा में प्रोन्नत कर दिए जाने के पश्चात् प्रतियोगिता परीक्षा के परिणामस्वरूप भर्ती किए गए थे, अपीलार्थियों से पहले स्थायी पदों पर स्थायी किए जाने के लिए हकदार नहीं थे। इन दलीलों के लिए 1949 की नियमावली के स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। वर्ष 1949 से

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1969 तक के नियमों के इतिहास का संक्षेप में पुनर्विलोकन करने के पश्चात् न्यायालय का प्रथम महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि 1949 के नियमों को वर्ष 1969 में कानूनी स्वरूप प्राप्त हो चुका था क्योंकि 1969 के संशोधन के परिणाम स्वरूप वर्ग 1 के नियमों का सम्पूर्ण भाग समामेलन के पश्चात् कानूनी नियम बन गए थे। उसके पश्चात न्यायालय ने 1949 की नियमावली के नियम 3 और 4 को निर्दिष्ट किया है जब वे वर्ष 1951 में प्रवृत्त हुए थे और इस बात पर ध्यान दिया था कि एम० ई० एस० वर्ग 1 में भर्ती केवल दो स्रोतों से की जा सकती है अर्थात् नियमावली के भाग 2 के अनुसार भारत में ली गई प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा और नियमावली के भाग 3 के अनुसार प्रोन्नति द्वारा। जैसा कि निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में उल्लिखित किया जा चुका है, भाग 2 परीक्षा में प्रवेश के लिए पात्रता सहित परीक्षा लेने के लिए विस्तृत उपबन्ध बनाता है। **बचन सिंह के मामले**[1] में यह दलील दी गई थी कि प्रत्यर्थियों में से कुछ प्रत्यर्थी संघ लोक सेवा आयोग द्वारा साक्षात्कार से सीधी भर्ती किए गए थे। अन्य शब्दों में उस मामले के प्रत्यर्थियों में से कुछ नियम 3 की अपेक्षानुसार प्रतियोगिता परीक्षा में बैठे नहीं थे। नियम संघ लोक सेवा आयोग द्वारा केवल साक्षात्कार के जरिए सीधी भर्ती अनुज्ञात नहीं करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि नियम 3 के घोर अतिक्रमण में भर्ती किए गए ऐसे सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की हैसियत क्या थी। प्रोन्नत व्यक्तियों, पिटीशनरों ने यह दलील दी थी कि सीधी भर्ती वाले ऐसे व्यक्ति सेवा के सदस्य नहीं बने थे। इस दलील को अस्वीकार करते हुए संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था—

> "इंटरव्यू द्वारा वर्ग 1 की सेवा में नियुक्तियां सरकार द्वारा संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श से की गई थीं। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा चयन किया गया था। प्रतियोगी परीक्षा द्वारा नियुक्तियां निरर्थक साबित हुईं। देश में आपात स्थिति थी। एक मात्र संभव तरीका इंटरव्यू द्वारा चयन और नियुक्तियां करना था। यह नहीं कहा जा सकता कि सभी नियुक्तियां प्रोन्नति द्वारा ही की जानी चाहिए थीं। यह सेवा के हित में नहीं होता। सेवा नियमों का स्वरूप प्रशासनिक है। सरकार ने नियमों को शिथिल कर दिया। सन् 1967 में नियमों में जो संशोधन किए गए थे उनसे इंटरव्यू द्वारा नियुक्तियों की स्थिति की वास्तविकता को मान्यता दी गई।

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस०.सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

> यही कारण है कि सन् 1967 में जो संशोधन किए गए थे उनमें इस बात को मान्यता दी गई थी कि "प्रतियोगी तदर्थ नियुक्तियों द्वारा सीधी भर्ती का 50 प्रतिशत उन स्नातक इंजीनियरों के लिए आरक्षित किया जाना था जिन्हें अस्थायी आधार पर सशस्त्र बलों में कमीशन दिया गया था।"

पूर्ववर्ती प्रक्रम पर न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वर्ष 1962 1963 और 1964 के दौरान विशेषतया वर्ष 1969 तक वर्ग 1 के सेवा नियम कानूनी स्वरूप के नहीं थे। केन्द्रीय सरकार ने वर्ग की सेवा में साक्षात्कार द्वारा भर्ती और सीधी भर्ती के लिए प्रोन्नति द्वारा भर्ती दोनों के ही सम्बन्ध में नियम द्वारा तय किए गए कोटा के सम्बन्ध में नियमों में छूट दी थी। हमारे समक्ष अपीलार्थियों की ओर से दी गई इस दलील को ध्यान में रखते हुए नियम 4 अनिवार्य रूप से अनुसरण किए जाने के लिए कोटा विहित नहीं करता है किन्तु केवल अधिकतम सीमा विहित करता है तथा सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों में से कुछ की ओर से श्री पी० आर० मृदुल ने यह दलील दी कि नियम 4 अनिवार्य रूप से कोटा विहित करता है तथा किसी भी प्रकार से उसका अतिक्रमण नियुक्त व्यक्तियों को कोटा से अधिक को अविधिमान्य बना देगा। जैसा कि बचन सिंह के मामले[1] में अभिनिर्धारित किया गया है कि नियम 4 कोटा विहित करता है। हम इसी के अनुसार विचार करेंगे। यदि दलील पर हमें विचार करना है तो उसके बारे में हमारे स्वयं के कुछ विचार हैं। तथापि जैसा कि आबद्धकारी विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि नियम 4 में सीधी भर्ती वाले और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच 9:1 का कोटा नियम विहित करता है। हम इसी आधार पर आगे विचार करेंगे। इसके पश्चात् न्यायालय ने इस बात पर ध्यान दिया है कि वर्ष 1962 में आपात स्थिति थी। वर्ग की सेवा में अस्थायी पदों को भरने के लिए इंजीनियरों की तुरन्त आवश्यकता थी। इस आपात स्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श से विज्ञापन द्वारा तथा संघ लोक सेवा आयोग द्वारा केवल साक्षात्कार से अभ्यर्थियों की भर्ती करने का विनिश्चय किया था। सरकार ने संघ लोक सेवा आयोग के चयन और साक्षात्कार की सहायता से वर्ष 1962, 1963 और 1964 में वर्ग 1 की सेवा में कुछ प्रत्यर्थियों को सीधे भर्ती किया था। अभ्यर्थियों का मौखिक परीक्षा के पश्चात चयन किया गया था। इसके पश्चात न्यायालय ने उन रिक्तियों की ओर ध्यान दिया था जो वर्ष 1951

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से 1971 के बीच हुई थीं और यह निष्कर्ष निकाला था कि आपात स्थिति के कारण ही अस्थायी पदों को भरने के लिए कोटा की विभागीय प्रोन्नतियां और सीधी भर्ती दोनों के लिए अपेक्षा की गई थी। यह मत अपनाने के पश्चात् न्यायालय ने इस दलील का उत्तर दिया था कि क्या नियमों द्वारा अनुज्ञात न की गई पद्धति द्वारा उस मामले में प्रत्यर्थियों में से कुछ प्रत्यर्थियों की भर्ती वैध और विधिमान्य थीं जिसके कारण न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करने और उसका उत्तर देने की आवश्यकता हो गई थी कि क्या सरकार को नियमों में छूट देकर भर्ती करने की शक्ति थी। इस संबंध में न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "यह स्पष्ट है कि वर्ष 1959 से 1969 के दौरान अपीलार्थियों और अन्य विभागीय प्रोन्नतियों के मामले मे नियमों के पालन किए जाने में कुछ शिथिलता की गई थी। संघ सरकार ने पूर्णतया संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श से कार्यवाही की। विभागीय प्रोन्नतियों को इन नियमों के शिथिल कर दिए जाने से काफी लाभ पहूंचा। सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों को बिल्कुल भी अधिमान नहीं दिया गया था। विभागीय प्रोन्नत व्यक्तियों और इंटरव्यू द्वारा सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की पुष्टि का अनुपात 1:1 था।"

इसके पश्चात् न्यायालय ने उन सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की, जो संघ लोक सेवा आयोग द्वारा साक्षात्कार के पश्चात् नियुक्त किए गए थे, नियुक्ति को यह अभिनिर्धारित करते हुए कायम रखा था कि उस प्रतियोगिता परीक्षा के बारे में तथा दोनों नियमों के बारे में शिथिलता बरती गई थी तथा प्रोन्नतियां कोटा नियम में शिथिलता बरतने के पश्चात की गई थीं। न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया था कि सीधी भर्ती वाले व्यक्ति, जो साक्षात्कार द्वारा नियुक्त किए गए थे, सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के वर्ग के अन्तर्गत आते थे।

19. **बचन सिंह के मामले**[1] के विनिश्चय से कौन सी बात उद्भूत होती है। 1949 के नियमों को और उसके पश्चातवर्ती संशोधनों को वर्ष 1969 में कानूनी स्वरूप प्राप्त हो गया था तथा 1949 के नियमों को केवल वर्ष 1969 में ही आमेलन द्वारा कानूनी स्वरूप प्राप्त हुआ था और तब तक वे केवल प्रशासनिक अनुदेश थे। 1949 की नियमावली का नियम 3 केवल दो स्रोतों से अर्थात प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा और प्रोन्नति द्वारा ही भर्ती

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुज्ञात करता है। नियम 4 सरकार को कोई विशेष रिक्ति या ऐसी रिक्तियां, जो किसी विशेष कालावधि के दौरान भरी जाने के लिए अपेक्षित हों, भरने के लिए सरकार को अनुज्ञात करता है। नियम 4 सरकार को किन्हीं विशेष रिक्तियों को भरने के प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली कोई पद्धति या पद्धतियां और प्रत्येक पद्धति द्वारा भर्ती किए जाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या तय करने के लिए भी अनुज्ञात करता है। नियम 3 भर्ती के स्रोतों अर्थात सीधी भर्ती और प्रोन्नति द्वारा भर्ती के लिए उपबंध करता है। नियम 4 सरकार को उसके परन्तुक के अध्यधीन किसी भी सेवा से रिक्तियां भरने के लिए विवेकाधिकार देता है। बचन सिंह के मामले[1] के के अनुसार नियम 4 कोटा विहित करता है। नियम 24, जो वर्ष 1967 में पुरःस्थापित किया गया था, लिखित में लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों के आधार पर केन्द्रीय सरकार को संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श के पश्चात व्यक्तियों/पदों के वर्ग या प्रवर्ग के सम्बन्ध में सब नियमों में अथवा किन्हीं नियमों में शिथिलता बरतने के लिए शक्ति प्रदत्त करता है। जैसा कि, 1949 के नियम वर्ष 1969 तक गैर-कानूनी स्वरूप के थे तथा इस न्यायालय ने यह देखा है कि 1949 के नियमों में छूट देने की शक्ति वर्ष 1969 तक थी तथा वर्ष 1961, 1962 और 1963 के दौरान छूट देने की शक्ति का प्रयोग किया गया था क्योंकि इस कालावधि के दौरान आपात स्थिति थी। सरकार को बहुत से इंजीनियरों की आवश्यकता थी इसलिए उसे नियमों में छूट देकर नियमों द्वारा विहित पद्धति का प्रयोग न करके भर्ती करनी पड़ी थी तथा इसी मत के अनुसार बहुत से व्यक्तियों की विभागीय प्रोन्नति की गई थी जो कोटा नियम में छूट देने की कोटि में आएगा। इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि सरकार को 1949 के नियमों में तब तक छूट देने की शक्ति थी जब तक कि उन्हें वर्ष 1969 में कानूनी स्वरूप प्राप्त नहीं हो गया था तथा सरकार ने नियमों में छूट देने की शक्ति का प्रयोग करने के पश्चात् दोनों ही स्रोतों से भर्ती की थी। यह विनिश्चयाधार हम पर आबद्धकर है।

20. इसके अतिरिक्त भारत सरकार की ओर से इस मामले में फाइल किए गए मामले के तथ्य-कथन में यह स्वीकार किया गया है कि सेवा की अत्यावश्यकता को देखते हुए वर्ष 1951 से 1963 के बीच सहायक कार्यपालिक इंजीनियर के काडर में प्रोन्नति के मामले में छूट दी गई थी।

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियम 24 लिखित में उस आशय का आदेश करके तथा संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श के पश्चात् नियम में छूट देकर के भर्ती करने के लिए सरकार को समर्थ बनाता है। यथार्थ रूप से कहने पर नियम 24 मुश्किल से ही सहायक है चूंकि नियम वर्ष 1967 में पुर: स्थापित किया गया था तथा हमारा संबंध वर्ष 1959-1961-1962-1963 से है। हमने भारत संघ के विद्वान् काउन्सेल श्री अब्दुल खादर से यह पूछा है कि क्या नियमावली में छूट देकर भर्ती करने के लिए प्रत्येक भर्ती के समय आदेश किए गए थे तथा यदि ऐसे आदेश संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श के पश्चात किए गए थे तथा यदि ऐसे आदेश अस्तित्व में हैं तो उन्हें पेश किया जाए। इस प्रश्न के अनुसरण में तारीख 7 दिसम्बर, 1982 को ले० कर्नल एस० सी० सेठी, स्टाफ आफिसर [कार्मिक] द्वारा एक शपथपत्र फाइल किया गया था। यह शपथपत्र प्रश्न की संतुष्टि नहीं करता है तथा मुश्किल से ही इस बात पर प्रकाश डालता है। वह केवल कोटा में परिवर्तन को ही निर्दिष्ट करता है अर्थात् कोटा वर्ष 1963 के अन्त तक 9:1 से बढ़ाकर 1:1 अनुपात कर दिया गया था तथा कोटा पुन: वर्ष 1964 के पश्चात् 9:1 कर दिया गया था तथा वर्ष 1969 की कानूनी नियमावली द्वारा कोटे का पुनरीक्षण किया गया था। इस शपथपत्र के साथ कुछ पत्र-व्यवहार भी जोड़ा गया है जो मुश्किल से ही न्यायालय द्वारा उठाए गए प्रश्न पर प्रकाश डालता है।

21. यदि नियम 3, उन स्रोतों को, जिनसे भर्ती की जा सकती है, उपदर्शित करते हुए भर्ती की पद्धतियों के लिए उपबंध करता है तथा यदि नियम 3 सरकार को किसी भी स्रोत भर्ती करने के लिए विवेकाधिकार प्रदत्त करता है तो नियम 4 एक सीमा से प्रारंभ होता है अर्थात् वह नियम 3 के अध्यधीन है। अब यदि, जैसा कि बचन सिंह के मामले[1] में अभिनिर्धारित किया गया है, 1949 के नियम कोटा विहित करते समय केन्द्रीय सरकार को नियमावली में छूट देकर भर्ती करने के लिए शक्ति प्रदत्त करते हैं तो इस शक्ति में कोटा नियम में छूट देकर भर्ती करना विवक्षित है तथा यह बात स्वीकार की गई है कि आपात् स्थिति और सेवा की अत्यावश्यकता के कारण नियमों में छूट देकर के भर्ती की गई थी। अब जहां नियम दो स्त्रोतों से भर्ती के लिए उपबंध करता है और इसके साथ ही कोटा भी विहित करता है, वहां जब तक कि नियमों में छूट देने की शक्ति न हो, जैसा कि बहुत से विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है, किसी भी स्रोत से कोटा से अधिक की गई भर्ती अवैध होगी तथा अधिक भर्ती किए गए व्यक्ति, जब

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तक कि वे पश्चात्वर्ती वर्षों में कोटा में समायोजित हो करके अपना स्थान प्राप्त नहीं कर लेतें तब तक वे सेवा के सदस्य नहीं होंगे। एस० ओ० जयसिंघानी बनाम भारत संघ और अन्य[1] के मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था—

"तदनुसार हमारी यह राय है कि वर्ष 1951 से 1956 तक के वर्षों में से प्रत्येक वर्ष के लिए और उससे आगे के लिए विहित कोटा से अधिक वर्ग 1, ग्रेड 2 सेवा में वर्ग 2, ग्रेड 3 से प्रोन्नत व्यक्ति अवैध रूप से प्रोन्नत किए गए हैं तथा अपीलार्थी परमादेश के स्वरूप का रिट पाने के लिए तथा अपीलार्थी सं० 1 से 3 तक को अपीलार्थी की ज्येष्ठता का समायोजन करवाने के लिए तथा उसके समान स्थिति के इसी प्रकार के अन्य अधिकारियों को समायोजित करने के लिए तथा विहित कोटा नियम के अनुसार वर्ष 1951 से 1956 तक की कालावधि के लिए और उससे आगे की भर्ती को समायोजित करने के पश्चात् विधि के अनुसार नवीन ज्येष्ठता सूची तैयार करने के लिए निदेश दिलवाने हेतु हकदार है।..........."

22. इस निष्कर्ष पर पहुंचते समय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मनमानी शक्ति का अभाव उस नियम की प्रथम आवश्यक बात है जिस पर हमारी संपूर्ण सांविधानिक पद्धति आधारित है। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि विधि द्वारा शासित पद्धति में विवेकाधिकार, जब कार्यपालिक अधिकारियों को प्रदत्त किया गया हो, स्पष्ट रूप से परिभाषित सीमाओं के भीतर ही सीमित होना चाहिए। इस मत की पुनः बी० एस० गुप्त बनाम भारत संघ और अन्य[2] तथा बी० एस० गुप्त और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य[3] के मामलों में पुनः पुष्टि की गई थी। किन्तु इस निष्कर्ष का वहां अनुसरण नहीं किया जाएगा जहां नियम भर्ती के स्रोत, भर्ती की पद्धतियां तथा कोटा विहित करते हों और वे ही नियम साथ-साथ सरकार को नियमों में छूट देकर के भर्ती करने की शक्ति प्रदत्त करते हों, जब तक कि असद्भाव अभिकथित न किया गया हो। इस प्रकार नियम जहां सरकार को सेवा की अत्यावश्यकता का सामना करने के लिए

---

[1] [1967] 2 एस० सी० आर० 718.

[2] [1975] सप्लीमेंट एस० सी० आर० 491.

[3] [1975] 1 एस० सी० आर० 104.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नियमों में छूट देकर विवेकाधिकार प्रदत्त करते हों वहां नियमों में छूट देकर की गई कोई भी भर्ती अविधिमान्य नहीं होगी। अब यह बात एन० के० चौहान और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य[1] के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को देखते हुए अनिर्णीत विषय नहीं रही है। उस मामले में इस न्यायालय के समक्ष मुम्बई सरकार के तारीख 30 जुलाई, 1959 का संकल्प विचारार्थ पेश हुआ था जिसमें यह निदेश दिया गया था कि जहां तक व्यवहार्य हो तारीख 1 जनवरी, 1959 से काडर में होने वाली मूल रिक्तियों का 50 प्रतिशत संकल्प से संलग्न नियमों के अनुसार चयन किए जाने वाले अभ्यर्थियों के नाम-निर्देशन द्वारा भरा जाना चाहिए। यह दलील दी गई थी कि संकल्प एक कोटा विहित करता है तथा सरकार को कोटा में छूट देकर के भर्ती करने का कोई विवेकाधिकार नहीं है। इसलिए जय सिंघानी के मामले[2] में और बी० एस० गुप्त के दोनों मामलों में विनिश्चय को देखते हुए कोटा से अधिक की गई कोई भी भर्ती अविधिमान्य होगी। इस दलील को अस्वीकार करते हुए और जय सिंघानी के मामले[2] में और बी० एस० गुप्त के दोनों मामलों के विनिश्चय के बीच प्रभेद करते हुए न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि नियम का अर्थ यह है कि जहां तक संभव हो कोटा पद्धति अवश्य ही कायम रखी जानी चाहिए और यदि वह व्यवहार्य न हो तो अनिश्चितकाल तक स्थान खाली पटक रखने की बजाय नियमित प्रक्रिया को लागू करके सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के स्थान पर प्रोन्नत व्यक्ति और प्रोन्नत व्यक्तियों के स्थान पर सीधी भर्ती वाले व्यक्ति पदासीन किए जा सकते हैं। मामले के तथ्यों की परीक्षा करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य ने यथासंभव खुले बाजार से मूल रिक्तयों का 50 प्रतिशत भरने का प्रयत्न किया था किन्तु वर्ष 1960-62 के दौरान वह असफल रही थी और इसलिए ऐसे मामलातदारों को, जो अन्यथा दक्षता की अपेक्षाओं को पूरा करते थे, प्रोन्नत करना सुसंगत नियम के अधीन उसकी शक्तियों के भीतर था। इस प्रकार यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि जब भर्ती विहित कोटा के अध्यधीन दो स्वतन्त्र स्रोतों से की गई हो किन्तु सरकार को नियमों में छूट देकर के भर्ती करने की शक्ति भी प्रदत्त की गई हो तो कोटा नियम के प्रतिकूल की गई कोई भी भर्ती तब तक अविधिमान्य नहीं होगी जब तक कि यह न दर्शाया गया हो कि छूट देने की शक्ति का असद्भाविक रूप से प्रयोग किया गया था। यहां पर यह

---

[1] [1977] 4 उम० नि० प० 615=[1977] 1 एस० सी० आर० 1037.

[2] (1967) 2 एस० सी० आर० 703.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दलील नहीं दी गई है और न ही ऐसी कोई दलील बचन सिंह के मामले[1] में दी गई थी। बचन सिंह के मामले[1] में न्यायालय ने वर्ष 1959 से 1969 के बीच इंजीनियरों की भर्ती के मामले में आपात स्थिति को विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट किया है किन्तु तथ्य संबंधी उस स्थिति पर कोई विवाद नहीं किया गया था किन्तु उसे हमारे समक्ष स्वीकार किया गया है। इसी आपात् स्थिति और इंजीनियरों की तुरंत भर्ती की अतिआवश्यकता के कारण ही सरकार को प्रतियोगिता परीक्षा को छोड़कर तथा वर्ग 1 सेवा में अधीनस्थ रैंक के व्यक्तियों को प्रोन्नत करके कोटा नियम में छूट देकर के भर्ती करनी पड़ी थी। पिटीशनर और उसके समान पद वाले व्यक्ति कोटा नियम में छूट देकर सेवा की अतिआवश्यकता को पूरा करने के लिए इस प्रकार प्रोन्नत किए गए थे।

23. अब यदि नियम 3 के प्रतिकूल अर्थात् संघ लोक सेवा आयोग की मार्फत साक्षात्कार द्वारा, जो कि भर्ती का मान्यता प्राप्त ढंग नहीं है, की गई भर्ती को बचन सिंह के मामले[1] में इस आधार पर विधिमान्य ठहराया गया है कि भर्ती नियमों में छूट देकर के की गई थी तो उसका इस बात के परिणामस्वरूप अवश्य ही अनुसरण किया जाना चाहिए कि उसी आपात् स्थिति ने सरकार को छूट देने की शक्ति का प्रयोग करते हुए कोटा से अधिक ए० ई० ई०—वर्ग 1 के पद पर इंजीनियरों की प्रोन्नति द्वारा भर्ती के लिए सरकार को बाध्य किया था तथा ऐसी भर्ती स्वतः ही विधिमान्य होगी। प्रोन्नत व्यक्ति विधिमान्य रूप से प्रोन्नत किए जाने से सेवा के सदस्य हो जाएंगे चूंकि कोटा नियम में छूट दी गई थी। क्या रिक्तियां स्थायी काडर में अथवा अस्थायी काडर में थी, यह बात असंगत है चूंकि उनमें से किसी भी व्यक्ति को इस आधार पर पदावनत नहीं किया गया है कि अब कोई रिक्ति उपलभ्य नहीं है। अपीलार्थी और उसी के समान स्थिति वाले व्यक्ति नियम 3 (2) में उपबंध किए गए अनुसार प्रोन्नति द्वारा भर्ती किए गए थे तथा यह बात अवश्य ही स्वीकार की जानी चाहिए कि इन वर्षों के दौरान प्रोन्नति द्वारा भर्ती नियम 4 में उपबंध किए गए कोटा से अधिक थी। किन्तु भर्ती कोटा नियम सहित नियमों में छूट देकर सेवा की अत्यावश्यकता को पूरा करने के लिए की गई थी इसलिए कोटा से अधिक प्रोन्नति विधिमान्य होगी। इस संबंध में इस बात का स्मरण कराया जा सकता है कि "सेवा" पद को मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विस क्लास 1 के अर्थ के

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूप में परिभाषित किया गया है। नियम सेवा की संख्या के प्रश्न पर मौन है। सेवा की अत्यावश्यकता और राज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अस्थायी पद काडर की संख्या के अतिरिक्त तब तक अस्थायी होंगे जब तक कि इसके प्रतिकूल यह बात स्पष्ट नहीं कर दी जाती है कि अस्थायी पद कतिपय कालावधि के लिए ही अथवा अस्थायी पदों पर नियुक्तियां ऐसे समय तक तदर्थ प्रकृति की हैं जब तक कि नियमों के अनुसार भर्ती नहीं की जाती है। ऐसे किसी उपबंध के अभाव में स्थायी पद और अस्थायी पद धारण करने वाले व्यक्ति सेवा के सदस्य हो जाएंगे जब कि अस्थायी पदों पर भर्ती वैध और विधिमान्य है। एक बार भर्ती के वैध और विधिमान्य हो जाने पर स्थायी पदों और अस्थायी पदों के धारकों के बीच कोई अंतर नहीं है जहां तक कि वह सेवा के सब सदस्यों से संबन्धित है। एस० बी० पटवर्धन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य[1] के मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि इस प्रकार का कोई सर्वमान्य नियम नहीं है कि किसी काडर में स्थायी और अस्थायी कर्मचारी दोनों ही नहीं हो सकते अथवा उस में दोनों ही प्रकार के कर्मचारी होने चाहिए। प्राथमिक रूप से यह बात ऐसी किसी विशेष सेवा को जिसके काडर के गठन के संबंध में प्रश्न उद्भूत हुआ है, लागू होने वाले नियमों और विनियमों की विषयवस्तु है। 1949 के नियम इस पहलू पर कोई प्रकाश नहीं डालते हैं और इसलिए यदि भर्ती किसी भी स्रोत से की जाती है और वह अन्यथा वैध और विधिमान्य है तो अस्थायी पदों पर भर्ती किए गए व्यक्ति सेवा के सदस्य हो जाएंगे।

24. अपीलाधीन निर्णय देते समय उच्च न्यायालय ने दुर्भाग्य से इस पहलू की परीक्षा नहीं की। यद्यपि इस बात पर बलपूर्वक तर्क दिया गया था जिसका परिणाम यह था कि पुनः पिटीशनें निर्णय के ठीक अगले दिन ही उच्च न्यायालय में वर्तमान अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा फाइल किए गए मेमो पर विनिश्चय के लिए रख ली गई थीं जिसमें न्यायालय को यह सूचना दी गई थी कि रिट पिटीशनों की सुनवाई के समय तर्क के दौरान उसके द्वारा दी गई कई महत्वपूर्ण दलीलों पर उच्च न्यायालय के तारीख 15 मई, 1979 के निर्णय में न्यायालय द्वारा ध्यान नहीं दिया गया है। उन दलीलों में से एक दलील यह थी कि भारत संघ ने मामले के तथ्य-कथन में यह स्वीकार किया था कि चूंकि सीधी भर्ती वाले व्यक्ति उस कालावधि

[1] [1977] 3 एस० सी० आर० 775.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के दौरान उपलब्ध नहीं थे इसलिए सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के लिए प्रतियोगिता परीक्षा की अर्हता में पूर्ण रूप से छूट दी गई थी तथा केवल संघ लोक सेवा आयोग द्वारा साक्षात्कार को पर्याप्त समझा गया था। अधीनस्थ रैंकों के बहुत से व्यक्तियों को प्रोन्नति देनी पड़ी थी किन्तु न्यायालय द्वारा इस पहलू की परीक्षा नहीं की गयी थी। इस दलील को नामंजूर करते हुए उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि विद्वान् काउन्सेल केन्द्रीय सरकार की ओर से फाइल किए गए आपत्तियों के विवरण में तथा प्रकथन (प्रदर्श एफ) में उस आशय की कोई स्पष्ट स्वीकारोक्ति बतलाने में समर्थ नहीं थे कि सेवा की अत्यंत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संघ लोक सेवा आयोग के परामर्श से सरकार द्वारा उक्त नियमों के अनुपालन में समय-समय पर छूट दी गई है और उक्त आधार विद्वान् काउन्सेल की इच्छानुसार अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त नहीं था। सादर उच्च न्यायालय ने इस पहलू से मामले में निष्कर्ष निकालने में गलती की थी। वास्तव में उच्च न्यायालय द्वारा अपना विनिश्चय देने से पूर्व **बचन सिंह के मामले**[1] में संविधान न्यायपीठ का निर्णय प्रकाशित हो गया था और जैसा कि हमारे द्वारा बतलाया गया है इस न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया था कि दोनों सेवाओं से भर्ती नियमों में छूट देकर के की गई थी। इस न्यायालय में फाइल किए गए तथ्य-कथन में उस आशय की विनिर्दिष्ट स्वीकारोक्ति है। इसलिए हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर करने में गलती की थी।

25. अगला प्रश्न यह है कि कोटा नियम सहित 1949 के नियमों में छूट देकर के सेवा में भर्ती किए गए प्रोन्नत व्यक्तियों और सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता तत्समय प्रवृत्त किस सिद्धांत के आधार पर अवधारित की जानी थी तथा किस प्रकार से उन्हें कार्यपालिक इंजीनियरों के काडर में और आगे प्रोन्नत किए जाने के लिए ए० ई० ई० के काडर में आमेलित किया जाना था।

26. अपीलार्थी ने तारीख 14 जून, 1974 को केन्द्रीय सरकार द्वारा तैयार की गई ज्येष्ठता सूची पर आक्षेप किया है। आक्षेपित ज्येष्ठता सूची के पूर्व ए० ई० ई० की ज्येष्ठता सूची वर्ष 1963 में तैयार की गई थी जिसमें वर्तमान अपीलार्थी का स्थान क्रम सं० 357 पर था। वर्ष 1967 में तैयार की गई एक अन्य ज्येष्ठता सूची भी थी जिसमें अपीलार्थी क्रम सं०

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

234 पर था। इसके पश्चात् बचन सिंह के मामले[1] में संविधान न्यायपीठ का विनिश्चय हुआ था जिस पर केन्द्रीय सरकार ने ऊपर उल्लिखित दोनों ज्येष्ठता सूचियों को अपास्त कर दिया था तथा बचन सिंह के मामले[1] के विनिश्चय से निकाले गए आधार पर, जिसे इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में उल्लिखित किया गया है एक नवीन सूची तैयार की थी। इस ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी का कोई स्थान नहीं था क्योंकि वह अभी भी 1974 की ज्येष्ठता सूची में अधिक्य में था और वह सेवा से बाहर त्रिशंकु के रूप में लटक रहा था क्योंकि उसे वर्ष 1951 में सेवा के गठन की तारीख से कोटा का सिद्धांत लागू करने के पश्चात् निकाल दिया गया था। इस निष्कर्ष के दुःखद परिणाम का केवल यह बात बतलाकर के अंदाज लगाया जा सकता है कि अपीलार्थी, जिसे ए० ई० ई० के रूप में वर्ष 1962 में प्रोन्नत किया गया था और जिसने आज तक बिना किसी हस्तक्षेप के पद धारित किया है, 1976, 1977 और 1978 की सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों से कनिष्ठ होगा। यदि दुर्भाग्य से विधि इसी आशय की है तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्या विधि इतनी अन्यायोचित हो सकती है? चूंकि विधि किसी का सम्मान नहीं करती है इसलिए व्यक्ति को उसका मार्ग स्वयं ही चुनना चाहिए। किन्तु क्या यह विधि है? अथवा इस दृष्टिकोण में ऐसे महत्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा कर दी गई है जिसका इस प्रश्न से सम्बन्ध है।

27. केन्द्रीय सरकार की यह दलील है कि 1963 और 1967-68 की पूर्ववती ज्येष्ठता सूचियां किसी विशेष सिद्धांत के अनुसार तैयार नहीं की गई थी। केन्द्रीय सरकार के तथ्य-कथन के पैरा 4 में यह कहा गया है कि वर्ष 1963 से पूर्व तैयार की गई ज्येष्ठता सूची किन्हीं निश्चित नियमों के आधार पर आधारित नहीं थी, किन्तु विभाग के क्रियाकलापों को विनियमित करने के लिए तत्समय उपलभ्य नियमों के आधार पर अस्थायी रूप से तैयार की गई थी। यह कथन किसी सीमा तक अपने आप में परस्पर विरोधी होने के अतिरिक्त गुमराह करने वाला है तथा इस विषय से सम्बन्धित सुसंगत नियमों के निर्देश द्वारा नहीं बतलाया जा सकता।

28. सेवा विधि-शास्त्र का यह अच्छी तरह से सुस्थिर सिद्धांत है कि ज्येष्ठता के किसी भी नियम को अनुच्छेद 16 में उल्लिखित लोक सेवा में समता के अवसर की कसौटी को पूरा करना होता है। इसके समान ही सेवा विधि-शास्त्र की यह अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त कसौटी है कि एक ही सेवा

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सदस्यों की पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए किसी अन्य विधिमान्य नियम के अभाव में सतत् रूप से धारण करने अथवा सेवा की कालावधि अथवा सेवा में प्रवेश करने की तारीख और उसके पश्चात् बिना किसी हस्तक्षेप के सतत् रूप से सेवा का नियम विधिमान्य होगा और अनुच्छेद 16 की कसौटी को पूरा करेगा। तथापि जैसा कि हम अब बतलाएंगे हमें पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए इस सामान्य सिद्धांत से पीछे हटने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारे मत में एम० ई० एस० वर्ग 1 सेवा में सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच पारस्परिक ज्येष्ठता को लागू होने वाला विनिर्दिष्ट नियम है और वह वर्ष 1974 तक प्रवृत्त रहा था जबकि आक्षेपित ज्येष्ठता सूची तैयार की गई थी।

29. 1949 के नियमों में, जो तारीख 1 अप्रैल, 1951 से प्रवृत्त हुए थे, सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए एक उपबन्ध किया गया था। 1949 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के पैरा 3 (iii) में यह उपबन्ध किया गया था कि एक रोस्टर रखा जाएगा जिसमें वह क्रम दर्शाया जाएगा जिसमें भर्ती नियमावली में भर्ती की प्रत्येक पद्धति के लिए नियत प्रतिशत के अनुसार और सीधी भर्ती और प्रोन्नति द्वारा नियुक्तियां की जाती हैं। प्रोन्नत व्यक्तियों सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता उन तारीखों द्वारा अवधारित की जाएगी जिन पर सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए आरक्षित रिक्तियां होती हैं। इस प्रकार यह बात स्पष्ट होगी कि यह नियम नियम 4 में विहित सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों और प्रोन्नत व्यक्तियों के बीच 9 : 1 के कोटा से सम्बन्धित था। नियम 4 और परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह बात स्पष्ट रूप से सामने आएगी कि कोटा से सुसंगत एक रोस्टर रखा जाना चाहिए ताकि प्रोन्नत व्यक्तियों और सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की सापेक्षिक पारस्परिक ज्येष्ठता उस तारीख से अवधारित की जा सके जिस पर रिक्तियां हुई हैं तथा रिक्ति सीधी भर्ती वाले व्यक्ति अथवा प्रोन्नत व्यक्ति के लिए है। यदि नियम 4 द्वारा विहित कोटे का पालन किया जाता है अथवा उसका अतिक्रमण नहीं किया जाता तो परिशिष्ट 5 के भाग 3(iii) में प्रतिपादित ज्येष्ठता के नियम को पूर्ण रूप से लागू करना होगा तथा ज्येष्ठता सूची उसके अनुसार तैयार करनी होगी। किन्तु जैसा कि **बचन सिंह के मामले**[1] में इस न्यायालय द्वारा बतलाया

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है कि वर्ष 1959, 1969 और विशेषतया वर्ष 1962, 1963 और 1964 के दौरान इंजीनियरों की भर्ती के लिए प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण सरकार को कोटा नियम में छूट देकर के नियम 3 और 4 में भी पूर्ण रूप से छूट देकर के भर्ती करनी पड़ी थी। चूंकि कोटा नियम प्रत्यक्ष रूप से ज्येष्ठता नियम से आन्तरिक रूप से सम्बन्धित था और कोटा नियम को एक बार छोड़ देने पर परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) में प्रतिपादित ज्येष्ठता का नियम पूर्ण रूप से विफल और निष्प्रभावी हो जाएगा। इसके समान ही इस बात को भी अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है कि जहां कोटा नियम ज्येष्ठता नियम से जुड़ा हुआ हो और यदि कोटा नियम का भंग किया जाता है अथवा ज्येष्ठता नियम को प्रभावी करने के लिए उसका वैध रूप से पालन नहीं किया जाता है तो ज्येष्ठता नियम को प्रभावी करना अन्यायोचित, अयुक्तियुक्त और अनुचित होगा। इस न्यायालय द्वारा इसी के समान स्थिति पर बी० एस० गुप्त वाले प्रथम मामले[1] में विचार किया गया था जिसमें इस न्यायालय ने प्रोन्नत व्यक्तियों की इस दलील को कि कोटा नियम और ज्येष्ठता नियम एक दूसरे से स्वतन्त्र होने चाहिए, नामंजूर करते समय यह अभिनिर्धारित किया था कि बहुत से पदों को अपग्रेड करने से तथा उन पर प्रोन्नत व्यक्तियों की नियुक्तियां करने से कोटा नियम समाप्त हो जाएगा। इसलिए एक बार कोटा नियम में सेवा की अपेक्षाओं के अनुसार वर्ष 1959 और 1969 के बीच पूर्ण रूप से छूट दे दी गई थी तथा कोटा नियम में छूट देकर के की गई भर्ती तथा सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के लिए न्यूनतम अर्हता के नियम को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया था और पैरा 3(iii) में प्रतिपादित ज्येष्ठता नियम को प्रभावी नहीं किया जा सकता था जो कि कोटा नियम से पूर्ण रूप से जुड़ा हुआ था और अपने स्वयं के बल पर वह पृथक रूप से अस्तित्व में नहीं रह सकता था। केन्द्रीय सरकार द्वारा यह बात विवक्षित रूप से स्वीकार की गई थी तथा ए० ई० ई० के सम्बन्ध में वर्ष 1963 में और 1967-68 में तैयार की गई ज्येष्ठता सूचियों में विवक्षित है क्योंकि ये दोनों ज्येष्ठता सूचियां 1 सितम्बर, 1949 के सेना अनुदेश सं० 1950 के 241 के परिशिष्ट "ए" में प्रतिपादित ज्येष्ठता नियम के अनुसार तैयार की गई थीं और न कि परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) के अनुपालन में तैयार की गई थीं।

30. रक्षा मंत्रालय ने सेना अनुदेश सं० 1950 का 241 जारी किया था जिसे 'सीनियोरिटी ग्राफ सीविलियन एम्पलाइज इन लोअर फारमेशन्स'

---

[1] (1975) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 491.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के नाम से कहा गया है जिसमें यह उपबन्ध है कि तारीख 1 सितम्बर, 1950 के रक्षा मन्त्रालय के कार्यालय ज्ञापन सं० 0240/6362/डी-12 के पैरा 2 में अन्तर्विष्ट आदेशों के अनुसार, जिन्हें इस अनुदेश के परिशिष्ट "ए" के रूप में प्रकाशित किया गया है। किसी विशेष ग्रेड में नियोजित व्यक्तियों की ज्येष्ठता इसमें उपदर्शित किए गए अनुसार अवधारित की जानी है। परिशिष्ट "ए" ज्येष्ठता का नियम पुनः उद्धृत करता है जिसका सहायकों के ग्रेड में आदर्श के रूप में अनुसरण किया गया था और जिसे रक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकार किया गया था। उसमें प्रतिपादित ज्येष्ठता का सिद्धांत यह है कि सहायकों के काडर में पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के नियम को सामान्यतया अन्य सेवकों के लिए ज्येष्ठता के नियम विरचित करते समय आदर्श रूप में माना जाना चाहिए तथा किसी विशेष ग्रेड में नियोजित व्यक्तियों के संबंध में ज्येष्ठता सामान्य नियम के अनुसार उस ग्रेड में तथा उसके समान ग्रेड में सेवा की कुल कालावधि के आधार पर इस तथ्य के बावजूद अवधारित की जानी चाहिए कि पश्चात्कथित व्यक्ति भारत या पाकिस्तान में केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार के अधीन थे। ज्येष्ठता का यही नियम था जो एम० ई० एस० वर्ग 1 की सेवा के लिए विनिर्दिष्ट रूप में अधिनियमित किसी अन्य नियम के अभाव में लागू होगा। विश्वासपूर्वक यह दलील दी जा सकती है कि 1949 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के भाग 3(iii) में प्रतिपादित ज्येष्ठता का नियम विनिर्दिष्ट रूप से एम० ई० एस० वर्ग 1 सेवा के लिए अधिनियमित किया गया था तथा विशेष नियम सेना अनुदेश सं० 1950 का 241 में जारी किए गए सामान्य नियम के ऊपर प्रभावी होगा। किन्तु जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) का नियम उस समय निष्प्रभावी हो गया था जब कोटा नियम में छूट दी गई थी। इसे 1953 की नियमावली अधिनियमित करते समय रक्षा मन्त्रालय द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी। परिशिष्ट 5 के पैरा 3 में यह उपबन्ध किया गया था कि ज्येष्ठता का अवधारण करने के सिद्धांत विचाराधीन हैं। यह उपधारणा करने पर भी कि 1949 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) में ज्येष्ठता नियम लागू हो चुका है, तो भी वह 1953 की नियमावली द्वारा न्यून किया गया प्रतीत होता है चूंकि यह स्पष्ट उपबन्ध किया गया है कि ज्येष्ठता का अवधारण करने के सिद्धांत विचाराधीन हैं। इसी प्रकार की स्थिति को 1961 की नियमावली में मान्यता प्रदान की गई है। 1961 के नियमों में किसी सीमा तक 1949 के नियमों को कानूनी स्वरूप प्रदान किया गया है। 1961 की नियमावली के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट 4 के पैरा 3 में यह कहा गया था कि सेवा के अर्थात् मिलिट्री इंजीनियर सर्विस क्लास i के सदस्यों की ज्येष्ठता का अवधारण करने के सिद्धांत विचाराधीन हैं। इसी स्थिति को उस समय दोहराया गया था जब सेवा से संबंधित 1962 की नियमावली अधिनियमित की गई थी। 1962 की नियमावली के परिशिष्ट 4 के पैरा 3 में यह बात पुनः दोहराई गई है कि ज्येष्ठता का अवधारण करने के सिद्धांत विचाराधीन हैं। यह कहीं भी सुझाव नहीं दिया गया है कि बचन सिंह के मामले[1] के विनिश्चय तक पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए कोई अन्य नियम विहित किया गया था।

31. इसके पश्चात् हमें 1974 की आक्षेपित ज्येष्ठता सूची पर विचार करना है। तारीख 14 जून, 1974 को ए० ई० ई० की ज्येष्ठता सूची परिचालित की गई थी। ज्येष्ठता सूची की उद्देशिका में वह आधार उल्लिखित किया गया है जिस पर सदस्यों की पारस्परिक ज्येष्ठता अवधारित की जानी है। अन्य बातों के बीच यह कहा गया है कि सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों तथा विभागीय प्रोन्नत व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता 1949 की नियमावली में अधिकथित कोटा के अनुसार नियत की जानी है। 1949 की नियमावली 1 अप्रैल, 1951 से प्रवृत्त हुई थी। उसमें आगे यह भी कहा गया है कि ज्येष्ठता सूची के अवधारण के लिए वही नियम स्थायीकरण और ज्येष्ठता के नियत किए जाने दोनों ही मामलों में लागू किया जाना है। इसलिए स्पष्ट रूप से यह मालूम होता है कि नियम 4 में प्रतिपादित किए गए अनुसार नियत कोटा अर्थात् 9 : 1 के आधार पर सीधी भर्ती वाले और प्रोन्नत व्यक्तियों की ज्येष्ठता सूची तैयार की गई है। और वर्ष 1959 और 1963 के बीच पुनरीक्षित करके वह 1 : 1 में कर दी गई थी और वर्ष 1964 में पुनः पुनरीक्षित करके 9 : 1 में कर दी गई थी। वर्ष 1974 की ज्येष्ठता सूची बिना किसी और बात के अविधिमान्य होगी चूंकि वह इस उपधारणा पर तैयार की गई है कि एक कठोर कोटा नियम था तथा उस कोटे से अधिक भर्ती अविधिमान्य होगी तथा किसी भी स्रोत से भर्ती किए गए अधिक व्यक्तियों को पश्चात्वर्ती वर्षों में समायोजित और विनियमित करना होगा। संभवतः सम्बन्धित प्राधिकारी ज्येष्ठता सूची तैयार करते समय जयसिंघानी के मामले[2] में और बी० एस० गुप्त के दो पश्चातवर्ती मामलों में व्यक्त कुछ

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.
[2] (1967) 2 एस० सी० आर० 703.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मतों से प्रभावित हुए थे। वे सब मत स्पष्ट रूप से प्रभेदनीय हैं और प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू नहीं हो सकते। आधार, जिस पर 1974 की आक्षेपित ज्येष्ठता सूची आधारित है, विहित करने में एक और गलती हुई है वह यह उपधारणा है कि एक अनिवार्य कोटा नियम था जिसमें कोई छूट नहीं दी जा सकती थी। दूसरे आधार में यह कहा गया है कि सहायक कार्यपालिक इंजीनियरों (ए० ई० ई०) की ज्येष्ठता सूची वर्ष 1968 तक तैयार की जानी है तथा अधिक विभागीय प्रोन्नत व्यक्तियों को जो काडर में नहीं लाए जा सकते, पृथक् रूप से दर्शाना होगा तथा जब कभी रिक्तयां उपलभ्य हों कोटा के आधार पर काडर में लाना होगा जैसा कि इसमें स्पष्ट रूप से बतलाया जा चुका है, भर्ती कोटा में छूट देकर के की गई थी। कोटा नियम में एक बार छूट दे देने पर स्थायीकरण के लिए अनुक्रम समाप्त हो जाता है। वर्ष 1968 तक सेना अनुदेश के साथ किसी अन्य नियम के अभाव में सतत् रूप से पद धारण करना पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए एकमात्र उपलभ्य नियम होगा। अतः यहां पर इस बात का स्मरण कराया जा सकता है कि 1963 और 1967 दोनों की ही ज्येष्ठता सूचियां उस सिद्धात के अनुसार तैयार की गई थीं। इस प्रकार दो मूलभूत उपधारणाएं जिन पर अक्षेपित ज्येष्ठता सूची तैयार की गई थी, पूर्णतया अविधिमान्य है और सुसंगत नियमों के प्रतिकूल है तथा उस पर आधारित कोई भी ज्येष्ठता सूची अवश्य ही असफल होनी चाहिए। किन्तु एकमात्र यह निष्कर्ष पुनः मामले को प्रथम प्रत्यर्थी के हाथों में छोड़ देगा और इसके लिए नवीन रूप से कार्यवाही करनी होगी। इसलिए और आगे विचार करना आवश्यक है और इस बात का अवधारण करना भी आवश्यक है कि किस आधार पर ए० ई० ई० की ज्येष्ठता सूची वर्ष 1969 तक तैयार की जानी थी जब कि 1949 के नियम बचन सिंह के मामले[1] के विनिश्चय के अनुसार कानूनी बने थे।

32. 1959 और 1969 के बीच, विशेषतया वर्ष 1962, 1963 और 1964 के दौरान और कुछ पश्चात्वर्ती वर्षों में सरकार ने अपनी आवश्यकताओं और सेवा की अति आवश्यकता के अनुसार भर्ती की थी जिसमें 1949 और उसके पश्चात्वर्ती नियमों में छूट देकर के प्रोन्नति द्वारा की गई भर्ती सम्मिलित है जिसके लिए निस्संदेह रूप से सरकार को ऐसा करने की शक्ति थी। इस प्रकार बहुत से व्यक्ति प्रोन्नत किए गए थे। सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों को तुलनात्मक रूप से अधिक फायदे मिले थे क्योंकि उन्होंने

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतियोगिता परीक्षा को टालकर के सेवा में प्रवेश किया था। प्रतियोगिता परीक्षा ली जानी अपेक्षित थी और जिसके माध्यम से ही केवल सीधी भर्ती वाले व्यक्ति सेवा में प्रवेश कर सकते थे। इसी प्रकार बहुत से व्यक्तियों ने तुलनात्मक रूप से सरल और बहुत अधिक व्यक्ति परक परीक्षा अर्थात् साक्षात्कार के माध्यम से एम० ई० एस० वर्ग 1 सेवा में प्रवेश किया था। इसलिए इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बहुत से सधी भर्ती वाले व्यक्तियों को केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रयोग की गई नियमों में छूट देने की शक्ति का फायदा मिला था। बचन सिंह के मामले[1] में इस न्यायालय ने भी सही रूप से यह मत व्यक्त किया था कि कुछ विभागीय प्रोन्नत व्यक्तियों को भी वही लाभ मिला है। हमारे लिए तुलनात्मक लाभ पर विचार करना आवश्यक नहीं है। महत्वपूर्ण बात सेवा की अति आवश्यकता थी और जिसके लिए सर्वोतम निर्णायक सरकार है जिसे **बचन सिंह के मामले**[1] में मान्यता प्रदान की गई है। यह बात भी स्पष्ट की जा सकती है कि प्रोन्नत व्यक्ति सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की तुलना में कम अर्हित नहीं थे। उन्हें आयु की अर्हता के सिवाय अर्हताओं की कठिन परीक्षा का सामना करना पड़ा था। यह बात 1949 की नियमावली के नियम 23 के पैरा 3 से बहुत ही स्पष्ट हो जाती है जिसमें प्रोन्नति द्वारा नियुक्ति के लिए उपबंध किया गया है। नियम 23 में यह उपबंध है कि कोई भी व्यक्ति सेवा में प्रोन्नति के लिए तब तक पात्र नहीं होगा जब तक कि वह आयु के सिवाय इस नियमावली के भाग 2 के अधीन प्रतियोगिता परीक्षा में प्रवेश के लिए अर्हित न हो जाए और आयोग का यह समाधान न कर दे कि वह सेवा में नियुक्ति के लिए हर प्रकार से उपयुक्त है। भाग 2 में प्रतियोगिता परीक्षा लेने के लिए पात्रता का आधार विहित करने वाले उपबंध हैं। अन्य बातों के अतिरिक्त वह इंजीनियरिंग डिग्री को न्यूनतम शैक्षणिक अर्हता के रूप में उपबंध करता है। इसलिए जहां तक न्यूनतम शैक्षणिक अर्हता का संबंध है, प्रोन्नति वाले व्यक्ति और सीधी भर्ती वाले व्यक्ति एक समान हैं। इसलिए किसी भी व्यक्ति को प्रोन्नत व्यक्तियों को किसी निचले ग्रेड के व्यक्तियों के रूप में नहीं देखना चाहिए। सरकार द्वारा प्रोन्नत व्यक्ति सेवा की अत्यावश्यकता और सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों के उपलभ्य न होने के कारण सेवा की अत्यावश्यकता को देखते हुए प्रोन्नत किए गए थे। जैसा कि **बचन सिंह के मामले**[1] में अभिनिर्धारित किया गया है और हमारे समक्ष स्वीकार किया गया है। प्रोन्नति देते समय एक क्षण के लिए भी यह सुझाव नहीं दिया गया था कि प्रोन्नतियां तदर्थ हैं अथवा ऐसे समय

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 946=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तक के लिए हैं जब तक कि सीधी भर्ती वाले व्यक्ति उपलभ्य न हों अथवा सीमित अवधि के लिए हैं। इसलिए प्रोन्नति नियमित प्रोन्नति थी। प्रोन्नति अस्थायी पदों पर हो सकती है जो कि सेवा की कुल संख्या में अस्थायी वृद्धि थी। किन्तु सब अशयों और प्रयोजनों को देखते हुए इस कालावधि के दौरान प्रोन्नत व्यक्तियों की प्रोन्नति एक नियमित प्रोन्नति थी तथा प्रोन्नत व्यक्तियों ने इन वर्षों के दौरान बिना किसी हस्तक्षेप के पद धारित किए थे। जिसका अर्थ यह है कि यह कभी भी नहीं कहा जा सकता कि पद उपलभ्य नहीं थे। इस पर भी 1962 की आक्षेपित ज्येष्ठता सूची द्वारा प्रोन्नत काडर से बाहर रह रहे हैं तथा ऐसे अवैध और अविधिमान्य आधार पर तैयार की गई सूची से ऐसे आश्चर्यकारी परिणाम समाने आए हैं कि 1962 का प्रोन्नत व्यक्ति सन् 1974 में भी सेवा में अपना कोई स्थान बना नहीं सका है।

33. अगला प्रश्न यह है कि सन् 1963 की ज्येष्ठता सूची और सन् 1967 की ज्येष्ठता सूची उस समय विधिमान्य थी जब वह तैयार की गई थी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, 1949 की नियमावली के परिशिष्ट 5 के पैरा 3(iii) द्वारा प्रतिपादित कोटा नियम का सन् 1969 तक कोई विधिक प्रभाव नहीं रहा था। 1 सितम्बर, 1949 के सेना अनुदेशों में सतत रूप से पद धारण करने के सिद्धांत के अनुसार एक ज्येष्ठता सूची तैयार करने का निदेश दिया गया था किसी अन्य विधिमान्य सिद्धांत के अभाव में सतत रूप से पद धारण करने के आधार पर नियत की गई ज्येष्ठता विधिमान्य है क्योंकि वह अनुच्छेद 16 की कसौटी को पूरा करती है। यह सुझाव देने के लिए कोई बात नहीं है कि सन् 1963 और सन् 1967 की ज्येष्ठता सूचियां अनतिम थीं अथवा उनके पुनः तैयार किए जाने की संभावना थी इसलिए 1949 के नियमों को सन् 1969 में कानूनी स्वरूप प्राप्त होने तक ए० ई० ई० के सम्बन्ध में सन् 1963 और 1967 की ज्येष्ठता सूचियां पूर्ण रूप से वैध और विधिमान्य थीं तथा उस सिद्धांत के आधार पर तैयार की गई थीं जो अनुच्छेद 16 की कसौटी को पूरा करता है।

34. प्रश्न यह है कि क्या सन् 1974 में पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए बनाए गए नए सिद्धांत को सन् 1951 से भूतलक्षी रूप से लागू किया जा सकता है और तद्द्वारा वैध रूप से तैयार की गई सब पूर्ववर्ती ज्येष्ठता सूचियों को समाप्त किया जा सकता है। एक ही सेवा या काडर के व्यक्तियों की पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के लिए सरकार इस बात के लिए सिद्धांत विहित करने हेतु स्वतन्त्र है कि ऐसे किसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी सिद्धांत को अनुच्छेद 16 की कसौटी को अवश्य ही पूरा करना चाहिए। इसके समान ही सरकार सेवा नियमों को भूतलक्षी रूप से पुनरीक्षित करने हेतु स्वतन्त्र है यदि वह निहित अधिकारों को प्रतिकूलरूप से प्रभावित नहीं करती है। किन्तु यदि पारस्परिक ज्येष्ठता का अवधारण करने के नियम को पुनरीक्षित किया जाता है या कोई नवीन नियम विरचित किया जाता है तो वह सांविधानिक रूप से अवश्य ही विधिमान्य होना चाहिए। आधार जिस पर 1974 की ज्येष्ठता सूची आधारित है, स्पष्ट रूप से अवैध और अविधिमान्य है तथा यह बात बचन सिंह के मामले[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय को गलत समझने और उसका गलत अर्थान्वियन करने से उद्भूत होती है। यह वर्ष 1959 से 1969 तक की कालावधि के दौरान की गई नियुक्ति के स्वरूप की भी उपेक्षा करता है। वह विधिमान्य नियुक्तियों को संदेहास्पद रूप से विधिमान्य होने के रूप में मानता है। वह वैध रूप से नियुक्त व्यक्तियों को ऐसे होने के रूप में मानता है। वह वैध रूप से नियुक्त व्यक्तियों को ऐसे व्यक्तियों के नीचे लाता है जो कभी भी सेवा में नहीं थे और ऐसे कारणों से, जिनकी हम प्रशंसा नहीं कर सकते उसे सन् 1951 से प्रभावी बनाया गया है। हमारी राय में सन् 1969 से पूर्व भर्ती किए गए या प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों को प्रभावित करने वाली ज्येष्ठता सूची पुनः तैयार करने के लिए कोई औचित्य नहीं था जबकि नियमों को कानूनी स्वरूप प्राप्त हुआ था। इसलिए सन् 1963 और 1974 की ज्येष्ठता सूची अभिखंडित किए जाने योग्य है तथा सन् 1963 और 1967 की दो ज्येष्ठता सूचियां अवश्य ही कायम रहनी चाहिएं।

35. इस प्रक्रम पर हमें कुछ कम महत्व की तकनीकी दलीलों पर भी संक्षेप में विचार करना चाहिए।

36. यह दलील दी गई थी कि उन सदस्यों को, जो सन् 1974 की ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी से ऊपर हो गए थे, प्रत्यर्थियों के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया था, अतः अपीलार्थियों को कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता। उच्च न्यायालय में फाइल किए गए रिट पिटीशन में कुल 418 प्रत्यर्थी थे। उनमें से प्रथम दो भारत संघ और मुख्य इंजीनियर, सेना मुख्यालय थे और सभवतः शेष ऐसे व्यक्ति थे जो अपीलार्थियों से वरिष्ठ रूप में दर्शाए गए थे। उच्च न्यायालय द्वारा किए गए आदेश से प्रत्यर्थी सं० 3 से 418 तक के नाम लुप्त कर दिए गए थे चूंकि इन पिटीशनों के फाइल किए

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाने के पश्चात् उनके स्थानान्तरण के कारण उनके वर्तमान पदों को मालूम करने में कठिनाई होने से उन पर नोटिस तामील नहीं किए जा सके थे। तथापि स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होता है कि कुछ सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों का नेतृत्व, श्री चितकारा द्वारा किया गया था जो श्री मुरलीधर राव, अधिवक्ता की मार्फत हाजिर हुए थे और उन्होंने सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की ओर से दलीलें दी थीं। इसके अतिरिक्त श्री टी० सुधाकर के नेतृत्व में दो सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों द्वारा पक्षकार बनाए जाने के लिए इस न्यायालय में आवेदन किया गया था और वह आवेदन मंजूर कर लिया गया था तथा श्री पी० आर० मृदुल, विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता उनके लिए हाजिर हुए थे। इसलिए सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों का मामला बगैर प्रतिनिधित्व के नहीं रहा था तथा इस दलील को इस संक्षिप्त आधार पर ही नामंजूर किया जा सकता है। तथापि एक और प्रबल कारण है जिससे हम इस दलील का समर्थन नहीं करेंगे। इस मामले में अपीलार्थियों ने किसी विशेष तथ्य की पृष्ठ-भूमि के आधार पर, जिसका कि उस व्यक्ति द्वारा खंडन किया गया है, जिसके विरुद्ध दावा किया गया है, किसी विशेष व्यक्ति के ऊपर ज्येष्ठता का दावा नहीं किया है। दलील यह है कि आक्षेपित ज्येष्ठता सूची तैयार करने में संघ सरकार द्वारा अपनाए गए आधार अविधिमान्य और अवैध हैं तथा अनुतोष का दावा संघ सरकार के विरुद्ध किया गया है जिसमें उसे पहले से तैयार की गई विधिमान्य सूची में गड़बड़ी करने अथवा खंडित करने से रोकने और आक्षेपित ज्येष्ठता सूची अभिखंडित करने के लिए प्रार्थना की गई है। इस प्रकार अनुतोष का दावा संघ सरकार के विरुद्ध किया गया है न कि किसी विशेष व्यक्ति के विरुद्ध। इस पृष्ठ-भूमि में हम सब भर्ती वाले व्यक्तियों को प्रत्यर्थियों के रूप में पक्षकार बनाना अनावश्यक समझते हैं। हम इस दलील के लिए **महाप्रबंधक, दक्षिण मध्य रेलवे, सिकन्दराबाद और एक अन्य** बनाम **ए० बी० आर० सिद्धांती और अन्य**[1] के मामले को निर्दिष्ट कर सकते हैं। अपीलार्थी की ओर से दी गई इस दलील को नामंजूर करते हुए कि रिट पिटीशनरों ने ऐसे 120 कर्मचारियों को पक्षकार नहीं बनाया है जिनके मामले में विनिश्चय द्वारा प्रभावित होने की संभावना है, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्यर्थी (मूल पिटीशनर) संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उनके द्वारा अतिक्रमण किए जाने के आधार पर उन नीति सम्बन्धी विनिश्चयों की विधिमान्यता को भंग कर रहे हैं। कार्यवाहियां उन कार्यवाहियों के समान हैं जिनमें सरकारी

[1] [1974] 1 उम० नि० प० 1826=[1974] 3 एस० सी० आर० 207.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्मचारियों की ज्येष्ठता को विनियमित करने वाले कानूनी नियम की सांविधानिकता पर आक्षेप किया गया है। ऐसी कार्यवाहियों में अलिप्त किए जाने वाले आवश्यक पक्षकार वे हैं जिनके विरुद्ध अनुतोष चाहा गया है और जिनके अभाव में न्यायालय द्वारा कोई प्रभावी विनिश्चय नहीं दिया जा सकता है। इस पहलू से मामले पर विचार करने के पश्चात् इस बात पर ध्यान दिया जा सकता है कि अनुतोष केवल भारत संघ और सम्बन्धित मंत्रालय के ही विरुद्ध चाहा गया है न कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध और न ही किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य विशेष व्यक्ति के विरुद्ध किसी ज्येष्ठता का दावा किया गया है। इसलिए यदि तकनीकी रूप से भी सीधी भर्ती वाले व्यक्ति के न्यायालय के समक्ष नहीं थे तो पिटीशन के उस आधार पर असफल होने की कोई संभावना नहीं है। इस अतिरिक्त कारण के लिए प्रत्यर्थियों की दलील भी नामंजूर कर दी जानी चाहिए।

37. अपीलार्थी ने ई-इन-सी० कार्यवाही सं० 65020/ईई/74/ई० आई० आर० में सम्मिलित 102 अधिकारियों की प्रोन्नति के लिए तारीख 13 जनवरी, 1975 के पैनल को अभिखंडित करने के लिए इस आधार पर भी निदेश चाहा था कि प्रोन्नति के लिए पैनल आक्षेपित ज्येष्ठता सूची के आधार पर तैयार किया गया है जिसमें अपीलार्थी और कई इसी प्रकार के पदस्थ ए० ई० ई०, जो पूर्व में सन् 1962 में प्रोन्नत किए गए थे, भविष्य में अपना कोई स्थान नहीं पा सकते थे और इसलिए उन्हें चयन के जोन के भीतर नहीं माना गया था। यह अनुतोष अनिवार्य परिणाम के रूप में होना चाहिए क्योंकि एक बार 1974 की ज्येष्ठता सूची अभिखंडित कर दी जाती है और परिणामस्वरूप यह घोषणा की जाती है कि 1963 और 1967 की ज्येष्ठता सूचियां विधिमान्य थीं और वे सन् 1974 में निर्धारित ज्येष्ठता के सिद्धांतों द्वारा अभिखंडित नहीं की जा सकती, तो अविधिमान्य ज्येष्ठता के आधार पर तैयार किया गया कोई भी पैनल कायम नहीं रखा जा सकता और उसे अभिखंडित किया जाना चाहिए। बचन सिंह के मामले[1] के निर्णय और इस मामले को संयुक्त रूप से पढ़ने पर प्रोन्नति के लिए सन् 1963 और 1967 की ज्येष्ठता सूची से सुसंगत एक नवीन पैनल तैयार करना होगा चूंकि इस बात पर कोई विवाद नहीं किया गया है कि ए० ई० ई० के काडर से कार्यपालिक इंजीनियर की प्रोन्नति ज्येष्ठता एवं मेरिट के आधार पर है। इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थियों को पैनल के आधार पर किसी भी व्यक्ति को प्रोन्नत करने से रोकने के लिए व्यादेश के रूप में एक अन्तरिम अनुतोष चाहा था।

---

[1] [1972] 2 उम० नि० प० 846=[1972] 3 एस० सी० आर० 898.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस न्यायालय ने ऐसा अनुतोष देने से इन्कार कर दिया था चूंकि सेवा की अत्यावश्यकता के अनुसार यह मांग थी कि रिक्तियों भरी जानी चाहिएं किन्तु अपीलार्थी और उसके समान पदस्थ व्यक्तियों के हित का संरक्षण करने के लिए यह बात बहुत ही स्पष्ट कर दी गई थी कि उच्च न्यायालय में पिटीशन फाइल करने की तारीख के पश्चात् की गई कोई भी प्रोन्नति अवश्य ही स्थायी होनी चाहिए और इस अपील के विनिश्चय द्वारा आबद्ध होनी चाहिए। इसलिए इस अपील में दिए गए अनुतोष के परिणामस्वरूप प्रोन्नतियां पुन: समायोजित की जानी होंगी तथा अपीलार्थी और उसके समान पदस्थ व्यक्तियों के मामलों की प्रोन्नति के पैनल में लाये जाने के लिए परीक्षा करनी होगी।

38. इस निर्णय पर विचार समाप्त करने से पूर्व हमें शुद्ध अन्त:करण से मानसिक उलझन होगी, यदि हम लोक सेवाओं पर पड़ने वाले नैतिक प्रभाव, सम्भवत: सरकार द्वारा विरचित कतिपय नियमों और इस न्यायालय के विनिश्चयों के परिणामों से उत्पन्न अन्यायोचित, अनुचित और असमान स्थिति की ओर ध्यान नहीं देते हैं। जहां एक से अधिक स्रोत से सेवा में भर्ती की जाती है तथा प्रत्येक सेवा के लिए कोटा तय किया जाता है, फिर भी प्राय: नियुक्ति प्राधिकारी को सेवा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रोन्नत व्यक्तियों के उपलभ्य सरल स्रोत से कोटा अधिक हो जाता है, चूंकि सीधी भर्ती द्वारा बाजार से भर्ती करने वाली प्रक्रिया अति दीर्घ और समय लेने वाली है। सरकार सेवा की अति आवश्यकता के लिए, लोक सेवाओं की आवश्यकता के लिए और दक्ष प्रशासन के लिए सरलता से उपलभ्य व्यक्तियों को प्रोन्नत करती है चूंकि श्रेणीबद्ध सेवा में कोई भी व्यक्ति आगे बढ़ने की आशा रखता है। प्रोन्नत व्यक्ति के प्रोन्नत कर दिए जाने पर वह सतत् रूप से सेवा करता है और वह अक्षम नहीं पाया जाता है तथा वह सब लोगों के समाधानप्रद रूप से अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करता है तथा प्रोन्नत व्यक्ति के कई वर्ष पश्चात् बाजार से सीधी भर्ती वाला व्यक्ति सेवा में प्रवेश करता करता है तथा सेवा में आने से पहले की गई सब भर्तियों को चुनौती देता है तथा कुछ विनिश्चिय, विशेषता जयसिंघानी के मामले[1] का विनिश्चयाधार, जैसे कि उसका बी० एस० गुप्त के दोनों मामलों में निर्वचन किया गया है, ऐसे सीधी भर्ती वाले व्यक्ति को, जो प्रोन्नत व्यक्ति के प्रोन्नत किए जाने के कई वर्ष पश्चात् सेवा में प्रवेश करता है, ज्येष्ठता में प्रोन्नत व्यक्ति से

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 703.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहले आने की सीमा तक लाभ प्रदान करता है। जब प्रोन्नत व्यक्ति प्रोन्नत किया गया था और सेवा कर रहा था तब सीधी भर्ती वाला व्यक्ति स्कूल जाने वाला या कालेज जाने वाला विद्यार्थी हो सकता है। वह शैक्षणिक संस्था से निकलता है, प्रतियोगिता परीक्षा में बैठता है और ऐसी प्रत्येक बात को चुनौती देना प्रारम्भ कर देता है जो उस कालावधि के दौरान हुई थी जब उसका सेवा से कोई सम्बन्ध नहीं था। जयसिंघानी के मामले[1] में जारी किए गए परमादेश से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी जिसमें वर्ष 1962 के प्रोन्नत व्यक्तियों को 1966 की सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों से नीचे आना पड़ा था और इसके पश्चात् स्थिति काफी बिगड़ गई थी। प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी, 27 सितम्बर, 1962 के प्रोन्नत व्यक्ति को एन० के० पिजा से नीचे रखा गया था जो अप्रैल, 1976 में प्रतियोगिता परीक्षा में बैठा था अर्थात् वह ऐसा व्यक्ति था जो अपीलार्थी के 14 वर्ष पश्चात् सेवा में आया था तथा यह निष्कर्ष निकालने में किसी विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं है कि सन् 1976 से 14 वर्ष पूर्व श्री पिजा, जिसकी जन्म तिथि 20 जुलाई, 1950 दर्शाई गई है, 12 वर्ष की आयु का होगा तथा उस समय प्राथमिक विद्यालय में पढ़ रहा होगा। सब सेवा विधि-शास्त्रों की विशिष्ट शब्दावली को देखते हुए हमें इस स्थिति पर स्पष्टतया ध्यान देना होगा कि प्राथमिक स्कूल का विद्यार्थी जब कि प्रोन्नत व्यक्ति सेवा का सदस्य था, सेवा में प्रवेश करता है तथा प्रोन्नत व्यक्ति के ऊपर ज्येष्ठ होने का दावा करता है और ज्येष्ठता प्राप्त करता है। यदि इसका सेवा में उत्साह भंग करने वाला प्रभाव नहीं है तो हम यह देख पाने में असफल हैं कि कौन-सा अन्य अनुचित दृष्टकोण और अधिक नुकसान पहुंचाने वाला होगा। इसलिए स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादना प्रारम्भ करने का समय है कि सीधी भर्ती वाले व्यक्ति को, जो ऐसे प्रोन्नत व्यक्ति के पश्चात् सेवा में आता है जो पहले से ही बिना किसी शर्त और आरक्षण के प्रोन्नत किया गया था और जिसकी प्रोन्नति को सुसंगत कानूनी या गैर-कानूनी नियमों के अनुसार अवैध या अविधिमान्य नहीं दर्शाया गया है, ज्येष्ठता के किसी भी सिद्धांत के आधार पर प्रोन्नत व्यक्ति के ऊपर स्थान प्राप्त करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह बात स्वयं में मनमानी होने से अनुच्छेद 14 और 16 की अतिक्रमणकारी होगी। कुछ सीधी भर्ती वाले व्यक्तियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री राममूर्ति ने इस सम्बन्ध में यह दलील दी है कि यदि उस समय, जबकि प्रोन्नत व्यक्ति प्रोन्नति द्वारा भर्ती किया गया

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 703.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था, उसकी नियुक्ति, प्रोन्नति अनियमित या अवैध थी और उसे नियमित की जाना आवश्यक था तो किसी पश्चात्‌वर्ती तारीख पर आने वाला पश्चात्‌वर्ती सीधी भर्ती वाला व्यक्ति अनुतोष प्राप्त कर सकता है तथा ऐसे अनियमित या अवैध प्रवेशार्थी के ऊपर स्थान प्राप्त कर सकता है। हम इस बात से सहमति व्यक्त करने में असमर्थ हैं। यद्यपि हमने इस पहलू पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। हमारे द्वारा उपदर्शित सिद्धांतों पर किसी सामान्य सिद्धान्त की किसी प्रतिपादना से इस न्यायालय के विनिश्चयों में से कुछ पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता होगी। इस बात के सिवाय कुछ और अधिक नहीं कहते हैं कि हमने यह इस न्यायालय के विनिश्चयों और सुसंगत नियमों के निर्वचन के अनुसार इस मामले की समस्या को हल कर लिया है।

39. तदनुसार यह अपील अवश्य ही सफल होनी चाहिए और तद्‌द्वारा मंजूर की जाती है। तारीख 15/17 मई, 1979 का निर्णय अपास्त किया जाता है तथा उच्च न्यायालय में अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया रिट पिटीशन इसमें उपदर्शित सीमा तक स्वीकार किया जाता है। तारीख 14 जून, 1974 की ज्येष्ठता सूची अभिखंडित और अपास्त करते हुए उत्प्रेषण का रिट जारी किया जाए। इसके अतिरिक्त यह भी घोषित किया जाता है कि सन् 1963 और 1967/1968 की ज्येष्ठता सूचियां विधिमान्य थीं और वे वर्ष 1969 तक विधिमान्य थीं तथा उनका ऐसे सदस्यों के संबंध में ही पुनरीक्षण किया जा सकता है जिन्होंने सन् 1969 और 1969 के पश्चात् की कालावधि में सेवा में प्रवेश किया है। ई-इन-सी की कार्यवाही सं० 65020/ईई/74/ई० आई० आर० तारीख 13 जनवरी, 1975 में सम्मिलित 102 अधिकारियों के सम्बन्ध में प्रोन्नति का पैनल अभिखंडित और अपास्त किया जाता है। उच्च न्यायालय में पिटीशन फाइल करने के पश्चात् की गई सब प्रोन्नतियां इस विनिश्चय के अध्यधीन हैं और इस निर्णय में अन्तर्विष्ट मतों को देखते हुए ए० ई० ई० की 1963 और 1967/68 की ज्येष्ठता सूची को भी ध्यान में रखते हुए प्रोन्नति के लिए एक नवीन पैनल तैयार करके प्रोन्नतियां पुनः समायोजित की जानी चाहिएं।

40. मामले की इन परिस्थितियों को देखते हुए खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील मंजूर की गई।

जैन/स०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मालवा बस सर्विस (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य

बनाम

पंजाब राज्य और अन्य

(The Malwa Bus Service (Private) Limited and Others

v.

State of Punjab and Others)

(28 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति ए० पी० सेन और ई० एस० वेंकटरामय्या)

पंजाब मोटर वेहिकल्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1924 (1924 का 4)—3(1)(1981 वाले अधिनियम सं० 13 द्वारा यथा-संशोधित) [सपठित संविधान का अनुच्छेद 14]—वर्गीकरण—युक्तियुक्त वर्गीकरण—तारीख 19-3-1981 वाली अधिसूचना के अधीन मंजिली गाड़ियों पर अभिवृद्ध कर लगाया जाना—मंजिली गाड़ियों और सार्वजनिक वाहकों पर कर की भिन्न-भिन्न दरें नियत की जाना—यदि विधानमण्डल कर दायित्व अधिरोपित करने में व्यक्तियों और वस्तुओं का युक्तियुक्त वर्गीकरण करके, भिन्न-भिन्न मदों पर कर की भिन्न-भिन्न दरें अधिरोपित करता है, तो ऐसे कराधान को विभेदक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उससे अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होता।

पंजाब मोटर विहिकल्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1924 (1924 का 4)—धारा 3(1) 1981 वाले अधिनियम सं० 13 द्वारा यथा-संशोधित) और धारा 3-क(1981 में यथाअन्त स्थापित [सपठित संविधान का अनुच्छेद 19(1) (छ), 301, 304 (ख) और अनुसूची 7 की सूची 2 की प्रविष्टि 57]—प्रतिकरात्मक स्वरूप का कराधान—कराधान में अभिवृद्धि—तारीख 19-3-1981 वाली अधिसूचना के अधीन मंजिली गाड़ियों पर लगाए गए कर में अभिवृद्धि की जाना—यदि कोई धन सम्बन्धी प्रभार जो प्रतिकारात्मक प्रकृति का है,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर के तौर पर अधिरोपित किया जाता है, तो वह व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य की संकल्पना से असंगत नहीं होता तथा इसी कारण उससे संविधान के अनुच्छेद 19(1) (छ), 301 और 304(ख) का उल्लंघन भी नहीं होता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 301 और 304(ख)—प्रतिकरात्मक कर—राज्य द्वारा जनता को सुविधाएं देने की दृष्टि से व्यय किया जाना—ऐसे व्यय की कुल रकम का अभिनिश्चयन—वसूल किए गए कर की ऐसी रकम व्यय की उस रकम से अननुपातिक रूप से अधिक नहीं चाहिए जो राज्य जनता को सुविधाएं देने के लिए उपगत करता है, यदि ऐसे कर से हुई आय का पर्याप्त भाग सुविधाएं देने में खर्च किया जाता है, तो प्राप्ति और व्यय के बीच छोटा-मोटा अन्तर महत्वहीन है।

पिटीशनर मोटर यानों के स्वामी हैं और वे पंजाब राज्य में मंजिली गाड़ियां चलाने का कारबार कर रहे हैं। जहां कि पिटीशनरों द्वारा चलाई जाने वाली मंजिली गाड़ी सेवाओं का प्रवर्तन मोटर यान अधिनियम, 1939 के, जो कि केन्द्रीय अधिनियम है, उपबंधों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है, वहीं वे अधिनियम के अधीन अपने स्वामित्वाधीन मोटर यानों पर कर का संदाय करने के दायित्वाधीन हैं। उक्त अधिनियम एक ऐसा अधिनियम है जो कि संविधान के प्रवृत्त होने से पूर्व अधिनियमित किया गया था। संविधान के प्रवृत्त होने के बाद, ऐसे माल तथा यात्रियों पर, जो कि सड़क के अथवा अन्तरदेशीय जलमार्गों में ले जाए जाते हैं, कर उद्ग्रहण करने की शक्ति और ऐसे यानों पर कर उद्ग्रहण करने की शक्ति, चाहे ऐसे यान यांत्रिक रूप से चलाए जाते हों अथवा सड़कों पर चलाए जाने के लिए उपयुक्त न हों जिनके अन्तर्गत ट्राम कारें भी हैं, संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्ट 35 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की क्रमशः प्रविष्टि 56 तथा 57 द्वारा राज्यों को समनुदिष्ट की गई है। जबकि उक्त अधिनियम प्रविष्टि 57 के अधीन अधिनियमित किया गया है, राज्य विधानमंडल ने प्रविष्टि 56 के अधीन अनुदत्त अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए पंजाब पैसेंजर्स एण्ड गुड्स टैक्सेशन ऐक्ट (पंजाब यात्री और माल कराधान अधिनियम), 1952 अधिनियमित किया है। संविधान के प्रारंभ से पूर्व, अधिनियम की धारा 3 (1) को 1954 में संशोधित किया गया जिसमें यह उपबंध किया गया था कि अधिनियम के अधीन उद्गृहीत कर की दरें ऐसी दरें हैं जो कि अधिनियम की अनुसूची में स्वयं राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विधानमंडल द्वारा विनिर्दिष्ट कर की दरों की बजाय राज्य सरकार द्वारा निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट हों, किन्तु जो अधिनियम द्वारा नियत अधिकतम सीमा के अधीन रहेंगी। इस संशोधन के पश्चात् धारा 3 (1) में वर्णित 2,200 रुपए की अधिकतम सीमा को बढ़ाकर क्रमवर्ती विधायी संशोधनों द्वारा 1963 में 2,750 रुपए, 1965 में 4,200 रुपए, 1970 में 10,000 रुपए और 1978 में 20,000 रुपए कर दिया गया। राज्य सरकार को जो शक्तियां प्रदत्त की गई थीं, उनका प्रयोग करते हुए हुए उसने मंजिली गाड़ियों के मामले में कर की दर 1965 में 75 रुपये प्रति सीट, 1970 में 100 रुपए प्रति सीट और 1974 में 200 रुपए प्रति सीट कर दी, किन्तु यह अधिनियम द्वारा विहित अधिकतम दर के अध्यधीन थी। 31 मार्च, 1978 को राज्य सरकार ने अधिसूचना जारी की जिसमें यह उपबंध किया गया कि 1 अप्रैल, 1978 को तत्पश्चात्, जहां कि मंजिली गाड़ी 125 किलोमीटर प्रतिदिन चलाई जाती है, वहां प्रत्येक को 275 रुपए प्रति सीट और जहां वह 125 किलोमीटर से अधिक चलाई जाती है, वहां 300 रुपए प्रति सीट की दर से कर का संदाय करना चाहिए किन्तु इन दोनों ही दशाओं में वह 20,000 रुपए प्रति वर्ष की अधिकतम सीमा के अध्यधीन है। तत्पश्चात्, 1981 वाला संशोधन अधिनियम अधिनियमित किया गया जिसके द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 3 (1) में विहित अधिकतम सीमा को 1 अक्तूबर, 1980 से भूतलक्षी प्रभाव से, बढ़ाकर 35,000 रुपए कर दिया गया। संशोधन अधिनियम की धारा 3 द्वारा पूर्वोक्त अधिनियम में एक नवीन धारा अन्तःस्थापित की गई जो कि अधिनियम की धारा 3-क है और जो राज्य सरकार को 1 अक्तूबर, 1980 से भूतलक्षी प्रभाव से कर की दर में वृद्धि करते हुए धारा 3 (1) के अधीन अधिसूचना जारी करने के लिए प्राधिकृत करती है। 1981 में किए गए संशोधन के पश्चात्, अधिनियम की धारा 3 (1) के अनुसरण में तथा अधिनियम की नवान्तःस्थापित धारा 3-क के अनुसरण में जो कि राज्य सरकार को 1 अक्तूबर, 1980 से उक्त अधिनियम के अधीन कर की दर में वृद्धि करने की शक्ति प्रदत्त करती है, उसने 9 मार्च, 1981 को एक अधिसूचना जारी की। उस अधिसूचना के पश्चात् जो अन्तिम स्थिति उभर कर सामने आई, वह यह थी कि प्रत्येक ऐसी मंजिली गाड़ी को जो कि भाड़े पर चल रही हो और जिसका उपयोग यात्रियों के (जिनके अन्तर्गत ड्राईवर तथा कण्डक्टर नहीं होगा) परिवहन के लिए किया जा रहा हो इसका ध्यान न करते हुए कि वह प्रतिदिन कितना फासला तय करती है, अधिकतम 35,000 रुपए के अधीन रहते हुए 500 रुपए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रति सीट प्रति वर्ष संदाय करना था। इन पिटीशनों में पिटीशनरों ने 1981 में किए गए उस संशोधन को जिसके द्वारा कर की अधिकतम सीमा में वृद्धि करके 35,000 रुपए प्रति वर्ष और तारीख 19 मार्च, 1981 वाली उस अधिसूचना को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी है जिसके द्वारा कर बढ़ाकर 500 रुपए प्रति सीट कर दिया गया था। पिटीशनरों ने अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील भी दी कि आक्षेपित अधिसूचना द्वारा अधिरोपित 500 रुपए प्रति सीट के कर के उद्ग्रहण से संविधान के अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 19 (1) (छ) तथा अनुच्छेद 304 (ख) का अतिक्रमण होता है। उन्होंने यह भी अभिवचन किया है कि जो कर इस समय उद्गृहीत किया गया है वह संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 56 और 57 की परिधि के बाहर है। उन्होंने जिस मुख्य मुद्दे पर जो दिया है वह यह है कि जो कर अब उद्गृहीत किया गया है उसका स्वरूप प्रतिकरात्मक न होकर स्वत्वहारी है और उसे राज्य सरकार इस प्रयोजन के लिए संगृहीत कर रही है ताकि उसके सामान्य राजस्वों में वृद्धि की जा सके जो कि संविधान द्वारा निषिद्ध है। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—इसके संबंध में कोई विवाद नहीं है कि राज्य-कर संबंधी विधान भी संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन है। किन्तु यह बात सुस्थिर है कि विधानमंडल को कुछ वस्तुओं पर कर लगाने के लिए सभी वस्तुओं पर लगाने की आवश्यकता नहीं है। वह कर दायित्वों को अधिरोपित करने में व्यक्तियों और वस्तुओं का युक्तियुक्त वर्गीकरण अपना सकता है। किसी कराधान विधि को इसलिए विभेदक नहीं माना जा सकता, क्योंकि भिन्न-भिन्न मदों की बाबत कराधान की भिन्न-भिन्न दरें विहित की गई हैं, परन्तु यह तब जब कि यह अभिनिर्धारित करना संभव हो कि उक्त मदें सुभिन्न और पृथक् समूहों से संबंधित हैं और यह कि वर्गीकरण और कराधान की भिन्न-भिन्न दरें अधिरोपित करने के उद्देश्य के बीच युक्तियुक्त संबंध हो। मात्र इस तथ्य के परिणामस्वरूप कि कोई कर का भार कतिपय माल या व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है, वह अविधिमान्य नहीं हो जाएगा। कराधान विधियों की बाबत माल, वस्तुओं या व्यक्तियों का वर्गीकरण करने की विधानमंडल की शक्ति आवश्यक रूप से इस प्रकार व्यापक और लचीली होती है, जिससे कि वह सभी उचित और युक्तियुक्त तरीकों से कराधान की प्रणाली समायोजित कर सके। न्यायालयों का झुकाव समुदाय के सामाजिक और आर्थिक जीवन में अन्तर्ग्रस्त जटिलताओं को देखते हुए कर सम्बन्धी विधि की सांविधानिकता को कायम रखने के पक्ष में अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होता है। आधुनिक विधानमण्डल के कर्त्तव्यों में यह एक कर्त्तव्य भी है कि वह समाज की अधिक से अधिक भलाई करने के प्रयोजन के लिए इसके द्वारा किए गए कराधान के अध्युपायों का उपयोग करे और इस बाबत विधानमण्डल की बुद्धिमत्ता पर विश्वास करना ही पड़ेगा। जब तक कि राज्य-कर संबंधी प्रश्नगत विधि स्पष्टतः विभेदक न हो, न्यायालय को भी इसे इस आधार पर अभिखंडित नहीं करना चाहिए कि वह विभेदक है। इन सिद्धांतों को लागू करने से पता चलता है कि मंजिली गाड़ियां जो कि विनिर्दिष्ट रूट पर या ऐसे रूटों पर, जिनमें यातायात की मात्रा लगभग निश्चित है और जो सदा खचाखच भरी रहती है, प्रतिदिन औसतन लगभग 260 किलोमीटर यात्रा करती हैं, ऐसे वर्ग की होती है जो कि सार्वजनिक वाहकों से, जो अनिश्चित रूटों पर माल ढोते हैं, सुभिन्न और अलग है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक वाहक राज्य में प्रतिदिन नहीं चलते। अन्य आर्थिक बातें ऐसी भी हैं जो कि मंजिली गाड़ियों और सार्वजनिक वाहकों को एक दूसरे को सुभिन्न बनाती हैं। मोटर यानों के किसी वर्ग द्वारा सड़कों को होने वाली टूट-फूट की मात्रा से कराधान के प्रयोजनों के लिए मोटर यानों का वर्गीकरण करने के लिए सदा अवधारण करने वाली बात नहीं कही जा सकती। पिटीशनरों ने न्यायालय के सामने यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त मामग्री नहीं रखी है कि आक्षेपित उद्ग्रहण में उपर्युक्त आधार पर विभेद का दोष मौजूद है। (पैरा 21)

संविधान के भाग 13 के उपबंधों में जो आदेश है, उसका अभिप्राय यह नहीं है कि व्यापार, वाणिज्य और समागत 'आत्यंतिक रूप से अबाध' होगा अर्थात् यह किसी विधि या किसी कर के अधीन हो ही नहीं सकेगा। व्यापार, वाणिज्य और समागम को अपने हिस्से का संदाय करना चाहिए, अर्थात् उन्हें वह कीमत चुकानी चाहिए जिसके लिए राज्य सड़कें, पुल, चैक-पोस्टें, परिवहन कानून और व्यवस्था के विनियमन के लिए आशयित विभागीय संगठनों की व्यवस्था करता है। आधुनिक समुदायों में कोई व्यापार करने और किसी कारबार का संचालन करने में कई प्रकार के राज्य-कर सम्बन्धी दायित्व शामिल होते हैं। केवल इस कारण से कि उन पर कतिपय कर उद्गृहीत किए गए हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि व्यापार और वाणिज्य अबाध नहीं हो गया है। सड़कों की मरम्मत, अनुरक्षण और अवक्षयण की व्यवस्था के बिना परिवहन संभव नहीं है। ऐसे मोटर यानों को जो ऐसी सड़कों से सीधे संबंधित है, पूर्वोक्त प्रयोजनों के लिए उपगत लागत के लिए अभिदाय करना चाहिए। व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धारणा से उस दशा में कोई असंगति नहीं है यदि वास्तव में जो कुछ कर के रूप में संग्रह किया जाता है, वह ऐसा धनीय प्रभार है जो कि प्रतिकरात्मक स्वरूप का है। आवश्यक बात यह है कि यह भार राज्य द्वारा दी गई सुविधाओं की लागत से अननुपातिक रूप से अधिक नहीं होना चाहिए। मोटर यानों के स्वामियों से सड़कों इत्यादि के अनुरक्षण की लागत के लिए अभिदाय करने के लिए कहना बिल्कुल अयुक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि वे ऐसे वर्ग से सम्बन्धित हैं जोंकि इस प्रकार दी गई सुविधाओं का विशेष और सीधा फायदा उठाते हैं। जब उन पर कर लगाया जाता है, तो वे किसी ऐसी चीज की कीमत का संदाय करते हैं जो उनके संचलन को अधिक सुरक्षित, सुकर और सुविधाजनक बनाती है। यदि सड़कें टूटी-फूटी हालत में रहेंगी तो उनके यानों को नुकसान के और ऐसे यात्रियों तथा माल के जो वे ढोते हैं, स्वामियों को होने वाली असुविधाओं के परिणामस्वरूप होने वाले नुकसान की सीमा बहुत अधिक होगी। इस प्रकार इस बात में सन्देह नहीं है कि न्यायालयों को यह विनिश्चय करने में अन्तिम शक्ति होती है कि जो कुछ कर के रूप में वसूल किया जाता है, क्या वह वस्तुतः और सारतः सड़कों, पुलों के अनुरक्षण और ऐसी अन्य सुविधाओं के लिए है जिनकी आवश्यकता निर्विघ्न परिवहन सेवा की व्यवस्था करने के लिए है, या ऐसी सुविधाओं की व्यवस्था के लिए जो कुछ आवश्यक है, उसके बदले अत्यधिक आहरण है। फिर भी न्यायालय वसूल किए गए कर और इस प्रकार उपगत लागत के बीच निश्चित परस्पर-सम्बन्ध पर जोर नहीं दे सकते, क्योंकि मामले की प्रकृति को देखते हुए ऐसा निश्चित परस्पर-सम्बन्ध निकालना सम्भव नहीं है। कुछ मामले ऐसे हो सकते हैं, जिनमें करों के रूप में थोड़ी सी अधिक वसूली हो जाए। यदि अन्तर्ग्रस्त कुल लागत को देखते हुए ऐसे आधिक्य की सीमा थोड़ी अधिक हो तो भी इसके परिणामस्वरूप कर अधिरोपित करने वाली विधी अकृत नहीं हो जानी चाहिए। (पैरा 17)

पंजाब राज्य ने उक्त अधिनियम के अधीन उद्गृहीत मोटर यानों पर करों से और पंजाब पैसेंजर्स एण्ड गुड्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1952 के अधीन उद्गृहीत यात्रियों और माल पर करों से कुल मिलाकर 49,31,00,000 रुपये संगृहीत किए हैं, जबकि राज्य ने सड़कों और पुलों पर केवल 34,03,00,000 रुपए व्यय किए हैं। यह स्पष्ट है कि ऊपर निर्दिष्ट व्यय की रकम में सड़क परिवहन से सम्बन्धित अन्य शीर्षों पर, जैसे कि परिवहन निदेशालय, परिवहन प्राधिकरणों, बस स्टैंडो की व्यवस्था, रोशनी, यातायात-पुलिस, स्थानीय निकायों जैसे नगर निगम, नगरपालिकाओं और ग्राम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पंचायतों की अधिकारिता के भीतर वाली सड़कों के अनुरक्षण की लागत पर, जिसके लिए सरकार उन्हें उपर्युक्त प्रयोजनों और अन्य आनुषंगिक मदों के लिए अनुदान देती है, राज्य सरकार द्वारा उपगत व्यय सम्मिलित नहीं है। यदि इन मदों को भी विचार में लिया जाए तो प्राप्तियों और परिवहन पर हुए व्यय के बीच का अन्तर, यदि कोई है तो, नाममात्र का रह जाएगा। (पैरा 18)

यह भी नहीं कहा जा सकता कि मात्र इस तथ्य से क्योंकि कोई कारबार नए उद्ग्रहण के परिणामस्वरूप अलाभकारी बन जाता है, इसलिए नया उद्ग्रहण उक्त कारबार चलाने के मूल अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन की कोटि में आएगा। तथापि, यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक समझे, तो वह किरायों में परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र है। किन्तु आक्षेपित उद्ग्रहण को इस आधार पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता कि आक्षेपित उद्ग्रहण के पुर:स्थापन के पश्चात् मंजिली गाड़ियों का चलाना अलाभकारी हो गया है। इसके अतिरिक्त पिटीशनरों द्वारा प्रस्तुत सामग्री भी यह विनिश्चय करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि कारबार वास्तव में अलाभकारी हो गया है या नहीं। (पैरा 22)

यह भी कहा जा सकता है कि अकेले एक वर्ष में मोटर यानों पर कराधानों से और सड़कों और पुलों आदि जैसी सुविधाएं देने पर उपगत व्यय के बीच तुलना करने से भद्दा चित्र दिखाई पड़ सकता है। उपरोक्त व्यय में सड़क यातायात के संबंध में उपगत व्यय की अन्य सुसंगत मदें सम्मिलित नहीं हैं। यदि उनको भी सम्मिलित कर लिया जाता है, तो यह संभाव्य है कि कुल व्यय, प्राप्तियों से अधिक हो जाए। (पैरा 19)

इस बात से न्यायालय का समाधान हो गया है कि राज्य सरकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि आक्षेपित कर वास्तव में प्रतिकरात्मक प्रकृति का है, अत:, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि इससे संविधान के अनुच्छेद 301 और अनुच्छेद 304(ख) का उल्लंघन नहीं होता। (पैरा 20)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[1981] [1981] 4 उम० नि० प० 891=[1981] 2 एस० सी० आर० 364 : इण्टरनेशनल टूरिस्ट कारपोरेशन और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (International Tourist Corporation and Others *v.* State of Haryana and Others); 16

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1980] [1980] 2 उम० नि० प० 1170=[1979] 3 एस० सी० आर० 1217 :
केवल कृष्ण पुरी और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य
(Kewal Krishan Puri and Another *v.* State of Punjab and Others), 20

[1979] [1979] 1 उम० नि० प० 1326=[1978] 3 एस० सी० आर० 293 :
प्राग आइस एण्ड आयल मिल्स और एक अन्य बनाम भारत संघ
(Prag Ice & Oil Mills and another *v.* Union of India); 22

[1975] [1975] 2 उम० नि० प० 126=[1975] 2 एस० सी० आर० 715 :
जी० के० कृष्णन् बनाम तमिलनाडु राज्य और एक अन्य
(G. K. Krishnan *v.* The State of Tamil Nadu and another); 16,18,21

[1963] [1963] 3 एस० सी० आर० 809 :
खंडिग शाम भट और अन्य बनाम कृषिक आयकर अधिकारी
(Khandige Sham Bhat and others *v.* The Agricultural Income Tax Officer); 21

[1963] [1963] 1 एस० सी० आर० 491 :
दि आटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य और अन्य
[The Automobile Transport (Rajasthan) Limited *v.* The State of Rajasthan and others;] 12,14,15

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1961]	[1961] 1 एस० सी० आर० 809 : अतियाबाड़ी टी कम्पनी लिमिटेड बनाम आसाम राज्य और अन्य (Atiabari Tea Company Limited *v.* The State of Assam and others).	11,12

आरम्भिक अधिकारिता : **1982 के रिट पिटीशन सं० 2617, 3837, 3973-3981, 3982-3998, 3962-3972, 4011-4015, 4016-4019, 4054-4058, 4036-4143, 4148, 4216, 4217, 4219-4226, 4287-4291, 4317-4321, 4408, 4542, 3518-3529, 3739-42, 4365-81, 8997-9017 और 9639-50.**

भारत के संविधान अनुच्छेद 32 के अधीन प्रस्तुत रिट पिटीशन।

पिटीशनरों की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 3974-61, 3062-72, 4011-15, 4016-19, 4136-43, 4287-91, 4365-81, 9639-50, 3518-29 तथा 3739-42 में)	श्री मोहन पाण्डे
पिटीशनरों की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 3937 में)	सर्वश्री शांति भूषण, बलदेव कपूर और मोहन पाण्डे
पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 3982-98 में)	सर्वश्री बलदेव कपूर और मोहन पाण्डे
पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 2617 में)	डा० वाई० एस० चितले और श्री मोहन पाण्डे
पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशनर सं० 3837 में)	श्री ए० के० गोयल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 4054-58 में)	श्री अरविन्द मिनोचा
पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 4148 में)	श्री एस० के० बगा
पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 4216-4217 में)	श्री विमल दवे
पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 4219-26 तथा 4317-21 में)	श्री सर्व मित्तर
पिटीशनर की ओर से (1982 के रिट पिटीशन सं० 4408 में)	श्री आर० सी० कोहली
प्रत्यर्थियों की ओर से (सभी रिट पिटीशनों में)	सर्वश्री एल० एन० सिन्हा, महा अटर्नी, डी० डी० शर्मा तथा पी० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या ने दिया।

न्यायाधिपति वेंकटरामय्या—

पिटीशनरों ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए इन रिट पिटीशनों में पंजाब मोटर व्हिकल्स टैक्सेशन ऐक्ट/पंजाब मोटर-यान कराधान अधिनियम/1924(1924 का अधि० सं० 4) (जिसे इसमें अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 3 की, जैसी कि वह पंजाब मोटर व्हिकल्स टैक्सेशन (अमेंडमेंट) ऐक्ट [पंजाब मोटर यान कराधान (संशोधन) अधिनियम], 1981(1981 का पंजाब अधि० सं० 13) द्वारा संशोधित की गई थी, तथा उक्त अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन पंजाब की राज्य सरकार द्वारा जारी की गई तारीख 19 मार्च, 1981 वाली अधिसूचना की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी है।

2. पिटीशनर मोटर यानों के स्वामी हैं और वे पंजाब राज्य में मंजिली गाड़ियां चलाने का कारबार कर रहे हैं। जहां कि पिटीशनरों द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चलाई जाने वाली मंजिली गाड़ी सेवाओं का प्रवर्तन मोटर यान अधिनियम, 1939 के, जो कि केन्द्रीय अधिनियम है, उपबंधों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, वहीं वे अधिनियम के अधीन अपने स्वामित्वाधीन मोटर यानों पर कर का संदाय करने के दायित्वाधीन हैं। उक्त अधिनियम एक ऐसा अधिनियम है जो कि संविधान के प्रवृत्त होने से पूर्व अधिनियमित किया गया था। संविधान के प्रवृत्त होने के बाद, ऐसे माल तथा यात्रियों पर, जो कि सड़क से अथवा अन्तरदेशीय जल मार्गों से ले जाये जाते हैं, कर उद्ग्रहण करने की शक्ति और ऐसे यानों पर कर उद्ग्रहण करने की शक्ति, चाहे ऐसे यान यांत्रिक रूप से चलाए जाते हों अथवा सड़कों पर चलाए जाने के लिए उपयुक्त न हों जिनके अन्तर्गत ट्राम कारें भी हैं, संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की क्रमश: प्रविष्टि 56 तथा 57 द्वारा राज्यों को समनुदिष्ट की गई है। जब कि उक्त अधिनियम की प्रविष्टि 57 के अधीन अधिनियमित किया गया है, राज्य विधान मण्डल ने प्रविष्टि 56 के अधीन अनुदत्त अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए, पंजाब पैसेंजर्स एण्ड गुड्स टैक्सेशन ऐक्ट (पंजाब यात्री और माल कराधान अधिनियम), 1952 अधिनियमित किया है। संविधान के प्रारम्भ से पूर्व, अधिनियम की धारा 3(1) जो कि एक प्रभारी धारा है, इस प्रकार थी :—

> *"3(1) प्रत्येक मोटर यान पर कर त्रैमासिक कालावधियों के लिए जो कि अप्रैल के प्रथम दिन, जुलाई के प्रथम दिन, अक्तूबर के प्रथम दिन और जनवरी के प्रथम दिन प्रारम्भ होती है, इस अधिनियम की अनुसूची में विनिर्दिष्ट दर से बराबर-बराबर किस्तों में उद्ग्रहणीय होगा।"

3. उपर्युक्त उपबंध 1954 में संशोधित किया गया जिसमें यह उपबंध किया गया था कि अधिनियम के अधीन उद्गृहीत कर की दरें ऐसी दरें हैं जो कि अधिनियम की अनुसूची में स्वयं राज्य विधानमण्डल द्वारा विनिर्दिष्ट कर की दरों की बजाय राज्य सरकार द्वारा निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "3. (1) A tax shall be leviable on every motor vehicle in equal instalments for quarter'y periods commencing on the first day of April, first day of July, first day of October and the first day of January at the rates specified in the schedule to this Act."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो, किन्तु जो अधिनियम द्वारा नियत अधिकतम सीमा के अधीन रहेंगी। इस संशोधन के पश्चात् धारा 3(1) इस रूप में थी—

*"धारा 3(1)—प्रत्येक मोटर यान पर कर त्रैमासिक कालावधियों के लिए जो कि अप्रैल के प्रथम दिन, जुलाई के प्रथम दिन, अक्तूबर के प्रथम दिन और जनवरी के प्रथम दिन प्रारम्भ होती हैं, बराबर-बराबर किस्तों में एक वर्ष की कालावधि के लिए प्रत्येक यान पर 2,200 रुपए से अनधिक ऐसी दरों से उद्ग्रहणीय होगा जैसी कि राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा निदेश दे।"

(जोर देने के लिए रेखांकित)

4. धारा 3(1) में वर्णित 2,200 रुपए की अधिकतम सीमा को बढ़ाकर क्रमवर्ती विधायी संशोधनों द्वारा 1963 में 2,750 रुपए, 1965 (में 4,200 रुपए, 1970 में) 10,000 रुपए और 1978 में 20,000 रुपए कर दिया गया। राज्य सरकार को जो शक्तियां प्रदत्त की गई थीं, उनका प्रयोग करते हुए उसने मंजिली गाड़ियों के मामले में कर की दर 1965 में 75 रुपए प्रति सीट, 1970 में 100 रुपए प्रति सीट और 1971 में 200 रुपए प्रति सीट कर दी, किन्तु यह अधिनियम द्वारा विहित अधिकतम दर के अध्यधीन थी। 31 मार्च, 1978 को राज्य सरकार ने अधिसूचना जारी की जिसमें यह उपबंध किया गया कि 1 अप्रैल, 1978 को तथा तत्पश्चात्, जहां कि मंजिली गाड़ी 125 किलोमीटर प्रति दिन चलाई जाती है वहां प्रत्येक को 275 रुपए प्रति सीट और जहां वह 125 किलोमीटर से अधिक चलाई जाती है वहां 300 रुपये प्रति सीट की दर से कर का संदाय करना चाहिए, किन्तु इन दोनों ही दशाओं में वह 20,000 रुपये प्रति वर्ष की अधिकतम सीमा के अध्यधीन है।

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

* "3 (1) A tax sha'l be leviable on every motor vehicle in equal instalments for quarterly periods commencing on the first day of April, first day of July, first day of October and the first of January at such rates not exceeding Rs. 2,200 - per vehicle for a period of one year as the State Government may by notification direct ;'

(Emphasis added)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तत्पश्चात् 1981 वाला संशोधन अधिनियम अधिनियमित किया गया जिसके द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 3(1) में विहित अधिकतम सीमा को 1 अक्तूबर, 1980 से भूतलक्षी प्रभाव से, बढ़ाकर 35,000 रुपये कर दिया गया। संशोधन अधिनियम की धारा 3 द्वारा पूर्वोक्त अधिनियम में एक नवीन धारा अन्तःस्थापित की गई जोकि अधिनियम की धारा 3-क और जो राज्य सरकार को 1 अक्तूबर, 1980 से भूतलक्षी प्रभाव से कर की दर में वृद्धि करते हुए धारा 3(1) के अधीन अधिसूचना जारी करने के लिए प्राधिकृत करती है। 1981 में किए गए संशोधन के पश्चात्, अधिनियम की धारा 3(1) निम्नलिखित रूप में है—

> *"3(1) प्रत्येक मोटर यान पर कर त्रैमासिक कालावधियों के लिए जोकि अप्रैल के प्रथम दिन, जुलाई के प्रथम दिन, अक्तूबर के प्रथम दिन और जनवरी के प्रथम दिन प्रारम्भ होती हैं, बराबर-बराबर किस्तों में कर जो कि एक वर्ष की कालावधि के लिए प्रत्येक यान पर 35,000 रुपए से अनधिक ऐसी दरों पर उद्ग्रहणीय होगा, जैसी कि राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा निदेश दे।"

5. जैसीकि उपर्युक्त धारा 1981 में संशोधित की गई थी, उसके अनुसरण में तथा अधिनियम की नवान्तःस्थापित धारा 3-क के अनुसरण में जोकि राज्य सरकार को 1 अक्तूबर, 1980 से उक्त अधिनियम के अधीन कर की दर में वृद्धि करने की शक्ति प्रदत्त करती है, उसने 9 मार्च, 1981 को निम्नलिखित अधिसूचना जारी की—

> "परिवहन विभाग
>
> अधिसूचना
>
> 19 मार्च, 1981
>
> सं० एस० ओ० 15/पी० ए० 4/24 एस० 3/ए० एम० डी०/81—पंजाब के राज्यपाल, पंजाब मोटर व्हिकल्स टैक्सेशन ऐक्ट,

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "3. (1) A tax shall be leviable on every motor vehicle in equal instalments for the quarterly periods commencing on the first day of April, first day of July, first day of October and the first day of January at such rates not exceeding Rs. 35,000 per vehicle for a period of one year, as the State Government may by notification direct."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

1924 (1924 का पंजाब अधिनियम सं० 4) की धारा 3-क के साथ पठित धारा 3 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों एवं इस निमित्त ऐसी अन्य सभी समर्थकारी शक्तियों का प्रयोग हुए तारीख 10 नवम्बर, 1971 वाली पंजाब सरकार परिवहन विभाग अधिसूचना सं० एस० ओ०/50/पी० ए० 4/24/एस० 3/71, के साथ उपाबद्ध अनुसूची में 1 अक्तूबर, 1980 से निम्नलिखित संशोधन करते हैं, अर्थात् :—

संशोधन

उक्त अनुसूची में, क्रम सं० 5 के सामने मद (i) के तथा तत्सम्बन्धी प्रविष्टियों के स्थान पर निम्नलिखित मद तथा प्रविष्टियां रखी जाएंगी, अर्थात् :—

"(I) ऐसी मंजिली गाड़ियां जो भाड़े के लिए होती हैं और जिनका उपयोग यात्रियों के परिवहन के लिए किया जाता है किन्तु जिनमें ड्राईवर तथा कन्डक्टर शामिल नहीं होगा।	अधिकतम 35,000 रुपये के अध्यधीन रहते हुए, 500 रुपये प्रति सीट।"

सदा नन्द
सचिव, पंजाब सरकार,
परिवहन विभाग।"

6. उपर्युक्त अधिसूचना के पश्चात् जो अन्तिम स्थिति उभरकर सामने आई, वह यह थी कि प्रत्येक ऐसी मंजिली गाड़ी को जो कि भाड़े पर चल रही हो, और जिसका उपयोग यात्रियों (जिनके अन्तर्गत ड्राईवर तथा कन्डक्टर नहीं होगा) परिवहन के लिए किया जा रहा हो इसका ध्यान न करते हुए कि वह प्रति दिन कितना फासला तय करती है, अधिकतम 35,000 रुपये के अध्यधीन रहते हुए 500 रुपये प्रति सीट प्रति वर्ष संदाय करना था।

7. इन पिटीशनों में पिटीशनरों ने 1981 में किए गए उस संशोधन को जिसके द्वारा कर की अधिकतम सीमा में वृद्धि कर के 35,000 रुपये प्रति वर्ष और तारीख 19 मार्च, 1981 वाली उस अधिसूचना को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी है जिसके द्वारा कर बढ़ाकर 500 रु० प्रति सीट कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिया गया था। पिटीशनरों ने अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील भी दी कि आक्षेपित अधिसूचना द्वारा अधिरोपित 500 रुपये प्रति सीट के कर के उद्ग्रहण से संविधान के अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 19(1) (छ) तथा अनुच्छेद 304 (ख) का अतिक्रमण होता है। उन्होंने यह भी अभिवचन किया है कि जो कर इस समय उद्गृहीत किया गया है वह संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 56 और 57 की परिधि के बाहर है। उन्होंने जिस मुख्य मुद्दे पर जो दिया है वह यह है कि जो कर अब उद्गृहीत किया गया है उसका स्वरूप प्रतिकरात्मक न होकर स्वत्वहारी है और उसे राज्य सरकार इस प्रयोजन के लिए संगृहीत कर रही है ताकि उसके सामान्य राजस्वों में वृद्धि की जा सके जोकि संविधान द्वारा निषिद्ध है। अपने पक्षकथन के समर्थन में पिटीशनरों ने निम्नलिखित आंकड़े पेश किए जोकि 1981-82 वाले वर्ष में राज्य विधानमण्डल के समक्ष प्रस्तुत किए गए बजट में अन्तर्विष्ट थे :—

प्राप्तियां

रसीदें

यानों पर कर	रु० 13,86,00,000
माल और यात्रियों पर कर	रु० 35,45,00,000
योग	रु० 49,31,00,000
व्यय	
सड़कों और पुलों पर	रु० 34,03,00,000
व्यय से प्राप्तियों का आधिक्य	रु० 15,28,00,000

8. पिटीशनरों की ओर से यह दलील दी गई कि उपर्युक्त आंकड़ों को देखते हुए, जो कि स्वयं राज्य सरकार ने पेश किए हैं, आक्षेपित अधिसूचना द्वारा कर की दर बढ़ाने का कोई न्यायौचित्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, पिटीशनरों ने यह अभिवचन किया है कि आक्षेपित उद्ग्रहण पंजाब राज्य के भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता पर अभियुक्ति-युक्त निर्बन्धन अधिरोपित करता है।

9. राज्य सरकार ने इस मामले में फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में जिनका अभिसाक्षी पंजाब सरकार के परिवहन विभाग का संयुक्त सचिव है, आक्षेपित उद्ग्रहण को न्यायोचित ठहराया है। राज्य सरकार ने, अन्य बातों के साथ-साथ, यह दलील दी है कि पिटीशनरों का यह अभिवाक् कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आक्षेपित अधिसूचना द्वारा संग्रहीत राजस्व का उपभोग "केवल सड़कों और पुलों सम्बन्धी सुविधाओं का उपबंध करने और/या माल और यात्रियों के परिवहन से सम्बद्ध सुविधाओं के लिए ही किया जाना चाहिए" राज्य सरकार की विभिन्न अन्य जिम्मेदारियों का ध्यान रखते हुए जो इसे सड़क परिवहन से सम्बन्धित कार्य करने के लिए वहन करनी पड़ती हैं, भ्रामक था और यदि सुसंगत व्यय की सभी मदों पर उपगत व्यय को विचार में लिया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रश्नगत उदग्रहण अत्यधिक नहीं है। इस बात पर जोर दिया गया कि उद्ग्रहण प्रतिकरात्मक स्वरूप का है और इसी कारण उससे संविधान के अनुच्छेद 301 या अनुच्छेद 304(ख) का उल्लंघन नहीं होता। राज्य सरकार ने भी यह बात दर्शित करने के लिए कि उद्ग्रहण न तो मनमाना है और न ही संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) का अतिक्रमण करता है, इसके द्वारा उपगत व्यय से सम्बन्धित कतिपय आंकड़े दिए हैं।

10. अब हम संविधान के सुसंगत उपबंधों की परीक्षा करेंगे। अनुच्छेद 301 और अनुच्छेद 304(ख) जो कि संविधान के भाग 13 में हैं, इस प्रकार हैं:—

"301. इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए, भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।"

304. अनुच्छेद 301 या अनुच्छेद 303 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का विधानमण्डल, विधि द्वारा—

(क) ....

(ख) उस राज्य के साथ या उसके भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता पर ऐसे युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित कर सकेगा जो लोक हित में अपेक्षित हों:

परन्तु खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिए कोई विधेयक या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना किसी राज्य के विधानमण्डल में पुरःस्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा।"

11. संविधान के इन उपबंधों पर अतियाबाड़ी टी कम्पनी लिमिटेड बनाम आसाम राज्य और अन्य[1] वाले मामले में इस न्यायालय के पांच विद्वान न्यायाधिपतियों से गठित संविधान न्यायपीठ के समक्ष विचार किया

---

[1] [1961] 1 एस० सी० आर० 809.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया था और उस मामले में विनिश्चय के लिए जो मुख्य प्रश्न उठा था, वह यह था कि क्या संविधान की सप्तम अनुसूची में दिए गए कराधान उपबंध अनुच्छेद 301 से 304 के अध्यधीन हैं या नहीं और यदि ऐसा है, तो संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 56 के अधीन उद्गृहीत करों पर उनका प्रभाव क्या होगा। न्यायाधिपति गजेंद्रगडकर ने (जैसा कि कि वे उस समय थे) अपनी और न्यायाधिपति वांचू तथा दास गुप्ता की ओर से, जिनके साथ न्यायाधिपति शाह ने (जैसा कि वे उस समय थे) सहमति व्यक्त की थी, यद्यपि उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 301 में व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता को व्यापक अर्थ दिया था, निर्णय सुनाते हुए पृष्ठ 861 पर यह मत व्यक्त किया—

"अतः हमारा निष्कर्ष यह है कि जब अनुच्छेद 301 में यह उपबंध है कि भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र व्यापार अबाध होगा, तो इसका अभिप्राय यह है कि व्यापार राज्य की सीमाओं पर राज्यों के ही भीतर किन्हीं अन्य स्थलों पर भी किसी निर्बन्धन के कारण सरल और निर्विघ्न होगा। उससे देश के एक भाग से दूसरे भाग को माल के अबाध संचलन या परिवहन की बात को ही संरक्षण देना आशयित है, और यदि कोई अधिनियम ऐसे माल के संचलन पर ही कोई सीधा निर्बन्धन अधिरोपित करता है, तो इससे अनुच्छेद 301 के उपबंधों का उल्लंघन होगा और इसकी विधिमान्यता को केवल तभी बनाए रखा जा सकेगा जबकि भाग 13 में दिए गए अनुच्छेद 302 या अनुच्छेद 304 की अपेक्षाओं की पूर्ति हो जाती है। इस प्रक्रम में, हम समझते हैं कि इस बात को दोहराना आवश्यक है कि जब यह कहा जाता है कि व्यापार के संचलन की स्वतंत्रता, माल के वहन या उनके संचलन पर अधिरोपित करों के रूप में किसी निर्बन्धन के अध्यधीन नहीं हो सकती तो इसका जो अभिप्राय है वह यह है कि उक्त निर्बन्धनों को राज्य विधानमण्डल केवल तभी अधिरोपित कर सकता है, जब अनुच्छेद 304(ख) की अपेक्षाओं की पूर्ति हो जाए। इसका यह अर्थ नहीं है कि व्यापार के अबाध संचलन पर कोई निर्बन्धन अधिरोपित किया ही नहीं जा सकता।"

12. यही प्रश्न बाद में इस न्यायालय के सात विद्वान न्यायाधिपतियों की खण्ड न्यायपीठ के समक्ष दि आटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बनाम राजस्थान राज्य और अन्य[1] वाले मामले में ठीक उसी रूप में उठा था जिसमें अतियाबाड़ी टी कम्पनी लिमिटेड[2] के मामले में विनिश्चय के सही होने की बात को चुनौती दी गई। इस मामले में संविधान की सप्तम् अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 57 के अधीन कर का उद्ग्रहण करने विषयक राज्य विधानमण्डल की शक्ति पर संविधान के अनुच्छेद 301 से अनुच्छेद 304 तक के प्रभाव के अवधारण की बात उठाई गई थी। उस मामले में तीन निर्णय दिए गए। न्यायाधिपति दास, कपूर और सरकार का निर्णय न्यायाधिपति दास ने दिया जिसके साथ न्यायाधिपति सुब्बा राव ने अपने सम्मत निर्णय में सहमति व्यक्त की। न्यायाधिपति हिदायतुल्ला, राजगोपाल अय्यंगर और मधोलकर का अल्पमत निर्णय न्यायाधिपति हिदायतुल्ला ने दिया। उस मामले में अपीलार्थी की दलील यह थी कि राजस्थान मोटर व्हीकल्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1951 की अनुसूची के साथ पठित उसकी धारा 4 राजस्थान राज्य के साथ और उसके भीतर व्यापार और वाणिज्य के संचलन पर सीधा और प्रत्यक्ष निर्बन्धन लगाती है और चूंकि ऐसे मोटर यानों को, जो कि राज्य के भीतर या उसमें से होकर यात्रियों या माल को ले जाते हैं, कर का संदाय करना पड़ता था जो वाणिज्यिक क्रियाकलाप पर धन संबंधी भार अधिरोपित करता था और अतः उससे संविधान के अनुच्छेद 301 का उल्लंघन होता था और उसे अनुच्छेद 304(ख) का संरक्षण प्राप्त नहीं था क्योंकि इससे न तो अनुच्छेद 304(ख) के परन्तुक का अनुपालन हुआ है और न ही राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 255 में उपबंधित रूप में इस अधिनियम को अपनी अनुमति दी है। राजस्थान राज्य की ओर से, अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर जोर दिया गया कि सड़कों आदि के अनुरक्षण के लिए राजस्व संगृहीत करने के प्रयोजन के लिए अधिनियमित राजवित्तीय विधान से अनुच्छेद 301 का उल्लंघन नहीं हुआ है और यह कि आक्षेपित उद्ग्रहण जो कि मोटर यान यातायात को सुविधाएं देने के लिए आशयित था, व्यापार और वाणिज्य के संचलन पर कोई प्रत्यक्ष या सीधी बाधा नहीं उत्पन्न करता। उस मामले की सुनवाई के दौरान यह दलील दी गई कि आक्षेपित कर प्रतिकरात्मक होने के कारण अनुच्छेद 301 और अनुच्छेद 304(ख) की परिधि से बाहर है। **अतियाबाड़ी टी कम्पनी वाले मामले**[2] में अभिव्यक्त सभी विचारों का परीक्षण करने के पश्चात् न्यायाधिपति

---

[1] [1963] 1 एस० सी० आर० 491,

[2] [1961] 1 एस० सी० आर० 809.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दास ने पृष्ठ 532-533 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हमारे समक्ष किया गया न तो व्यापक निर्वचन, न ही संकीर्ण निर्वचन, हमें स्वीकार्य है। वह निर्वचन जिसे अतियाबाड़ी टी कम्पनी[1] वाले मामले में बहुमत ने माना था, सही है, किन्तु वह इस स्पष्टीकरण के अधीन है। विनियमनकारी उपाय या ऐसे उपाय जो व्यवसाय-सुविधा के प्रयोग के लिए प्रतिकरात्मक कर अधिरोपित करते हैं, अनुच्छेद 301 द्वारा अनुध्यात निर्बन्धनों के क्षेत्र के भीतर नहीं आते और ऐसे उपायों के बारे में संविधान के अनुच्छेद 304(ख) के परन्तुक की अपेक्षाओं का पालन किया जाना अपेक्षित नहीं है।"

13. न्यायाधिपति सुब्बा राव ने जो न्यायाधिपति दास के निर्णय से सहमत थे, पृष्ठ 564-565 पर इस प्रकार मत व्यक्त किया—

"पूर्वगामी विवेचन को निम्नलिखित प्रतिपादनाओं में संक्षिप्त किया जा सकता है: (1) अनुच्छेद 301 अन्तर्राज्यीय (इण्टर-स्टेट) या अन्तःराज्यीय (इण्ट्रा-स्टेट) रोधों के रूप में किसी रुकावट या ऐसे रोधों के रूप में परिचालित अन्य बाधाओं के बिना व्यापार के अबाध संचलन के अधिकार की घोषणा करता है। (2) उक्त स्वतंत्रता में कोई अड़चन नहीं पड़ती किन्तु इसके विपरीत इससे व्यापार के अबाध संचलन के लिए ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करने वाले विनियमों को, जैसे पुलिस विनिमय, सेवाओं की व्यवस्था, सड़कों का अनुरक्षण, हवाई-अड्डों, घाटों आदि की व्यवस्था द्वारा प्रतिकर सहित या उसके बिना बढ़ावा दिया गया है। (3) संसद विधि द्वारा लोक हित में ऐसी स्वतंत्रता पर निर्बन्धन अधिरोपित कर सकती है; और उक्त विधि किसी ऐसी प्रविष्टि के आधार पर बनाई जा सकती है, जिसकी बाबत संसद को विधि बनाने की शक्ति है। (4) राज्य भी, अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करके, अनुच्छेद 304(ख) में अधिकथित दो शर्तों के अधीन रहते हुए और उसमें उल्लिखित परन्तुक के अधीन रहते हुए ऐसे ही निर्बन्धन अधिरोपित कर सकता है। (5) न तो संसद और न ही राज्य-विधानमण्डल एक राज्य पर दूसरे राज्य को वरीयता देने वाली या सूचियों में किसी प्रविष्टि के आधार पर उक्त स्वतंत्रता का अतिलंघन करने वाली कोई विधि बना सकता है। (6) संसद् के मामले में भारत के

[1] [1961] 1 एस० सी० आर० 809.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राज्यक्षेत्र के किसी भाग में माल की कमी से उत्पन्न स्थितियों का सामना करने के लिए और अनुच्छेद 304(ख) के अधीन राज्य के मामले में भी उसमें उल्लिखित शर्तों के अधीन रहते हुए यह पाबंदी हटाई जा सकती है। और (7) राज्य अन्य राज्यों का संघ राज्यक्षेत्र से आयातित माल पर बिना किसी भेदभाव के ऐसा कर अधिरोपित कर सकता है जिसके अधीन उस राज्य में विनिर्मित या उत्पादित वैसे ही माल हैं।"

14. अल्पमत निर्णय में अभिव्यक्त विचारों के प्रति यहां निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है। **आटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड वाले मामले**[1] में बहुमत निर्णय का सार यह है कि जब तक संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की मद 56 और 57 के अधीन उद्गृहीत कर प्रतिकरात्मक हैं, तब तक वे संविधान के अनुच्छेद 301 की परिधि में नहीं आते। किन्तु यदि वे प्रतिकरात्मक नहीं हैं, तो व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता के रूप में उन्हें अनुच्छेद 304 के खंड (ख) की अपेक्षाओं का समाधान करना होगा। अनुच्छेद 304(ख) के अन्तर्गत आने वाले सभी मामलों में कोई अध्यादेश या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना राज्य विधानमण्डल में न तो पुरःस्थापित किया जा सकता है और न ही प्रस्तावित किया जा सकता है। यदि किसी कारण से इस अपेक्षा का पालन नहीं हो पाता, तो ऐसी विधि को विधिमान्य बनाने के लिए संविधान के अनुछेद 255 में यथा-उपबन्धित राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होनी चाहिए।

15. अतः अब अवधारण करने के लिए जो मुख्य प्रश्न उठता है, वह यह है कि मामले के तथ्यों के आधार पर और उसकी परिस्थितियों में प्रश्नगत उद्ग्रहण किसी भी तरह से प्रतिकरात्मक नहीं है। **आटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड के मामले**[1] में ऐसी परिस्थितियों पर विचार किया गया है जब मोटर यानों पर कोई कर प्रतिकरात्मक कर माना जाता है। न्यायाधिपति दास ने पृष्ठ 536-537 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

> "ऐसे कर प्रतिकरात्मक कर कहलाते हैं जो व्यापार, वाणिज्य और समागम में रुकावट डालने की बजाय सड़कों की व्यवस्था करके तथा सड़कों की मरम्मत द्वारा उन्हें अच्छी हालत में रखकर

[1] [1963] 1 एस० सी० आर० 491.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बनाते हैं। कोई कर प्रतिकरात्मक हैं या नहीं, इस बात को उसे अधिरोपित करने वाले स्टेट्यूट की उद्देशिका पर निर्भर नहीं बनाया जा सकता है। न ही हमारा यह विचार है कि यह कहना ठीक होगा कि कोई कर प्रतिकरात्मक नहीं है क्योंकि एकत्रित की गई संक्षिप्त अथवा विनिर्दिष्ट रकम का उपयोग वास्तविक रूप से किसी सुविधा का उपबन्ध करने के लिए नहीं किया है'''वास्तविक उपयोग का ज्ञान अक्सर व्यापारियों को नहीं होता है और ऐसा उपयोग किसी समय प्रतिकरात्मक हो सकता है और कभी नहीं हो सकता है। हमें प्रतीत होता है कि इस बात का विनिश्चय करने के लिए कि कोई कर प्रतिकरात्मक है या नहीं, वास्तविक परीक्षा इस बात की जांच करना है कि व्यापार करने वाले लोग अपने कारबार के उत्तम संचालन के लिए कतिपय प्रसुविधाओं का उपयोग कर रहे हैं या नहीं और विशेष रूप से उससे अधिक का संदाय नहीं कर रहे हैं जो प्रसुविधाओं के उपबन्ध के लिए अपेक्षित हैं। किसी अनिश्चित परीक्षा द्वारा कर के प्रतिकरात्मक स्वरूप का निर्णय करना सम्भव नहीं होगा और मामले की परिस्थितियों में ऐसा नहीं किया जा सकता है।

न ही हमारा यह विचार है कि इससे कोई फर्क पड़ेगा कि कर से एकत्रित धन तब तक किसी पृथक निधि में नहीं रखा जाता है जब तक कि व्यापार करने वाले व्यक्तियों के लिए जो कर का संदाय करते हैं, सुविधाओं की व्यवस्था न कर दी गयी हो, और उनका उपबन्ध करने में किए गए व्यय राज्य द्वारा किसी भी स्रोत से वहन किए गए हों।....

हमारा ध्यान कर, फीस और उत्पाद शुल्क के बीच किसी हद तक प्रभेद के प्रति दिलाया गया था। हमें यह भी बताया गया था कि अधिनियम के अधीन लगाए गए कर विशेष रूप से भवन या सड़कों की व्यवस्था के लिए नहीं थे। हमारा विचार यह नहीं है कि ये बातें आवश्यक रूप से इस बात का अवधारण करती हैं कि कर प्रतिकरात्मक हैं या नहीं। हमें मामले के सार पर विचार करना चाहिए।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

16. जी० के० कृष्णन बनाम तमिलनाडु राज्य और एक अन्य[1] और इंटरनेशनल टूरिस्ट कारपोरेशन बनाम हरियाणा राज्य और अन्य[2] वाले मामलों में इसी नियम का अनुसरण किया गया और इसे दोहराया गया।

17. इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हाल ही के वर्षों में भारत के सभी राज्यों में सड़क प्रणालियों में बड़े पैमाने पर परिवर्तन हुए हैं और पंजाब राज्य भी इससे बचा नहीं है। सड़कों का विस्तार बहुत अधिक बढ़ गया है। इसी प्रकार से सड़कों पर भीड़भाड़ भी बढ़ी है मोटर यानों की, यात्री यानों और माल यानों दोनों की, जो कि सड़कों का प्रयोग करते हैं, संख्या बढ़ गई हैं। इसके अनुरूप ही सड़कों के अनुरक्षण की लागत भी बढ़ गई है। आसमान को छूती हुई मुद्रास्फीति से कीमतें बहुत अधिक बढ़ी हैं। यह स्वाभाविक है कि देश के प्रत्येक भाग में मोटर यानों पर करों की दरें भी निरंतर और अनिवार्य रूप से बढ़ गई हैं। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है संविधान के भाग 13 के उपबन्धों में जो आदेश हैं उसका अभिप्राय यह नहीं है कि व्यापार, वाणिज्य और समागम "अत्यधिक रूप से अबाध" होगा अर्थात कि यह किसी विधि या किसी कर के अधीन हो ही नहीं सकेगा। व्यापार, वाणिज्य और समागम को अपने हिस्से का संदाय करना चाहिए, अर्थात उन्हें वह कीमत चुकानी चाहिए जिसके लिए राज्य सड़कें, पुल, चेक पोस्टें, परिवहन, कानून और व्यवस्था के विनियमन के लिए आशायित विभागीय संगठनों की व्यवस्था करता है। आधुनिक समुदायों में कोई व्यापार करने और किसी कारबार का संचालन करने में कई प्रकार के राज्य-कर सम्बन्धी दायित्व शामिल होते हैं। केवल इस कारण से कि उन पर कतिपय कर उद्गृहीत किए गए हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि व्यापार और वाणिज्य अबाध नहीं हो गया है। सड़कों की मरम्मत, अनुरक्षण और अवक्षयण की व्यवस्था के बिना परिवहन सम्भव नहीं है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पहले ही अभिनिर्धारित किया गया है, ऐसे मोटर यानों को जो ऐसी सड़कों से सीधे सम्बन्धित हैं, पूर्वोक्त प्रयोजनों के लिए उपगत लागत के लिए अभिदाय करना चाहिए। व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता की धारणा से उस दशा में असंगति नहीं है यदि वास्तव में जो कुछ कर के रूप में संग्रह किया जाता है, वह ऐसा धनीय प्रभार है जो कि प्रतिकरात्मक स्वरूप का है। आवश्यक बात यह है कि यह भार राज्य द्वारा दी गई

[1] [1975] 2 उम० नि० 126=[1975] 2 एस० सी० आर० 715.

[2] [1981] 4 उम० नि० प० 891=[1981] 2 एस० सी० आर० 364.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुविधाओं की लागत से अननुपातिक रूप से अधिक नहीं होना चाहिए। मोटर-यानों के स्वामियों से सड़कों इत्यादि के अनुरक्षण की लागत के लिए अभिदाय करने के लिए कहना बिल्कुल अयुक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि वे ऐसे वर्ग से सम्बन्धित हैं जोकि इस प्रकार दी गई सुविधाओं का विशेष और सीधा फायदा उठाते हैं जब उन पर कर लगाया जाता है, तो वे किसी ऐसी चीज की कीमत का संदाय करते हैं जो उनके संचलन को अधिक सुरक्षित, सुकर और सुविधाजनक बनाती है। यदि सड़कें टूटी-फूटी हालत में रहेंगी तो उनके यानों को नुकसान के और ऐसे यात्रियों तथा माल के जो वे ढोते हैं, स्वामियों को होने वाली सुविधाओं के परिणामस्वरूप होने वाले नुकसान की सीमा बहुत अधिक होगी। इस प्रकार इस बात में संदेह नहीं है कि न्यायालयों को यह विनिश्चय करने में अन्तिम शक्ति होती है कि जो कुछ कर के रूप में वसूल किया जाता है, तथा वस्तुतः और सारतः सड़कों, पुलों के अनुरक्षण और ऐसी अन्य सुविधाओं के लिए है, जिनकी आवश्यकता निर्विघ्न परिवहन सेवा की व्यवस्था करने के लिए है, या ऐसी सुविधाओं की व्यवस्था के लिए जो कुछ आवश्यक है, उसके बदले अत्यधिक आहरण है। फिर भी न्यायालय वसूल किए गए कर और इस प्रकार उपगत लागत के बीच निश्चित परस्पर सम्बन्ध पर जोर नहीं दे सकते, क्योंकि मामले की प्रकृति को देखते हुए ऐसा निश्चित परस्पर सम्बन्ध निकालना सम्भव नहीं है। कुछ मामले ऐसे हो सकते हैं, जिनमें करों के रूप में थोड़ी सी अधिक वसूली हो जाए। यदि अन्तर्ग्रस्त कुल लागत को देखते हुए ऐसे आधिक्य की सीमा थोड़ी अधिक हो जो भी इसके परिणामस्वरूप कर अधिरोपित करने वाली विधि अकृत नहीं हो जानी चाहिए।

18. पिटीशनरों ने अपने मामले के समर्थन में वर्ष 1981-82 के लिए बजट प्राक्कलनों में दिए गए कतिपय आंकड़ों का अवलम्ब लेते हुए यह कहा है कि पंजाब राज्य ने उक्त अधिनियम के अधीन उद्‌गृहीत मोटर-यानों पर करों से और पंजाब पैसेन्जर्स एण्ड गुड्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1952 के अधीन उद्‌गृहीत यात्रियों और माल पर करों से कुल मिलाकर 49,31,00,000 रुपए संगृहीत किए हैं, जबकि राज्य ने सड़कों और पुलों पर केवल 34,03,00,000 रुपए व्यय किए हैं। यह स्पष्ट है कि ऊपर निर्दिष्ट व्यय की रकम में सड़क परिवहन से संबंधित अन्य शीर्षों पर, जैसे कि परिवहन निदेशालय, परिवहन प्राधिकरणों, बस स्टैंडों की व्यवस्था, रोशनी, यातायात-पुलिस, स्थानीय निकायों जैसे नगर निगम, नगरपालिकाओं और ग्राम पंचायतों की अधिकारिता के भीतर वाली सड़कों के अनुरक्षण की लागत पर, जिसके लिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सरकार उन्हें उपर्युक्त प्रयोजनों और अन्य आनुषंगिक मदों के लिए अनुदान देती है राज्य सरकार द्वारा उपगत व्यय सम्मिलित नहीं है। यदि इन मदों को भी विचार में लिया जाए तो प्राप्तियों और परिवहन पर हुए व्यय के बीच का अन्तर, यदि कोई है तो नाम मात्र का रह जाएगा। राज्य सरकार ने पंजाब राज्य के संयुक्त सचिव, श्री कार्ल रेड्डी, आई० ए० एस० द्वारा पेश किए गए शपथ-पत्र में पूर्वोक्त प्रयोजनों के लिए सरकार द्वारा उपगत व्यय विस्तारपूर्वक दिखाया है। राज्य सरकार ने वह पुस्तिका भी पेश की है, जिसमें वर्ष 1983-84 के लिए राज्य विधान-मण्डल के समक्ष पेश किए गए बजट प्राक्कलन दिए गए हैं। इससे पता चलता है कि राज्य सरकार ने वास्तव में वर्ष 1981-82 में सड़कों और पुलों के अनुरक्षण पर 2332,88,000 रुपए का व्यय और सड़कों और पुलों के पूंजी-परिव्यय के रूप में 10,23,53,000 रुपए का व्यय उपगत किया है। केवल सड़कों और पुलों पर ही खर्च होने वाली कुल राशि 33 करोड़ 56 लाख 41 हजार रुपए बनती है। पंजाब सरकार के अनुसार उक्त अधिनियम के अधीन और पंजाब पैसेन्जर्स एण्ड गुड्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1952 के अधीन, दोनों से वर्ष 1981-82 के दौरान वसूल किए गए करों से वास्तविक प्राप्तियां 48,82,00,000 रुपए हैं। वर्ष 1983-84 के बजट प्राक्कलनों से पता चलता है कि राज्य सरकार का वर्ष 1983-84 के दौरान सड़कों और पुलों पर ही लगभग 42 करोड़ रुपए व्यय करने का प्रस्ताव है, यद्यपि मोटर-यानों पर करों के रूप में प्राप्तियों में कोई महत्वपूर्ण बढ़ोतरी होने की प्रत्याशा नहीं है। यदि वर्ष के दौरान उपगत नई सड़कों के सन्निर्माण के संबंध में राज्य सरकार द्वारा उपगत पूंजी परिव्यय को उद्ग्रहण के प्रतिकरात्मक स्वरूप का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए वर्ष के व्ययों में सम्मिलित नहीं किया जाता (यद्यपि ऐसा करने में कोई गम्भीर आपत्ति नहीं मानी जा सकती, जैसा कि उपर्युक्त जी० के० कृष्णन् के मामले में मत व्यक्त किया गया है) किन्तु इसके एक भाग को ही व्यय की अन्य ऐसी मदों के साथ, जिन पर विधिसम्मत रूप से विचार किया जा सकता है, हिसाब, में लिया गया है, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उक्त अधिनियम के अधीन और पंजाब पैसेन्जर्स एण्ड गुड्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1952 के अधीन मोटर-यानों पर उद्ग्रहण का सारवान भाग मोटर यानों के प्राचालकों को सुविधाएं देने पर प्रतिवर्ष व्यय किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त जब किसी वित्तवर्ष के दौरान सड़कों और पुलों पर पूंजी-परिव्यय का कोई भाग आने वाले वर्ष या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्षों को अग्रनीत करने का सिद्धांत उस वर्ष के दौरान सड़कों और पुलों पर उपगत कुल व्यय की संगणना करने में संगणित कर लिया जाता है तो यह अनिवार्य हो जाता हैं कि पूर्व वर्ष या वर्षों में सड़कों या पुलों पर अनामेलित पूंजी-परिव्यय को प्रश्नगत वर्ष के दौरान सड़कों और पुलों पर हुए व्यय में जोड़ना ही होगा। अतः, हमारे समक्ष इस मामले में, गणितीय परिणाम में अधिक अन्तर नहीं हो सकता।

19. यह भी कहा जा सकता है कि अकेले एक वर्ष में मोटर यानों पर कराधानों से और सड़कों और पुलों आदि जैसी सुविधाएं देने पर उपगत व्यय के बीच तुलना करने से भद्दा चित्र दिखाई पड़ सकता है। राज्य सरकार द्वारा 9 वर्षों अर्थात् 1973-74 से 1981-82 (इसमें दोनों शामिल हैं) की बाबत दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि उक्त अधिनियम के अधीन उद्गृहीत करों और पंजाब पैसेन्जर्स एण्ड गुड्स टैक्सेशन ऐक्ट, 1952 के अधीन उद्गृहीत करों से प्राप्तियां कुल, मिलाकर, 2,52,26,83,000 रुपए होती हैं और इसी अवधि के भीतर सड़कों और पुलों पर ही होने वाला कुल व्यय 2,35,66,89,000 रुपए है। उपरोक्त व्यय में सड़क यातायात के सम्बन्ध में उपगत व्यय की अन्य सुसंगत मदें सम्मिलित नहीं है। यदि उनको भी सम्मिलित कर लिया जाता है, ते यह संभाव्य है कि कुल व्यय, प्राप्तियों से अधिक हो जाए।

20. **केवल कृष्ण पुरी और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में, जिसमें फीस का प्रश्न अन्तर्ग्रंत था, उस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि कम से कम, फीस के लेखे संगृहीत रकम का अच्छा-खासा और सारवान भाग (जोकि दो तिहाई या तीन चौथाइ के आस-पास हो सकता है) युक्तियुक्त निश्चिता के साथ उन लोगों की जिनसे फीस का संग्रह किया गया हो, सेवा करने पर खर्च किया गया दिखाया गया है, तो फीस के उद्ग्रहण को कायम रखा जाएगा। विधि में फीस को लागू उपरोक्त नियम के और उस नियम के जो मोटर-यानों के कर के उद्ग्रहण को लागू होता है, जिसके प्रतिकरात्मक प्रकृति के होने का दावा किया गया है, बीच कोई अधिक अन्तर नहीं है। इस बात से हमारा समाधान हो गया है कि राज्य सरकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि आक्षेपित कर वास्तव में प्रतिकरात्मक प्रवृत्ति का है। अतः, यह अभिनिर्धारित किया

---

[1] [1980] 2 उम० नि० प० 1170=[1979] 3 एस० सी० आर० 1217.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाता है कि इससे संविधान के अनुच्छेद 301 और अनुच्छेद 304 (ख) का उल्लंघन नहीं होता है।

21. पिटीशनरों की ओर से किया गया अगला निवेदन संविधान के अनुच्छेद 14 पर आधारित है। पिटीशनरों द्वारा यह दलील दी गई है कि मंजिली गाड़ी के रूप में प्रयुक्त मोटरयानों पर 35 हजार रुपए वार्षिक कर का उद्ग्रहण करने वाला किन्तु मालवाहक के रूप में प्रयुक्त मोटरयानों पर केवल 1500 रुपए प्रतिवर्ष कर उद्गृहीत करने वाला उक्त अधिनियम द्वेषपूर्ण विभेद के दोष से ग्रस्त है और इसी कारण यह अभिखंडित किए जाने के लायक है। इसके सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि राज्य कर सम्बन्धी विधान भी संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन है। किन्तु यह बात सुस्थिर है कि विधान-मंडल को कुछ वस्तुओं पर कर लगाने के लिए सभी वस्तुओं पर कर लगाने की आवश्यकता नहीं है। वह कर दायित्वों को अधिरोपित करने में व्यक्तियों और वस्तुओं का युक्तियुक्त वर्गीकरण अपना सकता है। किसी कराधान विधि को इसलिए विभेदक नहीं माना जा सकता, क्योंकि भिन्न-भिन्न मदों की बाबत कराधान की भिन्न-भिन्न दरें विहित की गई हैं, परन्तु यह तब जब कि यह अभिनिर्धारित करना सम्भव हो कि उक्त मदें सुभिन्न और पृथक् समूहों से संबंधित हैं और यह कि वर्गीकरण और कराधान की भिन्न-भिन्न दरें अधिरोपित करने के उद्देश्य के बीच युक्तियुक्त सम्बन्ध हो। मात्र तथ्य के परिणामस्वरूप कि कोई कर का भार कतिपय माल या व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है, वह अविधिमान्य नहीं हो जाएगा। कराधान विधियों की बाबत **खंडिग शाम भट और अन्य** बनाम **कृषिक आयकर अधिकारी**[1] वाले मामले में, जैसा कि इस न्यायालय ने मत व्यक्त किया था, कराधान विधियों की बाबत माल, वस्तुओं या व्यक्तियों का वर्गीकरण करने की विधान-मण्डल की शक्ति आवश्यक रूप से इस प्रकार व्यापक और लचीली होती है, जिससे कि वह सभी उचित और युक्तियुक्त तरीकों से कराधान की प्रणाली समायोजित कर सके। न्यायालयों का झुकाव समुदाय के सामाजिक और आर्थिक जीवन में अन्तर्ग्रस्त जटिलताओं को देखते हुए कर सम्बन्धी विधि की सांविधानिकता को कायम रखने के पक्ष में अधिक होता है। आधुनिक विधान-मण्डल के कर्तव्यों में यह एक कर्तव्य भी है कि वह समाज की अधिक से अधिक भलाई करने के प्रयोजन के लिए इसके द्वारा किए गए कराधान के अध्यायों का उपयोग करे और इस बाबत विधानमण्डल की बुद्धिमता पर विश्वास करना ही पड़ेगा। जब तक कि राज्य-कर संबंधी प्रश्नगत विधि स्पष्टतः विभेदक न हो,

1 [1963] 3 एस० सी० आर० 809.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय को भी इसे इस आधार पर अभिखण्डित नहीं करना चाहिए कि वह विभेदक है। ये कुछ मोटे-मोटे सिद्धांत हैं, जोकि इस न्यायालय ने अपने कई विनिश्चयों में अधिकथित किए हैं और इस निर्णय को उनके प्रोद्धरणों से बोझिल करने की आवश्यकता नहीं है। इन सिद्धान्तों को लागू करने से पता चलता है कि मंजिली गाड़ियां जोकि विनिर्दिष्ट रूट पर या ऐसे रूटों पर, जिनमें यातायात की मात्रा लगभग निश्चित है और जो सदा खचाखच भरी रहती हैं, प्रतिदिन औसतन लगभग 260 किलोमीटर यात्रा करती हैं, ऐसे वर्ग की होती हैं जोकि सार्वजनिक वाहकों से, जो अनिश्चित रूटों पर माल ढोते हैं, सुभिन्न और अलग है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक वाहक राज्य में प्रतिदिन नहीं चलते। अन्य आर्थिक बातें ऐसी भी हैं जोकि मंजिली गाड़ियों और सार्वजनिक वाहकों को एक दूसरे को सुभिन्न बनाती हैं। मोटर यानों के किसी वर्ग द्वारा सड़कों को होने वाली टूट-फूट की मात्रा से कराधान के प्रयोजनों के लिए मोटर यानों का वर्गीकरण करने में सदा अवधारण करने वाली बात नहीं कही जा सकती। जी० के० कृष्णन वाले मामले में मंजिली गाड़ियों के और संविदा गाड़ियों के जो दोनों यात्रियों को ले जाने में लगी हैं, बीच किए गए वर्गीकरण को कायम रखने के लिए इस न्यायालय द्वारा दिए गए कारण मंजिली गाड़ियों के जो कि यात्रियों को ले जाती हैं और सार्वजनिक वाहकों के जोकि माल का परिवहन करते हैं, बीच किए गए वर्गीकरण के मामले में संगत नहीं है। पिटीशनरों ने न्यायालय के सामने यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं रखी है, कि आक्षेपित उद्ग्रहण में उपर्युक्त आधार पर विभेद का दोष मौजूद है।

22. अन्त में इस बात पर जोर दिया गया कि उद्ग्रहण की प्रकृति लगभग अधिहरण करने वाली है और पिटीशनरों को मंजिली गाड़ी के रूप में अपना कारबार बंद कर देना पड़ेगा। यह बात बताई गई कि इस मामले में उद्ग्रहण के बढ़ाए जाने से ठीक पूर्व यात्री किराए 43 प्रतिशत तक बढ़ाए जाने की अनुज्ञा दी गई थी और प्रचालक अब भी यदि चाहें तो राज्य सरकार से दरों के बढ़ाए जाने की बात उस दशा में कर सकते हैं, यदि उन्हें ऐसा लगे कि इसके लिए उनके पास आधार हैं। किन्तु, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हमारा यह विचार है कि इस बात को मानना संभव नहीं है कि आक्षेपित उद्ग्रहण से पिटीशनरों के कारबार चलाने की स्वतन्त्रता पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित हुआ है। वे बातें जो उन बातों के समानर्थी, जिन्होंने प्राग ब्राइस एण्ड आयल मिल्स और एक अन्य बनाम भारत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संघ[1] के मामले में मस्टर्ड आयल प्राइस कंट्रोल आर्डर, 1977 को कायम रखने में इस न्यायालय पर प्रभाव डाला था, इस मामले को भी लागू की जानी चाहिए। यद्यपि यात्रियों को जारी की गई टिकटों पर निम्नतर विवरणियां नियत करने में मंजिली गाड़ियों के लिए प्रत्यक्ष अन्याय को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए, विनिधान पर युक्तियुक्त लाभ या फायदे की युक्तियुक्त दर को अधिकतम किरायों के, जिन्हें प्रचालक अपने यात्रियों से इकट्ठा कर सकते हैं, नियत करने के सरकार के आदेश की विधिमान्यता के अनिवार्य होने की बात नहीं मानी जा सकती। यह भी नहीं कहा जा सकता कि मात्र इस तथ्य से क्योंकि कोई कारबार नए उद्ग्रहण के परिणामस्वरूप अलाभकारी बन जाता है, इसलिए नया उद्ग्रहण उक्त कारबार चलाने के मूल अधिकार पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन की कोटि में आएगा। तथापि, यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक समझे, तो वह किरायों में परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र है। किन्तु आक्षेपित उद्ग्रहण को इस आधार पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता कि आक्षेपित उद्ग्रहण के पुरःस्थापना के पश्चात् मंजिली गाड़ियों का चलाना अलाभकारी हो गया है। इसके अतिरिक्त पिटीशनरों द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत सामग्री भी यह विनिश्चय करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि कारबार वास्तव में अलाभकारी हो गया है या नहीं अतः हमें इस आधार में भी कोई गुणागुण दिखाई नहीं देता।

23. परिणामतः, ये पिटीशनें असफल होती हैं और खारिज की जाती हैं। खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं है।

पिटीशन खारिज किए गए।

घ०/श्री०

———

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 1326=[1978] 3 एस० सी० आर० 293.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पटेल सुरेश भाई जशभाई

बनाम

पटेल सतभाई माथुरभाई

(Patel Sureshbhai Jashbhai
v.
Patel Satabhai Mathurbhai)

(28 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (1948 का 67)—धारा 32-पीपी (i) और 32-जी—अभिधारी के रूप में प्रास्थिति—अभिधारी द्वारा भूमि का क्रय किया जाना—हाजिर होने में अभिधारी का असफल रहना उक्त क्रय को निष्प्रभावी बना देता है ।

पद्धति तथा प्रक्रिया—प्रतिप्रेषण—जहां अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री मौजूद हो, वहां न्यायालय मामले का विनिश्चय कर सकता है और निचले न्यायालय अथवा अधिकरण को मामला वापस भेजने की बजाय समुचित निदेश जारी कर सकता है ।

बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (1948 का 67)—धारा 32-पी पी—उक्त धारा के अधीन आवेदन—भूस्वामी ऐसे अभिधारी की प्रास्थिति पर आक्षेप कर सकता है जहां कि अभिधारी विधि की दृष्टि से हाजिर न होने के पश्चात् कब्जा लेने में असफल रहता है ।

इस मामले में अपीलार्थी गुजरात राज्य में किंचित् भूमि का स्वामी है । वर्तमान प्रत्यर्थी तथा एक अन्य व्यक्ति को 'किसान दिवस' पर अभिधारियों के रूप में अभिलिखित किया गया । यह अभिलेख बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 की धारा 32 के अन्तर्गत था । उक्त अधिनियम की धारा 32-जी में ऐसी संविदा को अग्रसर करने हेतु उपबंध है । कीमत का अवधारण करने के लिए अधिकरण से यह अपेक्षित है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह विहित रीति में सभी अभिधारियों को नोटिस जारी करे जिनके बारे में कि धारा 32 के अन्तर्गत यह माना गया हो कि उन्होंने भूमियों का क्रय किया है। ऐसी सूचना भू-स्वामी को तथा अन्य हितबद्ध व्यक्तियों को भी जारी की जानी होती है। इस भूमि के बारे में विवाद उठ खड़ा हुआ जोकि अधिकरण के समक्ष पेश किया गया। अधिकरण ने इस विक्रय को निष्प्रभावी घोषित कर दिया। तत्पश्चात् वर्तमान प्रत्यर्थी ने धारा 32-पी पी के अधीन एक आवेदन पत्र पेश किया जिसमें अधिकरण से यह मांग की गई कि वह भूमि की कीमत का अवधारण करे। अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान प्रत्यर्थी वादगत भूमि का अभिधारी नहीं है और उसका साथी एकमात्र अभिधारी है, जिसने कि उपर्युक्त धारा के अधीन कोई आवेदन पेश नहीं किया है। ऐसी दशा में वर्तमान प्रत्यर्थी को क्रेता नहीं माना जा सकता। इस पर प्रत्यर्थी ने उप-कलक्टर के समक्ष अपील फाइल की। यह अपील भी खारिज कर दी गई। अत: प्रत्यर्थी ने अधिकरण के समक्ष एक पुनरीक्षण पिटीशन दायर किया। गुजरात अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि एक बार किसी व्यक्ति को कोई नोटिस जारी किया जाता है, जिसके बारे में यह दर्शित किया गया हो कि उसने धारा 32 के अधीन भूमि खरीदी थी और ऐसा विक्रय निष्प्रभावी मान लिया जाता है तो भू-स्वामी को इस बात की स्वतंत्रता नहीं है कि वह ऐसे व्यक्ति के बारे में यह आक्षेप कर सके कि वह अभिधारी नहीं है। ऐसी दशा में मामला प्राधिकरण को प्रतिप्रेषित किया गया। वर्तमान अपीलार्थी-भूस्वामी ने गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष पिटीशन फाइल किया किन्तु उसे आरम्भतः खारिज कर दिया गया। इस पर विशेष इजाजत लेकर वर्तमान अपील की गई है। अपील खारिज करते हुए।

अभिनिर्धारित—निस्संदेह, धारा 32-तत की भाषा द्वारा यह अपेक्षित नहीं कि केवल वही व्यक्ति धारा 32-तत के अधीन आवेदन करने का हकदार है जिसके धारा 32-छ के अधीन कार्यवाही में अधिकरण के समक्ष पेश होने में असफल हो जाने पर विक्रय को निष्प्रभावी घोषित कर दिया गया, किन्तु ऐसे व्यक्ति के इस कारण धारा 32-तत के अधीन आवेदन करने पर उसे कोई अतिरिक्त जांच किए बिना और जमींदार को आवेदक की प्रास्थिति को बिना चुनौती देने की अनुज्ञा के अभिधारी के रूप में मान लिया जाना चाहिए। यह निस्संदेह सत्य है कि जहां अभिधारी द्वारा अधिकरण के समक्ष पेश न होने या भूमि क्रय करने की अनिच्छा अभिव्यक्त करते हुए कथन करने से भूमि का क्रय धारा 32-छ (3) के अधीन निष्प्रभावी घोषित कर दिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है, वहां धारा 32-तत के अधीन आवेदन किया जा सकता है। किन्तु इस बात को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता कि जहां अधिकरण ने उस व्यक्ति को जिसे उसने प्रथमदृष्टया अभिधारी के रूप में मानकर धारा 32-छ के अधीन सूचना भेजी और यदि ऐसा अभिधारी अधिकरण के समक्ष पेश नहीं हुआ तथा अधिकरण ने बिना किसी और बात के विक्रय को निष्प्रभावी घोषित करने की कार्यवाही की, वहां धारा 32-तत के अधीन किए गए आवेदन से जमींदार को यह दर्शित करते हुए पिटीशन का प्रतिवाद करने से नहीं रोका जा सकेगा कि आवेदक 1-4-1957 को अभिधारी नहीं था। धारा 32-छ और धारा 32-तत के अधीन किसी कार्यवाही में अवधारण करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वह व्यक्ति जो अभिधारी होने का दावा कर रहा है, 1 अप्रैल, 1957 को अभिधारी था और धारा 32 तत के अधीन अवधारणीय एक अतिरिक्त प्रश्न यह होगा कि क्या ऐसे व्यक्ति को धारा 32 छ के अधीन सूचना जारी की गई थी तथा उसके पेश होने में असफल रहने पर विक्रय निष्प्रभावी हो गया था। राजस्व अधिकरण का यह मत प्रतीत होता है कि जब तक जमींदार धारा 32-छ के अधीन विक्रय पर इस आधार पर आक्षेप करते हुए यह घोषणा नहीं करता है कि विक्रय इस आधार पर निष्प्रभावी हो गया है कि जिस व्यक्ति को सूचना भेजी गई थी, वह 1 अप्रैल, 1953 को अभिधारी था तब तक किसी अन्य बात के न होते हुए उसके हाजिर होने में असफलता उसे अभिधारी की प्रास्थिति प्राप्त हो जाएगी। इस दृष्टिकोण में इस बात की संभावना को नजरअन्दाज किया गया है कि कोई व्यक्ति जिस पर सूचना की तामील की गई है इस कारण उपस्थित नहीं होता है क्योंकि उसका भूमि से कोई संबंध नहीं था। (पैरा 6)

ऐसी दशा में, प्रास्थिति का अनुमानित अवधारण जिसका न्यायनिर्णयन नहीं हुआ है, उस प्रास्थिति में जांच को प्रवारित नहीं कर सकता जो पक्षकारों के बीच पश्चात्‌वर्ती कार्यवाही में अधिकार का दावा करने के लिए अनिवार्य है। अतः उस विक्रय के, जो उस व्यक्ति की, जिसे सूचना भेजी गई थी और जिसने व्यतिक्रम किया, अनुपस्थिति के कारण निष्प्रभावी घोषित किया गया, प्रश्न को लेकर जमींदार के असफल रहने से न तो पूर्व न्याय के साधारण सिद्धांत और न ही आन्वयिक पूर्व न्याय के सदृश सिद्धांत पर जमींदार को पश्चात्‌वर्ती जांच में प्रास्थिति को चुनौती देने से रोक सकता है। (पैरा 7)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1959]	[1959] सप्लीमेंट 1 एस० सी० आर० 489 : श्री राम राम नारायण मेधी बनाम मुम्बई राज्य (Sri Ram Ram Narain Medhi *v.* The State of Bombay).	2

सिविल अपीली अधिकारिता : **1970 की सिविल अपील सं० 1583.**

1969 की द्वितीय सिविल अपील सं० 1630 में गुजरात उच्च न्यायालय के तारीख 22-12-1969 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर की गई अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री बी० ए० बोहडे और ए० जी० रत्नपारखी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री आर० बी० दातार और श्रीमती मधु मूलचन्दानी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति के० डी० ए० देसाई ने दिया ।

न्यायाधिपति देसाई—

अपीलार्थी सुरेश भाई गुजरात राज्य में कैरा जिले में आनन्द तालुका के ओड गांव में स्थित सर्वेक्षण सं० 21 वाली भूमि का स्वामी है । नाथाभाई झावेरीभाई और वर्तमान प्रत्यर्थी "किसान दिवस", अर्थात् 1 अप्रैल, 1957 को अभिधारियों के रूप में अभिलिखित किए गए थे । बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (संक्षेप में अभिधृति अधिनियम) की धारा 32 में यह उपबंध किया गया था कि 1 अप्रैल, 1957 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "किसान दिवस" कहा गया है) को प्रत्येक अभिधारी के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने उस भूमि को उसी तारीख से जब उसने अभिधारी के रूप में उसे धारण किया था, उस पर विद्यमान सभी विल्लंगमों से मुक्त रूप में जमींदार से क्रय कर लिया है । धारा 32-छ में अनिवार्य क्रय के बाद की जाने वाली कार्यवाही के लिए उपबंध किया गया था जो धारा 32 के प्रवर्तन के परिणामस्वरूप हुई । इस प्रकार धारा 32-छ में अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के अनुसार उस भूमि के बारे में जिसका "किसान दिवस" पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिधारी द्वारा क्रय किया गया है, कीमत के अवधारण और उसके संदाय की पद्धति की कल्पना की गई है। कीमत का अवधारण करने के लिए कृषि भूमि, अधिकरण (संक्षेप में प्रधिकरण) को (क) उन सभी अभिधारियों को जिनके बारे में यह कहा गया है कि उन्होंने धारा 32 के अधीन भूमि क्रय कर ली है; (ख) ऐसी भूमि के सभी जमींदारों; और (ग) सभी अन्य व्यक्तियों को, जो इसमें हितबद्ध हों, पेश होने के लिए सूचना की तामील, सूचना में विनिर्दिष्ट तारीख को या उससे पूर्व, विहित रीति में करनी होती है। उपधारा (2) में यह उपबंध है कि प्राधिकरण अभिधारी के इस कथन को कि अभिधारी के रूप में वह अपने द्वारा धारित भूमि को क्रय करने का इच्छुक है या नहीं, विहित रीति में अभिलिखित करेगा। उपधारा (3) में यह उपबंध है कि जहां अभिधारी पेश होने में असफल रहता है या यह कथन करता है कि वह भूमि क्रय करने का इच्छुक नहीं है वहां अधिकरण लिखित रूप में आदेश द्वारा यह घोषणा करेगा कि ऐसा व्यक्ति भूमि को क्रय करने का इच्छुक नहीं है और ऐसा क्रय निष्प्रभावी है। शेष उपधाराओं में कीमत का अवधारण करने की रीति और प्रणाली का उपबंध है। अधिकरण ने उस क्षेत्र में, जिसमें कि विवाद में अन्तर्वलित भूमि स्थित है, अधिकारिता होने पर नाथाभाई जावेरभाई और वर्तमान अपीलार्थी को जो कि भूमियों का जमींदार भी है, धारा 32-छ के अधीन सूचना जारी की। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों अभिधारियों ने, अर्थात् नाथाभाई जावेरीभाई और वर्तमान प्रत्यर्थी ने उपस्थित रहने के लिए सूचना को लेने से इंकार कर दिया और जब प्रतिस्थापित तामील द्वारा समन भेजे गए तो दोनों ही उपस्थित नहीं हुए। तदनुसार, अधिकरण ने धारा 32-छ (3) द्वारा तथा उपबंधित विक्रय को निष्प्रभावी घोषित कर दिया। तदनुसार, अधिकरण ने तारीख 20 जुलाई, 1962 को उपाबंध "ख" द्वारा आदेश देकर यह घोषित किया कि विक्रय निष्प्रभावी है। तत्पश्चात् वर्तमान प्रत्यर्थी ने धारा 32-तत के अधीन अधिकरण से उस भूमि की कीमत का अवधारण करने के लिए प्रार्थना करते हुए एक आवेदन दिया जिसके बारे में यह समझा गया था कि उसने उसे 1 अप्रैल, 1957 को ओड गांव के सर्वेक्षण सं० 21 वाली भूमि खरीदी थी। यहां यह स्पष्ट कर दिया जाए कि धारा 32-तत उस अभिधारी को भूमि क्रय करने के लिए और आगे अवसर देने के लिए बनाई गई जो अधिकरण के समक्ष पेश होने में असफल रहा जिससे विक्रय निष्प्रभावी माना गया। अपीलार्थी-जमींदार ने इस आवेदन का प्रतिरोध किया। अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान प्रत्यर्थी वाद भूमि का अभिधारी नहीं था

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और नाथाभाई जावेरीभाई ही केवल वह अभिधारी था जिसने धारा 32-तत के अधीन आवेदन नहीं किया है, अतः वर्तमान प्रत्यर्थी इस बात का हकदार नहीं है कि उसे क्रेता समझ कर उसी रूप में घोषित किया जाए और तदनुसार क्रय-कीमत का अवधारण आवश्यक नहीं है। प्रत्यर्थी ने उप-कलक्टर को अपील की। उप-कलक्टर ने, अधिकरण के निष्कर्षों से सहमत होते हुए इस अपील को खारिज कर दिया। प्रत्यर्थी ने गुजरात राजस्व अधिकरण में अभिधृति अधिनियम की धारा 76 के अधीन पुनरीक्षण पिटीशन के रूप में समावेदन किया। गुजरात राजस्व अधिकरण के एक विद्वान सदस्य ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक बार किसी व्यक्ति को जिसे धारा 32 के अधीन भूमि का क्रय करने वाला दर्शित किया गया है, सूचना जारी कर दी गई और यदि विक्रय को धारा 32-छ के अधीन उसकी अनुपस्थिति के कारण निष्प्रभावी अभिनिर्धारित किया गया, तो धारा 32-तत के अधीन पश्चात्वर्ती कार्यवाहियों में जमींदार इस बात को चुनौती नहीं दे सकता कि ऐसा व्यक्ति अभिधारी नहीं है। दूसरी ओर, इसके गुणागुण के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि वर्तमान प्रत्यर्थी 1 अप्रैल, 1957 को भूमि का अभिधारी था और वह "समझा गया" क्रेता बन गया है तथा अधिकरण कीमत का अवधारण करने के लिए आबद्ध है। तदनुसार, मामले को अधिकरण के पास भेज दिया गया। वर्तमान अपीलार्थी-जमींदार ने अनुच्छेद 227 के अधीन गुजरात उच्च न्यायालय में पिटीशन फाइल किया जिसे आरंभ में ही खारिज कर दिया गया। अतः विशेष इजाजत लेकर यह अपील की गई है।

2. इसमें कोई विवाद नहीं है कि धारा 32-छ के अधीन वर्तमान प्रत्यर्थी और नाथाभाई जावेरीभाई को सर्वेक्षण सं० 21 वाली भूमि की कीमत का अवधारण करने के लिए सूचना जारी की गई थी। सूचना की तामील अपीलार्थी-जमींदार पर भी की गई थी। कीमत का अवधारण करने की कार्यवाहियों में जमींदार और वह अभिधारी जो अभिधारी के रूप में विधि के प्रवर्तन से भूमि का स्वामी बना, आवश्यक पक्षकार हैं। क्रय कीमत के अवधारण के लिए कार्यवाही करना प्राधिकरण का कानूनी कर्त्तव्य हो जाता है। किन्तु जैसा श्री राम राम नारायण मेधी बनाम बम्बई राज्य[1] के मामले में इस न्यायालय की सांविधानिक न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया था कि "किसान दिवस" को भूमि पर जमींदार का हक अभिधारी को तुरन्त संक्रांत

[1](1959) सप्लीमेंट 1 एस० सी० आर० 489.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो जाता है और जमींदार और अभिधारी के बीच उस भूमि का क्रय या विक्रय पूर्ण हो जाता है। भूमि का हक जो कि मूल रूप से जमींदार में निहित था, "किसान दिवस" को अभिधारी को संक्रांत हो गया और यह हक केवल उसी दशा में विफलनीय है जब अभिधारी पेश होने में असफल रहे या यह कथन करे कि वह भूमि का क्रय करने का इच्छुक नहीं है अथवा वह अधिकरण द्वारा यथानिर्धारित उसकी कीमत के संदाय में व्यतिक्रम करे।

3. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हक विधि के प्रवर्तन से, संक्रांत होता है। अधिकरण को धारा 32-छ द्वारा कल्पित रूप में कीमत का अवधारण करना होता है। कार्यवाहियों को आवश्यक पक्षकारों की उपस्थिति में प्रभावी रूप से निपटाने की दृष्टि से प्राधिकरण इस बात के लिए आबद्ध है कि वह जमींदार और अभिधारी को सूचना जारी करे। अधिकरण के तारीख 20 जुलाई, 1962 के आदेश से दर्शित होता है कि अभिधारी और जमींदार दोनों पर सूचना की तामील की गई थी। आदेश में आगे यह बताया गया है कि अभिधारियों ने सूचना लेने से इंकार किया और प्रतिस्थापित तामील के पश्चात् उपस्थित नहीं हुए। ऐसा लगता है कि जमींदार उपस्थित रहा। अधिकरण ने अभिधारियों की अनुपस्थिति के कारण विक्रय को निष्प्रभावी घोषित कर दिया। यहां तक कोई विवाद नहीं है।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि विधानमण्डल को इस तथ्य का पता चल गया था कि विधिक साक्षरता के अभाव में अभिधारियों की बहुत बड़ी संख्या ने ऐसे क्रांतिकारी उपाय की उलझन में पड़ना पसंद नहीं किया और संभवतः जमींदार और स्थानीय वातावरण के किसी प्रभाव के अधीन अभिधारी प्राधिकरण के समक्ष पेश नहीं हुए, जिसका परिणाम यह हुआ कि कानूनी विक्रयों को निष्प्रभावी घोषित कर दिया गया। विधानमण्डल ने कृषि संबंधी सुधार वाले विधान के विफल होने के इस तथ्य की ओर ध्यान दिया और 1965 के संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 32-तत पुरःस्थापित की।

5. धारा 32-तत अभिधारी को भूमि क्रय करने का और अवसर देने के लिए बनाई गई थी। धारा 32 तत के सुसंगत भाग का परिशीलन निम्नलिखित रूप में किया जाए :—

*"धारा 32-तत धारा 32-छ और 32-त में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां मुम्बई अभिधृति और कृषि भूमि (गुजरात

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"S. 32 PP. Notwithstanding anything contained in sections 32G and 32P, where before the date of the

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संशोधन) अधिनियम, 1965 के प्रवृत्त होने की तारीख (जिसे इसमें इसके पश्चात् इस धारा में 'उक्त तारीख' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) से पूर्व—

(i) कोई भूमि अभिधारी द्वारा भूमि क्रय करने के परिणामस्वरूप उसके अधिकरण के समक्ष पेश हो सकने में असफल रहेंगे या भूमि के क्रय करने की अनिच्छा अभिव्यक्त करते हुए कथन करने के कारण धारा 32-छ की उपधारा (3) के अधीन निष्प्रभावी हो जाने पर धारा 32-त के अधीन कलक्टर के व्ययनाधीन रह जाती है, और"

6. धारा 32-तत द्वारा दिए गए इस नये अवसर के अनुसरण में प्रत्यर्थी ने अधिकरण को यह प्रार्थना करते हुए आवेदन दिया कि क्रय-कीमत का अवधारण किया जाए। गुजरात राजस्व अधिकरण (संक्षेप में राजस्व अधिकरण) ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभिधारी के राजस्व अधिकरण के समक्ष पेश न होने के कारण विक्रय धारा 32-छ की उपधारा (3) के अधीन निष्प्रभावी हो गया था और इसलिए धारा 32-तत के अधीन किए गए आवेदन में आवेदक की अभिधारी के रूप में प्रास्थिति पर आक्षेप नहीं किया जा सकता या इसे विवादग्रस्त नहीं बताया जा सकता और इसे पक्षकारों के बीच समाप्त हुआ समझा जाएगा। इस विचार को मानना कठिन है। धारा 32-तत अभिधारी के रूप में दावा करने वाले व्यक्ति को अधिकार प्रदत्त करती है और इसकी पुरोभाव्य शर्त यह है कि यदि वह धारा 32-छ के

---

coming into force of the Bombay Tenancy and Agricultural Lands (Gujarat Amendment) Act, 1965 (hereinafter referred to in this section as 'the said date'),—

(i) any land has been at the disposal of the Collector under section 32P on account of the purchase of the land by the tenant thereof having become ineffective under sub-section (3) of section 32G by reason of the tenant failing to appear before the Tribunal or making a statement expressing his unwillingness to purchase the land, and"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधीन कार्यवाही में अधिकरण के समक्ष पेश होने में असफल रहता है तो वह कीमत का अवधारण करने के लिए आवेदन कर सकता है। ऐसी दशा में, जमींदार आवश्यक पक्षकार है। जमींदार यह प्रतिवाद कर सकता है और ऐसा प्रतिवाद करने का हकदार होगा कि वह व्यक्ति, जो अभिधारी होने का दावा कर रहा है और जिसने धारा 32-तत के अधीन आवेदन दिया है, 1 अप्रैल, 1957 को अभिधारी नहीं था। प्राधिकरण द्वारा अपनाए गए धारा 32-तत के निर्वचन को स्वीकार करना कठिन है। निःसंदेह, धारा 32-तत की भाषा द्वारा यह अपेक्षित नहीं कि केवल वही व्यक्ति धारा 32-तत के अधीन आवेदन करने का हकदार है जिसके धारा 32-छ के अधीन कार्यवाही में अधिकरण के समक्ष पेश होने में असफल हो जाने पर विक्रय को निष्प्रभावी घोषित कर दिया गया, किन्तु ऐसे व्यक्ति के इस कारण धारा 32-तत के अधीन आवेदन करने पर उसे कोई अतिरिक्त जांच किए बिना और जमींदार को आवेदक की प्रास्थिति को बिना चुनौती देने की अनुज्ञा के अभिधारी रूप में मान लिया जाए। यह निःसंदेह सत्य है कि जहां अभिधारी द्वारा अधिकरण के समक्ष पेश न होने या भूमि क्रय करने की अनिच्छा अभिव्यक्त करते हुए कथन करने से भूमि के क्रय को धारा 32-छ(3) के अधीन निष्प्रभावी घोषित कर दिया गया है वहां धारा 32-तत के अधीन आवेदन किया जा सकता है। किन्तु इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि जहां अधिकरण ने उस व्यक्ति को जिसे उसने प्रथमदृष्टया अभिधारी के रूप में मानकर धारा 32-छ के अधीन सूचना भेजी और यदि ऐसा अभिधारी अधिकरण के समक्ष पेश नहीं हुआ तथा अधिकरण ने बिना किसी बात के विक्रय को निष्प्रभावी घोषित करने की कार्यवाही की, वहां धारा 32-तत के अधीन किए गए आवेदन से जमींदार को यह दर्शित करते हुए पिटीशन का प्रतिवाद करने से नहीं रोका जा सकेगा कि आवेदक 1-4-1957 को अभिधारी नहीं था। धारा 32-छ और धारा 32-तत के अधीन किसी कार्यवाही में अवधारण करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वह व्यक्ति जो अभिधारी होने का दावा कर रहा है, 1 अप्रैल, 1957 को अभिधारी था और धारा 32-तत के अधीन अवधारणीय एक अतिरिक्त प्रश्न यह होगा कि क्या ऐसे व्यक्ति को धारा 32-छ के अधीन सूचना जारी की गई थी तथा उसके पेश होने में असफल रहने पर विक्रय निष्प्रभावी हो गया था। राजस्व अधिकरण का यह मत प्रतीत होता है कि जब तक जमींदार धारा 32-छ के अधीन विक्रय पर इस आधार पर आक्षेप करते हुए यह घोषणा नहीं करता है कि विक्रय इस आधार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर निष्प्रभावी हो गया है कि जिस व्यक्ति को सूचना भेजी गई थी वह 1 अप्रैल, 1953 को अभिधारी था तब तक किसी अन्य बात के न होते हुए उसके हाजिर होने में असफलता उसे अभिधारी की प्रास्थिति प्राप्त हो जाएगी। इस दृष्टिकोण में इस बात की संभावना को नजरअंदाज किया गया है कि कोई व्यक्ति जिस पर सूचना की तामील की गई है इस कारण उपस्थित नहीं होता है क्योंकि उसका भूमि से कोई सम्बन्ध नहीं था।

7. ऐसी दशा में, प्रास्थिति का अनुमानित अवधारण जिसका न्यायनिर्णयन नहीं हुआ है, उस प्रास्थिति में जांच को प्रवारित नहीं कर सकता जो पक्षकारों के बीच पश्चात्वर्ती कार्यवाही में अधिकार का दावा करने के लिए अनिवार्य है। अतः उस विक्रय के, जो उस व्यक्ति की, जिसे सूचना भेजी गई थी और जिसने व्यतिक्रम किया, अनुपस्थिति के कारण निष्प्रभावी घोषित किया गया, प्रश्न को लेकर जमींदार के असफल रहने से न तो पूर्वन्याय के साधारण सिद्धांत और न ही आन्वयिक पूर्वन्याय के सदृश सिद्धांत पर जमींदार को पश्चात्वर्ती जांच में प्रास्थिति को चुनौती देने से रोक सकता है। केवल एक अवस्था है जिसमें जांच रोकी जा सकती है। यदि सूचना की प्राप्ति पर अभिधारी पेश नहीं हुआ और जमींदार पेश हो गया तथा उसने साफ-साफ इस बात को मान लिया कि व्यक्तिक्रम करने वाला व्यक्ति सुसंगत तारीख को अभिधारी था और उसके पेश न होने के कारण विक्रय को निष्प्रभावी घोषित कर दिया जाए तो फिर जमींदार को धारा 32-तत के अधीन पश्चात्वर्ती कार्यवाही में आवेदन-अभिधारी की प्रास्थिति को चुनौति देने से विबन्धत किया जा सकेगा। यह ऐसा मामला नहीं है। अन्यथा जमींदार द्वारा धारा 32-तत के अधीन कार्यवाही को चुनौति दी जाने पर, अधिकरण को अधिकारिता संबंधी इन तथ्यों का अवधारण करना पड़ेगा कि (i) आवेदक 1 अप्रैल, 1957 से अभिधारी था; और [ii] विक्रय को धारा 32-छ के अधीन निष्प्रभावी घोषित कर दिया गया था। अतः, अधिकरण का यह विचार कि धारा 32-तत के अधीन कार्यवाही में, अभिधारी के रूप में आवेदक की प्रास्थिति संविवाद से परे है, हमें नहीं जंचता और यह सही नहीं है।

8. श्री गोबडे ने यह विवाद किया कि यदि अधिकरण का यह मत विधि के अनुकूल नहीं है तो हमारे लिए एक ही रास्ता है कि मामला अधिकरण को वापस भेज दिया जाए। हम इस बात को इस स्पष्ट कारण से नहीं मान सकते क्योंकि अभिलेख पर सामग्री से यह जाहिर है कि प्रत्यर्थी सुसंगत तारीख को अभिधारी था। पारिस्थितिक साक्ष्य से पता चलता है कि प्रत्यर्थी को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभिधृति अभिलेख के आधार पर सूचना रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेजकर और प्रतिस्थापित सूचना द्वारा तामील करके दी गई थी । इस तथ्य के अतिरिक्त प्रत्यर्थी का नाम कुछ वर्षों के अभिधृति के अभिलेख पर भी पाया गया है। इसके अतिरिक्त, जमींदार ने धारा 32-छ के अधीन कार्यवाही में अपना यह कथन अभिलिखित नहीं किया कि प्रास्थिति विवादग्रस्त है । जमींदार ने विक्रय को अप्रभावी घोषित कर दिए जाने के पश्चात् धारा 15 के अधीन कोई कदम नहीं उठाया । नाथाभाई जावेरीभाई जो की जमींदार के अनुसार भूमि का एकमात्र अभिधारी था, जमींदार ने परीक्षा नहीं की । इन परिस्थितियों का संचित प्रभाव सकारात्मक रूप से यह दर्शित करता है कि प्रत्यर्थी अभिधारी था और यदि वह सुसंगत तारीख को अभिधारी था तो प्राधिकरण का यह निदेश ठीक था कि क्रय कीमत का अवधारण किया जाए ।

9. इस अपील में केवल यही प्रश्न उठाया गया है । चूंकि इसमें कोई तत्व नहीं है, अतः यह अपील असफल होती है और खर्चे सहित खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

घ०/भू०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिल्ली नगर निगम और अन्य

बनाम

मोहम्मद यासीन

(The Municipal Corporation of Delhi and Others

v.

Mohd. Yasin)

और

दिल्ली नगर निगम और अन्य

बनाम

सिराजुद्दीन

(The Municipal Corporation of Delhi and others

v.

Siraj Uddin)

(28 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० ए० देसाई और ओ० चिन्नप्पा रेड्डी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 19(1) (छ), 265 और 301—फीसों की अवधारणा—फीस और कर की तुलना—तत्प्रतितत् (क्विड-प्रो-क्वो) का तत्व—उक्त तत्व की अध्यपेक्षा—सेवा प्रदान करने में राज्य द्वारा उपगत व्यय का अभिनिश्चय—जिस मद के लिए फीस उद्गृहीत की जाती है उसके सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप से उपगत व्यय के अलावा अन्य सम्बद्ध व्यय भी कुल व्यय को अभिनिश्चित करते समय गिना जाना चाहिए।

दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 (1957 का 66)—दिनांक 31-1-1968 की अधिसूचना—बूचड़खानों में पशुओं का वध करने के लिए फीस में वृद्धि—'कर' और 'फीस' में प्रभेद के सिद्धांतों का कथन—तथ्यों के आधार पर भिन्न-भिन्न कोटियों के पशुओं को काटने में फीस की वृद्धि सर्वथा न्यायोचित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शब्द और पद—"कर", "फीस", "तत्प्रतितत्" शब्दों का निर्वचन।

इस मामले में दिल्ली नगर निगम ने 31-1-1968 वाली एक अधिसूचना जारी करके अपने बूचड़खानों में पशुओं को काटने के लिए उनकी फीस में वृद्धि कर दी। यह वृद्धि प्रत्येक पशु की दशा में भिन्न-भिन्न रूप में थी। इस अधिसूचना को उच्च न्यायालय ने इस आधार पर रद्द कर दिया कि निगम वस्तुतः इस वर्धित फीस के परिवेश के अधीन 'कर' में वृद्धि करने जा रहा है। नगर के कुछ बूचड़ों ने इस आधार पर दरों में वृद्धि को प्रश्नगत किया कि फीस में जिस वृद्धि की कल्पना की जा रही है, वह उन सेवाओं तथा पर्यवेक्षण की लागत से सर्वथा अनुपातहीन है जोकि उन्हें दी जा रही है और वस्तुस्थिति तो यह है कि यह 'फीस' में वृद्धि न होकर 'कर' में वृद्धि है। उच्च न्यायालय ने बूचड़ों की इस दलील को स्वीकार कर लिया, किन्तु वस्तुतः उच्च न्यायालय ने गहराई से विचार नहीं किया था। भाग्यवश उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 133 (1) (ग) के अधीन इस मामले को उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील किए जाने के लिए उपयुक्त समझा और इस प्रकार यह मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील में आया। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—"फीस" पर विचार करते हुए यह कहा गया है कि "फीस" को साधारणतया किसी सरकारी अभिकरण द्वारा व्यष्टियों को प्रदत्त विशेष सेवा के बदले प्रभार के रूप में परिभाषित किया गया है, किन्तु इस बात को माना गया कि "चूंकि फीस विभिन्न प्रकार की हो सकती है, अतः ऐसी परिभाषा बताना संभव नहीं है जो सभी मामलों में लागू हो सके। 'कर' और 'फीस' के बीच सुभिन्नता के विषय में कर का फीस से भेद बताने के लिए अनिवार्यता को एक मात्र अथवा सारवान् मानदण्ड नहीं माना जा सकता। कर और फीस के बीच सुभिन्नता मुख्य रूप से यह है कि कर सामान्य भार के भाग के रूप में उद्ग्रहीत किया जाता है जब कि फीस किसी विशेष फायदे या प्रसुविधा का संदाय है। किन्तु यह देखा गया कि विशेष फायदा या लाभ लोक हित में विनियमन के मुख्य प्रयोजन के सामने गौण हो सकता है। (i) जहां सरकार किसी व्यक्ति से विशेषाधिकार पर कुछ ऐसा करने की अनुज्ञा प्रदान करती है जिसे वह व्यक्ति अन्यथा करने में सक्षम नहीं होता, और उसके बदले में अत्यधिक या सामान्य फीस वसूल की गई है, (ii) जहां सरकार किसी व्यक्ति के फायदे के लिए कुछ रचनात्मक कार्य करती है और इस प्रकार किए गए कार्य या की गई सेवाओं के बदले में कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रकम ली जाती है, जिसका आम लोगों के फायदे के लिए सार्वजनिक राजस्वों में विलय नहीं किया जाता। यह बात कि सभी कर और फीस के बीच, वास्तव में कोई व्यापक अन्तर नहीं है, यद्यपि संविधान में विधायी प्रयोजनों के लिए कर और फीस के बीच प्रभेद बताया गया है। जहां एक ओर विभिन्न प्रकार के करों के बारे में विधायी सूचियों में प्रविष्टयां दी गईं, वहां उन फीसों से संबंधित तीन सूचियों में से प्रत्येक के, जोकि उनमें सम्मिलित किसी मामले की बाबत उद्‌गृहीत की जा सकती थी, अन्त में प्रविष्टि की गई। (पैरा 4)

"कर" और "फीस" में कोई व्यापक अन्तर नहीं है, यद्यपि कर मोटे तौर पर कर दाताओं के वर्ग को विशेष लाभों के बिना समान भार के भाग के रूप में अनिवार्य आहरण है जबकि 'फीस' की गई सेवाओं, दिए गए फायदों और प्रदत्त विशेषाधिकार के बदले संदाय है। विवश्यकता कर और फीस के बीच सुभिन्नता का पहचान चिन्ह नहीं है। यह कि संगृहीत किया हुआ धन किसी पृथक् निधि में नहीं जाता किन्तु संचित निधि में जाता है, आवश्यक रूप से उद्‌ग्रहण को कर नहीं बना देता। यद्यपि फीस का की गई सेवाओं या प्रदत्त लाभों से संबंध होना चाहिए, ऐसा संबंध प्रत्यक्षतः होना आवश्यक नहीं है, मात्र नैमित्तिक संबंध पर्याप्त हो सकता है। न तो फीसों का आपतन और न ही की गई सेवाओं के एक जैसा होने की आवश्यकता है। यह बात फीस के स्वरूप को कम नहीं करती कि फीस का संदाय करने वाले लोगों से भिन्न लोगों को भी फायदा पहुंचता है। वास्तव में, फीस के संदाय-कर्ताओं को मिलने वाले विशेष फायदे या लाभ लोक हित में विनियमन के प्राथमिक प्रयोजन की तुलना में गौण भी हो सकते हैं। न्यायालय लागत लेखापाल (कॉस्ट अकाउण्टेंट) की भूमिका भी अदा नहीं कर सकते। संगृहीत फीसों की रकम के मुकाबले की गई सेवाओं की लागत को, दोनों के बीच बराबर संतुलन करने की दृष्टि से, बहुत बारीकी से तुलना कर करना न तो आवश्यक है और न समीचीन ही। व्यापक सहसम्बन्ध मात्र आवश्यक है। सीमित अर्थों में तत्प्रतितत् को फीस का एक और केवल सही अभिसूचक नहीं माना जा सकता, न ही यह आवश्यक रूप से कर में अनुपस्थित रहता है। (पैरा 9)

यह सच है कि नगर निगम ने भेड़ों, बकरियों और सुअरों की दशा में 50 पैसे प्रति पशु और भैंसों की दशा में दो रुपए प्रति पशु की दर से फीस के रूप में 4,24,494 रुपये की राशि वसूल की है, जबकि नगर निगम के बजट में मद 14ख के नीचे यह दर्शित है कि बूचड़खानों से सम्बन्धित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

2,56,000 रुपए की रकम व्यय हुई। किन्तु जैसा दिल्ली नगर निगम के उप-स्वास्थ्य अधिकारी (लोक स्वास्थ्य) डा० ए० सी० अजवाणी के शपथ-पत्र में बताया गया है कि 2,56,000 रुपए की रकम में व्यय की केवल वही मदें आती हैं जिनकी झलक नगरपालिका बजट की मद 14ख में मिलती है। नगरपालिका बजट की मद 14ख में आने वाले व्यय की मदें स्पष्ट रूप से व्यय की वही मदें हैं जोकि प्रत्यक्षतः और अनन्यतः बूचड़खानों के सम्बन्ध में उपगत हुए हैं। इसके अतिरिक्त, बूचड़खानों से संबंधित व्यय की कई अन्य मदें भी हैं, किन्तु उन्हें मद 14ख में सम्मिलित नहीं किया गया है। यद्यपि ये व्यय बूचड़खानों से सम्बद्ध माने जाते हैं, तो भी इनका नगरपालिका बजट में अन्य शीर्षों, जैसे परिवहन, सफाई, पेट्रोल और तेल इत्यादि के अधीन विकलन किया गया है। इसके साथ ही पर्यवेक्षणीय कर्मचारिवृन्द, जैसे कि पूर्णकालिक पशु-चिकित्सा अधिकारी, नगरपालिक स्वास्थ्य अधिकारी, उप-स्वाध्य अधिकारी, क्षेत्रीय स्वास्थ्य अधिकारी आदि के, जिनके कर्तव्यों का बहुत बड़ा भाग बूचड़खानों से जुड़ा हुआ है, रखे जाने से सम्बन्धित उपगत व्यय भी है। फिर बूचड़खानों में भवनों और फिटिंगों के अवक्षयण की लागत है। बूचड़खानों की सुविधाओं को बढ़ाने और उनमें सुधार करने का उपबंध भी किया गया है। व्यय की और कई और मदें हैं जो पूर्णतः या भागतः बूचड़खानों से लगी हुई मानी जाती हैं। दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय ने व्यय की इन अनिवार्य मदों मे से किसी की ओर ध्यान देने से इस आधार पर इन्कार कर दिया कि निगम को यह अधिकार नहीं है कि वह न्यायालय को नगरपालिक बजट की मद 14ख के अधीन लिखित आंकड़ों से भिन्न कोई आंकड़े देखने के लिए कहे। स्पष्टतया, उच्च न्यायालय का यह विचार था कि संगृहीत की गई फीसों का बूचड़खानों में पशुओं के वध से संबंधित प्रत्यक्षतः और अनन्यतः उपगत व्यय से संबंध होना चाहिए और उन्हें उसी रूप में नगरपालिक बजट में दिखाया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण पूर्णतः गलत है। उपगत व्ययों का संबंध प्रदत्त विशेष फायदों या लाभों से न तो प्रत्यक्षतः न मुख्यतः होना आवश्यक है। की गई सेवाओं की कीमत का संगृहीत फीसों से दुराराध्य सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है। उच्च न्यायालय के समक्ष यह सामान्य आधार रहा कि मांस का भाव उसके मूल रूप से नियत की गई दरों से 10 से 12 गुणा बढ़ गया था। यदि ऐसा ही है तो यह सोचकर आश्चर्य होता है कि नगरनिगम से कैसे यह प्रत्याशा की जा सकती है कि वह अपने बूचड़खानों से पशुओं के पर्यवेक्षण और वध से संबंधित अपनी बाध्यताओं का निर्वहन दरों को केवल 2 या 3 गुणा बढ़ाकर प्रभावी रूप से कर सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मामले की परिस्थितियों को देखते हुए छोटे पशुओं की दशा में 50 पैसे से 2 रुपया प्रति पशु और बड़े पशुओं की दशा में एक रुपये से आठ रुपये की बढ़ोतरी पूर्णतः न्यायोचित है। (पैरा 10)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1982]	[1982] 2 उम० नि० प० 1249=[1982] 1 एस० सी० आर० 519 : सदर्न फार्मेस्युटिकल्स एण्ड केमिकल्स, त्रिचुर और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य (Southern Pharmaceuticals and Chemicals, Trichur and Others *v.* State of Kerala and Others);	8
[1980]	[1980] 3 उम० नि० प० 420=[1980] 1 एस० सी० आर० 368 : एच० एच० स्वामीजी बनाम आयुक्त, हिन्दू, धार्मिक और पूर्त विन्यास विभाग और अन्य (H. H. Swamiji *v.* Commissioner, Hindu Religious and Charitable Endowments Department and Others).	7
[1963]	[1963] सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 302 : एच० एच० सुधन्द्र बनाम आयुक्त, हिन्दू धार्मिक और पूर्त विन्यास, मैसूर (H. H. Sudhundra *v.* Commissioner for Hindu Religious and Charitable Endowments, Mysore);	5
[1961]	[1961] 2 एस० सी० आर० 537 : हिंगिर-रामपुर कोल कम्पनी लिमिटेड और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य (Hingir-Rampur Coal Company Limited and Others *v.* The State of Orissa and Others);	6

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1954] [1954] एस० सी० आर० 1005 :
हिन्दू धार्मिक विन्यास आयुक्त, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामियार
(Commissioner of Hindu Religious Endowments, Madras v. Shri Lakshmindra Tirtha Swamiar). 4

सिविल अपीली अधिकारिता : 1970 की सिविल अपील संख्या 2120 और 2125.

1968 के सिविल रिट पिटीशन सं० 133 और 134 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 17 अप्रैल, 1970 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री कपिल सिब्बल, रामेश्वर दयाल, आदर्श दयाल और एस० मित्तर

प्रत्यर्थियों की ओर से — श्री के० बी० रोहतगी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया।

न्यायाधिपति चिन्नप्पा रेड्डी—

दिल्ली नगर निगम की तारीख 31-1-1968 की अधिसूचना में निगम के बूचड़खानों में पशुओं के वध करने की फीस को भेड़ों, बकरों और सूअरों की दशा में प्रत्येक पशु के लिए 0.25 पैसे से 2.00 रुपये और भैंसों की दशा में प्रति पशु के लिए 1 रुपये से 8 रुपये तक बढ़ाना तात्पर्यित था। उच्च न्यायालय ने इस अधिसूचना को इस आधार पर अभिखण्डित कर दिया कि निगम ने फीस की आड़ में कर के उद्ग्रहण करने का प्रस्ताव किया है। मूल दरों को मार्च, 1953 में नियत किया गया था और संशोधित दरें 1 फरवरी, 1968 से प्रभावी होनी थीं। नगर के कुछ कसाइयों ने संशोधित दरों का इस आधार पर विरोध किया कि प्रस्तावित बढ़ाई गई फीस सेवाओं और पर्यवेक्षण की कीमत से सर्वथा असंगत है और वह वास्तव में फीस न होकर 'कर' है। उच्च न्यायालय ने कसाइयों की जिस आधार पर उनकी दलील को स्वीकार कर लिया उसके बारे में यह प्रतीत होता है कि वह तथ्यों और सिद्धान्तों का ऊपरी दृष्टिकोण था। सौभाग्यवश कि उच्च न्यायालय ने इस मामले को संविधान के अनुच्छेद 133(1) (ग) के अधीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपील करने के लिए उपयुक्त होने का प्रमाण-पत्र दिया है और यह मामला अब हमारे समक्ष आया है।

2. उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन के लम्बित रहने के दौरान एक अन्तरिम प्रबन्ध के आधार पर नगर निगम को भेड़ों, बकरियों और सुअरों की दशा में 50 पैसे प्रति पशु और भैंसों की दशा में 2.00 रुपये प्रति पशु की दर से फीस का संग्रहण करने की अनुज्ञा दे दी गई। इसके परिणामस्वरूप नगर निगम ने अपने बूचड़खानों में पशुओं को काटने की फीस के रूप में 4,24,494.00 रु० की राशि वसूल की। अब मद 14ख के अधीन नगर निगम के बजट में बूचड़खानों से संबंधित व्यय 2,56,000 रु० दिखाया गया। न्यायालय द्वारा अनुज्ञात दरों पर फीस की वास्तविक वसूली की रकम को बजट में दिखाए गए व्यय की रकम से तुलना करने पर और उन सभी खर्चों को, जिन्हें मद 14ख के अधीन बजट में नहीं दिखाया गया है, संगणना में लिए बिना, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यदि मूल फीस को दुगना भी कर दिया जाए, तो भी वसूल की गई रकम खर्चों का वहन करने के लिए पर्याप्त से अधिक होगी और इस फीस को आठ गुना बढ़ाना किसी तरह से न्यायोचित नहीं था। इस प्रकार यह कहा गया कि प्रस्तावित फीस, "फीस" नहीं बल्कि एक "कर" था जिसके लिए कोई विधायी समादेश नहीं था। अभी हम उच्च न्यायालय की उस गलती को बताएंगे जो उसने तथ्यों और सिद्धांत के आधार पर की थी।

3. दो शब्द निर्वचन पर कहेंगे। समय के परिवर्तन और इतिवृत्त की आवश्यकताओं के साथ-साथ दार्शनिक व्यवहारों, संकल्पनाओं, विचारों तथा आदर्शों तथा शब्दों एवं पदों तथा स्वयं भाषा के अर्थ में भी परिवर्तन हो जाते हैं। विधि का तत्व और भाषा इस बात का कोई अपवाद नहीं है। शब्दों और पदों का अर्थ और स्वरूप संदर्भ और समय के अनुसार बनता है और इन्हीं संदर्भों और समय के अनुसार भिन्न-भिन्न होता रहता है। और यह बात याद रखने योग्य है कि शब्दों और पदों का न केवल एक अर्थ ही होता है बल्कि उनका एक विषय होता है। वह विषय सजीव होता है और कभी बढ़ता है, कभी घटता है; कभी उसका अर्थ विस्तृत हो जाता है और कभी संकीर्ण हो जाता है। यह विशिष्टतया वहां होता है जहां शब्दों और पदों का अर्थ ठीक प्रकार से अन्य विषयों से सम्बद्ध होता है। "कर" और "फीस" ऐसे ही शब्द हैं। ये शब्द वास्तव में सार्वजनिक वित्त की कोटि में आते हैं, किन्तु चूंकि संविधान और विधियां भी सार्वजनिक वित्त से सम्बद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं, अतः इन शब्दों का न्याय-निर्णयन उनकी विषय-वस्तु का पता चलाने के प्रयास में किया गया है ।

4. "कर" और "फीस" के बीच विरोधाभास के विषय पर हिन्दू धार्मिक विन्यास आयुक्त, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामियार[1] को स्वीकृत संदर्भ स्थल समझा जाता है । मुख्य न्यायाधिपति लैथम द्वारा दी गई "कर" की इस परिभाषा को "कि यह विधि द्वारा प्रवर्तनीय लोक प्रयोजनों के लिए लोक प्राधिकारी द्वारा धन का अनिवार्य आहरण है और यह की गई सेवाओं का प्रतिफल नहीं है" न्यायालय ने इसलिए माना क्योंकि इसमें कर के आवश्यक लक्षण बताए गये थे । "फीस" पर विचार करते हुए यह कहा गया कि "फीस" को साधारणतया किसी सरकारी अभिकरण द्वारा व्यष्टियों को प्रदत्त विशेष सेवा के बदले प्रभार के रूप में परिभाषित किया गया है", किन्तु इस बात को माना गया कि "चूंकि फीस विभिन्न प्रकार की हो सकती है, अतः ऐसी परिभाषा बताना संभव नहीं है जो सभी मामलों में लागू हो सके।" कर और फीस के बीच सुभिन्नता के विषय में कर का फीस से भेद बताने के लिए अनिवार्यता को एक मात्र अथवा सारवान् मानदण्ड नहीं माना जा सकता । यह मत व्यक्त किया गया कि कर और फीस के बीच सुभिन्नता मुख्य रूप से इस बात की है कि कर सामान्य भार के भाग के रूप में उद्गृहीत किया गया जब कि फीस किसी विशेष फायदे या प्रसुविधा का संदाय था । किन्तु यह देखा गया कि विशेष फायदा या लाभ लोकहित में विनियमन के मुख्य प्रयोजन के सामने गौण हो सकता है, उदाहरणार्थ, दस्तावेजों या विवाह अनुज्ञप्तियों के लिए रजिस्ट्रीकरण फीसों का मामला। यह भी देखा गया कि संविधान के अनुच्छेद 110 में ऐसे दो वर्गों को इंगित किया गया प्रतीत होता है जहां फीस अधिरोपित की जा सके : (i) जहां सरकार किसी व्यक्ति से विशेषाधिकार पर कुछ ऐसा करने की अनुज्ञा प्रदान करती है जिसे वह व्यक्ति अन्यथा करने में सक्षम नहीं होता, और उसके बदले में अत्यधिक या सामान्य फीस वसूल की गई है; (ii) जहां सरकार किसी व्यक्ति के फायदे के लिए कुछ रचनात्मक कार्य करती है और इस प्रकार किए गए कार्य या की गई सेवाओं के बदले में कुछ रकम ली जाती है, जिसका आम लोगों के फायदे के लिए सार्वजनिक राजस्वों में विलय नहीं किया जाता । तथापि, यह स्पष्ट किया गया कि यह बात कि सभी संग्रहण राज्य की संचित निधियों में जाते हैं और किसी अलग निधि में नहीं जाते

[1] [1954] एस० सी० आर० 1005.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निश्चायक नहीं हो सकती। अन्त में, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि कर और फीस के बीच, वास्तव में कोई व्यापक अन्तर नहीं है, यद्यपि संविधान में विधायी प्रयोजनों के लिए कर और फीस के बीच प्रभेद बताया गया है। जहां एक ओर विभिन्न प्रकार के करों के बारे में विधायी सूचियों में प्रविष्टियां दी गईं, वहां उन फीसों से संबंधित तीन सूचियों में से प्रत्येक के, जो कि उनमें सम्मिलित किसी मामले की बाबत उद्गृहीत की जा सकती थी, अन्त में प्रविष्टि की गई। विवक्षा से यह प्रतीत होता है कि उन मामलों में से किसी की बाबत की गई किसी सरकारी कार्रवाई में फीस का विशेष संदर्भ था।

5. **एच० एच० सुधेन्द्र बनाम आयुक्त, हिन्दू धार्मिक और पूर्त विन्यास, मैसूर के मामले[1] में** न्यायालय ने इस सिद्धांत को दोहराते हुए यह बताया कि फीस के रूप में उद्ग्रहण का स्वरूप मात्र इसलिए समाप्त नहीं हो जाता कि उसमें अनिवार्यतः या प्रपीड़न का कोई तत्व मौजूद है, तथा साथ ही यह कहा कि :

> "न ही फीस में संकल्पना की गई है कि इसका प्राधिकारी द्वारा की गई उस व्यक्ति की, जो सेवा का फायदा अभिप्राप्त करता है वास्तविक सेवाओं से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना चाहिए। यदि विनिर्दिष्ट सेवा का उपबन्ध करने की दृष्टि से विधि द्वारा उद्ग्रहण अधिरोपित किया जाता है और सेवाओं को बनाए रखने के लिए व्यय सगृहीत रकम में से पूरा किया जाता है, तो उद्ग्रहण और की गई सेवाओं के लिए उपगत व्ययों के बीच युक्तियुक्त सम्बन्ध होने के कारण वह उद्ग्रहण फीस की प्रकृति का होगा, न कि कर की प्रकृति का............ किन्तु किसी उद्ग्रहण को केवल इसलिए कर नहीं माना जाएगा क्योंकि उसके आपतन में एकरूपता का अभाव है, अथवा उसके संग्रहण में अनिवार्यता है और न ही इसलिए कि कुछ अभिकर्ता उसी मात्रा में सेवा अभिप्राप्त करते हैं जिस मात्रा में अन्य व्यक्ति सेवा अभिप्राप्त करते हैं।"

6. **हिंगिर-रामपुर कोल कम्पनी लि० और अन्य** बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य[2]** के मामले में न्यायालय ने इस बात को दोहराते हुए कि फीस का संदाय करने वाले व्यक्ति और इसको अधिरोपित करने वाले प्राधिकारी के

---

[1] [1963] सप्लीमेंट 2 एस० सी० आर० 302.

[2] [1961] 2 एस० सी० आर० 537.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बीच तत्प्रतितत् का तत्व विद्यमान है, यह कहा है—

"यदि विनिर्दिष्ट सेवाएं किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र या किसी स्थानीय क्षेत्र में व्यक्तियों के किसी विनिर्दिष्ट वर्ग या व्यवसाय या कारबार को दी जाती हैं, और उक्त सेवाओं या उनके बदले पुरोभाव्य शर्त के रूप उक्त क्षेत्र या व्यक्तियों के किसी वर्ग या व्यवसाय या कारबार पर उपकर उद्गृहीत किया जाता है, तो उपकर का कर से भेद बताया जा सकता है और उसे फीस के रूप में वर्णित किया जा सकता है।"

बाद में यह कहा गया कि—

"यह सत्य है कि जब विधानमण्डल किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र या व्यक्तियों के किसी विनिर्दिष्ट वर्ग या व्यवसाय या कारबार को विनिर्दिष्ट सेवाओं के दिए जाने के लिए किसी फीस का उद्ग्रहण करता है तो, अन्तिम विश्लेषण में, ऐसी सेवाएं अप्रत्यक्ष रूप से आम लोगों को की गई सेवाओं का भाग बन सकती हैं। यदि की गई विशेष सेवा सुभिन्नतः और मुख्यतः किसी विनिर्दिष्ट वर्ग या क्षेत्र के फायदे के लिए आशयित है तो यह तथ्य कि विनिर्दिष्ट वर्ग या क्षेत्र को फायदा पहुंचाने में सम्पूर्ण राज्य का अन्ततः और अप्रत्यक्षतः फायदा हो जाना उद्ग्रहण के स्वरूप को फीस से कम नहीं करेगा। तथापि जहां विनिर्दिष्ट सेवा लोक सेवा से अप्रभेद्य है और सार में प्रत्यक्षतः उसका भाग है, वहां भिन्न-भिन्न विचार उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसी दशा में इस बात का पता लगाना आवश्यक हो जाता है कि उद्ग्रहण का मुख्य उद्देश्य और वह आवश्यक प्रयोजन क्या है जिसे प्राप्त करना आशयित है। इसके मुख्य उद्देश्य और आवश्यक प्रयोजन को अन्तिम या आनुषंगिक परिणामों या निष्कर्षों से अवश्य प्रभेदित किया जाना चाहिए। उद्ग्रहण के स्वरूप को निर्धारित करने की यही सही परख है।"

7. एच० एच० स्वामीजी बनाम आयुक्त, हिन्दू धार्मिक और पूर्त विन्यास विभाग और अन्य[1] के मामले में मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ ने संवैधानिक न्यायपीठ की ओर से बोलते हुए की गई सेवाओं और प्रभारित फीसों के बीच व्यापक सहसम्बन्धों की आवश्यकता और पर्याप्तता पर बल दिया और उन गौण बातों का चाहे उनमें गणितीय समानता थी या नहीं, बहुत

[1] [1980] 3 उम० नि० प० 420=[1980] 1 एस० सी० आर० 368.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बारीकी से पता लगाने के प्रयास को व्यर्थ बताया। उन्होंने कहा : "यह पता लगाने के प्रयोजनार्थ कि क्या फीस संदायकर्ताओं की की गई सेवाओं और उससे प्रभारित फीस के बीच कोई सहसम्बन्ध है या नहीं, सेवाओं को संगठित करने और सेवाएं करने के लिए उपगत लागत को जानना आवश्यक है। किन्तु ऐसे सहसम्बन्ध पर विचार किया जाना अन्तर्वलित करने वाले विषयों के बारे में यह अपेक्षित नहीं है कि उन्हें गणितीय सूत्र से साबित किया जाए। जिस बात पर ध्यान दिया जाता है वह यह है कि प्रभारित फीस के और एक वर्ग के रूप में फीस का संदाय करने वाले की की गई सेवाओं की लागत के बीच उचित सादृश्य है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 के नियम 5 के अधीन अपीलार्थियों द्वारा मांगी गई अतिरिक्त और बेहतर विशिष्टियां, यदि दे दी जाती तो उससे न्यायालय को आयुक्त के विभागीय बजट के सूक्ष्म ब्यौरों की श्रमसाध्य और निष्फल जांच करनी होगी। विभिन्न स्थानों पर और विभिन्न प्रयोजनों के लिए आयुक्त के स्थापन द्वारा खर्च की गई रकमों के और न्यायालय द्वारा विभिन्न शीर्षों के प्रति विभिन्न रकमों का का तदर्थ आबंटन अधिक से अधिक अनुमानिक ही हुआ होता। यदि उच्च न्यायालय के समक्ष जानकारी रही होती तो उसके लिए हमारे समक्ष जानकारी होने की अपेक्षा यह पता लगाना अधिक सम्भव हुआ होता कि विभिन्न स्थानों पर आयुक्त के स्थापन द्वारा क्या व्यय उपगत किया गया है और अपीलार्थियों की की गई सेवाओं के सम्बन्ध में स्थापन द्वारा किए गए खर्चों के लिए उन स्थानों पर कर्मचारिवृन्द के वेतन के भागस्वरूप आबंटित की जाए। अतः हमारा यह विचार है कि अपीलार्थी द्वारा चाही गई जानकारी के न दिए जाने के कारण उन पर सारवान् रूप में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है।"

8. सदर्न फार्मेस्यूटिकल्स एण्ड केमिकल्स, त्रिचूर और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य[1] के मामले में न्यायालय के उदार रवैये की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए यह मत व्यक्त किया—

> "अब बहुत अधिक अनुभव किया जा रहा है कि केवल इस कारण की गई सेवाओं के लिए या किसी विशेषाधिकार या अनुज्ञप्ति देने के लिए संग्रहण को राज्य की संचित निधि के रूप में माना जाता है और की गई सेवा के लिए व्यय के बारे में पृथक् रूप से विनियोजित नहीं किया जाता है और यह बात स्वयं में विनिश्चायक नहीं है। चूंकि

[1] [1982] 2 उम० नि० प० 1249=[1982] 1 एम० सी० आर० 519.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संविधान उसे फीस के अनिवार्य तत्व के रूप में अनुध्यात नहीं करता है, इसलिए उसे एक पृथक् निधि में, न कि संचित निधि में, जमा किया जाना चाहिए। अब यह बात भी बहुत अधिक अनुभव की जा रही है कि तत्प्रतितत् के सीमित अर्थ का तत्व सदैव ही फीस का अनिवार्य तत्व नहीं होता है। इस दलील पर बल देना व्यर्थ है कि तत्प्रतितत् का तत्व प्रत्येक कर में अनिवार्य रूप से अनुपस्थित होता है...

....

तत्प्रतितत् की पारम्परिक धारणा बदल रही है।"

9. इन पूर्व निर्णयों से हम क्या समझते हैं? इससे हम यह समझते हैं कि 'कर' और 'फीस' में कोई व्यापक अन्तर नहीं है, यद्यपि कर मोटे तौर पर करदाताओं के वर्ग को विशेष लाभों के बिना समान भार के भाग रूप में अनिवार्य आहरण है जबकि फीस की गई सेवाओं, दिए गए फायदों और प्रदत्त विशेषाधिकार के बदले संदाय है। विवश्यकता कर और फीस के बीच सुभिन्नता का पहचान चिन्ह नहीं है। यह कि संगृहीत किया हुआ धन किसी पृथक् निधि में नहीं जाता किन्तु संचित निधि में जाता है, आवश्यक रूप से उद्ग्रहण को कर नहीं बना देता। यद्यपि फीस का की गई सेवाओं या प्रदत्त लाभों से संबंध होना चाहिए, ऐसा संबंध प्रत्यक्षतः होना आवश्यक नहीं हैं; मात्र नैमित्तक संबंध पर्याप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त, न तो फीसों का आपतन और न ही की गई सेवाओं के एक जैसा होने की आवश्यकता है। यह बात फीस के स्वरूप को कम नहीं करती कि फीस का संदाय करने वाले लोगों से भिन्न लोगों को भी फायदा पहुंचता है। वास्तव में, फीस के संदाय-कर्ताओं को मिलने वाले विशेष फायदे या लाभ लोक हित में विनियमन के प्राथमिक प्रयोजन की तुलना में गौण भी हो सकते हैं। न्यायालय लागत लेखापाल (कॉस्ट अकाउटैंण्ट) की भूमिका भी अदा नहीं कर सकते। संगृहीत फीसों की रकम के मुकाबले की गई सेवाओं की लागत को, दोनों के बीच बराबर संतुलन करने की दृष्टि से, बहुत बारीकी से तुलना करना न तो आवश्यक है और न समीचीन ही। व्यापक सहसम्बन्ध मात्र आवश्यक है। सीमित अर्थों में तत्प्रतितत् को फीस का एक और केवल सही अभिसूचक नहीं माना जा सकता, न ही यह आवश्यक रूप से कर में अनुपस्थित रहता है।

10. अब हमारे समक्ष वर्तमान मामला किस प्रकृति का है: यह सच है कि नगर निगम ने भेड़ों, बकरियों और सुअरों की दशा में 50 पैसे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रति पशु और भैंसों की दशा में दो रुपए प्रति पशु की दर से फीस के रूप में 4,24,494 रुपये की राशि वसूल की है, जबकि नगर निगम के बजट में मद 14ख के नीचे यह दर्शित है कि बूचड़खानों से सम्बन्धित 2,56,000 रुपये की रकम व्यय हुई। किन्तु जैसा दिल्ली नगर निगम के उप-स्वास्थ्य अधिकारी (लोक स्वास्थ्य) डा० ए० सी० अजवाणी के शपथ-पत्र में बताया गया है कि 2,56,000 रुपये की रकम में व्यय की केवल वही मदें आती हैं जिनकी झलक नगरपालिका बजट की मद 14ख में मिलती है। नगरपालिका बजट की मद 14ख में आने वाले व्यय की मदें स्पष्ट रूप से व्यय की वही मदें हैं जो कि प्रत्यक्षत: और अनन्यतः बूचड़खानों के सम्बन्ध में उपगत हुए हैं। इसके अतिरिक्त, बूचड़खानों से सम्बन्धित व्यय की कई अन्य मदें भी हैं, किन्तु उन्हें मद 14ख में सम्मिलित नहीं किया गया है। इसमें से कुछ ये हैं: बूचड़खानों से गन्दगी और कूड़ा-करकट हटाने के लिए ट्रकों और अन्य यानों के क्रय, अनुरक्षण और प्रयोग में अन्तर्वलित व्यय, यद्यपि ये व्यय बूचड़खानों से सम्बद्ध माने जाते है, तो भी इनका नगरपालिका बजट में अन्य शीर्षों, जैसे परिवहन, सफाई, पैट्रोल और तेल इत्यादि के अधीन विकलन किया गया है। इसके साथ ही पर्यवेक्षणीय कर्मचारिवृन्द, जैसे कि पूर्णकालिक पशु चिकित्सा अधिकारी, नगरपालिक स्वास्थ्य अधिकारी, उप-स्वास्थ्य अधिकारी, क्षेत्रीय स्वास्थ्य अधिकारी आदि के, जिनके कर्तव्यों का बहुत बड़ा भाग बूचड़खानों से जुड़ा हुआ है, रखे जाने से सम्बन्धित उपगत व्यय भी है फिर बूचड़खानों में भवनों और फिटिंगों के अवक्षयण की लागत है। बूचड़खानों की सुविधाओं को बढ़ाने और उनमें सुधार करने का उपबंध भी किया गया है। व्यय की और कई अन्य मदें हैं जो पूर्णतः या भागतः बूचड़खानों से लगी हुई मानी जाती हैं। दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय ने व्यय की इन अनिवार्य मदों में से किसी की ओर ध्यान देने से इस आधार पर इन्कार कर दिया कि निगम को यह अधिकार नहीं है कि वह न्यायालय को नगरपालिक बजट की मद 14ख के अधीन लिखित आंकड़ों से भिन्न कोई आंकड़े देखने के लिए कहे। स्पष्टतया, उच्च न्यायालय का यह विचार था कि संगृहीत की गई फीसों का बूचड़खानों में पशुओं के वध से संबंधित प्रत्यक्षतः और अनन्यतः उपगत व्यय से संबंध होना चाहिए और उन्हें उसी रूप में नगरपालिक बजट में दिखाया जाना चाहिए। ऊपर हमने जो पहले कहा है, उसके संदर्भ में यह दृष्टिकोण पूर्णतः गलत है। हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि उपगत व्ययों का संबंध प्रदत्त विशेष फायदों या लाभों से न तो प्रत्यक्षतः न मुख्यतः होना आवश्यक है। हम यह भी स्पष्ट कर चुके हैं कि की गई सेवाओं की कीमत का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संगृहीत फीसों से दुराराध्य सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष यह सामान्य आधार रहा कि मांस का भाव उसके मूल रूप से नियत की गई दरों से 10 से 12 गुणा बढ़ गया था। यदि ऐसा ही है तो यह सोचकर आश्चर्य होता है कि नगर निगम से कैसे यह प्रत्याशा की जा सकती है कि वह अपने बूचड़खानों से पशुओं के पर्यवेक्षण और वध से संबंधित अपनी बाध्यताओं का निर्वहन दरों को केवल 2 या 3 गुणा बढ़ाकर प्रभावी रूप से कर सके। मामले की परिस्थितियों को देखते हुए छोटे पशुओं की दशा में 50 पैसे से 2 रुपया प्रति पशु और बड़े पशुओं की दशा में एक रुपये से आठ रुपये की बढ़ोतरी हमें पूर्णतः न्यायोचित प्रतीत होती है। अतः, अपील खर्चे सहित मंजूर की जाती है, उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया जाता है और उच्च न्यायालय में फाइल किये गए रिट पिटीशन खर्चों सहित खारिज किये जाते हैं।

अपील मंजूर की गई।

घ०/भू०

— — — —

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एम० जी० ब्रदर्स लारी सर्विस

बनाम

मेसर्स प्रसाद टैक्सटाइल्स

(M/s. M. G. Brothers Lorry Service
v.
M/s. Prasad Textiles)

(28 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति डी० पी० मदान और सब्यसाची मुखर्जी)

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9)—धारा 23 और 28 [सपठित वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 6, 8 और 10]—विधिक कार्यवाहियों के अवरोधक करार—परेषिती को क्षतिग्रस्त परेषण का प्रदाय किए जाने पर परेषक द्वारा क्षतिपूर्ति के लिए वाहक के विरुद्ध दावा किया जाना—परेषण के सम्बन्ध में मार्ग-पत्रक में शर्तों का विहित होना—वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 के उपबन्धों को विफल करते हुए वाद संस्थित करने के पूर्व नोटिस के लिए परिसीमा की विशेष कालावधि उपबन्धित करने वाला करार शून्य है।

प्रत्यर्थी फर्म ने तारीख 1 मई, 1969 को मार्ग-पत्रक के अधीन यार्न की एक गठान परेषित की थी। अपीलार्थी वाहक-प्रत्यर्थी को माल का परिदान करने में असफल रहा था चूंकि अपीलार्थी के अनुसार यद्यपि माल ठीक अगले दिन आ गया था, फिर भी उसका परिदान नहीं किया गया था और तूफान के परिणामस्वरूप परेषण उस समय क्षतिग्रस्त पाया गया था जब उसे अपीलार्थी के गोदाम में तारीख 20 मई, 1969 को खोला गया था। प्रत्यर्थी ने तारीख 20 जून, 1969 को अपीलार्थी को दावे का नोटिस दिया था और इसके पश्चात् विभिन्न धनराशियों की वसूली के लिए वाद संस्थित किए थे। विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि वाद मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 के आधार पर वर्जित थे चूंकि शर्त सं० 15 में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह उपबन्ध है कि सम्बन्धित पक्षकार द्वारा इस निमित्त लिखित रूप में, और बुकिंग की तारीख से या गन्तव्य स्थान पर परेषण के पहुंचने की तारीख से तीस दिनों के भीतर किए गए दावे के बिना, ऐसे परेषण के सम्बन्ध में फर्म के विरुद्ध कोई दावा नहीं होगा। किन्तु उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 और संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 34 को देखते हुए शून्य थी। इसके विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में फाइल की गई अपीलों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 के अर्थान्वयन पर शर्त सं० 15 में या तो अभिव्यक्त रूप से या आशयित रूप से दायित्व को सीमित नहीं किया गया था किन्तु जो कुछ भी उपबन्ध किया गया था वह यह था कि कोई भी वाद फर्म के विरुद्ध तब तक फाइल नहीं किया जा सकेगा जब तक कि विशेष प्रकार का दावा विशेष समय के भीतर विहित रीति में न किया गया हो। इस मामले में न तो कोई दायित्व छोड़ा गया था और न ही दायित्व से कोई संविदा उद्भूत हुई थी। किन्तु सामान्य वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 से भिन्न केवल नोटिस की सीमा की विशेष कालावधि के लिए ही उपबन्ध किया गया था। वाहक अधिनियम की धारा 10 में यह उपबन्ध है कि किसी सामान्य वाहक के विरुद्ध कोई वाद, वहन के लिए उसको सौंपे गए माल के खोने या उसको हुई क्षति के लिए तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक ऐसे वाद के संस्थित किए जाने से पहले उसको ऐसे खोने या क्षति की लिखित सूचना वादी की जानकारी में ऐसा खोना या क्षति पहली बार आने के समय से छह मास के अन्दर नहीं दी गई हो। मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 वाद को कायम रखने के लिए सम्बन्धित पक्षकार द्वारा माल की बुकिंग की तारीख से या गन्तव्य स्थान पर माल के आने की तारीख से 30 दिन के भीतर नोटिस देना आज्ञापक बनाती है। पक्षकार द्वारा गन्तव्य स्थान पर माल के लाने की तारीख लम्बे समय तक सम्बन्धित पत्रकार को मालूम नहीं भी हो सकती है। माल के खोए बिना कोई भी दावा नहीं किया जा सकता है और इसलिए माल की बुकिंग की तारीख से 30 दिन तब तक असंगत हो जाएंगे जब तक कि कोई हानि या नुकसान न हुआ हो। मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 के अधीन अनुध्यात दायित्व को टालने के लिए परिकल्पित की गई थी और वह भी ऐसी स्थिति में जहां पक्षकारों ने वाहक अधिनियम की धारा 6 के अधीन अनुध्यात किए गए अनुसार अपने दायित्व

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को किसी अभिव्यक्त संविदा द्वारा सीमित न किया हो। आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने जो मत अपनाया था वह सही था। विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 की अतिक्रमणकारी नहीं थी। न तो सामान्य विधिक कार्यवाहियों द्वारा अधिकार प्रवृत्त करने के लिए आत्यंतिक रूप से कोई निर्बन्धन है और न ही समय की ऐसी कोई सीमा है जिसके भीतर ऐसे अधिकारों को प्रस्तुत मामले में प्रवृत्त किया जा सकता है। किन्तु शर्त सं० 15 केवल वाहक अधिनियम की धारा 10 के उपबन्धों को विफल करने या उपेक्षा करने के लिए ही आशयित थी। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 में यह उपबन्ध है कि करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधिपूर्ण है सिवाय जब कि वह विधि द्वारा निषिद्ध हो अथवा वह ऐसी प्रकृति का हो कि वह अनुज्ञात किया जाए तो वह किसी विधि के उपबन्धों को विफल कर देगा। यदि शर्त सं० 15 को अनुज्ञात किया जाए तो वह वाहक अधिनियम की धारा 10 के उपबन्धों को विफल कर देगी यद्यपि मामले में वाद के संस्थित किए जाने के पहले उसको ऐसे खोने या क्षति की लिखित सूचना वादी की जानकारी में ऐसा खोना या क्षति पहली बार आने के समय से छह मास के अन्दर न दे दी गई हो। ऐसे मामले में भी जहां वादी गन्तव्य स्थान पर माल के आने के बारे में अनभिज्ञ हो अथवा हानि या नुकसान के बारे में भी अनभिज्ञ हो वहां भी वादी को वाद संस्थित करने का कोई अधिकार नहीं होगा यदि कोई दावा न किया गया हो और मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 में अनुबंधित रूप में 30 दिन के भीतर दावा न किया जा सका हो। उस दृष्टिकोण से भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 को देखते हुए शर्त सं० 15 को शून्य अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए चूंकि उसका उद्देश्य वाहक अधिनियम की धारा 10 के उपबन्धों को विफल करना था। (पैरा 13, 14)

ऐसी कोई भी संविदा या सौदा, जो विधि द्वारा अधिनियमित रूप में वाहकों के दायित्व को विफल करना चाहता है, अधिनियम के उपबन्धों को विफल कर देगा। मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 का सार स्वामी या परेषिती पर अतिरिक्त बाध्यता अधिरोपित करना है चूंकि वह या तो गन्तव्य स्थान पर माल के आने की तारीख से, जो प्रायः माल के स्वामी को मालूम नहीं होती है अथवा बुकिंग की तारीख से, जो पुनः अर्थहीन है, जब तक कि किसी हानि या नुकसान से कोई दायित्व उद्भूत न हुआ हो, सूचना का दिया जाना अनुबंधित करती है। (पैरा 15)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदि किसी विशेष सौदे के अधीन पक्षकारों के अधिकार समाप्त हो गए हों तो वह अनुज्ञेय होगा। उससे संविदा अधिनियम की धारा 28 के उपबन्धों का अतिक्रमण नहीं होगा और इससे उक्त अधिनियम की धारा 23 अतिक्रमणकारी नहीं होगी किन्तु यदि अधिकार समाप्त नहीं हुए हैं किन्तु केवल उपचार वर्जित किए गए हैं तो विभिन्न बातें लागू होंगी। (पैरा 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1979]	ए० आई० आर० 1979 कलकत्ता 178 : असम रोडवेज बनाम नेशनल इन्श्योरेंश कम्पनी और अन्य (Assam Roadways v. National Insurance Co. and Others)	21
[1979]	ए० आई० आर० 1979 आन्ध्र प्रदेश 41 : मैसर्स इण्डियन ड्रग्स एण्ड फार्मेस्यूटिकल्स लिमिटेड, हैदराबाद बनाम मैसर्स सवानी ट्रांसपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड हैदराबाद (M/s. Indian Drugs and Pharmaceuticals Ltd. Hyderabad v. M/s. Savani Transport P. Ltd., Hyderabad)	21
[1976]	[1976] 1 एस० सी० आर० 62 : वलकन इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड बनाम महाराज सिंह और एक अन्य (Vulcan Insurance Co. Ltd. v. Maharaj Singh and Another)	21
[1960]	ए० आई० आर० 1960 पंजाब 236 : पर्ल इन्श्योरेंस कम्पनी बनाम आत्मा राम (Peral Insurance Co. v. Atma Ram)	21
[1950]	ए० आई० आर० 1950 ईस्ट पंजाब 352 : रूबी जनरल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड बनाम भारत बैंक लिमिटेड और अन्य (Ruby General Insurance Co. Ltd. v. Bharat Bank Ltd. and Others)	21

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1949]	ए० आई० आर० 1949 कलकत्ता 390 : दाऊद तार मोहम्मद ब्रदर्स और अन्य बनाम क्वीन्सलैंड इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड (Dawood Tar Mahomed Bros. and Others *v*. Queensland Insuranee Co. Ltd.)	21
[1932]	ए० आई० आर० 1932 मुम्बई 330 : हाजी शकूर गनी बनाम एच० ई० हिंडे एण्ड कम्पनी लिमिटेड (Haji Shakoor Gany *v*. H. E. Hinde & Co. Ltd,)	20
[1928]	ए० आई० आर० 1928 कलकत्ता 371 : रीवर्स स्टीम नेविगेशन कम्पनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम बिश्वेश्वर कुण्डु (Rivers Steam Navigation Co. Ltd. and Another *v*. Bisweswar Kundu)	21
[1924]	ए० आई० आर० 1924 पी० सी० 40 : दि० इण्डिया जनरल नेविगेशन एण्ड रेलवे कम्पनी लिमिटेड बनाम दि डेखरी टी कम्पनी लिमिटेड और अन्य (The India General Navigation and Railway Co. Ltd. *v*. The Dekhari Tea Company Ltd. and Others)	12
[1916]	[1916] 1 लॉ रिपोर्ट्स के० बी० 39 : बैंक ऑफ आस्ट्रेलिया और अन्य बनाम क्लैन लाइन स्टीमर्स लिमिटेड (Bank of Australia and Others *v*. Clan Line Steamers, Limited)	18

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[1914] ए० आई० आर० 1914 मुम्बई 225 :
बड़ोदा स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी लिमिटेड बनाम सत्यनारायण मैरीन एण्ड फायर इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड
(Baroda Spinning and Weaving Co. Ltd. *v.* Satyanarayan Marine and Fire Insurance Co. Ltd.) 21

[1907] 1907 लॉ रिपोर्ट्स—अपील केसेज 59 :
होम इन्श्योरेंस कम्पनी ऑफ न्यूयार्क बनाम विक्टोरिया मोंट्रियल फायर इन्श्योरेंस कम्पनी
(Home Insurance Company of New York *v.* Victorial-Montreal Fire Insurance Company) 16

[1890] आई० एल० आर० 1890 कलकत्ता 39 :
इण्डिया जनरल स्टीम नेविगेशन कम्पनी (प्रतिवादी) बनाम जायक्रिस्टो साहा और अन्य (वादी)
[India General Steam Navigation Company (Defendents) *v.* Joykristo Shaha and Others (Plaintiffs)]. 19

सिविल अपीली अधिकारिता : 1978 की सिविल अपील सं० 954 से 959

1975 की द्वितीय अपील सं० 76, 83, 84, 91, 100 और 152 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तारीख 22 नवम्बर, 1976 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से — श्री ए० सुब्बाराव

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री ए० के० गांगुली, एल० के० गुप्त और सोमनाथ मुखर्जी ।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति सब्यसाची मुखर्जी ने दिया ।

न्यायाधिपति मुखर्जी—

मैसर्स एम० जी० ब्रदर्स लारी सर्विस, अपीलार्थी एक फर्म है जो सुसंगत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समय पर परिवहन का कारबार करती रही थी। तारीख 1 मई, 1969 को एक मार्ग-पत्रक के अधीन वादी फर्म मैसर्स प्रसाद टैक्सटाइल्स, इसके प्रत्यर्थी ने अपने गुण्टुर स्थित कार्यालय से लगभग 5,000 रुपये कीमत की यार्न की एक गठान विजयवाड़ा को परेषित की थी। विजयवाड़ा में उसका शाखा कार्यालय था और गठान स्वयं को (सेल्फ) प्रेषित थी। मार्ग-पत्रक और बीजक सामान्य अनुक्रम में भारतीय स्टेट बैंक को विजयवाड़ा स्थित वादी-प्रत्यर्थी मैसर्स प्रसाद टैक्सटाइल्स को गठान देने के अनुदेशों सहित दे दिए थे। यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी मैसर्स एम० जी० ब्रदर्स लारी सर्विस, विजयवाड़ा प्रत्यर्थी-वादी को उक्त माल का परिदान करने में असफल रहा था। अपीलार्थी का पक्षकथन यह था कि उक्त माल वास्तविक रूप से ठीक अगले दिन विजयवाड़ा में आ गया था तथापि उसका कुछ समय तक विजयवाड़ा में परिदान नहीं लिया गया था तथा तारीख 16 और 20 मई, 1969 के बीच विजयवाड़ा में एक समुद्री तूफान आया था जिसके परिणामस्वरूप उक्त माल उनके गोदाम में क्षतिग्रस्त हो गया था तथा जब उक्त माल को विजयवाड़ा में अपीलार्थी के प्रतिनिधि की उपस्थिति में तारीख 20 मई, 1969 को खोला गया था तो वह क्षतिग्रस्त पाया गया था।

2. 20 जून, 1969 को वादी फर्म ने प्रतिवादी फर्म को दावे का एक नोटिस दिया था और उसके पश्चात् इस आधार पर दावों के रूप में विभिन्न धनराशियों के लिए छह वाद संस्थित किए थे कि वादी ने विजयवाड़ा में परिदान किए जाने के लिए प्रतिवादी की लारी सर्विस को उक्त परेषण सौंपे थे तथा वे ऐसा करने में असफल रहे थे इसलिए वादी उन वादों को फाइल करने के लिए बाध्य था। विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा इन सब वादों का एक साथ इस आधार पर विचारण किया गया था कि इन वादों में से प्रत्येक वाद में सामान्य विवाद्यक उद्भूत हुआ है तथा विचारार्थ प्रश्न भी एक ही था। निचले न्यायालय ने एक समान निर्णय दिया था। हमारे समक्ष इन अपीलों में उद्भूत होने वाले मुद्दों को देखते हुए हमारा सब प्रश्नों पर विचार करने से कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारे प्रयोजनों के लिए इस बात पर ध्यान देना पर्याप्त है कि विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रतिवादी—हमारे समक्ष अपीलार्थी--यह साबित करने में असफल रहा था कि छह परेषणों का परिदान न किया जाना प्रतिवादी या उसके किसी नौकर की उपेक्षा के कारण नहीं हुआ था तथा प्रतिवादी ऐसे परेषण की, जिसका प्रतिवादी द्वारा परिदान नहीं किया गया था, कीमत के प्रति वादों में से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक वाद में 2,200 रुपये की नुकसानी देने के लिए दायी था तथा यह भी अभिनिर्धारित किया था कि वादी इस प्रकार डिक्रीत रकम पर ब्याज का दावा करने के लिए भी हकदार होगा। तथापि विचारण न्यायालय ने अन्ततोगत्वा यह अभिनिर्धारित किया था कि वाद मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 के आधार पर वर्जित थे। माल मार्ग-पत्रक में उल्लिखित निबन्धनों और शर्तों के अधीन परेषित किए गए थे। इसके पश्चात् सब वाद खारिज कर दिए गए थे।

3. उक्त विनिश्चय से व्यथित हो कर प्रतिवादी ने विजयवाड़ा के अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष अपील की थी। एकमात्र मुद्दा जो हमारे ध्यान देने के लिए तात्विक है, यह है कि दलील यह थी कि इसके अपीलार्थी द्वारा, जो मूल वाद में प्रतिवादी था, परेषण मार्ग-पत्रक के पृष्ठ भाग पर मुद्रित विशेष शर्तों के अध्यधीन गुण्टुर में परिवहन के लिए स्वीकार किया गया था।

4. शर्त सं० 15, जो हमारे प्रयोजन के लिए तात्विक है, निम्नानुसार है—

> "सम्बन्धित पक्षकार द्वारा इस निमित्त लिखित रूप में और बुकिंग की तारीख से या गन्तव्य स्थान पर परेषण के पहुँचने की तारीख से तीन दिनों के भीतर किए गए दावे के बिना, ऐसे परेषण के सम्बन्ध में फर्म के विरुद्ध कोई दावा नहीं होगा।"

5. विचारण न्यायालय द्वारा वादी के वाद की इस आधार पर खारिजी की निचले अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई थी कि वे शर्त सं० 15 के कारण वर्जित थे। हैदराबाद स्थित आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील की गई थी। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि मार्ग-पत्रक शर्त सं० 15 को प्रभावी किया जाता है तो उससे वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 के उपबन्ध स्पष्ट रूप से विफल हो जाएंगे और इसलिए वह शून्य होगी। इसलिए उसने अपील मंजूर कर ली थी।

6. इसके पश्चात् यह प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ को की गई द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के विनिश्चय के विरुद्ध अपील की जा सकती है। मामले के इस पहलू को देखते हुए इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के लिए आवेदन फाइल किया गया था। इस न्यायालय का यह मत था कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100क के अधीन कोई भी अपील

उच्च न्यायालय की खंड न्यायापीठ को दी जा सकेगी, यह बात स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा ही तय की जानी चाहिए। विशेष इजाजत आवेदन उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा इस प्रश्न के निपटारे के लम्बित रहते हुए चार मास की अवधि के लिए स्थगित कर दिया गया था। तत्पश्चात् उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100क के प्रवृत्त होने के पश्चात् लैटर्स पेटेंट अपील कायम नहीं रह सकती। इन परिस्थितियों में तारीख 20 अप्रैल, 1978 को न्यायालय द्वारा अपील करने के लिए विशेष इजाजत दे दी गई थी। इस प्रकार यह अपील हमारे समक्ष आई है।

7. विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के समक्ष दी गई दलीलों को देखते हुए एकमात्र प्रश्न जो इस अपील में विचारार्थ उद्भूत होता है यह है कि क्या मार्ग-पत्रक का खंड या शर्त सं० 15 जो इसमें इससे पूर्व उल्लिखित की गई है और जिसके अधीन माल का इस मामले में वाहक द्वारा परिवहन किया गया था, वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 के प्रतिकूल थी और इसलिए उक्त शर्त सं० 15 संविदा अधिनियम की धारा 23 को देखते हुए शून्य थी।

8. वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 में यह उपबंध है—

"किसी सामान्य वाहक के विरुद्ध कोई वाद, वहन के लिए उसको सौंपे गए माल के खोने या उसकी हुई क्षति के लिए तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक ऐसे वाद के संस्थित किए जाने से पहले उसको ऐसे खोने या क्षति की लिखित सूचना वादी की जानकारी में ऐसा खोना या क्षति पहली बार आने के समय से छह मास के अन्दर नहीं दी गई हो।"

यह धारा वाहक अधिनियम, 1899(1899 का अधिनियम सं० 10) द्वारा जोड़ी गई थी। मूल धारा वाहक अधिनियम, 1890(1890 का अधिनियम सं० 9) द्वारा निरसित की गई थी।

9. इसलिए इस मामले में दी गई दलीलों पर विचार करने के लिए वाहक अधिनियम, 1865 के उपबन्धों और उसके प्रयोजन को ध्यान में रखना आवश्यक है और यह अवधारण करना भी आवश्यक है कि क्या वास्तव में मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 द्वारा वाहक का दायित्व सीमित था और यदि ऐसा है तो किस सीमा तक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

10. वाहक अधिनियम, 1865, जैसा कि उसकी उद्देशिका में कहा गया है, इसलिए अधिनियमित किया गया था चूंकि न केवल सामान्य वाहकों को वहन करने के लिए परिदत्त संपत्ति की हानि या नुकसान के लिए उसके दायित्व को सीमित करना अपितु उनके या उनके सेवकों या अभिकर्त्ताओं की उपेक्षा या आपराधिक कृत्यों द्वारा ऐसी संपत्ति को हुई हानि या नुकसान के लिए उनका दायित्व घोषित करना भी समीचीन समझा गया था। इसलिए इस पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि अधिनियम वाहकों के दायित्व को सीमित करने तथा वाहकों के दायित्व को घोषित करने दोनों ही प्रयोजनों के लिए पारित किया गया था। अधिनियम की धारा 6 यह उपबंध करती है कि किसी सामान्य वाहक को वहन के लिए परिदत्त किसी संपत्ति के, जो इस अधिनियम की अनुसूची में दिए गए वर्णन की नहीं है (तथा इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि प्रश्नगत माल जिससे इस अपील में हमारा संबंध है, अनुसूची में दिए गए वर्णन के नहीं है) खो जाने या नुकसान के लिए उसका दायित्व किसी लोक सूचना द्वारा परिसीमित या प्रभावी नहीं समझा जाएगा। धारा 6 में आगे यह भी उपबन्ध है कि इस प्रकार से परिदत्त ऐसी सम्पत्ति के स्वामी की या ऐसे स्वामी द्वारा इस निमित्त सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी व्यक्ति की हस्ताक्षरित विशेष संविदा द्वारा उसकी बाबत अपने दायित्व को सीमित कर सकेगा।

11. वाहक अधिनियम, 1865 (1865 का अधिनियम सं० 3) में अन्य बातों के साथ-साथ यह भी उपबन्ध है कि प्रत्येक सामान्य वाहक स्वामी के प्रति वहन के लिए ऐसे वाहक को परिदत्त किसी संपत्ति के खोने या नुकसान के लिए दायी होगा जहां ऐसा खोना या नुकसान वाहक या उसके किसी अभिकर्ता या सेवा के आपराधिक कार्य से हुआ हो।

12. जैसा कि पहले उल्लेख किया है सामान्य वाहक के दायित्व को इसमें इससे पूर्व उद्धृत उपबंधों के अधीन करार द्वारा सीमित किया जा सकता है किन्तु वह दायित्व को सीमित करने वाला ही होना चाहिए। इस स्थिति पर **दि इण्डियन जनरल नेविगेशन एन्ड रेलवे कंपनी लिमिटेड बनाम दि डेखरी टी कंपनी लिमिटेड और अन्य**[1] के मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा प्रकाश डाला गया था। इस मामले में प्रिवी कौंसिल ने वाहक अधिनियम की धारा 6 के इस अर्थान्वयन को दोहराया था कि ऐसे व्यक्ति के जो भारतीय वाहक अधिनियम के अधीन परिभाषा के अनुरूप है, मामले में

---

[1] ए० आई० आर० 1924 पी० सी० 40.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपेक्षित यह था कि की गई ऐसी संविदा की प्रकृति जो स्पष्ट रूप से और लिखित में की गई है या तो भारतीय वाहक अधिनियम के अधिन दायित्व को सीमित करने वाली होनी चाहिए या तथ्य ऐसे होने चाहिए कि प्रश्नगत संविदा के लिए ठेकेदार अपने सामान्य कारबार से विचलित हो रहा हो तथा सामान्य वाहक के कारबार से भिन्न प्रकार के कारबार में लग रहा हो।

13. इस संबंध में हमें यह प्रतित होता है कि मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 के अर्थान्वयन पर शर्त सं० 15 में या तो अभिव्यक्ति रूप से या आशयित रूप से दायित्व को सिमित नहीं किया गया था किन्तु जो कुछ भी उपबंध किया गया था वह यह था कि कोई भी वाद फर्म के विरुद्ध तब तक फाइल नहीं किया जा सकेगा जब तक कि विशेष प्रकार का दावा विशेष समय के भीतर विहित रीति में न किया गया हो। इस मामले में न तो कोई दायित्व छोड़ा गया था और न ही दायित्व से कोई संविदा उद्भूत हुई थी। किन्तु सामान्य वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 से भिन्न केवल नोटिस की सीमा की विशेष कालावधि के लिए ही उपबंध किया गया था।

14. जैसा कि हम इससे पहले देख चुके हैं वाहक अधिनियम की धारा 10 में यह उपबंध है कि किसी सामान्य वाहक के विरुद्ध कोई वाद, वहन के लिए उसको सौंपे गए माल के खोने या उसको हुई क्षति के लिए तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक ऐसे वाद के संस्थित किये जाने से पहले उसको ऐसे खोने या क्षति के लिखित सूचना वादी की जानकारी में ऐसा खोना या क्षति पहली बार आने के समय से छह मास के अन्दर नहीं दी गई हो। प्रस्तुत मामले में मार्ग-पत्रक की शर्त स० 15 वाद को कयाम रखने के लिए संबंधित पक्षकार द्वारा माल की बुकिंग की तारीख से या गंतव्य स्थान पर माल के आने की तारीख से 30 दिन के भीतर नोटिस देना आज्ञापक बनाती है। पक्षकार द्वारा गंतव्य स्थान पर माल के लाने की तारीख लंबे समय तक संबन्धित पक्षकार को मालूम नहीं भी हो सकती है। माल के खोये बिना कोई भी दावा नहीं किया जा सकता है और इसलिए माल की बुकिंग की तारीख से 30 दिन तब तक असंगत हो जाएंगे जब तक कि कोई हानी या नुकसान न हुआ हो। इसलिए हमें यह प्रतीत होता है कि मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 वाहक अधिनियम, 1865 की धारा 10 के अधिन अनुध्यात दायित्व को टालने के लिए परिकल्पित का गई थी और वह भी ऐसी स्थिति में जहां क्षपकारों ने वाहक अधिनियम की धारा 6 के अधीन अनुध्यात किए गए अनुसार अपने दायित्व को किसी अभिव्यक्त संविदा द्वारा सीमित न किया हो। इसलिए हमें यह प्रतित होता है कि आन्ध्र प्रदेश उच्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने जो मत अपनाया था वह सही था। विचारण न्यायालय और प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 की अतिक्रमणकारी नहीं थी। निचले न्यायालयों के इस मत को द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी। हमारे समक्ष भी उस मत को गंभीरतापूर्वक चुनौती नहीं दी गई है। हमें भी यह प्रतीत होता है कि न तो सामान्य विधिक कार्यवाहियों द्वारा अधिकार प्रवृत्त करने के लिए आत्यंतिक रूप से कोई निर्बन्धन है और न ही समय की ऐसी कोई सीमा है जिसके भीतर ऐसे अधिकारों को प्रस्तुत मामले में प्रवृत्त किया जा सकता है। किन्तु शर्त सं० 15 केवल वाहक अधिनियम की धारा 10 के उपबंधों को विफल करने या उपेक्षा करने के लिए ही आशयित थी, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23 में यह उपबंध है कि करार का प्रतिफल या उद्देश्य विधिपूर्ण है सिवाय जब कि वह विधि द्वारा निषिद्ध हो अथवा वह ऐसी प्रकृति का हो कि यदि वह अनुज्ञात किया जाए तो वह किसी विधि के उपबंधों को विफल कर देगा। प्रस्तुत मामले में हमे यह प्रतीत होता है कि यदि शर्त सं० 15 को अनुज्ञात किया जाए तो वह वाहक अधिनियम की धारा 10 के उपबंधों को विफल कर देगी यद्यपि मामले में वाद के संस्थित किये जाने के पहले उसको ऐसे खोने या क्षति की लिखित सूचना वादी की जानकारी में ऐसा खोना या क्षति पहली बार आने के समय से छह मास के अन्दर न दे दी गई हो। ऐसे मामले में भी जहां वादी गंतव्य स्थान पर माल के आने के बारे में अनभिज्ञ हो अथवा हानी या नुकसान के बारे में भी अनभिज्ञ हो वहां भी वादी को वाद संस्थित करने का कोई अधिकार नहीं होगा यदी कोई दावा न किया गया हो और मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 में अनुबंधित रूप में 30 दिन के भीतर दावा न किया जा सका हो। उस दृष्टिकोण से हमारी यह राय है कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 23 को देखते हुए शर्त सं० 15 को शून्य अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए चूंकि उसका उद्देश्य वाहक अधिनियम की धारा 10 के उपबंधों को विफल करना था। हमारी राय में यह निष्कर्ष धारा और मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 के अर्थान्वयन से निकलता है।

15. निचले न्यायालयों के समक्ष यह दलील दी गई थी और हमारे समक्ष यह बात दोहराई गई थी कि वाहक अधिनियम अनिवार्य रूप से सामान्य वाहकों के फायदे के लिए अधिनियमित किया गया था तथा अधिनियम की धारा 10 का इस प्रकार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसलिए यह दलील दी गई थी कि उसका उस में विनिर्दिष्ट क्षति की तारीख से छह मास की कालावधि से न्यून कालावधि के लिए सूचना को अपवर्जित करने वाले रूप में अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता। किन्तु जैसा कि हम पहले देख चुके हैं उद्देशिका यह उपदर्शित करती है कि अधिनियम न केवल वाहकों के दायित्व को सीमित करने के लिए किन्तु वाहकों के दायित्व को घोषित करने के लिए भी अधिनियमित किया गया था। इसलिए हमारी राय में ऐसी कोई भी संविदा या सौदा, जो विधि द्वारा अधिनियमित रूप में वाहकों के दायित्व को विफल करना चाहता है, अधिनियम के उपबंधों को विफल कर देगा। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हम इसमें इससे पूर्व देख चुके हैं, मार्ग-पत्रक की शर्त सं० 15 का सार स्वामी या परेषिती पर अतिरिक्त बाध्यता अधिरोपित करना है चूंकि वह या तो गंतव्य स्थान पर माल के आने की तारीख से, जो प्राय: माल के स्वामी को मालुम नहीं होती है अथवा बुकिंग की तारीख से, जो पुनः अर्थहीन है, जब तक कि किसी हानि या नुकसान से कोई दायित्व उद्भूत न हुआ हो, सूचना का दिया जाना अनुबंधित करती है।

16. हमारा ध्यान **होम इंश्योरेन्स कम्पनी, न्यूयार्क बनाम विक्टोरिया मांट्रियल फायर इंश्योरेन्स कम्पनी**[1] के मामले में प्रिवी कौंसिल के विनिश्चय की ओर आकृष्ट किया गया है। इस मामले में पुनः बीमा की एक संविदा थी जो अग्नि बीमा पालिसी के सामान्य मुद्रित प्ररूप पर लिखी गई थी और उसमें सम्मिलित सब शर्तों में एक खंड था जो उस पर ऐसी कार्यवाही करने के प्रतिषिद्ध करने हेतु तात्पर्यित था जब तक कि वह आग के पश्चात् 12 मास के भीतर प्रारंभ न की गई हो। ज्यूडिशियल कमेटी द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संविदा के, जिसमें असावधानीपूर्वक पुनः बीमा को लागू न होने वाली बहुत सी शर्तों का सम्मिलित होना तात्पर्यित था, सही अर्थान्वयन को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त खंड को लागू न होने वाले खंड के रूप में माना जाना चाहिए। ऐसा खंड मूल पालिसी में युक्तियुक्त है जहां बीमाकर्ता हानि होने पर तुरंत दावा कर सकता है। वह वहां लागू नहीं हो सकता जहां बीमाकर्ता दावा करने में तब तक असमर्थ हो जब तक कि ऐसी कोई प्रत्यक्ष हानि पक्षकारों के बीच अभिनिश्चित न हुई हो जिस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था।

17. यद्यपि वर्तमान मामले के तथ्य तथा शर्त जिससे हमारा संबंध है, भिन्न हैं। लार्ड मैकनाटन द्वारा पृष्ठ 64 पर व्यक्त यह मत कि सीमित

---

[1] [1907] लॉ रिपोर्ट्स—अपील केसेस 59.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालावधि के पश्चात् विधिक कार्यवाहियां विहित करने वाला खंड किसी विनिर्दिष्ट सम्पत्ति की प्रत्यक्ष हानि के विरुद्ध बीमा पालिसी में एक युक्तियुक्त उपबंध था क्योंकि ऐसे मामले में बीमाकर्ता स्थिति का दक्ष व्यक्ति था तथा वह अपनी कार्यवाही तुरंत कर सकता है किन्तु दायित्व के विरुद्ध पुनः बीमा के मामले में बीमाकर्ता असहाय था, प्रस्तुत मामले में वर्तमान शर्त सं० 15 पर प्रकाश डालेगा जैसा कि हमने इसमें इससे पूर्व उल्लेख किया है। प्रस्तुत मामले में, जैसा कि हमने इससे पूर्व उल्लेख किया है, स्वामी या परेषिती को माल के गंतव्य स्थान पर आने के बारे में पर्याप्त समय तक मालूम नहीं भी हो सकता।

18. अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल ने हमारा ध्यान इंग्लैण्ड के **बैंक आफ आस्ट्रेलिया और अन्य बनाम क्लैन लाइन स्टीमर्स लिमिटेड**[1] के मामले में अपील न्यायालय के विनिश्चय की ओर भी आकृष्ट किया है। इस मामले के तथ्यों को देखते हुए हमारी राय में उक्त विनिश्चय हमारे समक्ष के विवाद के लिए सुसंगत नहीं है।

19. हमारा ध्यान **इंडिया जनरल स्टीम नेविगेशन कंपनी (प्रतिवादी) बनाम जायक्रिस्टो साहा और अन्य (वादी)**[2] के मामले के विनिश्चय की ओर भी आकृष्ट किया गया है जिसमें प्रश्न, जिस पर न्यायालय ने अपना विनिश्चय दिया था, यह था कि प्रश्नगत संविदा विभाज्य थी। इस मामले में ऐसी कोई समस्या उद्भूत नहीं हुई है, इसलिए उस विनिश्चय पर चर्चा करना आवश्यक नहीं है।

20. **हाजी शकूर गनी बनाम एच० ई० हिन्डे एण्ड कम्पनी लिमिटेड**[3] के मामले में वादियों ने इंगलिश कैरिज आफ गुड्स बाय सी ऐक्ट के उपबंधों को सम्मिलित करते हुए वहन-पत्र के अधीन प्रतिवादी सं० 1 के जहाज पर चीनी भेजी थी। वहन-पत्र से संबंधित अधिनियम के उपबंधों में से एक उपबंध यह था कि "किसी भी दशा में वाहक और जहाज किसी हानि या नुकसान के संबंध में सब दायित्व से तब तक उन्मोचित रहेंगे जब तक कि वाद माल के परिदान के पश्चात् अथवा ऐसी तारीख से जब माल का परिदान कर दिया जाना चाहिए था, एक वर्ष के भीतर न लाया गया हो। जहाज तारीख 4 मई, 1929 को मुम्बई में आया था तथा तारीख 8 मई, 1929 को पूर्ण

---

1 [1916] 1 लॉ रिपोर्ट्स के० बी० 39.

2 आई० एल० आर० 1890 जिल्द 17 कलकत्ता पृष्ठ 39

3 ए० आई० आर० 1932 मुम्बई 330,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूप से खाली कर दिया गया था। वादियों ने प्रतिवादी सं० 1 और 2 से, जो प्रतिवादी सं० 1 के मुम्बई के अभिकर्ता थे, और जिन्होंने सीमा शुल्क प्राधिकारियों को यह घोषणा की थी कि वे नुकसान या कम परिदान के सब दावों के निपटाने के लिए उत्तरदायी थे जो ऐसे माल के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कारगो में समाविष्ट किसी माल के स्वामी द्वारा सिद्ध किया जा सकता है, उन्हें कम परिदान की गई चीनी के मूल्य को वसूल करने के लिए तारीख 27 जून, 1930 को दावा किया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वहन-पत्र में उपबंधों के सम्मिलित किए जाने का प्रभाव यह था कि वादियों के अधिकार एक वर्ष के पश्चात् किए गए दावे के संबंध में समाप्त हो गए थे। जैसा कि हम इसमें इससे पहले उल्लिखित कर चुके हैं यदि किसी विशेष सादे के अधीन पक्षकारों के अधिकार समाप्त हो गए हों तो वह अनुज्ञेय होगा। उससे संविदा अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों का अतिक्रमण नहीं होगा और इससे उक्त अधिनियम की धारा 23 अतिक्रमणकारी नहीं होगी किन्तु यदि अधिकार समाप्त नहीं हुए हैं किन्तु केवल उपचार वर्जित किए गए हैं तो विभिन्न बातें लागू होंगी।

21. रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम भारत बैंक लिमिटेड और अन्य[1], दाऊद तार मोहम्मद ब्रदर्स और अन्य बनाम क्वीन्सलेंड इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड[2], पर्ल इंश्योरेंस कम्पनी बनाम आतमाराम[3], बड़ोदा स्पिनिंग एण्ड वीविंग कंपनी लिमिटेड बनाम सत्यनारायण मैरीन एण्ड फायर इंशयोरेंस कंपनी लिमिटेड[4], असम रोडवेज बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी और अन्य[5], मैसर्स इंडियन ड्रग्ज एण्ड फार्मेस्यूटिकल्स लिमिटेड, हैदराबाद बनाम मैसर्स सवानी ट्रांसपोर्ट प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद[6], रीवर्स स्टीम नेविगेशन कंपनी लिमिटेड और एक अन्य बनाम बिश्वेश्वर कुंडु[7] और वलकन इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम महाराज सिंह और एक अन्य[8] के मामलों में विनिश्चित प्रश्न और व्यक्त मत वर्तमान विवाद से भिन्न थे

---

1 ए० आई० आर० 1950 ईस्ट पंजाब 352.

2 ए० आई० आर० 1949 कलकत्ता 390.

3 ए० आई० आर० 1960 पंजाब 236.

4 ए० आई० आर० 1914 मुम्बई 225

5 ए० आई० आर० 19?9 कलकत्ता 178.

6 ए० आई० आर० 1979 आन्ध्र प्रदेश 41.

7 ए० आई० आर० 1928 कलकत्ता 371.

8 [1976] 1 एस० सी० आर० 62.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसलिए उन विनिश्चयों को निर्दिष्ट करना अथवा उन पर कोई राय व्यक्त करना आवश्यक नहीं है ।

22. इन कारणों से, जो हम इसमें इससे पूर्व उल्लिखित कर चुके हैं, हमारी यह राय है कि अपील में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के विनिश्चय को अवश्य ही कायम रखना चाहिए। तदनुसार ये अपीलें असफल होती हैं और खर्चे सहित खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जैन/स०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विजय कुमार कथूरिया (डा०)

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य

(Dr. Vijay Kumar Kathuria

v.

State of Haryana and others)

कृष्ण गोपाल कालरा (डा०)

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य

(Dr. Krishan Gopal Kalra

v.

State of Haryana and others)

तथा

विजय कुमार कथूरिया (डा०) और एक अन्य

बनाम

जी० सी० मेहरोत्रा (डा०) और अन्य

(Dr. Vijay Kumar Kathuria and another

v.

Dr. G. C. Mehrotra and others)

(29 अप्रैल, 1983)

(न्यायाधिपति वी० डी० तुलजापुरकर और बी० बालकृष्ण एराडी)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 136, 226 और 32—विशेष इजाजत विषयक पिटीशन—मिथ्या अभ्यावेदन—पिटीशनरों द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष मिथ्या अभ्यावेदन के आधार पर उससे यथा-पूर्व-स्थिति संबंधी आदेश अभिप्राप्त किया जाना—ऐसी स्थिति में, पिटीशनर कोई अनुतोष प्राप्त करने के लिए निर्रहित हैं—उनका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और उनके काउन्सेल का आचरण निन्दनीय है जिसकी भर्त्सना करना न्यायसंगत है।

उपर्युक्त मामले में चूंकि विवाद इस बात के संबंध में उत्पन्न हुआ था कि क्या दोनों पिटीशनरों को अनुदत्त अनन्तिम प्रवेश 1 अक्तूबर, 1982 तक बना रहा था या उस तारीख के बहुत पहले रद्द कर दिया गया था, इसलिए वह विवाद्यक जांच और उसके संबंध में निष्कर्ष निकालने के लिए रोहतक के जिला न्यायाधीश के पास भेजा गया। रोहतक के जिला न्यायाधीश से यह अपेक्षा की गई थी कि वह अपनी रिपोर्ट विनिर्दिष्ट समय के भीतर प्रस्तुत करे। बाद में किन्हीं कारणों से वह जांच हिसार के जिला न्यायाधीश के पास अन्तरित कर दी गई जिसने अब इस न्यायालय को अपने पत्र तारीख 4 फरवरी, 1983 के जरिए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। सम्पूर्ण जांच करने के बाद, जिसके दौरान पक्षकारों ने अपने-अपने कथन के समर्थन में मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए थे, जिला न्यायाधीश ने पिटीशनरों के विरुद्ध इस प्रभाव का निष्कर्ष निकाला है कि उनकी जानकारी के अनुसार संबंधित प्राधिकारियों ने निश्चित तारीख अर्थात् 1-10-82 के बहुत पहले ही उनका अनन्तिम प्रवेश रद्द कर दिया था। पिटीशनरों ने जो दुर्व्यपदेशन किया था, उसकी उच्चतम न्यायालय ने भर्त्सना की। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—यह स्पष्ट है कि 1-10-82 को पिटीशनरों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह मिथ्या अभ्यावेदन किया था कि वे 1-10-82 को रोहतक स्थित मैडिकल कालेज के स्नातकोत्तर छात्र के रूप में अपना अध्ययन जारी रखे हुए हैं और इस न्यायालय से उन्होंने उस तारीख को यथास्थिति बनाए रखने के संबंध में आदेश प्राप्त कर लिया था। यदि वह दुर्व्यपदेशन न किया गया होता, तो उच्चतम न्यायालय ने उक्त आदेश कभी भी पारित न किया होता। (पैरा 1)

दोनों पिटीशनरों का तथा उनके काउन्सेल का आचरण या व्यवहार सर्वाधिक निन्दनीय है और उसकी भर्त्सना की जानी चाहिए। उस निमित्त ज़िला न्यायाधीश की रिपोर्ट प्रभाव पूर्ण और सर्वाधिक उद्घाटनकारी है, जैसा कि उस रिपोर्ट में यह बताया गया है कि दोनों पिटीशनरों के काउन्सेल (जिसने जिला न्यायाधीश के समक्ष पिटीशनरों के मामले के समर्थन में साक्ष्य दिया था) ने इस प्रकार झूठ बोला है और कालेज के प्राधिकारियों के विरुद्ध अभिलेख गढ़ने और उसमें अभिचालन करने संबंधी उद्दण्डतापूर्ण अभिकथन किए थे। किन्तु वास्तव में दोषी वे ही हैं। इन तीन अभिव्यक्त सज्जनों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के धर्म-संकट पर कुछ कहना दुःख की बात है जो कि अपने कॅरियर का प्रारम्भ कर रहे हैं। वास्तव में न्यायालय एक प्रक्रम में जिला न्यायाधीश की रिपोर्ट को मैडिकल कौंसिल तथा बार कौंसिल के पास समुचित कार्यवाही के लिए निर्देशित करना चाहता था, किन्तु ऐसा करने से न्यायालय ने अपने को इसलिए प्रविरत रखा, क्योंकि पिटीशनरों के काउन्सेलों ने अपने मुवक्किलों की ओर से तथा स्वयं की ओर से न्यायालय से बिना शर्त माफी मांगी थी और उससे दया की भीख मांगी थी। तथापि बहुत ही दुख के साथ यह मामला समाप्त करते हुए, न्यायालय ने उनके आचरण और व्यवहार के प्रति अपनी नाराजगी प्रकट की है किन्तु साथ ही यह निदेश दिया गया कि पिटीशनरों में से प्रत्येक पिटीशनर प्रत्यर्थियों को खर्चे के तौर पर 2,500/- रुपए की राशि देगा। (पैरा 3)

सिविल अपीली अधिकारिता : 1982 का विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 9009.

तथा

1982 का विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 9010.

1982 के सिविल रिट पिटीशन सं० 2484 और 2479 में चण्डीगढ़ स्थित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 21 सितम्बर, 1982 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध किए गए पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से — डा० आदर्श कपूर और श्रीमती वी० डी० खन्ना

प्रत्यर्थियों की ओर से — श्री के० जी० भगत, अपर सालिसिटर जनरल और श्री आर० एन० पोद्दार

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० डी० तुलजापुरकर ने दिया।

न्यायाधिपति तुलजापुरकर—

आदेश

उपर्युक्त मामले में चूंकि विवाद इस बात के संबंध में उत्पन्न हुआ था कि दोनों पिटीशनरों को अनुदत्त अनन्तिम प्रवेश 1 अक्तूबर, 1982 तक बना रहा था या उस तारीख के बहुत पहले रद्द कर दिया गया था, इसलिए वह विवाद्यक जांच और उसके सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने के लिए रोहतक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के जिला न्यायाधीश के पास भेजा गया। रोहतक के जिला न्यायाधीश से यह अपेक्षा की गई थी कि वह अपनी रिपोर्ट विनिर्दिष्ट समय के भीतर प्रस्तुत करे। बाद में किन्हीं कारणों से जिन्हें उल्लिखित करना आवश्यक नहीं है, वह जांच हिसार के जिला न्यायाधीश के पास अन्तरित कर दी गई जिसने अब इस न्यायालय को अपने पत्र तारीख 4 फरवरी, 1983 के जरिए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। सम्पूर्ण जांच करने के बाद, जिसके दौरान पक्षकारों ने अपने-अपने कथन के समर्थन में मौखिक तथा दस्तावेज़ी साक्ष्य पेश किए थे, जिला न्यायाधीश ने पिटीशनरों के विरुद्ध इस प्रभाव का निष्कर्ष निकाला है कि उनकी जानकारी के अनुसार संबंधित प्राधिकारियों ने निश्चित तारीख अर्थात् 1-10-82 के बहुत पहले ही उनका अनन्तिम प्रवेश रद्द कर दिया था। अन्य शब्दों में, यह स्पष्ट है कि 1-10-82 को पिटीशनरों ने इस न्यायालय के समक्ष यह मिथ्या अभ्यावेदन किया था कि वे 1-10-82 को रोहतक स्थित मेडिकल कालेज के स्नातकोत्तर छात्र के रूप में अपना अध्ययन जारी रखे हुए हैं और इस न्यायालय से उन्होंने उस तारीख को यथास्थिति बनाए रखने के संबंध में आदेश प्राप्त कर लिया था। यदि वह दुर्व्यपदेशन न किया गया होता, तो इस न्यायालय ने उक्त आदेश कभी भी पारित न किया होता। ऐसे आचरण के कारण, वे स्वयं ही इस न्यायालय से कोई अनुतोष या सहायता लेने से निर्हकित हो गए थे और विशेष इजाजत विषयक ये पिटीशन खारिज किए जाने के लायक हैं।

2. पिटीशनरों के काउन्सेल ने जिला न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को तथा पिटीशनरों के विरुद्ध व्यक्त किए गए उसके मतों में से किन्हीं को चुनौती देने की कोशिश की है। किन्तु रिपोर्ट और अन्य सामग्री को पढ़ने के बाद और उसके विरुद्ध जिन दलीलों पर जोर दिया गया है, उन सभी पर विचार करने के बाद हमारा समाधान हो गया है कि यह बहुत ही सम्पूर्ण और समाधानकारी रिपोर्ट है और हम उसमें निकाले गए निष्कर्ष को स्वीकार करते हैं। उनको देखते हुए, 1982 की सिविल प्रकीर्ण पिटीशन सं० 27798 जिसे पिटीशनरों ने अवमान के लिए पेश किया था, और विशेष इजाजत पिटीशन सं० 9009/82 तथा 9010/82 खारिज किए जाने के लायक हैं।

3. तथापि इस मामले को समाप्त करने से पूर्व, हम यह मत व्यक्त करने से नहीं रह सकते हैं कि दोनों पिटीशनरों का तथा उनके काउन्सेल का (अर्थात् डा० एम० के० कपूर का, जो कि चिकित्सा-विधि परामर्शी हैं और न्यायालय में विधि व्यवसाय करते हैं) आचरण या व्यवहार सर्वाधिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निन्दनीय है और उसकी भर्त्सना की जानी चाहिए। उस निमित्त जिला न्यायाधीश की रिपोर्ट प्रभावपूर्ण और सर्वाधिक उदघाटनकारी है, जैसा कि उस रिपोर्ट में यह बताया गया है कि दोनों पिटीशनरों के काउन्सेल (जिसने जिला न्यायाधीश के समक्ष पिटीशनरों के मामले के समर्थन में साक्ष्य दिया था) ने इस प्रकार झूठ बोला है और कालेज के प्राधिकारियों के विरुद्ध अभिलेख गढ़ने और उसमें अभिचालन करने संबंधी उद्दण्डता पूर्ण अभिकथन किए थे। किन्तु वास्तव में दोषी वे ही हैं। इन तीन युवक सज्जनों के धर्म संकट पर कुछ कहना दुःख की बात है जो कि अपने कॅरियर का प्रारम्भ कर रहे हैं। वास्तव में एक प्रक्रम हम जिला न्यायाधीश की रिपोर्ट को मैडिकल कौंसिल तथा बार कौंसिल के पास समुचित कार्यवाही के लिए निर्देशित करना चाहते थे किन्तु हमने ऐसा करने से इसलिए अपने को प्रविरत रखा क्योंकि पिटीशनरों के काउन्सेलों ने अपने मुवक्किलों की ओर से तथा स्वयं की ओर से न्यायालय से बिना शर्त माफी मांगी थी और उससे दया की भीख मांगी थी। तथापि, हम बहुत ही दुःख के साथ इस मामले को समाप्त करते हैं और उनके आचरण और व्यवहार के प्रति अपनी नराजगी प्रकट करते हैं। किन्तु यह निदेश देते हैं कि पिटीशनरों में से प्रत्येक प्रत्यर्थियों को खर्चे के तौर पर 2,500/- रुपए की राशि देगा। इस प्रकार विशेष इजाजत पिटीशन और सिविल प्रकीर्ण पिटीशन खर्चे के संदाय के सम्बन्ध में पूर्वोक्त निदेश के साथ ही खारिज किए जाते हैं।

पिटीशन खारिज किए गए।

श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाराष्ट्र राज्य

बनाम

व्यासेन्द्र

(State of Maharahtra

v.

Vyasendra)

(3 मई, 1983)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ और न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या)

महाराष्ट्र एग्रीकल्चरल लैण्ड्स (सीलिंग आन होल्डिंग्स) ऐक्ट, 1961 [महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा) अधिनियम, 1961] (1961 का अधि० सं० 27)—धारा 4(1) और स्पष्टीकरण (क)—"कौटुम्बिक एकक"—अधिकतम सीमा का अवधारण—पत्नी द्वारा पृथक् सम्पत्ति या स्त्रीधन के रूप में भूमि का धारण किया जाना—अधिकतम भूमि निर्धारित करते समय उक्त भूमि को 'कौटुम्बिक एकक' द्वारा धृत भूमि में शामिल कर लिए जाने पर निर्धारिती द्वारा आक्षेप किया जाना—वास्तव में, कौटुम्बिक एकक के अधिकतम क्षेत्र का अवधारण करने के लिए यह तथ्य महत्वहीन है और यदि यह उपधारणा कर ली जाए, तो भी अधिकतम सीमा का अवधारण करते समय पत्नी की उक्त सम्पत्ति 'कौटुम्बिक एकक' की सम्पत्ति में जोड़ दी जाएगी।

प्रत्यर्थी ने महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा) अधिनियम, 1961 [महाराष्ट्र एग्रीकल्चरल लैण्ड्स (सीलिंग आन होल्डिंग्स) ऐक्ट, 1961] की धारा 12 के अधीन विवरणी फाइल की और उसमें उसने स्वयं द्वारा धृत भूमि को ही "कौटुम्बिक एकक" द्वारा धृत भूमि के रूप में दिखलाया था। किन्तु कतिपय ऐसी भूमियां जो उसकी पत्नी द्वारा पृथक् भूमियों या स्त्रीधन के रूप में धारित थीं, उस विवरणी में इस आधार पर शामिल नहीं की गई कि वह "कौटुम्बिक एकक" की भूमि नहीं है; इसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण उक्त एकक द्वारा धृत भूमि की अधिकतम सीमा का अवधारण करते समय पत्नी की भूमि कुटुम्ब की भूमि में नहीं जोड़ी गई। अधिशेष भूमि अवधारण अधिकरण ने धारा 21 के अधीन यह अभिनिर्धारित किया कि पत्नी द्वारा धृत पृथक् भूमि, कौटुम्बिक एकक की भूमियों में जोड़ी जाएगी तथा जोड़ने के बाद प्रत्यर्थी को अधिशेष घोषित भूमि महाराष्ट्र राज्य के पक्ष में अभ्यर्पित करनी होगी। किन्तु औरंगाबाद के अपर आयुक्त ने स्वप्रेरणा से अधिकरण से संबंधित अभिलेख मंगवाए और प्रत्यर्थी की आपत्ति की सुनवाई करने के बाद वह मामला अधिकरण के पास यह निर्णय करने के लिए पुनः वापस कर दिया कि क्या अधिसूचित तारीख के बाद प्रत्यर्थी की पत्नी द्वारा किया गया भूमि-विक्रय विधिक आवश्यकता के लिए था। प्रत्यर्थी ने उस निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट पिटीशन फाइल किया तथा उच्च न्यायालय ने पिटीशन मंजूर करते हुए अधिकरण को यह विनिश्चय करने का निदेश दिया कि क्या पत्नी द्वारा धृत भूमि उसकी पृथक् सम्पत्ति है। महाराष्ट्र राज्य ने उसी निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा) अधिनियम, 1961 की धारा 4 के उपबंधों से यह स्पष्ट है कि कौटुम्बिक एकक के प्रत्येक सदस्य द्वारा धृत सब भूमि के बारे में, चाहे वह संयुक्ततः धृत हो या पृथकतः, यह समझा जाएगा कि वह ऐसे अधिकतम क्षेत्र का, जो कि कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकता है, अवधारण करने के प्रयोजनार्थ कौटुम्बिक एकक द्वारा धृत है। 'कौटुम्बिक एकक' अभिव्यक्ति की परिभाषा स्पष्टीकरण में दी गई है और उससे अभिप्रेत है 'ऐसा व्यक्ति और उसकी पत्नी/उसका पति.....।' यह परिस्थिति कि कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य द्वारा धृत भूमि पृथक् सम्पत्ति तथा स्त्रीधन सम्पत्ति है, किसी भी प्रकार से अधिकतम क्षेत्र का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ जो कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकता है, कोई भी महत्व का विषय नहीं है। प्रत्यर्थी, उसकी पत्नी और उसके अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां, यदि कोई हों तो, सभी कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य हैं और ऐसे अधिकतम क्षेत्र का जोकि कौटुम्बिक एकक को अनुज्ञेय है, अवधारण करने के प्रयोजनार्थ उनके द्वारा धृत सब भूमियों को एक ही साथ रखना होगा। उनके द्वारा धृत भूमि में उनके हित की प्रकृति या स्वरूप उस अधिकतम क्षेत्र की, जोकि कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकेगा, संगणना करने के लिए असंगत हैं। अतः उच्च न्यायालय का अधिकरण को इस प्रश्न की जांच करने का निदेश देना गलत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

था कि क्या वह भूमि जो कि प्रत्यर्थी की पत्नी के नाम थी और जिसे उसने बेच दिया था, उसकी वैयक्तिक या पृथक् सम्पत्ति थी। यह मानते हुए कि वह ऐसी सम्पत्ति थी, उसे प्रत्यर्थी द्वारा धृत भूमि के साथ ही संयोजित करना होगा। (पैरा 6)

सिविल अपीली अधिकारिता : 1983 की सिविल अपील सं० 4264.

1979 के रिट पिटीशन सं० 1117 में मुम्बई उच्च न्यायालय के 25 अप्रैल, 1979 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री वी० एस० देसाई और एम० एन० श्राफ
प्रत्यर्थी की ओर से	कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—

राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कृषि अधिकतम सीमा अधिनियमों के अधीन प्रायः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या पृथक् सम्पत्ति के रूप में पत्नी के स्वामित्व में और उसके द्वारा धृत भूमि उसके पति द्वारा और कुटुम्ब के अन्य सदस्यों द्वारा धृत भूमियां 'कौटुम्बिक एकक की' जोत पर अधिकतम सीमा की संगणना करने के प्रयोजनार्थ संयोजित की जा सकती है ? महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा) अधिनियम, 1961 (1961 का 27) (जिसे अधिनियम कहा गया है) के अधीन की गई इस अपील में यही प्रश्न उत्पन्न हुआ है।

2. प्रत्यर्थी व्यासेन्द्र ने अधिनियम की धारा 12 के अधीन विवरणी फाइल की जिसमें स्वयं द्वारा धृत भूमि को दिखलाया था और यह उल्लेख किया था कि ऐसी कतिपय भूमियां जोकि उसकी पत्नी के नाम थीं, पृथक् सम्पत्ति है। अधिशेष भूमि अवधारण अधिकरण ने अधिनियम की धारा 21 के अधीन यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी की समस्त जोत, जिसके अन्तर्गत वह भूमि भी है जिसकी बाबत यह अभिकथित था कि वह उसकी पत्नी की पृथक् सम्पत्ति है, 67 एकड़ और 34 गुंठा थी। चूंकि अधिनियम के अधीन अधिकतम सीमा 54 एकड़ है इसलिए प्रत्यर्थी से यह कहा गया कि वह 13 एकड़ और 34 गुंठा के बराबर क्षेत्र अभ्यर्पित कर दे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

3. औरंगाबाद के अपर आयुक्त ने स्वप्रेरणा से अधिकरण के अभिलेख और कार्यवाहियों को वापस मंगवाया। प्रत्यर्थी ने इन कार्यवाहियों में यह दलील दी कि 17 एकड़ 27 गुंठा क्षेत्र जिसे उसकी पत्नी ने अधिसूचित की गई तारीख के बाद बेचा था, इस आधार पर कौटुम्बिक जोत में गलती से शामिल कर दिया गया था कि वह विक्रय असद्भाविक है और उसे किसी विधिक आवश्यकता का समर्थन प्राप्त नहीं है। 16 जनवरी, 1979 की तारीख वाले आदेश द्वारा अपर आयुक्त ने वह मामला अधिकरण के पास इस प्रश्न की नए सिरे से जांच करने के लिए वापस भेज दिया कि क्या अधिसूचित तारीख के बाद प्रत्यर्थी की पत्नी द्वारा किए गए भूमि के विक्रय को विधिक आवश्यकता का समर्थन प्राप्त था। दलील यह थी कि प्रत्यर्थी की पत्नी ने अपनी बीमारी के सम्बन्ध में चिकित्सा व्यय के खर्चे की पूर्ति के लिए भूमि का विक्रय किया था।

4. प्रत्यर्थी ने अपर आयुक्त के निर्णय के विरुद्ध मुम्बई उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशन (1979 का सं० 1117) फाइल किया। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी की दलील यह थी कि अपर आयुक्त को चाहिए था कि वह न केवल यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या प्रत्यर्थी की पत्नी ने विधिक आवश्यकता के प्रयोजन के लिए उस भूमि का विक्रय किया था, बल्कि यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए भी कि क्या वह भूमि जोकि प्रत्यर्थी की पत्नी के नाम थी, उसकी पृथक् या स्त्रीधन सम्बन्धी संपत्ति थी, भूमि का विक्रय किया था। उच्च न्यायालय ने यह दलील स्वीकार कर ली जिसने तारीख 25 अप्रैल, 1979 वाले अपने निर्णय द्वारा अधिकरण को यह निदेश देते हुए उस प्रतिप्रेषण की परिधि का विस्तार कर दिया कि वह इस प्रश्न की जांच करे कि क्या वह भूमि जोकि प्रत्यर्थी की पत्नी के नाम थी, उसकी पृथक् सम्पत्ति है। महाराष्ट्र राज्य ने इस अपील में उच्च न्यायालय के उसी निर्णय की परिशुद्धता को चुनौती दी है।

5. तारीख 8 मार्च, 1983 वाले अपने आदेश द्वारा इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी को यह कारण बताने सम्बन्धी सूचना जारी की जिसमें यह कथन किया गया था कि अगली सुनवाई की तारीख को उस मामले की अन्तिम सुनवाई की जाएगी तथा उसका निपटारा किया जाएगा। प्रत्यर्थी पर कारण बताने सम्बन्धी सूचना की तामील कर दी गई है किन्तु वह उपस्थित नहीं हुआ है।

6. श्री वी० एस० देसाई जोकि अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए हैं, की दलील यह है कि उच्च न्यायालय का अधिकरण को यह निदेश देना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गलत था कि वह इस प्रश्न की जांच करे कि क्या वह भूमि जोकि प्रत्यर्थी की पत्नी के नाम थी और जो उसने अभिकथित रूप से चिकित्सीय व्यय की पूर्ति के लिए बेची थी, उसकी पृथक् सम्पत्ति है, अपर आयुक्त द्वारा पारित प्रतिप्रेषण विषयक आदेश की परिधि में वृद्धि करना गलत था। यह दलील साधार है और उसे अवश्य ही स्वीकार किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 3(1) में उस सीमा तक जिस सीमा तक वह तात्विक है, यह उपबंध किया गया है कि 'कोई भी कौटुम्बिक एकक द्वारा प्रारम्भ की तारीख के बाद, अधिनियम द्वारा उपबंधित रीति से यथा-अवधारित अधिकतम क्षेत्र से अधिक भूमि धृत नहीं होगी। धारा 3 की उपधारा (2) द्वारा अधिकतम क्षेत्र से अधिक किसी कौटुम्बिक एकक द्वारा धृत भूमि को ऐसी अधिशेष भूमि माना गया है जिसके संबंध में अधिनियम द्वारा विहित रीति से कार्यवाही की जानी चाहिए। अधिनियम की धारा 4(1) जोकि इस मामले में अत्यधिक महत्वपूर्ण है, निम्नलिखित रूप में है—

*"4. कौटुम्बिक एकक द्वारा धृत भूमि—(1) कौटुम्बिक एकक के प्रत्येक सदस्य द्वारा धृत सभी भूमि के बारे में, चाहे वह संयुक्ततः या पृथकतः धृत हो, कौटुम्बिक एकक के अधिकतम क्षेत्र को अवधारित करने के प्रयोजनों के लिए, यह समझा जाएगा कि वह कौटुम्बिक एकक द्वारा धृत है।

स्पष्टीकरण—'कौटुम्बिक एकक' से अभिप्रेत है—

(क) ऐसा व्यक्ति और उसकी पत्नी/उसका पति (या एक पति/पत्नी से अधिक) और उनके अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां, यदि कोई हों तो; या

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

'4. Land held by family unit—(1) All land held by each member of a family unit, whether jointly or separately, shall for the purposes of determining the ceiling area of the family unit, be deemed to be held by the family unit.

Explanation—A 'Family unit' means—

(a) a person and his spouse (or more than one spouse) and their minor sons and minor unmarried daughters, if any; or

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ख) जहां पति/पत्नी की मृत्यु हो गई है, वहां उत्तरजीवी पत्नी/पति या पत्नियां या पतिगण और अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां; या

(ग) जहां पति और पत्नी दोनों की मृत्यु हो चुकी है, है, वहां ऐसे मृतक पति और पत्नियों के अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां।"

इन उपबन्धों से यह स्पष्ट है कि कौटुम्बिक एकक के प्रत्येक सदस्य द्वारा धृत सब भूमि के बारे में, चाहे वह संयुक्ततः धृत हो या पृथक्तः, यह समझा जाएगा कि वह ऐसे अधिकतम क्षेत्र का, जोकि कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकता है, अवधारण करने के प्रयोजनार्थ, कौटुम्बिक एकक द्वारा धृत है। 'कौटुम्बिक एकक' अभिव्यक्ति की परिभाषा स्पष्टीकरण में दी गई है और उससे अभिप्रेत है "ऐसा व्यक्ति और उसकी पत्नी/उसका पति...।" यह परिस्थिति कि कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य द्वारा धृत भूमि पृथक् संपत्ति तथा स्त्रीधन संपत्ति है, किसी भी प्रकार से अधिकतम क्षेत्र का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ जो कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकता है, कोई भी महत्व का विषय नहीं है। प्रत्यर्थी, उसकी पत्नी और उसके अवयस्क पुत्र और अवयस्क अविवाहित पुत्रियां, यदि कोई हों तो, सभी कौटुम्बिक एकक के संघटक सदस्य हैं और ऐसे अधिकतम क्षेत्र का जोकि कौटुम्बिक एकक को अनुज्ञेय है, अवधारण करने के प्रयोजनार्थ उनके द्वारा धृत सब भूमियों को एक ही साथ रखना होगा। उनके द्वारा धृत भूमि मे उनके हित की प्रकृति या स्वरूप उस अधिकतम क्षेत्र की जोकि कौटुम्बिक एकक बनाए रख सकेगा, संगणना करने के लिए असंगत हैं। अतः उच्च न्यायालय का अधिकरण को इस प्रश्न की जांच करने का निदेश देना गलत था कि क्या वह भूमि जोकि प्रत्यर्थी की पत्नी के नाम थी और जिसे उसने बेच दिया था, उसकी वैयक्तिक या पृथक् संपत्ति थी। यह मानते हुए कि वह ऐसी संपत्ति थी, उसे प्रत्यर्थी द्वारा धृत भूमि के साथ ही संयोजित करना होगा।

(b) where any spouse is dead, the surviving spouse or spouses, and the minor sons and minor unmarried daughters; or

(c) where the spouses are dead, the minor sons and minor unmarried daughters of such deceased spouses."

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

7. परिणामतः हम अपील मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करते हैं और औरंगाबाद के अपर आयुक्त द्वारा पारित प्रतिप्रेषण विषयक आदेश की पुष्टि करते हैं। अधिशेष भूमि अवधारण अधिकरण उस सीमित प्रश्न मात्र की जांच करेगा जिसे औरंगाबाद के अपर आयुक्त ने उसको निर्देशित किया है।

8. खर्चे के संबंध में कोई भी आदेश नहीं किया जाता है।

अपील मंजूर की गई।

श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गनेन्द्र प्रसाद सेनगुप्त

बनाम

भारत संघ और अन्य

(Ganendra Prasad Sengupta

v.

Union of India and Others)

(3 मई, 1983)

(न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ई० एस० वेंकटरामय्या)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 (2)—परमादेश जारी करना—सिविल सेवा—ज्येष्ठता और प्रोन्नति—अपीलार्थी की प्रोन्नति के बारे में कुछ कालावधि की गोपनीय रिपोर्ट की अनुपलब्धता के कारण विनिश्चय स्थगित रखना—रिपोर्ट की प्राप्ति पर प्रोन्नति समिति द्वारा अपीलार्थी की सेवा के अभिलेखों के आधार पर केवल यह संकल्प करना कि उसका मामला पुनः प्रारम्भ नहीं किया जा सकता—रिपोर्ट की प्राप्ति पर प्रोन्नति समिति को अपीलार्थी की प्रोन्नति के लिए उपयुक्तता का विनिश्चय करना चाहिए था ऐसा न करके समिति ने विधि के अनुसरण में कार्य नहीं किया। मामले का पुनः प्रारम्भ उस दशा में होता है जहां मामले पर विचार किया गया हो और कोई विनिश्चय कर लिया गया हो।

अपीलार्थी भारतीय खाद्य निगम का कर्मचारी है। प्रशासनिक सुविधा के प्रयोजन के लिए भारत का संपूर्ण संग राज्य क्षेत्र जिसमें कि निगम अपना कारबार करता है कई क्षेत्रों में विभाजित है। अपीलार्थी सन् 1961 में उत्तरी क्षेत्र में भाण्डारपाल के पद पर कार्य कर रहा था। उसके कहने पर अपीलार्थी को पूर्वी क्षेत्र में 1 मार्च, 1961 को स्थानान्तरित कर दिया गया था। जुलाई, 1962 में भारत सरकार ने इस बारे में एक परिपत्र जारी किया था कि कोई अधिकारी जो एक क्षेत्र से एक अन्य क्षेत्र को उसके अपने अनुरोध पर स्थानान्तरित किया गया हो, उसे पश्चात्‌वर्ती क्षेत्र में ज्येष्ठता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के प्रयोजन के लिए उस संवर्ग में जिससे कि वह संबंधित था नया प्रवेशक मान लिया जाए अर्थात् उसकी ज्येष्ठता को नए क्षेत्र में विशेष पद में अपना कार्यभार संभालने की तारीख से ही गिना जाना चाहिए और इसलिए वह ज्येष्ठता के प्रयोजन के लिए उसी पद में पश्चात्वर्ती क्षेत्र में जिसमें कि वह स्थानान्तरित किया गया था पूर्व क्षेत्र में विशेष पद में की सेवा के लाभ का दावा करने का हकदार नहीं होगा। नवम्बर, 1969 की ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी का नाम क्रम सं० 261 के सामने था किन्तु 10 मई, 1972 की ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी का नाम क्रम सं० 266 के सामने दर्शाया गया था। अतः उक्त ज्येष्ठता सूची को ध्यान में रखते हुए चार व्यक्ति, जो पहले अपीलार्थी से कनिष्ठ समझे गए थे, अपीलार्थी के दावों का अतिक्रमण करके प्रोन्नत कर दिए गए थे। अपीलार्थी ने उक्त परिपत्र को प्रश्नगत किया। अपीलार्थी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक रिट पिटीशन फाइल किया। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा उस पिटीशन में प्रत्यर्थियों को पिटीशनर को उस आदेश की सूचना तारीख से दो मास के भीतर उत्तरी क्षेत्र में उसकी मूल नियुक्ति के स्थान में पिटीशनर को वापस स्थानान्तरित करने के मामले पर विचार करने के लिए परमादेश के स्वरूप की एक रिट जारी की। उसे नवम्बर, 1976 में उत्तरी क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया गया। उत्तरी क्षेत्र में अपने पद का कार्यभार संभालने के पश्चात् अपीलार्थी ने यह महसूस किया कि उसके कुछ कनिष्ठ साथी उस कालावधि के दौरान जब कि वह पूर्वी क्षेत्र में कार्य कर रहा था ऊंचे पदों पर प्रोन्नत कर दिए गए थे। अतः उसने एक अभ्यावेदन किया कि उच्च संवर्ग में उसकी प्रोन्नति के लिए मामले पर उस तारीख से विचार किया जाए जिसको उसके कनिष्ठ व्यक्ति प्रोनन्त किए गए थे। परन्तु उसके अभ्यावेदनों का कोई परिणाम नहीं निकला अतः अपीलार्थी ने दिल्ली उच्च न्यायालय में एक रिट पिटीशन फाइल कर दिया। वह पिटीशन उच्च न्यायालय द्वारा प्रारंभ में ही खारिज कर दिया गया उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में की गई अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—मंडलीय प्रोन्नति समिति द्वारा पारित संकल्प से ऐसे किसी अर्थ का पता नहीं चलता जो निगम उसे देना चाहता है अर्थात् कि मंडलीय प्रोन्नति समिति ने सुसंगत गोपनीय रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात् यह पाया कि अपीलार्थी 1970 के पैनल में सम्मिलित किए जाने के लिए अनुपयुक्त था। मंडलीय प्रोन्नति समिति द्वारा पारित संकल्प का यह अर्थ है कि वह उसके सेवा अभिलेखों के आधार पर अपीलार्थी के मामले को फिर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से शुरू करने के लिए रजामंद नहीं थी। संकल्प यह नहीं दर्शाता है कि मंडलीय समिति ने वास्तव में उस समय उच्च पद पर प्रोन्नति के लिए अपीलार्थी की उपयुक्तता पर विचार किया था जब कि उसके कनिष्ठ साथियों को प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए पैनल में सम्मिलित किया था। यदि उसने ऐसा किया था तो मंडलीय प्रोन्नति समिति ने उसे अपने संकल्प में अभिलिखित किया होगा कि अपीलार्थी को सुसंगत समय के दौरान प्रोन्नति के लिए अनुपयुक्त पाया गया है। मंडलीय प्रोन्नति समिति ने सन् 1977 में अपीलार्थी के मामले पर विधि के अनुसार विचार नहीं किया था। जब कि अपीलार्थी का मामला पहली बार 5 दिसम्बर, 1977 को मंडलीय प्रोन्नति समिति के समक्ष आया था उसने अपीलार्थी के मामले पर इस आधार पर विचार करना स्थगित कर दिया था कि सुसंगत गोपनीय अभिलेख उपलब्ध नहीं थे। उस अवसर पर अपीलार्थी के मामले पर विचार करने को स्थगित किए जाने के कारण मंडलीय प्रोन्नति समिति को अपीलार्थी के मामले पर विचार करना चाहिए था। जब कि सुसंगत गोपनीय रिपोर्टें उसके समक्ष रखी गई थी और यह टिप्पणी करने के स्थान पर कि अपीलार्थी के मामले पर फिर से विचार नहीं किया जा सकता समुचित संकल्प पारित करना चाहिए था मामले पर फिर से विचार करना केवल उस समय उद्भूत होता है जब कि इस पर एक बार विचार कर लिया गया हो और उस पर विनिश्चय किया जा चुका हो। चूंकि न्यायालय के समक्ष यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि पहले इस प्रकार का विचार किया गया है मंडलीय प्रोन्नति समिति के मई, 1979 में पारित संकल्प में यह कहा गया है कि मामले पर फिर से विचार नहीं किया जा सकता, विधि की दृष्टि में उसे अप्रभावी मानना होगा। इसलिए यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी के मामले पर उसे 1970 के पैनल में सम्मिलित करने के प्रयोजन के लिए मंडलीय प्रोन्नति समिति द्वारा सम्यक् रूप से विचार कर लिया गया है। निगम को यह निदेश जारी करने के सिवाय कि वह 1970 के पैनल में सम्मिलित करने के लिए अपीलार्थी के मामले पर विचार करे और कोई विकल्प नहीं है। निगम को यह निदेश जारी किया जाता है कि वह उस तारीख को प्रोन्नति के लिए अपीलार्थी के मामले पर विचार करे जिसको कि सन् 1976 में उत्तरी क्षेत्र में उसके तुरंत कनिष्ठ अर्थात् प्रत्यर्थी सं० 13 को प्रोन्नत किया गया था और यदि ऐसे विचारण पर अपीलार्थी प्रोन्नति के लिए उपयुक्त पाया जाता है तो उसे उच्च संवर्ग में प्रोन्नत किया जाए और उसे उच्च संवर्ग में उसके ऐसे अगले कनिष्ठ व्यक्ति से ऊपर रखा जाए। (पैरा 3)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिविल अपीली अधिकारिता : 1983 की सिविल अपील सं० 4061.

1981 के सिविल रिट पिटीशन सं० 371 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 11 मार्च, 1981 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से	श्री ए० गांगुली
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री के० सी० केशव दयाल, ए० वी० रंगम तथा जी० गोपाल कृष्णन

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ई० एस० वेंकटरामय्या ने दिया।

न्यायाधिपति वेंकटरामय्या—

अपीलार्थी भारतीय खाद्य निगम (जिसे इसमें इसके पश्चात् निगम निर्दिष्ट किया गया है) का कर्मचारी है। प्रशासनिक सुविधा के प्रयोजन के लिए भारत का संपूर्ण संघ राज्य क्षेत्र जिसमें कि निगम अपना कारबार करता है, कई क्षेत्रों में विभाजित है। अपीलार्थी सन् 1961 में उत्तरी क्षेत्र में भांडापाल के पद पर कार्य कर रहा था। उसके कहने पर अपीलार्थी को पूर्वी क्षेत्र में 1 मार्च, 1961 को स्थानान्तरित कर दिया गया था। जुलाई, 1962 में भारत सरकार ने इस बारे में एकपरिपत्र जारी किया था कि कोई अधिकारी जो एक क्षेत्र से एक अन्य क्षेत्र को उसके अपने अनुरोध पर स्थानान्तरित किया गया हो, उसे पश्चात्वर्ती क्षेत्र में ज्येष्ठता के प्रयोजन के लिए उस संवर्ग में जिससे कि वह संबंधित था नया प्रवेशक मान लिया जाए अर्थात् उसकी ज्येष्ठता को नए क्षेत्र में विशेष पद में अपना कार्यभार संभालने की तारीख से ही गिना जाना चाहिए और इसलिए वह ज्येष्ठता के प्रयोजन के लिए उसी पद में पश्चात्वर्ती क्षेत्र में जिसमें कि वह स्थानान्तरित किया गया था पूर्व क्षेत्र में विशेष पद में की सेवा के लाभ का दावा करने का हकदार नहीं होगा। परिपत्र में यह भी कहा गया है कि यह 1 मार्च, 1960 को या उसके पश्चात् किए गए अधिकारियों के सभी स्थानान्तरण के मामलों को लागू होगा। 1 नवम्बर, 1969 की ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी का नाम क्रम सं० 261 के सामने था किन्तु 10 मई, 1972 की ज्येष्ठता सूची में अपीलार्थी का नाम क्रम सं० 266 के सामने दर्शाया गया था। 10 मई, 1972 की ज्येष्ठता सूची को ध्यान में रखते हुए चार व्यक्ति, जो पहले अपीलार्थी से कनिष्ठ समझे गए थे, अपीलार्थी के दावों का अतिक्रमण करके प्रोन्नत कर दिए गए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

थे। अपीलार्थी ने संबंधित प्राधिकारियों को अपने अतिक्रमण के विरुद्ध कई अभ्यावेदन दिए जिनमें उसने जुलाई, 1962 में उसे जारी किए गए उपरोक्त परिपत्र को लागू करने को प्रश्नगत किया। चूंकि अपीलार्थी को कोई उत्तर नहीं दिया गया था उसने 14 जुलाई, 1972 को कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन 1972 का सिविल रूल सं० 6044 (डब्ल्यू) पिटीशन फाइल किया। उस पिटीशन में उसने परमादेश के स्वरूप की रिट का अनुरोध किया जिसमें उसमें प्रत्यर्थियों को अर्थात् भारत सरकार के खाद्य एवं कृषि मंत्रालय, क्षेत्रीय निदेशक (खाद्य) पूर्व क्षेत्र भारत सरकार, संयुक्त प्रबंधक "पत्तन संक्रिया" और मंडलीय प्रबंधक (पूर्वी क्षेत्र) भारतीय खाद्य निगम को उसके मामले में ऊपर उल्लिखित परिपत्र को प्रभावी करने से विरत रहने का निदेश दिया जाए या अनुकल्पतः उसे वापस उत्तरी क्षेत्र में उसकी पूर्व ज्येष्ठता के साथ मूल नियुक्ति के स्थान में उसको स्थानान्तरित कर दिया जाए। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने 13 मई, 1974 के अपने आदेश द्वारा उस पिटीशन में प्रत्यर्थियों को पिटीशनर को उस आदेश की संसूचना की तारीख से दो मास के भीतर उत्तरी क्षेत्र में उसकी मूल नियुक्ति के स्थान में पिटीशनर को वापस स्थानान्तरित करने के मामले पर विचार करने के लिए परमादेश के स्वरूप की एक रिट जारी की। कुछ पत्रकार के पश्चात् नई दिल्ली में निगम के संयुक्त कार्मिक प्रबंधक ने कलकत्ता में निगम के मंडलीय प्रबंधक (पूर्वी) को लिखा कि अपीलार्थी के उत्तरी क्षेत्र में पूर्वी क्षेत्र में उसके स्थानान्तरण से पूर्व अपीलार्थी की ज्येष्ठता स्थिति उसे प्रत्यावर्तित कर दी जाएगी। मंडलीय प्रबंधक कलकत्ता ने उपरोक्त सूचना 1 सितम्बर, 1976 के अपने पत्र द्वारा अपीलार्थी को दे दी। इसके पश्चात् अपीलार्थी को नवम्बर, 1976 में उत्तरी क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया गया था। उत्तरी क्षेत्र में उसके पद का कार्यभार संभालने के पश्चात् अपीलार्थी ने यह महसूस किया कि उसके कुछ कनिष्ठ साथी उस कालावधि के दौरान जब कि वह पूर्वी क्षेत्र में कार्य कर रहा था, ऊंचे पदों पर प्रोन्नत कर दिए गए थे। इसलिए उसने 4 नवम्बर, 1978 को निगम के प्रबंध निदेशक को एक अभ्यावेदन किया कि उच्च संवर्ग में उसकी प्रोन्नति के लिए मामले पर उस तारीख से विचार किया जाए जिसको उसके कनिष्ठ व्यक्ति प्रोन्नत किए गए थे। 27 अगस्त, 1979 को इसी प्रकार का अनुरोध करते हुए उसने निगम के कार्मिक प्रबंधक को और अभ्यावेदन दिया। 20 जनवरी, 1980 को उसने निगम के प्रबंधक (स्थापन) को अपनी व्यथाओं के बारे में लिखा और 30 जनवरी, 1980 को निगम के मंडलीय प्रबंधक (उत्तरी) को लिखा। चूंकि इन अभ्यावेदनों का कोई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिणाम नहीं निकला, अपीलार्थी ने दिल्ली उच्च न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन 1981 का सिविल रिट पिटीशन सं० 371 फाइल किया। वह पिटीशन दिल्ली उच्च न्यायालय ने 11 मार्च, 1981 को प्रारंभ में ही खारिज कर दिया। विशेष इजाजत लेकर यह अपील उच्च न्यायालय के उपरोक्त आदेश के विरुद्ध की गई है।

2. अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि उसे ज्येष्ठता के साथ पूर्वी क्षेत्र में फिर से नियुक्त कर दिया गया था जो वह उस समय धारण किए हुए था जब कि उसे पूर्वी क्षेत्र में स्थानान्तरित किया गया था तो निगम को उच्च संवर्ग में उस तारीख को प्रोन्नत करने के लिए जिस तारीख को उसके अगले कनिष्ठ व्यक्ति प्रोन्नत किए गए थे, उसके मामले पर विचार करना चाहिए और यदि वह योग्य नहीं पाया जाता तो उसे ऐसी प्रोन्नति दी जानी चाहिए और ज्येष्ठता सूची में उसके तुरंत बाद के कनिष्ठ लोगों से ऊपर रखा जाना चाहिए। उसने यह भी दावा किया कि उसे सभी पारिणामिक लाभ दिए जाएं।

3. इस न्यायालय में निगम ने एक प्रति-शपथपत्र फाइल किया है जिसके अभिसाक्षी श्री मधुसूदन हैं जो निगम के उप-प्रबंधक (प्रशासन) हैं। उक्त प्रति-शपथपत्र में इस बात को स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी को उत्तरी क्षेत्र में फिर से स्थानान्तरित किए जाने से पूर्व आश्वासन दिया गया था कि उत्तरी क्षत्र में उसकी पूर्वी क्षेत्र में उसके स्थानान्तरण से पूर्व की ज्येष्ठता प्रत्यावर्तित कर दी जाएगी। आगे उसमें यह कहा गया है कि अपीलार्थी के मामले को निगम की मंडलीय प्रोन्नति समिति के समक्ष उसकी 5 दिसम्बर, 1977 को हुई बैठक में 1970 के पैनल के विरुद्ध जिसमें उसके कनिष्ठ साथियों को पैनल में सम्मिलित किया गया था, सहायक प्रबंधक (डिपो) के पद पर प्रोन्नति के लिए विचार के लिए रखा गया था। चूंकि अपीलार्थी से संबंधित सन् 1966 से सन् 1968 तक की गोपनीय रिपोर्टें उसकी उपयुक्तता का निर्धारण करने के लिए उपलभ्य नहीं थीं, मंडलीय प्रोन्नति समिति ने उसके मामले को स्थगित कर दिया था तथापि अपीलार्थी को उपलब्ध रिपोर्टों के आधार पर 1976 के पैनल के विरुद्ध रख लिया गया था। बाद में सन् 1966 से सन् 1968 तक के वर्षों की गोपनीय रिपोर्टें तलाश की गई और एक बार फिर अपीलार्थी के मामले को मंडलीय प्रोन्नति समिति के समक्ष मई, 1979 को होने वाली उसकी बैठक में उसे 1970 के पैनल में सम्मिलित किए जाने के लिए उसके दावे पर विचार करने हेतु रखा गया। इस पर मंडलीय प्रोन्नति समिति ने इस बारे में एक गोपनीय संकल्प पारित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया कि "उसकी सेवा के अभिलेखों के आधार पर उसके मामले पर फिर से विचार किया जा सकता है।" निगम की ओर से यह दलील दी गई है कि चूंकि प्रश्नगत प्रोन्नति किसी व्यक्ति को चयन के आधार पर दी जाती है, अपीलार्थी किसी अनुतोष का हकदार नहीं है। यहां पर इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि अपीलार्थी को निगम द्वारा इस बात के लिए सूचित नहीं किया गया था कि मंडलीय प्रोन्नति समिति ने उसे 1970 के पैनल में सम्मिलित किए जाने के लिए अनुपयुक्त पाया था। मंडलीय प्रोन्नति समिति की कार्यवाहियों से संबंधित अभिलेख भी हमारे समक्ष नहीं रखे गए हैं। मंडलीय प्रोन्नति समिति द्वारा पारित संकल्प से ऐसे किसी अर्थ का पता नहीं चलता जो निगम उसे देना चाहता है अर्थात् कि मंडलीय प्रोन्नति समिति ने सुसंगत गोपनीय रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात् यह पाया कि अपीलार्थी 1970 के पैनल में सम्मिलित किए जाने के लिए अनुपयुक्त था। मंडलीय प्रोन्नति समिति द्वारा पारित संकल्प का यह अर्थ है कि वह उसके सेवा अभिलेखों के आधार पर अपीलार्थी के मामले को फिर से शुरू करने के लिए रजामंद नहीं थी। संकल्प यह नहीं दर्शाता है कि मंडलीय समिति ने वास्तव में उस समय उच्च पद पर प्रोन्नति के लिए अपीलार्थी की उपयुक्तता पर विचार किया था जब कि उसके कनिष्ठ साथियों को प्रोन्नति के प्रयोजनों के लिए पैनल में सम्मिलित किया था। यदि उसने ऐसा किया था तो मंडलीय प्रोन्नति समिति ने उसे अपने संकल्प में अभिलिखित किया होगा कि अपीलार्थी को सुसंगत समय के दौरान प्रोन्नति के लिए अनुपयुक्त पाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंडलीय प्रोन्नति समिति ने सन् 1977 में अपिलार्थी के मामले पर विधि के अनुसार विचार नहीं किया था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है जब कि अपीलार्थी का मामला पहली बार 5 दिसम्बर; 1977 को मंडलीय प्रोन्नति समिति के समक्ष आया था उसने अपीलार्थी के मामले पर इस आधार पर विचार करना स्थगित कर दिया था कि सुसंगत गोपनीय अभिलेख उपलब्ध नहीं थे। उस अवसर पर अपीलार्थी के मामले पर विचार करने को स्थगित किए जाने के कारण मंडलीय प्रोन्नति समिति को अपीलार्थी के मामले पर विचार करना चाहिए था जब कि सुसंगत गोपनीय रिपोर्टें उसके समक्ष रखी गई थीं और यह टिप्पणी करने के स्थान पर कि अपीलार्थी के मामले पर फिर से विचार नहीं किया जा सकता समुचित संकल्प पारित करना चाहिए था। मामले पर फिर से विचार करना केवल उस समय अद्भूत होता है जब कि इस पर एक बार विचार कर लिया गया हो और उस पर विनिश्चय किया जा चुका हो। चूंकि हमारे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समक्ष यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि पहले इस प्रकार का विचार किया गया है । मंडलीय प्रोन्नति समिति के मई, 1979 में पारित संकल्प में यह कहा गया है कि मामले पर फिर से विचार नहीं किया जा सकता विधि की दृष्टि में उसे अप्रभावी मानना होगा । इसलिए निगम की ओर से दी गई इस दलील को स्वीकार करना कठिन है कि अपीलार्थी के मामले पर उसे 1970 के पैनल में सम्मिलित करने के प्रयोजन के लिए मंडलीय प्रोन्नति समिति द्वारा सम्यक् रूप से विचार कर दिया गया है । इन परिस्थितियों में हमारे पास निगम को यह निदेश जारी करने के सिवाय कि वह 1970 के पैनल में सम्मिलित करने के लिए अपीलार्थी के मामले पर विचार करे और कोई विकल्प नहीं है । तदनुसार हम इस अपील को मंजूर करते हैं और निगम को यह निदेश जारी करते हैं कि वह उस तारीख को प्रोन्नति के लिए अपीलार्थी के मामले पर विचार करें जिसको कि सन् 1970 में उत्तरी क्षेत्र में उसके तुरंत कनिष्ठ अर्थात् प्रत्यर्थी सं० 13 को प्रोन्नत किया गया था और यदि ऐसे विचारण पर अपीलार्थी प्रोन्नति के लिए उपयुक्त पाया जाता है तो उसे उच्च संवर्ग में प्रोन्नत किया जाए और उसे उच्च संवर्ग में उसके ऐसे अगले कनिष्ठ व्यक्ति से ऊपर रखा जाए । यदि अपीलार्थी इस प्रकार से प्रोन्नत किया जाता है तो निगम उसे सभी पारिणामिक लाभ भी देगा किन्तु वह उस तारीख तक किसी वेतन के बकाया का हकदार नहीं होगा (उच्च पद के वेतन और उस वेतन के बीच अन्तर जो उसने वास्तव में लिया है) जिसको कि वह उत्तरी क्षेत्र में फिर से स्थानान्तरण होने के पश्चात् पद में अपने कार्यभार को दोबारा धारण करता है ।

4. खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं होगा ।

अपील मंजूर की गई ।

स०/

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बिशन सिंह और अन्य

बनाम

पंजाब राज्य

(Bishan Singh and others

v.

State of Punjab)

तथा

बलबीर सिंह

बनाम

पंजाब राज्य और जलंधर सिंह

(Balbir Singh

v.

State of Punjab and Jullundur Singh)

(3 मई, 1983)

(न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली और ई० एस० वेंकटरामय्या)

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) — धारा 300, 302—34 और 308 (सपठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25)—हत्या—चार अभियुक्तों द्वारा मृतक के सम्पूर्ण परिवार को समाप्त करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार से शस्त्रों से लैस होकर जाना—अपीलार्थी का बिना शस्त्र के उनके साथ चलना—यह अभिकथित किया जाना कि अपीलार्थी को बन्दूक के साथ देखा गया था और घटना-स्थल पर गोलियों का मिलना—अपीलार्थी के बारे में युक्तियुक्त संदेह से परे हत्या में भाग लेने का सबूत न मिलना—ऐसे मामले में अपीलार्थी दोषमुक्ति का हकदार है और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 308 तथा आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन उसकी दोषसिद्धि अपास्त की जानी चाहिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 53—हत्या—मृत्यु दण्डादेश—परिशमनकारी परिस्थितियां—दण्डादेश का लघुकरण—मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यदि किसी मामले को दुर्लभ से दुर्लभतम नहीं कहा जा सकता तो अभियुक्त पर अधिरोपित मृत्यु दण्डादेश को आजीवन कारावास में रूपांतरित कर दिया जाना चाहिए।

अपीलार्थी का चार व्यक्तियों की हत्या करने के आरोप पर विचारण किया गया था। अभियोजन पक्ष के अनुसार सभी चारों अभियुक्त मृतक के सम्पूर्ण कुटुम्ब को समाप्त करने के उद्देश्य से गए थे और वे भिन्न प्रकार के शस्त्रों से लैस थे किन्तु उनमें से एक ऐसा आदमी था जो बिना शस्त्र के गया था। सेशन न्यायाधीश द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण अपीलार्थी की ओर से उठाए गए प्रश्न का कोई विश्वासप्रद उत्तर नहीं देता और सेशन न्यायाधीश ने चारों अभियुक्तों को मृत्यु दण्डादेश दे दिया। उच्च न्यायालय में अपील किए जाने पर चारों अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को और उनमें से तीन पर अधिरोपित मृत्यु दण्डादेश को पुष्ट कर दिया किन्तु चौथे अभियुक्त के मामले में मृत्यु दण्डादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने तीन पिटीशनरों के पिटीशन खारिज कर दिए और अन्य की अपील को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—उच्च न्यायालय भी प्रारम्भ में 'त' के हाथों में किसी हथियार के न होने के लिए कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं दे सका। स्वीकृत रूप से बाद में उसे मिली बन्दूक मृतक से सम्बन्धित थी। परिवादी की ओर से और राज्य की ओर से हाजिर होने वाले काउन्सेल ने काफी उग्रता से, जितने वह हो सकते थे, न्यायालय के समक्ष बहस की है कि अभियुक्त 'त' की गिरफ्तारी के समय बन्दूक की बरामदगी विनायक को एक मोड़ दे देती है और यह दर्शाती है कि स्वयं 'त' ने आक्रमण में भाग लिया होगा और अपराध करने में बन्दूक का प्रयोग किया होगा। तलाशी साक्षी, अभियोजन साक्षी 6 ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि उसने और एक अन्य व्यक्ति ने पुलिस के साथ इस मामले का अन्वेषण किया था। इस साक्षी के साक्ष्य पर किसी परिपुष्टि के बिना बरामदगी के तथ्य को साबित करने के लिए विश्वास नहीं किया जा सकता। इस साक्षी द्वारा दिया गया साक्ष्य सच्चाई में अच्छा है और इसमें कृत्रिमता का तत्व अन्तर्विष्ट है। वास्तव में यदि 'त' मृतक के घर से बन्दूक ले गया होता तो वह उसे किसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्थान पर छिपा देता जहां से उसे बरामद करना मुश्किल हो जाता। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि चार हत्याओं के पश्चात् वह बन्दूक के साथ घूमता फिरता जो मृतकों में से एक का हथियार था। इसलिए न्यायालय अभियोजन साक्षी 6 द्वारा किए गए प्रकथन पर विश्वास करने में असमर्थ है कि जब वह अन्वेषण पर पुलिस के साथ जा रहा था तो 'त' और अन्य अभियुक्त उनकी ओर आए और 'त' प्रश्नगत बन्दूक से लैस था। इन परिस्थितियों को देखते हुए इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि 'त' के विरुद्ध मामला युक्तियुक्त सन्देह से परे साबित हो गया है। अपीलार्थी 'त' उसके विरुद्ध विरचित हत्या के आरोप से दोषमुक्त होने का हकदार है क्योंकि घटना में उसके भाग लेने के बारे में युक्तियुक्त सन्देह उद्भूत होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन 'त' की दोषमुक्ति के दृष्टिकोण से जो इस आधार पर थी कि उसने घटना में भाग नहीं लिया था और हथियारों का प्रयोग नहीं किया था। भारतीय दंड संहिता की धारा 308 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन उसकी दोषसिद्धि भी अपास्त करनी होगी। जहां तक दूसरे अपीलार्थियों का संबंध है, उनकी दोषसिद्धि का जैसा कि उच्च न्यायालय ने मत व्यक्त किया है इसी का समर्थन करने के लिए काफी साक्ष्य है। इस मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह नहीं समझा जा सकता कि प्रस्तुत मामले में मृत्यु की कठोरतम शास्ति अपेक्षित है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह दुर्लभ से दुर्लभतम मामला है जिसमें कि मृत्यु दंडादेश को पुष्ट कर दिया जाए। (पैरा 4 और 5)

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1982 की दांडिक अपील संख्या 496 और 1982 का विशेष इजाजत पिटीशन (दांडिक) सं० 2538.

1982 की दांडिक अपील सं० 197 खंड न्यायपीठ और 1982 के हत्या निर्देश सं० 3 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 1 जून, 1982 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थियों की ओर से (अपील में) तथा प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन में) — सर्वश्री ए० एन० मुल्ला, के० के० सूद, श्याम मूरजानी, ओ० पी० शर्मा और कैलाश वासुदेव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रत्यर्थी राज्य की ओर से (अपील तथा विशेष इजाजत पिटीशन में)	श्री डी० डी० शर्मा
परिवादी तथा पिटीशनर की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन में)	सर्वश्री आर० एल० कोहली और आर० सी० कोहली

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति एस० मुर्तजा फजल अली ने दिया।

न्यायाधिपति फजल अली—

उपरोक्त दांडिक अपील फिरोजपुर के सेशन न्यायाधीश की फाइल पर 1981 के सेशन मामला सं० 61 में किए गए दांडिक विचारण से उद्भूत हुई है जिसमें कि चार अपीलार्थी बिशन सिंह, तेजा सिंह, जलंधर सिंह और गुरदयाल सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी पाया गया था और उनमें से प्रत्येक को मृत्यु दंडादेश दिया गया था। 1982 की दांडिक अपील सं० 197 खंड न्यायपीठ के मामले में अपील किए जाने पर पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय ने चारों अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को और उनमें से तीन अर्थात् बिशन सिंह, तेजा सिंह और गुरदयाल सिंह पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश को पुष्ट कर दिया था किन्तु जलंधर सिंह के मामले में मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया था। विशेष इजाजत लेकर की गई उपरोक्त अपील अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई है। 1982 की विशेष इजाजत पिटीशन (दांडिक) सं० 2538 अपीलार्थियों में से एक जलंधर सिंह के विरुद्ध बलबीर सिंह द्वारा जलंधर सिंह को मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने के लिए फाइल की गई है।

2. चारों अपीलार्थियों—बिशन सिंह, तेजा सिंह, जलंधर सिंह और गुरदयाल सिंह का विचारण चार व्यक्तियों अर्थात् धनकौर, मलकियत सिंह ऊर्फ गुरमीत सिंह, सुरिन्द्र सिंह उर्फ छिन्दा और तेजकौर की हत्या करने के आरोप पर किया गया था। अपराध 20 जून, 1981 को नूरपुर सेथना गांव में 7.00 बजे अपराह्न के लगभग किया गया था। यह अभिकथित किया गया था कि आक्रमण के क्रम में बिशन सिंह कृपाण से लैस था, तेज सिंह के पास बंदूक थी और जलंधर सिंह के पास राइफल और गुरदयाल सिंह के पास कप्पा था। मामले के तथ्यों को उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के निर्णय में विस्तार में वर्णित किया गया है। हमारे लिए उन्हें दोहराना आवश्यक नहीं है। हमने उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय के निर्णय को पढ़ा है तथा मामले के महत्वपूर्ण साक्ष्य को भी देखा है और हमें यह पता चलता है कि उच्च न्यायालय का निर्णय सारतः सही है। तथापि, कुछ ऐसी प्रभावपूर्ण परिस्थितियां हैं जो अपराध में तेजा सिंह के आलिप्त होने के संबंध में काफी संदेह पैदा करती हैं। यह बात सही है कि यह कहा गया है कि तेजा सिंह को बंदूक के साथ देखा गया था और बंदूक उससे बरामद की गई थी और गोलियां उस स्थान पर पाई गई थीं किन्तु यह स्वयं में इस बात को सिद्ध नहीं करता कि तेजासिंह अपराध में वास्तव में भाग ले रहा था। अभियोजन पक्ष के अनुसार सभी चारों अभियुक्त सुरेन्द्र सिंह के सम्पूर्ण कुटुम्ब को समाप्त करने के उद्देश्य से गए थे और वे विभिन्न प्रकार के शस्त्रों से लैस थे, किन्तु तेजा सिंह ही एक ऐसा आदमी था जो बिना शस्त्र के गया था। मामले के इस पहलू में अन्तर्निहित अस्पष्टता की कमी है। यदि सभी अभियुक्तों ने कुटुम्ब के सभी सदस्यों को मारना चाहा था तो ऐसा कोई कारण नहीं था कि तेजासिंह ने अपने आपको किसी हथियार से लैस क्यों न किया होता। अभियोजन पक्ष यह चाहता है कि हम यह विश्वास करें कि तेजासिंह मृतक के घर में इस आशा से गया था कि वह गुरमीत सिंह उर्फ मलकियत सिंह के घर में बन्दूक तलाश करे और उसे आक्रमण के समय प्रयोग करे। विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने जबकि उसके समक्ष दलीलें दी जा रही थीं, अभियोजन पक्ष के पक्षकथन के इस भाग की असंभाव्यता पर ध्यान दिया किन्तु संबंधित अभियुक्त को इस बात का लाभ देने के स्थान पर उसने निम्नलिखित मत के द्वारा इसे सुलझाने का प्रयत्न किया—

> "काउन्सेल ने यह कहा कि चूंकि अभियुक्त तेजा सिंह भूतपूर्व सनिक है और इसलिए तेज निशानेबाज माना गया था उसे खाली हाथ नहीं जाना चाहिए था किन्तु अपने साथ यदि वह चाहता तो हथियार ले सकता था वास्तव में वह सह-अभियुक्तों के साथ गया था। इसलिए काउन्सेल ने यह कहा कि अभियोजन पक्ष का पक्षकथन कि तेजासिंह भी अपने सह-अभियुक्तों के साथ गया था काफी असत्य है। मेरी राय में अभियोजन पक्ष के लिए इस बात को स्पष्ट नहीं करना चाहिए था कि क्यों तेजासिंह अपने पिता सह-अभियुक्त बिशन सिंह और अन्य अभियुक्त के साथ खाली हाथ गया था।"

3. विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण तेजासिंह की ओर से उठाए गए प्रश्न का कोई विश्वासप्रद उत्तर नहीं देता। उच्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय ने भी यह मत व्यक्त करके इस प्रश्न को हल करने का प्रयास किया—

> "ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि हत्या करना पहले निश्चित था तेजासिंह भूतपूर्व सैनिक खाली हाथ गया था जिससे कि कुछ चालबाजी से वह मलकियत सिंह के हथियार छीन सके। सौभाग्य से मकान के अहाते की दीवार की खूंटी पर बन्दूक लटक रही थी।"

4. अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय भी प्रारम्भ में तेजासिंह के हाथों में किसी हथियार के न होने के लिए कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं दे सका। स्वीकृत रूप से बाद में उसे मिली बन्दूक मृतक मलकियत सिंह से संबंधित थी। परिवादी की ओर से और राज्य की ओर से हाजिर होने वाले श्री कोहली ने काफी उग्रता से, जितने वह हो सकते थे, हमारे समक्ष बहस की है कि अभियुक्त तेजासिंह की गिरफ्तारी के समय बंदूक की बरामदगी विवाद्यक को एक मोड़ दे देती है और यह दर्शाती है कि स्वयं तेजासिंह ने आक्रमण में भाग लिया होगा और अपराध के करने में बंदूक का प्रयोग किया होगा। तलाशी साक्षी अभियोजन साक्षी 6 सोहनसिंह ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि उसने और गूरासिंह ने पुलिस के साथ इस मामले का अन्वेषण किया था। इस साक्षी के साक्ष्य पर किसी परिपुष्टि के बिना बरामदगी के तथ्य को साबित करने के लिए विश्वास नहीं किया जा सकता। इस साक्षी द्वारा दिया गया साक्ष्य सच्चाई में अच्छा है और इसमें कृत्रिमता का तत्व अन्तर्विष्ट है। वास्तव में यदि तेजासिंह मलकियत सिंह के घर से बंदूक ले गया होता तो वह उसे किसी स्थान पर छिपा देता जहां से उसे बरामद करना मुश्किल हो जाता। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि चार हत्याओं के पश्चात् वह बंदूक के साथ घूमता फिरता जो मृतकों से एक का हथियार था। इसलिए हम सोहन सिंह द्वारा किए गए प्रक्कथन पर विश्वास करने में असमर्थ है कि जब वह अन्वेषण पर पुलिस के साथ जा रहा था तो तेजासिंह और अन्य अभियुक्त उनकी ओर आए और तेजा सिंह प्रश्नगत बंदूक से लैस था। इन परिस्थितियों को देखते हुए हम इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि तेजासिंह के विरुद्ध मामला युक्तियुक्त संदेह से परे साबित हो गया है अपीलार्थी तेजासिंह उसके विरचित हत्या के आरोप से दोषमुक्त होने का हकदार है क्योंकि घटना में उसके भाग लेने के बारे में युक्तियुक्त संदेह उद्भूत होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन तेजासिंह की दोषमुक्ति के दृष्टिकोण से जो इस आधार पर थी कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसने घटना में भाग नहीं लिया था और हथियारों का प्रयोग नहीं किया था भारतीय दंड संहिता की धारा 308 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन उसकी दोषसिद्धि भी अपास्त करनी होगी। जहां तक दूसरे अपीलार्थियों का संबंध है, उनकी दोषसिद्धि का जैसा कि उच्च न्यायालय ने मत व्यक्त किया है इसी का समर्थन करने के लिए काफी साक्ष्य है।

5. अन्तिम प्रश्न जो विचार के लिए शेष रहता है दंडादेश का प्रश्न है जो शेष तीन अभियुक्तों को अधिरोपित किया जाना है। मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम यह नहीं समझते कि प्रस्तुत मामले में मृत्यु की कठोरतम शास्ति अपेक्षित है। हम यह नहीं समझते कि यह दुर्लभ से दुर्लभतम मामला है जिसमें कि मृत्यु दंडादेश को पुष्ट कर दिया जाए।

6. इन कारणों से तेजासिंह की अपील मंजूर की जाती है और उसे उसके विरुद्ध विरचित सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। उस पर अधिरोपित दंडादेश अपास्त किए जाते हैं। अन्य तीन अभियुक्तों की उनकी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलें खारिज की जाती हैं किन्तु बिशन सिंह और गुरदयाल सिंह पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाता है। आजीवन कारावास से मृत्यु दण्डादेश में जलंधर सिंह के दंडादेश को बढ़ाने के लिए फाइल की गई विशेष इजाजत पिटीशन खारिज की जाती है। उच्च न्यायालय द्वारा उस पर अधिरोपित आजीवन कारावास के दंडादेश को बहाल किया जाता है। तदनुसार अपील का निपटारा किया जाता है और विशेष इजाजत पिटीशन खारिज किया जाता है।

तदनुसार आदेश किया गया।

स०/

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एम० रामनारायण प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य

बनाम

दि स्टेट ट्रेडिंग कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड

(M/S. M. Ramnarain Private Limited and Another

v.

The State Trading Corporation of India Limited)

(5 मई, 1983)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, आर० एस० पाठक और अमरेन्द्र नाथ सेन)

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908(1908 का 5)—धारा 96 और आदेश 41—अपील का अधिकार—अपील करने का अधिकार विधि के किसी उपबंध के अधीन होना आवश्यक है—यदि अपीलार्थी जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील का अधिकार है, परिसीमा की अवधि के भीतर अपील फाइल कर देता है, तो उसकी अपील सक्षम है।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908(1908 का 5)—धारा 96 और 105 तथा आदेश 20, नियम 11—[सपठित बाम्बे उच्च न्यायालय का लेटर्स पेटेन्ट, खण्ड 15]—आदेश के विरुद्ध की गई अपील का सक्षम न होना—तथ्यों के आधार पर किस्तों में संदाय करने सम्बन्धी निदेश की बाबत यह समझा जाएगा कि वह तब तक आदेश की कोटि में रहेगा जब तक कि नियम 11 के अधीन उस आदेश को समाविष्ट करने वाली डिक्री लिपिबद्ध न कर दी जाए—ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908(1908 का 5)—आदेश 41, नियम 1—अपील—अपील डिक्री के बिना फाइल की जा सकती है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किन्तु उसे परिसीमा अवधि के भीतर ही प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए—यदि ऐसा नहीं होता, तो अपील सक्षम नहीं होगी।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908(1908 का 5)—धारा 96 और आदेश 23, नियम 1 [सपठित भारत का संविधान—अनुच्छेद 133 और 136]—अपील—उचित अपील फाइल करने के अधिकार पर इस तथ्य का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता कि पूर्वतर अक्षम अपील वापस ले ली गई है।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908(1908 का 5)—आदेश, 2, नियम 2—केवल वादों को लागू होना, न कि अपीलों को—जहां पश्चात्वर्ती अपील का वाद-हेतुक पूर्वतर अपील के वाद-हेतुक से भिन्न हो, वहां नियम 2 में निहित सिद्धान्त भी लागू नहीं होगा।

पद्धति और प्रक्रिया—अपील—आदेश या डिक्री के विरुद्ध अपील—यदि आदेश के विरुद्ध की गई अपील के लिए अपेक्षित न्यायालय-फीस का संदाय कर दिया जाता है, तो उससे यह उपदर्शित होगा कि अपील आदेश के विरुद्ध की गई थी, न कि डिक्री के विरुद्ध।

वर्तमान मामले में वादी-प्रत्यर्थी ने मुम्बई उच्च न्यायालय में प्रतिवादी-अपीलार्थियों के विरुद्ध 40 लाख रुपए के दावे को प्रवृत्त कराने हेतु वाद दायर किया। प्रतिवादी-अपीलार्थी ने अपना प्रतिदावा फाइल किया और सुनवाई के अन्त में यह प्रार्थना की कि प्रतिवादी के विरुद्ध डिक्री पारित किए जाने की दशा में डिक्रीत रकम का संदाय किस्तों में करने की अनुमति दी जाए। जैसाकि शपथपत्र में अधिकथित किया गया है। उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रतिदावा खारिज कर दिया और रकम के संदाय की अवधि आगे बढ़ाते हुए किस्तों में संदाय की अनुमति का निदेश कर दिया। निर्णय सुनाए जाने की तारीख को ही प्रतिवादी के अधिवक्ता ने मुम्बई उच्च न्यायालय के प्रोथोनोटरी और सीनियर मास्टर को एक अभियाचना प्रस्तुत करके डिक्री की प्रमाणित प्रति, जब वह तैयार की जाए, निर्णय और आदेश के कार्यवृत्त उपलब्ध किए जाने की मांग की। अभी प्रमाणित प्रति उपलब्ध नहीं थी इसी बीच प्रतिवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 20, नियम 11 के अधीन 5 रुपए न्यायालय शुल्क का संदाय करते हुए किस्तों में संदाय किए जाने के निदेश के विरुद्ध खण्ड न्यायपीठ के समक्ष अपील फाइल कर दी किन्तु अपील फाइल किए जाने के दूसरे ही दिन अपीलार्थी-प्रतिवादी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के काउन्सेल ने न्यायालय से नई अथवा पश्चात्वर्ती अपील फाइल करने की इजाजत लिए बिना ही अपील वापस लेने की पेशकश की। न्यायालय ने अपील वापस लेने की प्रार्थना स्वीकार कर ली। अपील वापस लेने के एक सप्ताह के भीतर ही वादी-प्रत्यर्थी ने एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध विभिन्न आधारों पर अपील फाइल कर दी। इन आधारों में से एक भागतः डिक्री के गुणागुण से और भागतः किस्तों में संदाय किए जाने के उपबंध से सम्बद्ध था। प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने आरंभिक आक्षेप किया कि चूंकि वादी-अपीलार्थी एक बार किस्तों में संदाय के निदेश के विरुद्ध अपील फाइल का चुका है, जिसे उसने वापस ले लिया, अतः पश्चात्वर्ती अपील चलने योग्य नहीं है। खण्ड न्यायपीठ ने प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर कर ली जिसके विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर अपील किए जाने पर उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—अपील फाइल करने का अधिकार उपविधि द्वारा सृष्ट अधिकार है। कोई भी पक्षकार किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के विरुद्ध किसी ऐसी विधि के उपयुक्त उपबंधों के अभाव में जिसमें सम्बद्ध पक्षकार को ऐसे निर्णय, डिक्री या आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का अधिकार दिया गया हो, अपने आप अपील फाइल नहीं कर सकता। किसी भी पक्षकार को इस प्रकार संदत्त अधिकार किसी विधि के उपबंधों द्वारा और स्वयं पक्षकार के आचरण द्वारा भी युक्तियुक्त मामलों में अभिनिर्धारित किए जा सकते हैं। (पैरा 16)

वर्तमान मामले में, प्रतिवादी-अपीलार्थी को सिविलि प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के आधार पर डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने का अधिकार प्राप्त है। इस बात पर कोई भी विवाद नहीं है कि अपील परिसीमा अवधि के भीतर फाइल की गई है। इसलिए अपीलार्थी के अपील फाइल करने के अधिकार को परिसीमा विधि द्वारा विफल नहीं किया जा सकता। (पैरा 17)

किस्तें अनुज्ञात करने या किस्तें अनुज्ञात करने से इनकार करने से सम्बन्धित किसी उपबन्ध के विरुद्ध की गई अपील सक्षम नहीं होगी, यदि किस्तें अनुज्ञात करने वाले या किस्तें अनुज्ञात करने से इनकार करने वाले निदेश को आदेश मान लिया जाता है। संहिता के अधीन ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती। ऐसा आदेश लैटर्स पेटेण्ट के खण्ड 15 के अर्थान्तर्गत निर्णय भी नहीं होगा और इस प्रकार उसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकेगी। (पैरा 18)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 20, नियम 11 में यह बात स्पष्ट है कि धन संबंधी डिक्री के संदाय को स्थगित करने या किस्तों में संदाय किए जाने के लिए दिया गया निदेश एक स्वतंत्र आदेश है जिसे डिक्री में समाविष्ट किया जाना चाहिए। पूर्ववर्ती अपील निर्णय की उद्घोषणा किए जाने के तुरन्त पश्चात् और किस्तों से संबंधित आदेश को समाविष्ट करने वाली डिक्री के तैयार किए जाने से पूर्व फाइल की गई थी। निर्णीत रकम के संदाय की बाबत किया गया निदेश ऐसा आदेश है जिसे डिक्री में समाविष्ट किए जाने की अपेक्षा है और इसे डिक्री में उसी समय समाविष्ट किया जा सकता है, जब डिक्री तैयार कर ली जाए। जब तक यह डिक्री में समाविष्ट न कर दी जाए, तब तक इसकी प्रकृति आदेश की ही होगी। चूंकि पूर्ववर्ती अपील फाइल करने के समय किस्तों से सम्बन्धित आदेश को डिक्री में समाविष्ट नहीं किया जा सका था, इसलिए उस आदेश का स्वरूप आदेश ही रहा। इसलिए पूर्ववर्ती अपील को जिस समय उसे फाइल किया गया, आदेश के विरुद्ध की गई अपील समझा जाना चाहिए। आदेश को तैयार करने के लिए फाइल की गई याचना, प्रतिवादी-अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा उच्च न्यायालय के प्रोथोनोटरी और सीनियर मास्टर को लिखे गए पत्र, फाइल की गई अपील का ज्ञापन और ज्ञापन पर लगाए गए स्टाम्प की रकम ऐसे तथ्य हैं जिनसे यह उपदर्शित होता है कि पूर्ववर्ती अपील किस्तों की बाबत किए गए आदेश को आदेश मानते हुए उसके विरुद्ध फाइल की गई थी। (पैरा 19)

तथापि, यदि पूर्ववर्ती अपील को डिक्री के विरुद्ध की गई अपील समझ लिया जाए, तो डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत की जाने वाली अपेक्षित न्यायालय फीस के संदाय के अभाव में अपील अक्षम नहीं रहेगी, क्योंकि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने अपेक्षित न्यायालय फीस का संदाय कर दिया है। (पैरा 20)

यद्यपि मुम्बई उच्च न्यायालय के आरम्भिक अधिकारिता पक्ष के नियमों के उपबन्धों द्वारा डिक्री या आदेश की प्रमाणित प्रति के बिना भी अपील फाइल करने की अनुमति दी जा सकती थी, तथापि अपील तब तक वैध और सक्षम नहीं होती जब तक कि प्रमाणित प्रति फाइल करने की अपेक्षा को पूरा नहीं कर दिया जाता। जिस समय पूर्ववर्ती अपील को वापस लिया गया, डिक्री की प्रमाणित प्रति फाइल नहीं की गई थी। डिक्री की प्रमाणित प्रति के बिना उक्त अपील अक्षम रह गई। किसी अक्षम अपील को वापस लिए जाने से जो विधि की दृष्टि से वस्तुतः अपील है ही नहीं, अपीलार्थी के समुचित अपील फाइल के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता यदि अपील फाइल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने का अधिकार समय व्यतीत हो जाने अथवा किसी अन्य वैध कारण से अपने आप समाप्त नहीं हो जाता। (पैरा 21)

आदेश 2, नियम 2 के उपबंध केवल वादों पर ही लागू होते हैं और अपने निबन्धनों के अनुसार अपीलों पर लागू नहीं हो सकते। यह मान भी लिया जाए कि आदेश 2, नियम 2 किसी अपील को लागू होता है, तो भी वर्तमान मामले के चल सकने के बारे में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि वह किसी भी प्रकार से वाद-हेतुक द्वारा प्रभावित हुआ है, क्योंकि वर्तमान अपील का वाद-हेतुक उस वाद-हेतुक से पूर्णतः भिन्न है जिसके आधार पर पूर्ववर्ती अपील फाइल की गई थी। (पैरा 22)

संहिता के आदेश 20, नियम 11(1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के आधार पर निर्णीत रकम के संदाय को स्थगित किए जाने या किस्तों में संदाय किए जाने की ऐसी समय पर की गई प्रार्थना को जबकि वाद का विनिश्चय अभी भी उद्घोषित किया जाना है, उस पक्षकार के विरुद्ध ऐसा आचरण नहीं समझा जाएगा जिससे वह डिक्री के विरुद्ध अपील करने के अधिकार से वंचित किया जा सके और अन्ततः डिक्री पारित किए जाने पर डिक्री के विरुद्ध अपील करने का हकदार न रह सके। यह बात निस्सन्देह रूप से सत्य है कि निर्णय उद्घोषित कर दिए जाने के पश्चात् और डिक्री पारित कर दिए जाने पर प्रतिवादी-अपीलार्थी को उस डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने की छूट है। अक्षम अपील फाइल करने और उसे वापस ले लिए जाने से समुचित अपील फाइल करने के अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता और उसे प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से किया गया ऐसा आचरण नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता जिससे कि वह वैध अपील फाइल करने के अपने अधिकार से वंचित किया जा सके। प्रतिवादी-अपीलार्थी के आचरण का निर्णय करने के लिए और यह विनिश्चित करने के लिए कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने डिक्री के विरुद्ध अपील करने के अधिकार को समाप्त, अधित्यजित या परित्याग कर दिया है या नहीं, उन समस्त सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना होगा जिनका इस प्रश्न से सम्बन्ध है। इस मामले के तथ्य और परिस्थितियां स्पष्टतः यह उपदर्शित करती हैं कि प्रतिवादी-अपीलार्थी डिक्री से व्यथित हुआ और उसने उसे स्वीकार करने और डिक्री के विरुद्ध अपील न करने का आशय कहीं भी प्रकट नहीं किया। प्रतिवादी-अपीलार्थी ने न केवल वादी-प्रत्यर्थी के दावे से इनकार और उसका प्रतिवाद किया है बल्कि उसने वादी-प्रत्यर्थी के वाद और दावे का विरोध पूर्ण तत्परता के साथ किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिवादी-अपीलार्थी ने निर्णय उद्‌घोषित किए जाने के तुरन्त पश्चात् अपील फाइल किए जाने के लिए डिक्री और निर्णय की प्रमाणित प्रतियों की तत्काल अध्यपेक्षा करते हुए, डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने के अपने आशय को प्रकट कर दिया है। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें किसी पक्षकार को ऐसी दशा में दो वैकल्पिक उपचारों में से एक का चयन कर लिए जाने पर उसे दूसरे अधिकार को खोना पड़ेगा। वर्तमान मामले में प्रतिवादी-अपीलार्थी को डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कानूनी अधिकार है और उसकी ओर से चुनाव करने का कोई प्रश्न नहीं उठता। (पैरा 28)

अक्षम अपील को वापस ले लिए जाने से वर्तमान मामले पर किसी भी रीति से प्रतिवादी-अपीलार्थी के डिक्री के विरुद्ध समुचित अपील फाइल करने के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। (पैरा 29)

किसी समुचित मामले में कोई ऐसा पक्षकार जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन किसी आदेश या डिक्री के अधीन लाभ प्राप्त कर लेता है, अपने आपको उसके चुनौती के अधिकार से वंचित कर सकता है और वह उसके विरुद्ध अपील फाइल करने से रोका जा सकता है। किसी वाद में मूल अधिकारिता पक्ष से पारित की गई किसी डिक्री का निष्पादन करने की अनुमति सामान्यतः तब तक नहीं दी जाती जब तक कि निष्पादन की कार्यवाही में अभिलेख पर डिक्री की प्रमाणित प्रति उपलब्ध न हो। डिक्री की प्रमाणित प्रति तब तक उपलब्ध नहीं की जा सकती जब तक उसे अभिलिखित न कर दिया जाए और फाइल न कर दिया जाए। वर्तमान अपील डिक्री के अभिलिखित किए जाने से बहुत पूर्व ही फाइल कर दी गई थी और इसलिए वर्तमान अपील फाइल किए जाने के समय किसी भी डिक्री के निष्पादन का प्रश्न नहीं उठ सकता। इसलिए प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा डिक्री के अधीन कोई लाभ प्राप्त करने का वस्तुतः कोई प्रश्न ही नहीं उठता। (पैरा 30)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[1969]	[1969] 1 उम० नि० प० 720=[1969] 1 एस० सी० आर० 1006 : **शकुन्तला देवी जैन बनाम कुन्तल कुमारी और अन्य** (Shakuntala Devi Jain *v.* Kuntal Kumari and Others);	9,20

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1961] [1961] 2 एस० सी० आर० 918:
जगतधीश भार्गव बनाम जवाहर लाल भार्गव और अन्य
(Jagat Dhish Bhargava *v.* Jawaharlal Bhargava and Others); 9

[1927] ए० आई० आर० 1927 प्रिवी कौंसिल 151:
जान एगाबोग वर्टनीज और अन्य बनाम जेम्स गोल्डर रोबिन्स और एक अन्य
(John Agabog Vertannes and Others *v.* James Golder Robinson and Another). 11

निर्दिष्ट निर्णय

[1971] [1971] 1 एस० सी० आर० 241:
वल्लभदास बनाम डा० मदन लाल और अन्य
(Vallabhdas *v.* Dr. Madan Lal and Others); 9

[1964] [1964] 2 एस० सी० आर० 539:
बिजयानन्द पटनायक बनाम एस० साहू
(Bijoyananda Patnaik *v.* S. Sahu); 9

[1962] [1962] 1 एस० सी० आर० 358:
भाऊ राम बनाम बैजनाथ
(Bhau Ram *v.* Baijnath). 30

सिविल अपीली अधिकारिता: 1981 की सिविल अपील सं० 2905.

1970 के वाद सं० 540 में 1981 की अपील सं० 44 में मुम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 19 जून, 1981 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री एफ० एस० नारीमन, पी० एच० पारेख, वी० तुलजापुरकर, आर० नारीमन, श्रीकान्त सिंह और राजन करंजवाला

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री एल० एम० सिंघवी, महान्यायवादी और बी० पी० सिंह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति अमरेन्द्र नाथ सेन ने दिया।

न्यायाधिपति सेन—

उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 133 (1) के अधीन दिए गए प्रमाणपत्र द्वारा लाई गई इस अपील में यह प्रश्न उठाया गया है कि प्रतिवादी द्वारा किस्तों में संदेय धन की डिक्री के विरुद्ध किस्तों से संबंधित निदेशों से सम्बद्ध भाग के विरुद्ध अपील किए जाने के पश्चात् और जिसे उसने वापस ले लिया है, प्रतिवादी द्वारा फाइल की गई अपील चल सकती है या नहीं।

2. इस अपील के विनिश्चय के प्रयोजन के लिए सुसंगत तथ्य संक्षिप्त हैं और उनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

3. राज्य व्यापार निगम ने, जो इस अपील में प्रत्यर्थी है, वादी के रूप में अपीलार्थी के विरुद्ध जो मुम्बई उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता वाद में प्रतिवादी था, एक मोटी रकम के अपने दावे को प्रवृत्त कराने के लिए वाद फाइल किया जिसमें ब्याज की रकम को मिलाकर कुल 40,000,00.00 रुपए से अधिक रकम अन्तर्ग्रस्त थी। इस अपील का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी के विरुद्ध उक्त रकम की डिक्री का दावा करने के लिए दावे की प्रकृति और वादपत्र में वादी द्वारा किए गए प्रकथन के प्रति निर्देश किया जाए। प्रतिवादी-अपीलार्थी ने दावे का विरोध किया। प्रतिवादी-अपीलार्थी ने अपने लिखित कथन में वादी-प्रत्यर्थी के दावे से इनकार किया, विधिक और साम्यापूर्ण मुजराई का अभिवाक् लिया और साथ ही प्रतिवाद-पत्र प्रस्तुत किया। सम्यक् अनुक्रम में वाद न्यायाधिपति भड़ोचा के समक्ष सुनवाई के लिए आया। ऐसा प्रतीत होता है कि सुनवाई समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रतिवादी-अपीलार्थी ने यह प्रार्थना की कि प्रतिवादी-अपीलार्थी के विरुद्ध डिक्री पारित होने की दशा में निर्णीत-ऋणी को प्रतिवादी की ओर से फाइल किए गए शपथपत्र में जिसमें याचना की गई है, याचित रीति में किस्तों में भुगतान करने की अनुमति दी जाए। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने निर्णय में अभिलिखित कारणों से वादी-प्रत्यर्थी के पक्ष में 40,000,00/- रुपए की रकम और साथ ही दो काउन्सेलों जिनके बारे में प्रमाणपत्र दिया गया, के खर्चे अर्थात 42, 750/- रुपए की रकम की डिक्री पारित कर दी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी-अपीलार्थी के प्रतिवाद को खर्चे संबंधी कोई आदेश किए बिना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

खारिज कर दिया । विद्वान न्यायाधीश ने अपने निर्णय के अन्त में निम्नलिखित अवलोकन किया—

"श्री ठक्कर ने प्रथम और द्वितीय प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किए गए शपथपत्रों का आश्रय लिया और पांच वर्ष की लम्बी अवधि के भीतर डिक्रीत रकम के संदाय किए जाने की अपेक्षा की और इन पांच वर्षों की अवधि के भीतर और इस अवधि के अवसान के पश्चात् 4,00,000/- रुपए प्रतिवर्ष की किस्त के आधार पर भुगतान किए जाने की अपेक्षा की । तत्पश्चात्, उन्होंने यह बात न्यायालय पर छोड़ दी कि वह, जैसा उचित समझे, किस्तें नियत कर दे । श्री डाक्टर ने किस्त अनुज्ञात किए जाने का विरोध किया ।

निर्णीत-रकम के संदाय के लिए अतिरिक्त अवधि अनुज्ञात करने की बात न तो वाद के तथ्य और न ही शपथपत्रों में किए गए प्रकथन द्वारा ही न्यायोचित सिद्ध हो पाती है । इन परिस्थितियों में, मैं यह आदेश करता हूं कि निर्णीत-रकम 3,50,000/- रुपए की मासिक किस्तों में संदत्त की जाए । इन किस्तों में से प्रथम किस्त 7 मार्च, 1981 को या उससे पूर्व और पश्चात्वर्ती किस्तें प्रत्येक आगामी मास के सातवें दिन को या उससे पूर्व संदत्त की जाएंगी उक्त किस्तों के संदाय में वादी द्वारा कोई व्यतिक्रम किए जाने की दशा में वादी को यह छूट होगी कि वह उस समय शोध्य रकम की डिक्री को निष्पादित कराए ।"

4. निर्णय 12 दिसम्बर, 1980 को आरम्भ किया गया और 16 दिसम्बर, 1980 को इसे पूरा किया गया । निर्णय समाप्त करने की तारीख अर्थात् 16 दिसम्बर, 1980 को प्रत्यर्थी अपीलार्थी के अधिवक्ताओं द्वारा मुम्बई उच्च न्यायालय के प्रोथेनोटरी और सीनियर मास्टर को तीन आवेदन किए गए : (1) डिक्री की प्रमाणित प्रति, जब वह तैयार हो जाए, (2) निर्णय की प्रमाणित प्रति और (3) आदेश के कार्यवृत्त की प्रमाणित प्रति । तारीख 16 जनवरी, 1981 को प्रतिवादी-अपीलार्थी के अधिवक्ताओं ने मुम्बई उच्च न्यायालय के प्रोथेनोटरी और सीनियर मास्टर को निम्नलिखित आशय का एक पत्र लिखा—

"कृपया संलग्न अपील के ज्ञापन को दोहरी प्रति के संलग्नकों सहित फाइल पर अंकित कर लें । हम इसके साथ ऊपर नामित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपीलार्थी जो हमारे मुवक्किल हैं, द्वारा हस्ताक्षरित वकालतनामा भी भेज रहे हैं। कृपया उसे फाइल पर अंकित कर लें।

हमें यह बात अभिलेख पर लेनी है कि अपील सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 20, नियम 11 के अधीन की गई है और इस पर 5/- रुपए की न्यायालय फीस संदेय है। हमें आगे यह कहना है कि अपील समय के भीतर की गई है क्योंकि आदेश और निर्णय की प्रमाणित प्रति तथा डिक्री के लिए 16 दिसम्बर, 1980 को ही आवेदन कर दिया गया था किन्तु हमें वह अब तक प्राप्त नहीं हो सका। इसलिए अपील समय के भीतर की गई है।

कृपया इस बात का ध्यान रखें कि उक्त अपील मुख्य न्यायाधिपति और माननीय न्यायाधिपति रँग के समक्ष परिचालित की जाए और इस अपील पर बुधवार, 21 जनवरी, 1981 को सुनवाई की जाए।"

5. अपील के ज्ञापन में जिसे 1981 की अपील सं० 36 पर संख्यांकित किया गया था और जो प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा 20-1-81 को फाइल की गई थी, निम्नलिखित कथन किया गया था—

"माननीय न्यायाधिपति भड़ोचा द्वारा 16 दिसम्बर को दिया गया निर्णय और आदेश जिसमें निर्णीत-रकम को 3,50,000/- रुपए की मासिक किस्तों में संदाय करने का निदेश किया गया था, से व्यथित होकर अपीलार्थी अन्य आधारों के साथ-साथ निम्नलिखित आधारों पर अपील करने की अनुमति चाहते हैं।"

6. किस्तों की बाबत किए गए आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील के इस ज्ञापन में प्रतिवादी-अपीलार्थी ने 21 आधार अपनाए हैं और प्रत्येक आधार निर्णीत-रकम का संदाय 3,50,000/- रुपए की मासिक किस्तों में किए जाने के आदेश से सम्बन्धित है। 1981 की अपील सं० 36 उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ के समक्ष जिसमें विद्वान मुख्य न्यायाधिपति और न्यायाधिपति रँग थे 21-1-81 को ग्रहण किए जाने के लिए लाई गई और जब मामले को स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया, उस समय अपीलार्थी के काउन्सेल ने अपील वापस लेने की इजाजत की मांग की और अपील वापस लेने की इजाजत अनुज्ञात कर दी गई। न्यायालय के अभिलेख के कार्यवृत्त—"अपील की वापसी अनुज्ञात की गई" 21-1-1982 को अर्थात

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1981 की अपील सं० 36 को वापस लिए जाने के एक सप्ताह के पश्चात् ही प्रतिवादी-अपीलार्थी ने न्यायाधिपति भड़ोचा के 16 दिसम्बर, 1980 को दिए गए निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल कर दी और इस अपील को 1981 की अपील सं० 44 संख्यांकित की गई। इस अपील में अपील के ज्ञापन में कहा गया—"माननीय न्यायाधिपति भड़ोचा द्वारा 16-12-1980 को पारित निर्णय से व्यथित अपीलार्थी अन्य आधारों के साथ निम्नलिखित आधारों पर उसके विरूद्ध अपील करना चाहता है।" अपील के इस ज्ञापन में अपीलार्थी ने 73 आधार अपनाए जिनमें से आधार सं० 1 से 53 निर्णय और डिक्री के गुणागुण से संबंधित थे और आधार 54 से 73 किस्तों के उपबन्धों से संबंधित थे। यह अपील अर्थात् 1981 की अपील सं० 44 को उसी खण्ड न्यायपीठ के समक्ष 3-2-1981 को मंजूरी के लिए लाई गई जिसमें विद्वान मुख्य न्यायाधिपति और न्यायाधिपति रैग थे और तब वादी-प्रत्यर्थी अपने-अपने काउन्सेलों के माध्यम से उपस्थित हुए और इस आधार पर अपील की मंजूरी का विरोध किया कि अपील कायम रखे जाने योग्य नहीं है। तथापि, अपील मंजूर कर ली गई और उपस्थिति अभिलिखित किए जाने के पश्चात् न्यायालय का कार्यवृत्त—"मंजूर की गई", अपील फाइल करने के पश्चात् प्रतिवादी-अपीलार्थी डिक्री के निष्पादन को स्थगित कराने के लिए सुनवाई किए जाने के नोटिस के माध्यम से आवेदन किया जिसे खण्ड न्यायपीठ ने नामंजूर कर दिया निष्पादन स्थगित करने की नामंजूरी के उक्त आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में विशेष मंजूरी लेकर एक पिटीशन फाइल किया गया। वर्तमान अपील के प्रयोजनों के लिए इस विशेष मंजूरी पिटीशन और उसमें की गई कार्यवाही के प्रति निर्देश करना आवश्यक नहीं है। अपील 24 मार्च, 1981 को खंड न्यायपीठ के समक्ष सुनवाई के लिए प्रस्तुत की गई और उसकी सुनवाई 27 मार्च 1981 तक चलती रही और उसी तारीख को अपील की सुनवाई 8 अप्रैल, 1981 तक के लिए निम्नलिखित आदेश द्वारा स्थगित कर दी गई—

> "अपील के गुणागुण के बारे में श्री नारीमन की लगभग चार दिन तक सुनवाई करने के पश्चात् यद्यपि हमने प्रत्यर्थियों की सुनवाई नहीं की, फिर भी प्रथमदृष्टया हमारी यह राय है कि हमारे समक्ष उठाई गई कतिपय दलीलों में अपीलार्थियों की ओर से की गई बहस में कुछ बल और सार है चूंकि उस डिक्री में दूसरी किस्त 8 अप्रैल, 1981 को संदेय थी इसलिए हमने उक्त डिक्री के प्रवर्तन को, जिसके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विरुद्ध अपील की गई है, अपील की सुनवाई और अन्तिम निपटान किए जाने तक निलम्बित कर दिया है।''

पूर्वतर आदेश के अनुसार अपील की सुनवाई स्थगित की गई तारीख अर्थात् 8 अप्रैल, 1981 को, पुनः आरंभ की गई और कुछ दिनों तक चलती रही। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ दिनों तक गुणागुण के आधार पर अपील की सुनवाई करने के पश्चात् वादी-प्रत्यर्थी की ओर से खण्ड न्यायपीठ के समक्ष यह कथन किया गया कि वादी प्रत्यर्थी अपील ग्रहण किए जाने के विरुद्ध आरम्भिक आक्षेप प्रस्तुत करेंगे। वादी-प्रत्यर्थियों की ओर यह कहा से गया कि चूंकि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने पहले ही एक अपील अर्थात् 1981 की अपील सं० 36 फाइल की थी जो किस्तों के बारे में किए गए उपबंधों के विरुद्ध थी और जिसे 21-1-1979 को प्रतिवादी अपीलार्थियों द्वारा वापस ले लिया गया था, इसलिए वादी-प्रत्यर्थी यह दलील दे सकते हैं कि वर्तमान अपील अर्थात् 1981 की अपील सं० 44 कायम नहीं हो सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि यह आक्षेप बहुत बाद में उठाया गया जबकि प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल ने कई दिनों तक गुणागुण के आधार पर न्यायालय में बहस कर ली। इसलिए न्यायालय ने प्रतिवादी-अपीलार्थी के काउन्सेल को वह बहस को पूरा करने की अनुमति दी और तत्पश्चात् न्यायालय ने अपील की ग्राह्यता के प्रश्न पर प्रत्यर्थी की सुनवाई आरम्भ की।

19-6-1981 को खण्ड न्यायपीठ ने अपील के चल सकने के बारे में आरम्भिक आक्षेप को इस आधार पर कायम रखते हुए कि प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा किस्तों से संबंधित उपबंधों के विरुद्ध 1981 की अपील सं० 36 फाइल किए जाने से जिसे उसने वापस ले लिया था, गुणागुण के आधार पर डिक्री को चुनौती देने के अपने अधिकार का परित्याग कर दिया है, अपील खारिज कर दी। तथापि खण्ड न्यायपीठ ने अपील खारिज करते समय विचारण न्यायालय की डिक्री में 40,18,737.38 रुपए की डिक्री के स्थान पर 18,18,451·39 रुपए का मूलधन रख दिया जिस पर निर्णय की तारीख से संदाय या वसूली की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज भी अधिरोपित कर दिया और विचार न्यायालय द्वारा खर्चे के संबंध में पारित आदेश को कायम रखा।

7. उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को इस आधार पर कि अपील चलने योग्य नहीं है, खारिज करते हुए किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा उच्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्यायालय से प्रमाणपत्र लेकर यह अपील की गई।

8. प्रतिवादी अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होते हुए विद्वान काउन्सेल श्री नारीमन ने यह निवेदन किया कि 1981 की वर्तमान अपील सं० 44 को चलने योग्य न अभिनिर्धारित करके उच्च न्यायालय ने गलती की है क्योंकि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने किस्तों से संबंधित उपबंधों के विरुद्ध पूर्ववर्ती अपील सं० 36 फाइल करके डिक्री को गुणागुण के आधार पर चुनौती देने के अधिकार का अधित्यजन कर दिया है। श्री नारीमन की मुख्य दलील यह है कि 1981 की पूर्वतर अपील सं० 36 फाइल किए जाने से या प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा उसे वापस ले लिए जाने से प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा गुणागुण के आधार पर डिक्री के विरुद्ध वर्तमान अपील करने का अधिकार प्रभावी नहीं होता और उससे प्रतिवादी-अपीलार्थी वर्तमान अपील फाइल करने या उसकी सुनवाई की कार्यवाही करने से प्रवारित नहीं हो सकता। श्री नारीमन ने यह दलील दी कि 1981 की पूर्वतर अपील सं० 36 उच्च न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 20 के नियम 11 के अधीन केवल किस्तों के संबंध में पारित की गई थी और उक्त अपील डिक्री के विरुद्ध की गई अपील नहीं थी। अपने इस निवेदन के समर्थन में श्री नारीमन ने प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से फाइल किए गए प्रतिवेदन, प्रतिवादी-अपीलार्थी के अधिवक्ताओं द्वारा 16 जनवरी, 1981 को उच्च न्यायालय के प्रोथोनोटरी और सीनियर मास्टर को लिखे गए पत्र और 1981 की अपील सं० 36 में फाइल किए गए अपील के ज्ञापन तथा उस अपील के ज्ञापन पर संदत्त स्टाम्प के प्रति निर्देश किया। श्री नारीमन ने यह निवेदन किया कि 1981 की पूर्वतर अपील सं० 36 जो आदेश के विरुद्ध की गई अपील थी, अक्षम थी क्योंकि उक्त आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती थी। श्री नारीमन का यह निवेदन है कि अपील किए जाने का अधिकार उप-विधि से उत्पन्न होता है और जब तक अपील करने का अधिकार विधि द्वारा प्रदत्त न किया जाए, तब तक कोई भी पक्षकार अपील फाइल नहीं कर सकता। श्री नारीमन का यह निवेदन है कि किस्तों के बारे में किए गए आदेश के विरुद्ध संहिता के अधीन अपील नहीं की जा सकती और ऐसे आदेश को लैटर्स पेटेन्ट के खण्ड 15 के अर्थान्तर्गत "निर्णय" नहीं समझा जा सकता। इसलिए श्री नारीमन यह दलील देते हैं कि 1981 की पूर्वतर अपील सं० 36 अक्षम अपील थी और इसलिए वह विधि की दृष्टि से अपील नहीं थी और समस्त विधिक प्रयोजनों के लिए वह अस्तित्वहीन थी। श्री नारीमन की यह दलील है कि चूंकि 1981 की पूर्वतर अपील सं० 36

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विधि की दृष्टि में अक्षम और अस्तित्वहीन थी इसलिए उस अपील का फाइल किए जाने का और उसे वापस लिए जाने का कोई विधिक परिणाम नहीं निकल सकता और किसी भी दृष्टि से वह प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा डिक्री के विरुद्ध समुचित अपील करने के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता।

9. इसके बाद श्री नारीमन ने यह दलील दी कि संहिता के आदेश 20, नियम 11 में यह उपबंध करने वाला संशोधन किए जाने के बावजूद भी कि निर्णीत-रकम के संदाय की बाबत किस्तों के संबंध में किए गए आदेश को भी डिक्री में निगमित किया जाना चाहिए; 1981 की उक्त अपील सं० 36 को अक्षम समझा जाना चाहिए। श्री नारीमन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता पक्ष के नियमों में डिक्री अभिलिखित करने के बारे में उपबंध किए गए हैं और निर्णय देने तथा डिक्री अभिलिखित करने में समय का अन्तराल होता है। श्री नारीमन ने इस बात की ओर संकेत किया कि चूंकि उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता पक्ष के नियम डिक्री या आदेश की प्रमाणित प्रति के बिना भी अपील किए जाने की अनुमति देते हैं इसलिए 1981 की अपील सं० 36 जो निर्णय सुनाए जाने के तुरन्त पश्चात् और डिक्री अभिलिखित किए जाने के बहुत पहले फाइल की गई थी वह उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता पक्ष के नियमों में दिए गए उपबंधों के अनुसार उक्त आदेश या डिक्री की प्रमाणित प्रति के बिना ही फाइल की गई थी। श्री नारीमन का यह भी तर्क है कि 1981 की अपील सं० 36 आदेश को सम्मिलित करने वाली डिक्री के अभिलिखित किए जाने से बहुत पहले फाइल की गई थी, 1981 की अपील सं० 36 जो केवल किस्तों से संबंधित आदेश के विरुद्ध की गई थी, उसे आदेश के विरुद्ध की गई अपील समझा जाना चाहिए और न कि डिक्री के विरुद्ध की गई अपील। श्री नारीमन ने इसके आगे यह तर्क प्रस्तुत किया कि यदि यह कहा भी जाता है कि 1981 की अपील सं० 36 को संहिता के संशोधित आदेश 20, नियम 11 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए डिक्री के विरुद्ध की गई अपील समझा जाए तो भी इस बात में विवाद नहीं है कि उक्त अपील डिक्री की प्रमाणित प्रति के बिना ही फाइल की गई है और वह अपील डिक्री की प्रमाणित प्रति फाइल किए जाने से पहले ही वापस ले ली गई थी। इसलिए विधि की दृष्टि में, उस अपील के बारे में यह समझा जाएगा कि अपील की ही नहीं गई। श्री नारीमन यह निवेदन करते हैं कि यदि 1981 की अपील सं० 44 के साथ निर्णय और डिक्री की प्रमाणित प्रति संलग्न की गई होती तो डिक्री के विरुद्ध की गई 1981 की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्चातवर्ती अपील सं० 44 मुम्बई उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता पक्ष के नियमों में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार फाइल की गई अपील होती। श्री नारीमन का यह तर्क है कि 1981 की अपील सं० 44 समुचित और सक्षम अपील है क्योंकि 1981 की अपील सं० 36 को प्रमाणित प्रति फाइल किए जाने के अभाव में उसकी वापसी के समय विधि की दृष्टि से उसे वैध अपील नहीं समझा गया। श्री नारीमन यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यद्यपि मुम्बई उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता पक्ष के नियमों के उपबंधों के अनुसार आरम्भिक रूप से कोई अपील प्रमाणित प्रति के बिना भी फाइल की जा सकती है, प्रमाणित प्रति जिसका फाइल किया जाना विधि की एक आज्ञापक अपेक्षा है, अपील को वैध और सक्षम करार देने के लिए अपील की सुनवाई से पूर्व एक निश्चित सीमावधि के भीतर फाइल कर दी जानी चाहिए। श्री नारीमन ने इस संदर्भ में इस न्यायालय के **जगतीधीश भार्गव बनाम जवाहर लाल भार्गव और अन्य**[1] तथा **शकुन्तला देवी जैन बनाम कुन्तल कुमारी और अन्य**[2] वाले मामले के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया। श्री नारीमन ने आगे यह भी दलील दी कि संहिता या किसी अन्य विधि में ऐसा कोई उपबंध नहीं किया गया है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को एक से अधिक अपील करने से प्रवारित किया गया हो। इस न्यायालय द्वारा दिए गए **जगतधीश भार्गव** (पूर्वोक्त) वाले विनिश्चय का आश्रय लेते हुए श्री नारीमन ने यह निवेदन किया कि जब डिक्री के सुभिन्न और पृथक्करणीय भाग हों, जो एक ही या कतिपय प्रतिवादियों के विरुद्ध प्रवर्तनीय हों, तो उन्हीं पृथक्करणीय प्रतिवादियों के विरुद्ध उन सुभिन्न और पृथक्करणीय आदेशों, निदेशों या उपबंधों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न अपीलें फाइल की जा सकती हैं। वर्तमान मामले में श्री नारीमन की दलील यह है कि भले ही किस्तों के बारे में किए गए आदेश को डिक्री का भाग क्यों न मान लिया जाए, फिर भी डिक्री के दो सुभिन्न और पृथक्करणीय भाग हैं (1) दावे के गुणागुण पर और (2) किस्तों में संदाय किए जाने के प्रश्न पर। इसके बाद श्री नारीमन ने यह दलील दी कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 का नियम 2 1981 की वर्तमान अपील सं० 44 के चलने योग्य होने और उसके गुणागुण को किसी रूप में प्रभावित नहीं करता। उन्होंने यह निवेदन किया कि उक्त उपबंध किसी अपील को लागू नहीं होते और हर हालत में वर्तमान अपील का वाद हेतुक और उसकी विषयवस्तु पूर्वतर अपील में प्रश्नगत वाद हेतुक और विषयवस्तु

[1] [1961] 2 एस० सी० आर० 918.
[2] [1969] 1 उम० नि० प० 720=[1969] 1 एस० सी० आर० 1006.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से पूर्णतः भिन्न थे। श्री नारीमन का यह तर्क है कि यद्यपि इस न्यायालय ने **विजयानन्द पटनायक** बनाम **एस० सान**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 1 के उपबंध अपील वापस लिए जाने के मामले में लागू होंगे फिर भी ये उपबंध अपीलार्थी को 1981 की वर्तमान अपील सं० 44 को फाइल करने से भी प्रवारित नहीं करते। उनका यह भी निवेदन है कि आदेश 23 के नियम 1 के उपबंधों पर विचार करते हुए जो सुसंगत तथ्य ध्यान में रखा जाना है, वह है अपील की विषयवस्तु और यदि अपील की विषयवस्तु भिन्न है, जैसा कि वर्तमान मामले में है—1981 की पूर्वतर अपील सं० 36 की विषयवस्तु किस्तों के बारे में थी और 1981 की पश्चातवर्ती अपील सं० 44 दावे गुणागुण के आधार पर डिक्री के विरुद्ध की गई है—पूर्वतर अपील का वापस ले लिया जाना पश्चातवर्ती अपील के चल सकने में किसी भी तरह का वर्जन नहीं है। श्री नारीमन ने इस संदर्भ मे इस न्यायालय के **वल्भदास** बनाम **मदन लाल और दो अन्य**[2] वाले मामले के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया है जिसमें इस न्यायालय ने आदेश 23, नियम 1 में आने वाले "विषयवस्तु" शब्दों के अर्थ को आदेश 2, नियम 2 में आने वाले "वाद-हेतुक" शब्दों के अर्थ के बराबर माना है। इस विनिश्चय का आश्रत लेते हुए, श्री नारीमन ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि अपील की विषयवस्तु को आदेश 23, नियम 1 के अर्थान्तर्गत आदेश 2, नियम 2 में आने वाले "वाद-हेतुक" शब्दों के अर्थ के प्रकाश में समझा जाना चाहिए और उनका यह तर्क है कि किस्तों के दावे की बाबत "वाद-हेतुक" उस डिक्री के "वाद-हेतुक" से पूर्णतः भिन्न है जो अपनी लपेट में वाद के पक्षकारों के अपने-अपने दावे की "विषयवस्तु" को भी ले लेता है, इसलिए किस्तों के विरुद्ध 1981 की पूर्वतर अपील सं० 36 की वापसी दावे के गुणागुण के आधार पर डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई 1981 की अपील सं० 44 के चलने योग्य होने पर किसी भी रूप में प्रभाव नहीं डाल सकती।

10. श्री नारीमन इस बात पर विवाद नहीं करते कि यद्यपि अपील का अधिकार किसी भी पक्षकार को प्राप्त हुआ कानूनी अधिकार है, फिर भी किसी उपयुक्त मामले में कोई पक्षकार अपने अपील के अधिकार को खो सकता है किन्तु उनका यह निवेदन है कि यह स्थापित करने के लिए कि क्या कोई पक्षकार अपने अपील करने के अधिकार को खो चुका है, बहुत मजबूत मामला बनाया जाना चाहिए। श्री नारीमन के अनुसार, अपील का

---

[1] [1964] 2 एस० सी० आर० 539.

[2] [1971] 1 एस० सी० आर० 241.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिकार विधि के किसी उपबंध के अधीन भी खोया जा सकता है और उपयुक्त मामलों में कोई पक्षकार अपने आचरण के आधार पर भी अपील के अधिकार से हाथ धो सकता है। श्री नारीमन की यह दलील है कि वर्तमान मामले में यह अपील समय के भीतर है और ऊपर निर्दिष्ट संहिता के उपबंध या किसी अन्य विधि के कोई उपबंध डिक्री के विरुद्ध अपील करने के अपीलार्थी के अधिकार को निर्धारित नहीं कर सकते। श्री नारीमन यह दलील देते हैं कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से न्यायोचित रूप से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अपीलार्थी डिक्री के विरुद्ध अपने आचरण द्वारा वर्तमान अपील फाइल करने का हकदार नहीं रहा है। उनका यह तर्क है कि अपीलार्थी का आचरण मात्र इतना था कि उसने किस्तों के लिए प्रार्थना की, किस्तों से सम्बन्धित आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की और उसने उसे वापस ले लिया। वे इस बात को दोहराते हैं कि यदि किस्तों से सम्बन्धित आदेश के विरुद्ध की गई पूर्वतर अपील को अक्षम अभिनिर्धारित कर दिया जाए, तो भी अक्षम अपील वापस लेने के अपीलार्थी के आचरण का कोई परिणाम नहीं निकलता। श्री नारीमन का तर्क यह है कि किस्तों के लिए जो प्रार्थना की गई है वह इस आधार पर की गई है कि अपीलार्थी का मामला स्वीकार नहीं किया जाता और उसके विरुद्ध डिक्री पारित की जाती है तो अपीलार्थी निर्णीत रकम के संदाय के लिए किस्तें अनुज्ञात किए जाने का हकदार होगा और ऐसी कोई प्रार्थना जिसके बारे में यह भी पता न हो कि अपीलार्थी के विरुद्ध डिक्री पारित की जाएगी भी या नहीं और यदि ऐसा होता है तो उसकी क्या रकम होगी, उसके ऐसे आचरण के बारे में यह नहीं समझा जा सकता कि उसके द्वारा वह डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने का हकदार न रहे या प्रवारित हो जाए। श्री नारीमन यह दलील देते हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान मामले में प्रतिवादी-अपीलार्थी ने दो वैकल्पिक उपचारों में से एक का चुनाव किया है और ऐसा चुनाव करने के कारण उसने अपने आपको दूसरे अधिकार का प्रयोग करने से वंचित कर लिया है क्योंकि प्रतीवादी-अपीलार्थी के लिए दोनों ही उपचार उपलब्ध हैं और उसकी ओर से चयन किए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। श्री नारीमन यह भी निवेदन करते हैं कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए विधिक रूप से यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि अपीलार्थी ने डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने के कानूनी अधिकार का अधित्यजन कर दिया है और अपने अधिकार का प्रयोग करने से अन्यथा विबन्धित हो गया है। इस संदर्भ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में श्री नारीमन ने हैल्स बरीज लाज़ आफ इंगलैंड, चतुर्थ संस्करण, जिल्द 16, पैरा 1471, 1472, 1473 और 1474—पृष्ठ 992-996 के प्रति निर्देश किया जो इस प्रकार है—

"1471. अधित्यजन—अधित्यजन किसी अधिकार का ऐसी रीति में परित्याग कर देना है जिससे अन्य पक्षकार, यदि तत्पश्चात् अधिकार के लिए जोर दिया जाता है तो, संस्वीकृति और परिवर्जन द्वारा परित्याग का अभिवाक् लेने का हकदार हो और यह उसके आचरण से अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकता है। कभी-कभी यह चयन के किसी रूप से मिलता-जुलता भी हो सकता है। कभी-कभी यह विबंध के सामान्य सिद्धान्त पर आधारित हो सकता है यद्यपि विबंध से भिन्न अधित्यजन एक ऐसा कृत्य है जो साशय और जानबूझकर किया जाता है ऐसा व्यक्ति जो किसी अनुबंध पर विश्वास करने का हकदार है, जो किसी संविदा या किसी कानूनी उपबंध के अधीन मात्र उसके लाभ के लिए विद्यमान है, उसका अधित्यजन कर सकता है, और संविदा को ऐसी रीति में लागू किए जाने की अनुमति दे सकता है मानो अनुबंध या उपबंध विद्यमान ही नहीं था। इस प्रकार का अधित्यजन सम्पत्ति और इस तथ्य पर निर्भर करता है कि अन्य पक्षकार ने भी उसके अनुसार कार्य किया है और यह विचार पर्याप्त है। जहां अधित्यजन अभिव्यक्त रूप में न हो, वहां वह उसके आचरण द्वारा विवक्षित हो सकता है जो लिखा-पढ़ी करने की आवश्यकता या प्रतिफल की अपेक्षा के बिना उसके अधिकार के बने रहने से असंगत है या उस पक्षकार को जिसे अधित्यजन से लाभ मिलना है, नुकसान पहूंचाने वाला है। किन्तु मात्र अनुग्रह के कृत्य अधित्यजन नहीं माने जाएंगे। न ही कोई पक्षकार तब तक अधित्यजन से लाभ प्राप्त करेगा जब तक वह उस पर आश्रय लेने की अपनी स्थिति में परिवर्तन नहीं कर लेता, अधित्यजन का निर्धारण युक्तियुक्त सूचना द्वारा जिसका औपचारिक होना आवश्यक नहीं है, अवधारित किया जा सकता है, जब तक कि अधित्यजन से लाभान्वित होने वाला पक्षकार अपनी स्थिति प्राप्त नहीं कर लेता या अनुबंध समाप्त किए जाने से उसके साथ अन्याय नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य रूप से जहां कोई पक्षकार अपने शब्दों अथवा आचरण से दूसरे पक्षकार को कोई संकल्प या आश्वासन देता है, जो उनके बीच विधिक संबंध को प्रभावी करने के आशय से किया गया हो और जिसके अनुसार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्य किया जाना हो, तो जैसे ही अन्य पक्षकार उसकी बात को उसके शब्दों में मान लेता है और उस पर अमल करने लगता है, वैसे ही उसकी स्थिति बदल जाती है। वह पक्षकार जिसने संकल्प या आश्वासन दिया है, अपने पूर्व विधिक संबंधों से पीछे हटकर अपने ऐसे संकल्प या आश्वासन से मुकर नहीं सकता बल्कि उसे अपनी उन अर्हताओं के अधीन रहते हुए अपने विधिक संबंधों को कायम रखना होगा जो उसने अपने आप लागू किए हैं भले ही विधि की दृष्टि से उसके पीछे कोई भी प्रतिफल न हो।

जहां अधिकार कोई कार्यवाही करने का अधिकार अथवा सम्पति में किसी हित का अधिकार है, वहां अभिव्यक्ति अधित्यजन उन्हीं धाराओं पर निर्भर करता है जैसे उन्मोचन। यदि यह मात्र आशय संबंधी कथन है जो अधिकार पर जोर नहीं देता तो यह तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक इसके साथ प्रतिफल न लगा हो किन्तु जहां यह प्रतिफल के साथ हो, वहां वह कथन संकल्प के बराबर होता है और उन्मोचन के रूप में कार्य करता है। जहां अभिव्यक्त रूप से अधित्यजन नहीं किया जाता, वहां उसके अधिकार का हकदार व्यक्ति अपने आप ऐसा आचरण कर सकता है कि उसे लागू करना असाम्यापूर्ण बन जाए (इसे कभी-कभी विवक्षित अधित्यजन कहा जाता है) किन्तु ऐसे मामलों में अधिकार या तो विबंध के आधार पर या मौन सम्मति के आधार पर चाहे वह अपने आप हो या विलम्ब के कारण, समाप्त हो जाता है। जहां यह दावा किया जाता है कि किसी अधिकरण का विनिश्चय शून्य के बराबर है वहां किसी पक्षकार का उच्च न्यायालय में बाद में कार्यवाही करने का अधिकार किसी उच्चतर अधिकरण के अपील करने के अधिकार के अधित्यजन से समाप्त नहीं हो जाता जिसके विनिश्चय के बारे में संसद् ने यह अभिव्यक्त किया है कि उसका विनिश्चय अन्तिम है।

1472. अधिकारों के बारे में जानकारी आवश्यक है। किसी उन्मोचन या अधित्यजन को प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि जो व्यक्ति उसे अनुज्ञात करता है, उसे उसके अधिकारों की पूरी जानकारी दी जानी चाहिए। इसी प्रकार किसी अवैध संव्यवहार की पुष्टि तब तक नहीं की जाती जब तक कि पुष्ट करने वाला व्यक्ति उसकी अवैधताओं को न जानता हो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1473. विबंध और मौन सम्मति : 'मौन सम्मति' शब्द का प्रयोग वहां किया जाता है जहां कोई व्यक्ति उपचार प्राप्त करने से उस समय प्रवारित रह जाता है जब उसकी जानकारी में उसके किसी ऐसे अधिकार के उल्लंघन की बात लाई जाती है जिसकी जानकारी उसे तत्समय नहीं थी और उस अर्थ में मौन सम्मति ढिलाई का एक तत्व बन जाता है। इसके अध्यधीन रहते हुए, कोई व्यक्ति जिसके अधिकार का अतिक्रमण बिना उसकी जानकारी या उसकी स्वीकृति के हुआ है, वहां उसे ऐसा अधिकार या ऐसी कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त है जो सामान्य नियम के अनुसार बिना सहमति और समाधान या प्राधिकृत उन्मोचन के बिना दिया नहीं जा सकता।

तथापि, इस शक्ति का प्रयोग उपयुक्त रूप से वहां किया जाता है जहां कोई व्यक्ति जिसे अधिकार प्राप्त है और वह यह देखता रह जाता है कि कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा कृत्य कर रहा है जिससे उसके अधिकार का अतिलंघन हो रहा है इस प्रकार खड़ा हुआ तमाशा देखता रह जाता है जिससे लगता हो कि उस व्यक्ति को वह कृत्य करने देना चाहता है और जो अन्यथा अपने आपको वहां से हटा सकता था और उसे यह विश्वास हो जाता कि वह उस कृत्य के किए जाने से सहमत है, वहां इस प्रकार खड़े रह जाने वाले व्यक्ति की सुनवाई उस कृत्य के किए जाने के विरुद्ध नहीं की जा सकती। इस अर्थ में मौन सम्मति के सिद्धान्त को ऐसी परिस्थितियों में मौन स्वीकृति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिनमें युक्तियुक्त रूप से सम्मति का अर्थ निकलता हो और यह शब्दों द्वारा या आचरण द्वारा विबंध की विधि का ही एक उदाहरण है और कुछ नहीं। विबंध का सिद्धान्त प्रतिनिधित्व द्वारा विधि और साम्या दोनों में लागू होता है। यद्यपि मौन स्वीकृति में यह साम्यापूर्ण रूप में लागू होता है। विबंध इस परिस्थिति पर निर्भर करता है कि इस प्रकार खड़ा रहने वाला व्यक्ति वस्तुतः तथ्य अर्थात् स्वयं अपने हक के बारे में दुर्व्यपदेशन करता है। मात्र यह कथन कि वह कोई कृत्य करना चाहता है उदाहरण के लिए अपने अधिकार का विनाश करना चाहता है, इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त साम्यापूर्ण विबंध स्वयं आगे आने वाले व्यक्ति के पक्ष में लागू नहीं होता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विबंध के रूप में लागू होने वाली मौन स्वीकृति का सिद्धान्त कपट पर आधारित था और इसी कारण से यह उस समय लागू नहीं होता जब चुपचाप खड़ा रहने वाला व्यक्ति कोई अवयस्क है। चूंकि विबंध समय बीत जाने के आचरण से तत्काल उत्पन्न किया जाता है, इसलिए उसका कोई महत्व नहीं है और इसी कारण से मौन स्वीकृति के महत्व को उपविधि में स्पष्ट रूप से सुरक्षित रखा गया है।

1474. विबंध के तत्व : जब 'ख' द्वारा अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने पर 'क' चुपचाप खड़ा रहता है तो ऐसी स्थिति में 'क' के विरुद्ध विबंध लगाने के लिए निम्नलिखित परिस्थितियां सामान्य नियम के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं : (1) 'ख' को स्वयं अपने विधिक अधिकारों के बारे में भ्रम हो; यदि उसे यह जानकारी है कि वह किसी अन्य के अधिकारों का अतिक्रमण कर रहा है तो वह उन अधिकारों को रोकने का जोखिम ले रहा है। (2) 'ख' को धन व्यय करना चाहिए या अपने भ्रामक विश्वास के लिए कोई कृत्य करना चाहिए जिससे कि वह 'क' द्वारा बाद में अपने अधिकारों का प्रयोग कराए जाने से कोई नुकसान न उठाए। (3) मौन सम्मति अपने विधिक अधिकारों की जानकारी के सहित किसी व्यक्ति द्वारा किए गए आचरण पर आधारित है और इसलिए 'क' को अपने अधिकारों की जानकारी होनी चाहिए। (4) 'क' को 'ख' के भ्रामक विश्वास की जानकारी होनी चाहिए; इस जानकारी के साथ उसके लिए यह गैर-साम्यापूर्ण होगा कि वह सतर्कता बरते और 'ख' को अपनी गलती पर चलने दे। (5) 'क' को चाहिए कि वह 'ख' को धन व्यय करने या कोई अन्य कृत्य करने के लिए प्रत्यक्षतः या अपने विधिक अधिकार का प्रयोग न कराते हुए प्रोत्साहित करे। इसके अतिरिक्त न्यास भंग के मामले में मौन स्वीकृति के बारे में कोई ऐसा पक्का नियम नहीं है कि विधिक अधिकारों के बारे में ज्ञान न होना वर्जन है बल्कि यह देखने के लिए समस्त परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा कि शिकायत करने वाला हिताधिकारी न्यासी के विरुद्ध कार्यवाही करे।"

11. नारीमन ने यह तर्क दिया है कि वर्तमान मामले में वादी-प्रत्यर्थी ने प्रतिवादी-अपीलार्थी के विरुद्ध बड़ी मोटी रकम का दावा किया है और प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा इस दावे का विरोध तत्परतापूर्वक किया गया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है जिसमें न कि वादी-प्रत्यर्थी के दावे को ही विवादित किया है अपितु वस्तुतः वादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध जवाबी दावा भी फाइल किया है। उन्होंने यह उल्लेख किया है कि निर्णय उद्घोषित किए जाने के तुरन्त पश्चात् प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से तीन पृथक्-पृथक् याचनाएं या अभियाचनाएं की गई। परिस्थिति की अत्यावश्यकता को ध्यान में रखते हुए तात्कालिक अनुतोष के लिए किस्तों के संबंधित आदेश के विरुद्ध तत्काल अपील फाइल कर दी गई और तत्पश्चात् किस्तों से संबंधित पूर्वतर अपील को वापस लेने के पश्चात् डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल कर दी गई। उन्होंने यह निवेदन किया कि इन तथ्यों और परिस्थितियों के अन्तर्गत यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि अपीलार्थी ने डिक्री को कबूल कर लिया और उसके विरुद्ध अपील करने के अपने अधिकार को नष्ट हो जाने दिया। श्री नारीमन आगे यह निवेदन करते हैं कि आमतौर पर कोई भी पैरोकार अपने वकील के सलाह पर काम करता है और किसी वकील की गलत सलाह निर्णय के अभिवाक् का आधार नहीं बन सकती और अपने निवेदन के समर्थन में उन्होंने **जान एगाबोग वर्टनीज और अन्य बनाम जेम्स बोडर रोबिन्सन और एक अन्य**[1] वाले मामले में ज्युडिशियल कमेटी के विनिश्चय का आश्रय लिया। आगे उन्होंने यह तर्क दिया है कि वर्तमान मामले में अपील फाइल किए जाने या पूर्ववर्ती अपील को वापस लिए जाने से प्रत्यर्थी पर विपरीत प्रभाव पड़ने की कोई संभावना नहीं है और प्रत्यर्थी को किसी भी रीति में यह विश्वास नहीं होना चाहिए कि 1981 की अपील सं० 36 को संस्थित करने से अपीलार्थी ने डिक्री के गुणागुण के आधार पर अपील करने के अपने अधिकार को असंदिग्ध रूप से त्याग दिया है। श्री नारीमन ने यह टिप्पण किया कि वादी-प्रत्यर्थी के आक्षेप के बावजूद, खण्ड न्यायपीठ ने अपील मंजूर कर ली थी और उन्होंने यह कहा कि अपील मंजूर कर लेने के पश्चात् खण्ड न्यायपीठ ने कई दिनों तक अपील कि सुनवाई की इसलिए, उनका निवेदन है कि खण्ड न्यायपीठ को चाहिए था कि वह अपील को चालू हो सकने की संभावना पर विचार करती और खण्ड न्यायपीठ को इस आधार पर अपील खारिज नहीं करनी चाहिए थी कि अपील चलने योग्य नहीं थी और उनका यह भी निवेदन है कि खण्ड न्यायपीठ का उक्त दृष्टिकोण हर हालत में त्रुटिपूर्ण है और विधि की दृष्टि से कायम नहीं रह सकता।

12. वादी-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होते हुए विद्वान महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि वर्तमान मामले में खण्ड न्यायपीठ ने यह

---

[1] ए० आई० आर० 1927 प्रिवी कौंसिल 151.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निष्कर्ष ठीक ही दिया है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा डिक्री के विरुद्ध की गई अपील प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा किस्तों के उपबंधों के विरुद्ध पूर्ववर्ती अपील फाइल किए जाने की बात को तथा उसकी वापसी को ध्यान में रखते हुए कायम होने योग्य नहीं है। विद्वान महान्यायवादी ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से फाइल किए गए शपथपत्र के आधार पर किस्तों की बाबत निर्णय में किए गए उपबंध डिक्री का एक भाग हैं और उसे आदेश नहीं समझा जा सकता। इस संदर्भ में विद्वान महान्यायवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 20, नियम 11 में अन्तर्विष्ट संशोधित उपबंधों के प्रति निर्देश किया। इन उपबंधों का आश्रय लेते हुए विद्वान महान्यायवादी ने यह दलील दी की किस्तों की बाबत किया गया आदेश जिसे डिक्री में निगमित किया जाना चाहिए था, निश्चित रूप से डिक्री का ही एक भाग है। उनकी यह दलील है कि मात्र इस तथ्य के आधार पर कि डिक्री को अभिलिखित करने में कुछ समय लग सकता है, किस्तों की बाबत किए गए उपबंधों को निगमित कर दिए जाने से ही ऐसा नहीं है कि वे उपबंध डिक्री के भाग नहीं रह जाते। वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अपीलार्थी को डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने की छूट थी और उसके किसी भाग के विरुद्ध अपील फाइल करने की छूट थी। उनका यह भी तर्क है कि अपीलार्थी ने सम्पूर्ण डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल किए बिना किस्तों से संबंधित डिक्री के अंश के विरुद्ध ही अपील फाइल की। वे यह दलील देते हैं कि किस्तों के बारे में दिए गए निर्देशों के विरुद्ध सीमित अपील फाइल करने से गुणागुण के आधार पर डिक्रीत रकम के विरुद्ध बाद में अपील करने से रोक दिया जाता है। इस दलील के समर्थन में विद्वान महान्यायवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 के नियम 2 और आदेश 23 के नियम 1 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रति निर्देश किया है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 के नियम 2 में निम्नलिखित उपबंध किए हैं—

"2. (1) हर वाद के अन्तर्गत वह दावा होगा जिसे उस वाद-हेतुक के विषय में करने का वादी हकदार है, किन्तु वादी वाद को किसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर लाने की दृष्टि से अपने दावे के किसी भाग का त्याग कर सकेगा।

(2) जहां वादी अपने दावे के किसी भाग के बारे में वाद लाने का लोप करता है या उसे साशय त्याग देता है वहां उसके पश्चात् वह इस प्रकार लोप किए गए या व्यक्त भाग के बारे में वाद नहीं लाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(3) एक ही वाद-हेतुक के बारे में एक से अधिक अनुतोष पाने का हकदार व्यक्ति ऐसे सभी अनुतोषों या उनमें से किसी के लिए वाद ला सकेगा, किन्तु यदि वह ऐसे सभी अनुतोषों के लिए वाद लाने का लोप न्यायालय की इजाजत के बिना करता है तो उसके पश्चात् वह इस प्रकार लोप किए गए किसी भी अनुतोष के लिए वाद नहीं लाएगा।

स्पष्टीकरण—इस नियम के प्रयोजनों के लिए, कोई बाध्यता और उसके पालन के लिए सांपार्श्विक प्रतिभूति और उसी बाध्यता के अधीन उद्भूत उत्तरोत्तर दावों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे एक ही वाद-हेतुक गठित करते हैं।"

सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 23, नियम एक निम्नलिखित रूप में है—

"1. (1) वाद संस्थित किए जाने के पश्चात् किसी भी समय वादी सभी प्रतिवादियों या उनमें से किसी के विरुद्ध अपने वाद का परित्याग या अपने दावे के भाग का परित्याग कर सकेगा :

परन्तु जहां वादी अवयस्क है या ऐसा व्यक्ति है, जिसे आदेश 32 के नियम 1 से नियम 14 तक के उपबंध लागू होते हैं वहां न्यायालय की इजाजत के बिना न तो वाद का और न दावे के किसी भाग का परित्याग किया जाएगा।"

13. महान्यायवादी यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अपील किसी वाद का ही एक सिलसिला है और आदेश 2 के नियम 2 में अधिकथित सिद्धान्त किसी भी अपील को लागू होते हैं। उनका यह तर्क है कि अपील का अधिकार भी जो निस्सन्देह कानूनी अधिकार है, आदेश 2, नियम 2 के उपबंधों द्वारा ही नियंत्रित होगा और चूंकि अपील और वाद-हेतुक से उद्भूत होने वाली अपील की समस्त विषयवस्तु के विरुद्ध अपील फाइल नहीं की गई है इसलिए डिक्री के विरुद्ध कोई अन्य अपील फाइल करने का अधिकार स्पष्टतः समाप्त हो गया है। उन्होंने आगे यह भी निवेदन किया कि चूंकि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने केवल निर्णीत रकम की किस्तों के संदाय तक सीमित डिक्री के भाग के विरुद्ध ही अपील करने का निर्णय किया न कि डिक्री के गुणागुण के विरुद्ध और उस अपील को बिना किसी शर्त के वापस ले लेने से उसने स्पष्ट रूप से वर्तमान अपील फाइल करने के अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

14. इसके बाद विद्वान महान्यायवादी ने यह दलील दी कि वर्तमान मामले में इस पहलू के अतिरिक्त कि पूर्व निर्दिष्ट कानूनी उपबन्धों के द्वारा अपील करने का अधिकार परिसमाप्त हो चुका है, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि प्रतिवादी-अपीलार्थी निर्णीत रकम को किस्तों में संदत्त किए जाने का निदेश देने वाली डिक्री के एक भाग के विरुद्ध अपील फाइल करने के कारण अपील का अपना अधिकार नष्ट या अधित्यजित कर चुका है। विद्वान महान्यायवादी का यह तर्क है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी को सम्पूर्ण डिक्री के विरुद्ध, यदि वह उससे क्षुब्द था, अपील फाइल करने का अधिकार था। उनका यह निवेदन है कि यदि प्रतिवादी-अपीलार्थी को डिक्री के गुणागुण के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं थी बल्कि डिक्री के केवल उस भाग के विरुद्ध क्षुब्ध था जिसमें किस्तों की बाबत उपबंध किया गया था, तो निश्चित रूप से प्रतिवादी-अपीलार्थी गुणागुण के आधार पर उस डिक्री के विरुद्ध अपील के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता जिसके विरुद्ध उसे कोई शिकायत नहीं है और प्रतिवादी-अपीलार्थी ने उसके केवल उस भाग के विरुद्ध ही अपील फाइल की जिससे उसे शिकायत थी। वे यह भी निवेदन करते हैं कि चूंकि प्रतिवादी-अपीलार्थी ऐसा कर चुका है, इसलिए वह डिक्री के विरुद्ध गुणागुण के आधार पर अपील फाइल करने के अपने अधिकार का अधित्यजन कर चुका है।

15. विद्वान् महान्यायवादी ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रत्येक दशा में इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी-अपीलार्थी अपने अपील के अधिकार से विबंधित हो गया है, प्रतिवादी-अपीलार्थी ने किस्तों में संदाय के लिए डिक्री किए जाने की मांग की थी और प्रतिवादी-अपीलार्थी को किस्तों वाली डिक्री का लाभ मिला जिससे वादी-प्रत्यर्थी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। उनका यह तर्क है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी को यह छूट नहीं है कि उसके अधीन लाभ प्राप्त कर लेने के पश्चात् डिक्री की वैधता को प्रश्नगत करे। विद्वान् महान्यायवादी यह दलील देते हैं कि यद्यपि अपील करने का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जो क्षुब्ध पक्षकार को उपविधि द्वारा प्रदत्त किया जाता है, फिर भी क्षुब्ध पक्षकार दी गई परिस्थितियों में अपील के अपने अधिकार का प्रयोग करने या उसे लागू करने से विबंधित और/या प्रवारित किया जा सकता है। उनका यह निवेदन है कि यह बात सुस्थापित हो चुकी है कि यदि कोई पक्षकार किसी आदेश या डिक्री का लाभ उठाता है या उसके अधीन कोई प्रसुविधा उपाप्त करता हैं तो वह अपने आचरण द्वारा उस डिक्री या आदेश की वैधता का प्रश्न उठाने का हकदार नहीं रह जाता। विद्वान्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महान्यायवादी ने यह निवेदन करते हुए अपनी जिरह समाप्त की कि वर्तमान मामले में प्रतिवादी-अपीलार्थी डिक्री के विरुद्ध 1981 की अपील सं० 44 फाइल करने से स्पष्टतः विबंधित है। अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई उक्त अपील निम्नलिखित परिस्थितियों के कारण चलाई नहीं जा सकती :—

"(1) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने निर्णीत-रकम का किस्तों में संदाय किए जाने की मांग की है;

(2) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने डिक्री के विरुद्ध 1981 की अपील सं० 36 फाइल की है जो केवल किस्तों की बात है और मंजूर कर ली गई है और प्रतिवादी-अपीलार्थी ने डिक्री के औचित्य को प्रश्नगत करते हुए समस्त डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल नहीं की है;

(3) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने तत्पश्चात् कोई नई या पश्चात्वर्ती अपील फाइल करने की बाबत न्यायालय की इजाजत प्राप्त किए बिना डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई 1981 की अपील सं० 36 को वापस ले लिया है; और

(4) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने निर्णीत रकम का संदाय किस्तों में किए जाने की मांग की है और इस आशय की डिक्री प्राप्त हो जाने से वादी-प्रत्यर्थी पर, जो किस्तों में संदाय किए जाने से संबंधित उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए समस्त निर्णीत रकम की तत्काल वसूली सम्पन्न कराने से प्रवारित रह गया, प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए ऐसी डिक्री का लाभ प्राप्त किया है और प्रतिवादी-अपीलार्थी जिसने वादी-प्रत्यर्थी पर विपरीत प्रभाव डालते हुए डिक्री के अधीन लाभ या प्रसुविधा प्राप्त किया है, अब पारित डिक्री के औचित्य का प्रश्न उठाने के लिए वापस नहीं आ सकता।"

16. अपील फाइल करने का अधिकार उप-विधि द्वारा सृष्ट अधिकार है। कोई भी पक्षकार किसी भी निर्णय, डिक्री या आदेश के विरुद्ध किसी ऐसी विधि के उपयुक्त उपबन्धों के अभाव में जिसमें सम्बद्ध पक्षकार को ऐसे निर्णय, डिक्री या आदेश के विरुद्ध अपील फाइल करने का अधिकार दिया गया हो, अपने आप अपील फाइल नहीं कर सकता। किसी भी पक्षकार को इस प्रकार संदत्त अधिकार किसी विधि के उपबन्धों द्वारा और स्वयं पक्षकार के आचरण द्वारा भी युक्तियुक्त मामलों में समाप्त अभिनिर्धारित किया जा सकता है। किसी कानूनी उपबन्ध द्वारा कोई भी पक्षकार अपील फाइल करने के अधिकार से परिसीमा विधि द्वारा वंचित किया जा सकता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है । इसी प्रकार युक्तियुक्त मामलों में किसी पक्षकार के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि वह अपील प्रवृत्त कराने के अधिकार का हकदार नहीं रह गया है जो अन्यथा उसे प्राप्त होता ।

17. वर्तमान मामले में, इस बात में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि प्रतिवादी-अपीलार्थी को सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के आधार पर डिक्री के विरुद्ध अपील करने का अधिकार प्राप्त है । संहिता के आदेश 41 के साथ पठित संहिता की धारा 96 से यह बात पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है कि मूल डिक्री के विरुद्ध अपील की जा सकती है । इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि अपील परिसीमा अवधि के भीतर फाइल की गई है । इसलिए अपीलार्थी के अपील फाइल करने के अधिकार को परिसीमा विधि द्वारा विकल्प नहीं किया जा सकता ।

18. हमारी राय में वर्तमान मामले में आदेश 20 के नियम 11 के उपबन्ध डिक्री के विरुद्ध अपील करने के अधिकार से अपीलार्थी को वंचित नहीं करते । संहिता का आदेश 20, नियम 11 इस प्रकार उपबन्धित किया गया है :—

"(1) यदि और जहां तक कोई डिक्री धन के संदाय के लिए है तो और वहां तक न्यायालय उस संविदा में, जिसके अधीन धन संदेय है, अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, डिक्री पारित करते समय यह आदेश कर सकता है कि डिक्री रकम का संदाय ब्याज के सहित या बिना, मुल्तवी किया जाए या किस्तों में किया जाए ।

(2) ऐसी किसी डिक्री के पारित किए जाने के पश्चात् न्यायालय निर्णीत ऋणी के आवेदन पर और डिक्रीदार की अनुमती से आदेश दे सकेगा कि ब्याज के संदाय सम्बन्धी निर्णीत ऋणी की सम्पत्ति की कुर्की सम्बन्धी उससे प्रतिभूति लेने सम्बन्धी या अन्य ऐसे निबन्धनों पर जो वह ठीक समझे, डिक्रीत रकम का संदाय मुल्तवी किया जाए या किस्तों में किया जाए ।"

सिविल प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा आदेश 20 के नियम 11(1) को संशोधित कर दिया गया और संशोधित नियम इस प्रकार है :—

"(1) यदि और जहां तक कोई डिक्री धन के संदाय के लिए है तो और वहां तक न्यायालय उस संविदा में, जिसके अधीन धन संदेय है, अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी (उन पक्षकारों को जो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

> अन्तिम सुनवाई में स्वयं या प्लीडर द्वारा उपसंजात थे, सुनने के पश्चात्, निर्णय के पूर्व डिक्री में किसी पर्याप्त कारण से यह आदेश सम्मिलित कर सकेगा) कि डिक्रीत रकम का संदाय ब्याज के सहित या बिना, मुल्तवी किए जाए या किस्तों में किए जाए।"

आदेश 20 के नियम 11 में धन सम्बन्धी डिक्री के संदाय को स्थगित करने के बारे में और उस संदाय को किस्तों में कराए जाने के बारे में उपबन्ध किए गए हैं और उसमें ऐसी प्रक्रिया अधिकथित की गई है जिसके माध्यम से धन सम्बन्धी डिक्री का संदाय किस्तों में करने का निदेश दिया जा सकता है। संशोधनकारी अधिनियम, 1976 द्वारा आदेश 20 के नियम 11(1) में जो संशोधन किया गया उसमें यह अपेक्षा की गई है कि डिक्रीत रकम के संदाय को स्थगित करने या उसे किस्तों में किए जाने से सम्बन्धित उपबन्ध डिक्री में ही अभिलिखित किए जाएं। इस उपबन्ध को ध्यान में रखते हुए जिसमें यह अपेक्षा की गई है कि धन सम्बन्धी डिक्री के संदाय को स्थगित करने या उसका किस्तों में संदाय कराए जाने का आदेश डिक्री में ही निगमित किया जाए। हमारे समक्ष जो प्रश्न विचार के लिए आता है वह यह है कि क्या किस्तों की बाबत किए गए उपबन्ध के विरुद्ध अपील पहले फाइल की गई अपील डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई अपील है अथवा आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील और इसी में अगला प्रश्न यह है कि वह सक्षम थी या नहीं। यदि पूर्ववर्ती अपील को आदेश के विरुद्ध की गई अपील मान लिया जाए तो स्पष्टतः पूर्ववर्ती अपील अक्षम होगी। किस्तें अनुज्ञात करने या किस्तें अनुज्ञात करने से इनकार करने से सम्बन्धित किसी उपबन्ध के विरुद्ध की गई कोई अपील सक्षम नहीं होगी यदि किस्तें अनुज्ञात करने वाले या किस्तें अनुज्ञात करने से इनकार करने वाले निदेश को आदेश मान लिया जाता है। संहिता के अधीन ऐसे आदेश के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती। ऐसा आदेश लैटर्स पेटेण्ट के खण्ड 15 के अर्थान्तर्गत निर्णय भी नहीं होगा और इस प्रकार उसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकेगी। वस्तुतः किसी भी विधि में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जिसके द्वारा ऐसे आदेश को अपीलीय आदेश बनाया जा सके। तथापि यदि किस्तों से सम्बन्धित निदेश को डिक्री का भाग समझ लिया जाता है तो उसी प्रकार उसके विरुद्ध अपील की जा सकेगी जैसे किसी डिक्री के विरुद्ध अपील की जाती है। वर्तमान मामले में तथ्य और परिस्थितियां यह उपदर्शित करती हैं कि वस्तुतः प्रतिवादी-अपीलार्थी ने किस्तों की बाबत किए गए निदेश को आदेश मानते हुए उसके विरुद्ध अपील फाइल की थी। प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए याचना-पत्र और उसके अधिवक्ता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वारा 16 जनवरी, 1981 को मुम्बई उच्च न्यायालय के प्रोटोनोटरी और सीनियर मास्टर को लिखे गए पत्र, फाइल की गई अपील का ज्ञापन और ज्ञापन पर लगाए गए स्टाम्प इन सबसे यह उपदर्शित होता है कि फाइल की गई अपील आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील थी। यदि श्री नारीमन की यह दलील कि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 आदेश के विरुद्ध की गई अपील मान ली जाती है तो उक्त अपील को अक्षम अभिनिर्धारित करना होगा। श्री नारीमन की इस दलील में कुछ बल प्रतीत होता है कि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 संहिता के आदेश 20, नियम 11 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के होते हुए भी आदेश के विरुद्ध की गई अपील थी। मुम्बई उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता पक्ष से सम्बन्धित नियमों में डिक्री अभिलिखित किए जाने के बारे में उपबन्ध किए गए हैं। संहिता के आदेश 20 के नियम 11 के अधीन किया गया कोई आदेश डिक्री में तभी समाविष्ट किया जा सकता है जब वह अभिलिखित कर ली जाए। मुम्बई उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता पक्ष के नियमों में डिक्री अभिलिखित किए जाने के बारे में आवश्यक उपबंध किए गए हैं। डिक्री अभिलिखित किए जाने से सम्बन्धित नियमों में अधिकथित प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए यह निश्चित है कि निर्णय और डिक्री, जिसमें किस्तों की बाबत आदेश भी समाविष्ट किया जाना है, तैयार करने के बीच समयान्तर हो सकता है। श्री नारीमन ने ठीक ही यह उल्लेख किया है कि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 उस डिक्री से बहुत पहले फाइल की गई थी जिसमें संहिता के आदेश 20 के नियम 11 के अधीन किस्तों की बाबत आदेश को समाविष्ट किया जाना था और जिसे अभिलिखित कर लिया गया और वह समाविष्ट आदेश के साथ विद्यमान है। श्री नारीमन की इस दलील में बल प्रतीत होता है कि जहां तक किस्तों से सम्बन्धित आदेश समाविष्ट करने वाली डिक्री का प्रश्न है, जब तक वह संहिता के आदेश 20 के नियम 11 के संशोधित उपबंधों के अनुसार नहीं तैयार की गई है, तब तक किस्तों की बाबत किया गया निदेश या आदेश विधि की दृष्टि में आदेश की प्रकृति का ही रहेगा।

19. संहिता के आदेश 20, नियम 11 में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि धन संबधी डिक्री के संदाय को स्थगित करने या किस्तों में संदाय किए जाने से संबंधित निदेश एक स्वतंत्र आदेश है जिसे डिक्री में समाविष्ट किया जाना चाहिए। 1981 की अपील सं० 36 निर्णय की उद्घोषणा किए जाने के तुरन्त पश्चात् और किस्तों से संबंधित आदेश को समाविष्ट करने वाली डिक्री के तैयार किए जाने से पूर्व फाइल की गई थी। निर्णीत रकम के संदाय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की बाबत दिया गया निदेश ऐसा आदेश है जिसे डिक्री में समाविष्ट किए जाने की अपेक्षा है और इसे डिक्री में उसी समय समाविष्ट किया जा सकता है जब डिक्री तैयार कर ली जाए। जब तक यह डिक्री में समाविष्ट न कर दी जाए तब तक इसकी प्रकृति आदेश की ही होगी। चूंकि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 को फाइल करने के समय किस्तों से संबंधित आदेश को डिक्री में समाविष्ट नहीं किया जा सका था इसलिए उस आदेश का स्वरूप आदेश ही रहा। इसलिए 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 को जिस समय उसे फाइल किया गया, आदेश के विरुद्ध की गई अपील समझा जाना चाहिए। आदेश को तैयार करने के लिए फाइल की गई याचना, प्रतिवादी-अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा उच्च न्यायालय के प्रोथोनोटरी और सीनियर मास्टर को लिखे गए पत्र; फाइल की गई अपील का ज्ञापन और ज्ञापन पर लगाए गए स्टाम्प की रकम ऐसे तथ्य हैं जिनसे यह उपदर्शित होता हैं कि पूर्ववर्ती अपील किस्तों की बाबत किए गए आदेश को आदेश मानते हुए उसके विरुद्ध फाइल की गई थी।

20. यदि हम महान्यायवादी की इस दलील को स्वीकार भी कर लें कि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 की बाबत यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह विधि की दृष्टि से डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई अपील है। क्योंकि विधि की दृष्टि से किस्तों की बाबत किया गया आदेश संहिता के संशोधित आदेश 20, नियम 11 में अन्तर्विष्ट उपबंधों द्वारा डिक्री का ही एक भाग है, इसलिए इसके बावजूद भी अपील अक्षम मानी जाएगी क्योंकि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने स्टाम्प की उतनी रकम प्रस्तुत की थी जो किसी आदेश के विरुद्ध की जाने वाली अपील के लिए आवश्यक होती है और किसी डिक्री के विरुद्ध अपील में प्रस्तुत किए जाने वाले अपेक्षित स्टाम्प नहीं संलग्न किए गए थे। यदि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 को डिक्री के विरुद्ध की गई अपील समझ लिया जाए, तो डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत की जाने वाली अपेक्षित न्यायालय फीस के संदाय के अभाव में अपील अक्षम नहीं रहेगी। यद्यपि उच्च न्यायालय के मूल अधिकारिता पक्ष के नियमों के उपबंधों द्वारा किसी डिक्री या आदेश की प्रमाणित प्रति के बिना भी अपील फाइल की जा सकती है जिसके कि—अपीली न्यायालय द्वारा तुरन्त अन्तरिम राहत पाने के लिए पक्षकार को सक्षम बनाने के लिए किया गया उपबन्ध—अपील की दशा में डिक्री की प्रमाणित प्रति फाइल करने की अतिरिक्त अपेक्षा होती है जो परिसीमा अवधि के भीतर प्रस्तुत की जानी चाहिए जिससे कि अपील वैध और सक्षम हो सके जिसे अभी पूरा किया जाना है। जब तक डिक्री की प्रमाणित प्रति फाइल नहीं कर दी जाती, तब तक अपील सक्षम नहीं होती और परिसीमा अवधि के भीतर डिक्री की प्रमाणित

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रति फाइल न किए जाने के कारण अपील को सक्षम तथा अवैध मानकर खारिज किया जा सकता है। जब तक डिक्री की प्रमाणित प्रति फाइल नहीं कर दी जाती तब तक विधि की दृष्टि में वैध अपील नहीं मानी जाती। जगत धीश भार्गव बनाम जवाहर लाल भार्गव (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने पृष्ठ 922 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :—

"आदेश 41, नियम 1 में विधि की स्थिति पूर्णतः स्पष्ट है। उक्त नियम के अधीन प्रत्येक अपीलार्थी या उसके अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी और ज्ञापन के रूप में न्यायालय को या ऐसे अधिकारी को जो उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किया जाए, प्रस्तुत की जाएगी और उसके साथ उस डिक्री की, जिसके विरुद्ध अपील की गई है और उस निर्णय की, जिस पर वह आधारित है, एक प्रति भी संलग्न की जाएगी। नियम 1 द्वारा अपीली न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह निर्णय की प्रति फाइल करने से छूट दे सकता है किन्तु अपीली न्यायालय को यह अधिकारिता नहीं है कि वह डिक्री फाइल करने से छूट दे सके। जहां डिक्री ऐसी हो जिसमें विभिन्न और सुभिन्न तथा पृथक्करणीय निदेश एक ही या कतिपय प्रतिवादियों के विरुद्ध प्रवर्तनीय हों, हां न्यायालय डिक्री के ऐसे ही भागों को ही फाइल करने की अनुमति दे सकता है जो अपील की विषयवस्तु हैं किन्तु यह एक ऐसी समस्या है जिससे वर्तमान मामले में हमारा कोई सरोकार नहीं है। विधि की दृष्टि में अपील निर्णय का उतना विरोध नहीं करती जितना कि वह डिक्री का करती है। इसीलिए परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 156 में अपील के लिए 90 दिन की अवधि विहित की गई है और यह उपबन्ध किया गया है कि यह अवधि अपीलाधीन डिक्री की तारीख से आरम्भ होगी। इसलिए इस बात में कोई संदेह नहीं है कि अपील के ज्ञापन के साथ डिक्री का फाइल किया जाना आज्ञापक है और डिक्री के अभाव में फाइल की गई अपील अपूर्ण, त्रुटिपूर्ण और अक्षम होगी।"

शकुन्तला देवी बनाम कुन्तल कुमारी[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पृष्ठ 724-726 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया—

"संहिता के आदेश 41, नियम 1 में यह उपबन्ध है कि प्रत्येक अपील ज्ञापन के प्ररूप में की जाएगी और अपीलार्थी या उसके

[1] [1969] 1 उम० नि० प० 720=[1969] 1 एस० सी० आर० 1006.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्लीडर द्वारा हस्ताक्षरित होगी "और ज्ञापन के साथ उस डिक्री की प्रतिलिपि लगानी होगी जिसकी अपील की गई है और (जब तक कि अपील न्यायालय इसकी अभिमुक्ति नहीं देता तब तक) उस निर्णय की प्रतिलिपि भी लगानी होगी जिस पर वह डिक्री आधारित है।" अपील न्यायालय आदेश 41, नियम 1 के अधीन निर्णय के प्रतिलिपि का फाइल किया जाना अभिमुक्त कर सकता है किन्तु उसे यह शक्ति नहीं है कि वह डिक्री की प्रतिलिपि का फाइल किया जाना अभिमुक्त कर सके। डिक्री और निर्णय लोक दस्तावेजें हैं और साक्ष्य अधिनियम की धारा 77 के अधीन केवल प्रमाणित प्रतिलिपि ही उनकी अन्तर्वस्तुओं के सबूत में पेश की जा सकती है। जब तक कि डिक्री और निर्णय की प्रमाणित प्रतिलिपियां साथ में न लगी हों तब तक तर्क अपील का ज्ञापन विधिमान्य रूप से प्रस्तुत नहीं माना जाता।

श्री मिश्र की दलील यह है कि डिक्री अधिनिर्णयन की प्ररूपिक अभिव्यक्ति है और जहां पर, जैसे कि इस मामले में कोई प्रारूपिक डिक्री तैयार नहीं की गई है वहां धारा 47 के अधीन अवधारण एक निर्णय होता है और जब न्यायालय अपील मंजूर कर लेता है तब यह उपधारणा करनी चाहिए कि उसने निर्णय की प्रतिलिपि फाइल करने की अभिमुक्ति दी है। इस सम्बन्ध में श्री मिश्र ने हमारा ध्यान धारा 2 (2), 33 और आदेश 20, नियम 1, 4, 6 की ओर दिलाया है। हम इन दलीलों को नहीं मान सकते। हमारा समाधान इस बात से नहीं हुआ है कि उच्च न्यायालय ने धारा 47 के अधीन आदेश की प्रतिलिपि फाइल करने की अभिमुक्ति दी थी। यह बात मानी हुई है कि उच्च न्यायालय ने इस आशय का कोई अभिव्यक्त आदेश पारित नहीं किया था। हो सकता है कि किसी समुचित मामले में ऐसा आदेश इस तथ्य से विवक्षित हो कि उच्च न्यायालय ने अपील तब मंजूर की जब उसका ध्यान इस त्रुटि की ओर दिलाया गया था देखिए जी० आई० पी० रेलवे कम्पनी बनाम राधाकृष्ण जयकिशन, ए० आई० आर० 1926 नागपुर 57)। 1 किन्तु प्रस्तुत मामले में उच्च न्यायालय को इस त्रुटि की जानकारी नहीं थी और उसका आशय प्रतिलिपि फाइल न करने की अभिमुक्ति देने का नहीं था।

इसके अलावा यह भी बात कि धारा 47 के अधीन आदेश एक डिक्री है और उच्च न्यायालय को यह शक्ति नहीं है कि वह डिक्री

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की प्रतिलिपि फाइल करने की अभिमुक्ति दे सके। मामूली तौर पर डिक्री से वाद में अधिनिर्णयन की प्ररूपिक अभिप्रेत है। निर्णय के बाद डिक्री होती है और डिक्री को अलग से तैयार किया जाना चाहिए। किन्तु धारा 2(2) के अधीन 'डिक्री' शब्द से यह समझा जाता है कि उसके अन्तर्गत धारा 47 के अधीन किसी प्रश्न का अवधारण है। डिक्री की यह सम्मिलित परिभाषा आदेश 41, नियम 1 को भी लागू होती है। कुछ न्यायालयों में धारा 47 के अधीन विनिश्चय को डिक्री की तरह प्ररूपिक ढंग से तैयार करने की अपेक्षा की जाती है और ऐसे मामले में अपील के ज्ञापन के साथ डिक्री की प्रतिलिपि और निर्णय भी लगा होना चाहिए। किन्तु कुछ अन्य न्यायालयों में धारा 47 के अधीन अधिनिर्णयन को शामिल करते हुए, अलग डिक्री नहीं तैयार की जाती। ऐसे मामले में धारा 47 के अधीन विनिश्चय, डिक्री और निर्णय भी होता है और ऐसे विनिश्चय की प्रमाणित प्रतिलिपि का फाइल किया जाना आदेश 41, नियम 1 का पर्याप्त अनुपालन है। चूंकि विनिश्चय डिक्री है इसलिए अपील तब तक अक्षम है जब तक कि अपील के ज्ञापन के साथ विनिश्चय की प्रमाणित प्रतिलिपि न लगी हुई हो। हमारा ध्यान बोधनारायण मेहता **बनाम** महावीर प्रसाद और अन्य (ए० आई० आर० 1940 पटना 176) की ओर दिलाया गया है जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिपति अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किया था कि जहां धारा 47 के अधीन विनिश्चय के मामले में प्ररूपिक डिक्री तैयार नहीं की गई है वहां अपीलार्थी से अपील के ज्ञापन के साथ आदेश की प्रतिलिपि फाइल करने की अपेक्षा नहीं की जाती। हम इस विनिर्णय से सहमत नहीं हो सकते। इसकी ठीक पद्धति कमलादेवी **बनाम** तारापद मुखर्जी (15 सी० एल० जे० 498) में अधिकथित है। इसमें न्यायाधिपति मुखर्जी ने यह मत व्यक्त किया था कि—

"अब ऐसा अक्सर होता है कि निष्पादन कार्यवाहियों के मामलों में यद्यपि निर्णय रहता है किन्तु कोई आदेश अर्थात् विनिश्चयों की प्ररूपिक अभिव्यक्ति नहीं तैयार की जाती। ऐसे मामलों में निर्णय का अन्तिम प्रभाग, जिसमें आदेश शामिल रहता है, ऐसा आदेश माना जाता है जिसकी अपील की जाती है। ऐसे मामले में अपीलार्थी के लिए अपनी अपील के ज्ञापन के साथ केवल निर्णय की प्रतिलिपि संलग्न करना पर्याप्त समझा जाएगा और निर्णय की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तारीख से समय प्रारम्भ हो जाना चाहिए। किन्तु जहां निर्णय में विनिश्चय के आधारों का कथन किया गया है और विनिश्चय की प्रारूपिक अभिव्यक्ति को शामिल करते हुए अलग आदेश तैयार किया गया है, जैसा कि इस मामले में किया गया है तो दोनों दस्तावेजों की प्रतिलिपियां ज्ञापन के साथ संलग्न करनी चाहिएं और अपीलार्थी को इनकी प्रतिलिपियां अभिप्राप्त करने में जितना समय लगता है उतने समय की छूट मिलने का उसे हक प्राप्त है।"

हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि तारीख 20 जनवरी, 1967 के आदेश की अपील के ज्ञापन के साथ आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि लगी होनी चाहिए थी और अपेक्षित प्रतिलिपि के अभाव में अपील त्रुटिपूर्ण तथा अक्षम है।

21. यद्यपि मुम्बई उच्च न्यायालय के आरम्भिक अधिकारिता पक्ष के नियमों के उपबन्धों द्वारा पूर्ववर्ती अपील को डिक्री या आदेश की प्रमाणित प्रति के बिना भी फाइल करने की अनुमति दी जा सकती थी, तथापि अपील तब तक वैद्य और सक्षम नहीं होती जब तक कि प्रमाणित प्रति फाइल करने की अपेक्षा को पूरा नहीं कर दिया जाता। जिस समय 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 को वापस लिया गया, डिक्री की प्रमाणित प्रति फाइल नहीं की गई थी। डिक्री की प्रमाणित प्रति के बिना उक्त अपील अक्षम रह गई, इस प्रकार किसी अक्षम अपील को वापस लिए जाने से जो विधि की दृष्टि से वस्तुतः अपील है ही नहीं, अपीलार्थी के समुचित अपील फाइल करने के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ सकता यदि अपील फाइल करने का अधिकार समय व्यतीत जाने अथवा किसी अन्य वैध कारण से अपने आप समाप्त नहीं हो जाता जाता। इसलिए हमारी यह राय है कि संहिता के आदेश 20, नियम 11 में अन्तर्विष्ट उपबन्ध वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने के अपीलार्थी के अधिकार से उसे वंचित नहीं करते।

22. 1981 की पश्चात्वर्ती अपील सं० 44 को फाइल किए जाने के विषय में भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबन्ध किसी भी तरह से अपीलार्थी के रास्ते में रोड़ा नहीं अटकाते। आदेश 2, नियम 2 वादों के सम्बन्ध में है और उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि प्रत्येक वाद में वादी द्वारा वह समस्त दावा सम्मिलित किया जाएगा जिसकी बाबत वह वाद हेतुक के लिए हकदार है। किन्तु कोई वादी किसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर वाद लाने के अपने दावे के किसी भाग का अधित्यजन कर सकता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। आदेश 2, नियम 2(2) में आगे यह उपबन्ध किया गया है कि जहां वादी अपने दावे के किसी भाग की बाबत वाद लाने से विरत रहता है या जानबूझ कर वाद का अधित्यजन करता है, वहां वह बाद में इस प्रकार विरत या अधित्यजित भाग की बाबत दावा नहीं कर सकता। आदेश 2, नियम 2(2) यह अपेक्षा करता है कि एक ही वाद-हेतुक की बाबत एक से अधिक अनुतोष पाने का हकदार व्यक्ति ऐसे अनुतोषों में से सब के लिए या किसी के लिए वाद ला सकता है। किन्तु यदि इस न्यायालय की अनुमति के सिवाय ऐसे समस्त अनुतोषों के लिए वाद लाने से विरत रहता है, तो वाद में वह इस प्रकार विरत रह गए अनुतोषों में से किसी के लिए वाद नहीं ला सकता। स्पष्टीकरण में यह उपबन्ध किया गया है कि इस नियम के प्रयोजनों के लिए उसे पूरा करने के लिए बाध्यता और साम्पार्श्विक प्रतिभूति देनी होगी और उसी बाध्यता के अधीन जाने वाले पश्चात्वर्ती दावों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे क्रमशः एक ही वाद-हेतुक के अंग हैं। आदेश 2, नियम 2 के उपबन्धों से यह स्पष्ट है कि यह नियम केवल वादों पर ही लागू होता है और अपने निबन्धनों के अनुसार अपीलों पर लागू नहीं हो सकता। यदि किसी अपील को कतिपय प्रयोजनों के लिए वाद की ही श्रृंखला समझ लिया जाए तो भी आदेश 2, नियम 2 के उपबन्ध अपने निबन्धनों के अनुसार उक्त नियम की स्कीम और उसमें प्रयोग की गई भाषा को ध्यान में रखते हुए, किसी अपील को लागू नहीं हो सकते। आदेश 2, नियम 2 में यह अनुध्यात किया गया है कि वह समस्त दावा जिसे किसी वाद-हेतुक की बाबत करने के लिए वादी हकदार है, वाद संस्थित किए जाने के आरम्भिक प्रक्रम पर किया जाना चाहिए और आगे उक्त नियम की अपेक्षाओं का अनुपालन न करने के परिणामस्वरूप होने वाले अन्जाम के बारे में उपबन्ध किया गया है। वस्तुतः यह वाद संदिग्ध है कि क्या इस नियम में समाहित सिद्धान्तों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे किसी अपील को लागू होते हैं। यदि आदेश 2, नियम 2 में समाहित सिद्धान्तों के बारे में यह मान भी लिया जाए कि वे किसी अपील को लागू होते हैं, तो भी वर्तमान मामले के चल सकने के बारे में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि वह किसी भी प्रकार वाद-हेतुक द्वारा प्रभावित हुआ है, क्योंकि वर्तमान अपील का वाद-हेतुक उस वाद-हेतुक से पूर्णतः भिन्न है जिसके आधार पर पूर्ववर्ती अपील फाइल की गई थी है।

23. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 23, नियम 1 वर्तमान अपील के चलाए जा सकने की बाबत मार्ग में बाधा उपस्थित नहीं करता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पूर्ववर्ती अपील को जो अक्षम थी और जो विधि की दृष्टि से अपील थी ही नहीं और जिसका सम्बन्ध केवल किस्तों से सम्बन्धित उपबन्धों से था, वापस लिए जाने से वर्तमान अपील की वैधता किसी भी रूप में प्रभावित नहीं हो सकती । 1981 की पूर्ववर्ती अपील संख्या 36 के अक्षम होने के अतिरिक्त उक्त अपील की विषयवस्तु वर्तमान अपील की विषयवस्तु से सर्वथा भिन्न थी ।

24. आगे यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 20, नियम 11, आदेश 2, नियम 2 और आदेश 23, नियम 1 के उपबन्धों में अन्तर्विष्ट प्रक्रिया अपनी भाषा के अनुसार अपील के अधिकार से सम्बन्धित किसी प्रश्न के बारे में या उसके अधित्यजन के बारे में नहीं है । पूर्वोक्त उपबन्ध किसी भी पक्षकार को अपने आप अपील फाइल करने का कोई अधिकार नहीं देते अथवा न ही वे किसी पक्षकार को प्राप्त अपील के अधिकार से उसे वंचित कर सकते हैं । ये कोई कानूनी उपबन्ध नहीं हैं जो किसी पक्षकार को या तो अपील का अधिकार प्रदत्त करते हैं अथवा किसी पक्षकार को ऐसे अधिकार से वंचित करते हैं । हमने इससे पूर्व इन उपबन्धों के प्रभाव के बारे में विचार-विमर्श किया है और हमारी यह राय है कि ये उपबन्ध इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी-अपीलार्थी को वर्तमान अपील फाइल करने के उसके अधिकार से वंचित नहीं करते ।

25. एकमात्र दूसरा प्रश्न जिस पर विचार किए जाने की अपेक्षा रह जाती है, यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए प्रतिवादी-अपीलार्थी पूर्ववर्ती अपील फाइल करने तथा उसे वापस ले लेने के पश्चात् वर्तमान अपील फाइल करने का हकदार रह गया है या नहीं । इस बात को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता कि अपील करने का अधिकार जो निस्सन्देह किसी उपविधि से प्राप्त होता है, उसे कोई भी पक्षकार किसी उपयुक्त मामले में, खो भी सकता है और कोई अपीलार्थी अपील करने के अपने अधिकार से रोका भी जा सकता है । किसी पक्षकार ने विधि द्वारा उसे प्रदत्त अपने बहुमूल्य अधिकार को खो दिया है अथवा नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है ।

26. वे तथ्य और परिस्थितियां जिन का आश्रय इस निवेदन का समर्थन करने के लिए लिया गया है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी वर्तमान मामले में प्रस्तुत अपील अर्थात् 1981 की अपील सं० 44 फाइल करने का हकदार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं रह गया है, निम्नलिखित हैं : (1) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने निर्णीत रकम को किश्तों में संदत्त किए जाने की प्रार्थना करते हुए संदाय स्थगित करने के लिए शपथपत्र फाइल किया था; (2) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने डिक्री के विरुद्ध गुणागुण के आधार पर वर्तमान अपील फाइल करने से पूर्व किस्तों की बाबत दिए गए निदेशों के विरुद्ध अपील फाइल की थी; (3) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने वर्तमान अपील फाइल करने के लिए न्यायालय की अनुमति प्राप्त किए बिना पूर्ववर्ती अपील वापस ले लिया था; (4) प्रतिवादी-अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किस्तों से सम्बन्धित डिक्री का लाभ प्राप्त कर लिया है। हम यहां इस बात का उल्लेख कर सकते हैं कि मुम्बई उच्च न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ के विद्वान् न्यायाधीशों ने जिस आधार को बहुत महत्व दिया, वह किस्तों से सम्बन्धित उपबन्ध था और न कि डिक्री के विरुद्ध गुणागुण के आधार पर अपील फाइल किया जाना।

27. अब हम आगे इस बात पर विचार करना चाहेंगे कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम न्यायोचित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि प्रतिवादी-अपीलार्थी वर्तमान अपील फाइल करने का हकदार नहीं रह गया है।

28. यह बात विवादास्पद नहीं है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने निर्णीत रकम के संदाय को स्थगित करने के सम्बन्ध में और रकम का किस्तों में संदाय किए जाने के बारे में शपथपत्र फाइल किया था। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किसी मामले की सुनवाई के अन्त में और निर्णय की उद्घोषणा किए जाने से पूर्व शपथपत्र फाइल किए जाने को प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से किया गया ऐसा आचरण नहीं समझा जा सकता, जिससे वह किसी ऐसी डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने का हकदार न रह सके जो अन्ततः उसके विरुद्ध पारित की जानी है। संहिता के आदेश 20, नियम 11(1) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए किस्तों की बाबत की गई प्रार्थना निश्चित रूप से निर्णय उद्घोषित किए जाने और डिक्री पारित किए जाने से पूर्व ही की जानी थी क्योंकि न्यायालय डिक्री पारित करने के पश्चात् भी केवल डिक्रीधारी की सहमति से ही संहिता के आदेश 20, नियम 11(2) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अनुसार किस्तें मंजूर कर सकता है। वाद की सुनवाई के अन्तिम क्षण तक प्रतिवादी-अपीलार्थी ने वादी-प्रत्यर्थी के दावे का बहुत तत्परता से विरोध किया और वस्तुतः वादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध उसने प्रति-दावा प्रस्तुत किया। निर्णय सुनाए जाने से पूर्व प्रतिवादी-अपीलार्थी किसी भी प्रकार से किसी भी सीमा तक निश्चित रूप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से यह नहीं जान सकता था कि प्रतिवादी-अपीलार्थी के विरुद्ध कोई डिक्री पारित हो सकती है या नहीं और यदि पारित होगी तो उसकी रकम क्या होगी। ऐसी परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि कोई भी पक्षकार जो आदेश 20, नियम 11(1) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए निर्णीत रकम के संदाय को स्थगित किए जाने के लिए प्रार्थना करता है, उसका संदाय किस्तों में करने के लिए अभ्यावेदन नहीं करेगा और अपने विरुद्ध पारित की जाने वाली किसी भी डिक्री को स्वीकार करेगा और उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं फाइल करेगा। संहिता के आदेश 20, नियम 11(1) में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के आधार पर निर्णीत रकम के संदाय को स्थगित किए जाने या किस्तों में संदाय किए जाने की ऐसी समय पर की गई प्रार्थना को जबकि वाद का विनिश्चय अभी भी उद्घोषित किया जाना है, उस पक्षकार के विरुद्ध ऐसा आचरण नहीं समझा जाएगा जिससे वह डिक्री के विरुद्ध अपील करने के अधिकार से वंचित किया जा सके और अन्ततः डिक्री पारित किए जाने पर डिक्री के विरुद्ध अपील करने का हकदार न रह सके। यह बात निस्सन्देह रूप से सत्य है कि निर्णय उद्घोषित कर दिए जाने के पश्चात् और डिक्री पारित कर दिए जाने पर प्रतिवादी-अपीलार्थी को उस डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने की छूट है। इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि निर्णय की उद्घोषणा किए जाने और डिक्री पारित किए जाने के तुरन्त पश्चात् प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से मुम्बई उच्च न्यायालय के प्रोथोनोटरी और सीनियर मास्टर को तीन पृथक्-पृथक् याचनाएं या अधियाचनाएं प्रस्तुत की गईं। निर्णय की प्रमाणित प्रति के लिए अधियाचना प्रस्तुत करने के अतिरिक्त डिक्री की प्रमाणित प्रति के लिए भी, जब वह तैयार कर ली जाए, विशिष्ट रूप से अधियाचना की गई और साथ ही आदेश के कार्यवृत्त की प्रमाणित प्रति के लिए भी अधियाचना फाइल की गई। डिक्री और निर्णय की प्रमाणित प्रतियों के लिए तत्काल अधियाचना फाइल करने से प्रतिवादी-अपीलार्थी का यह आशय स्पष्ट हो जाता है कि वह डिक्री के विरुद्ध अपील करना चाहता है। यह बात सामान्यतः सभी जानते हैं कि मुकदमेबाजी के मामलों में पक्षकार से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह विधि और अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के नियमों की औपचारिकताओं से पूर्णतः अवगत हो और सामान्यतः वकील अपनी सलाह से उसका मार्गदर्शन करता है। खण्ड न्यायपीठ द्वारा अपने निर्णय में वकीलों का जो बयान लिया गया है, उससे यह बात स्पष्टतः उपदर्शित होती है कि वकील ने ही गलतफहमी के कारण पूर्ववर्ती अपील फाइल करने की सलाह दी थी। वकील की गलतफहमी के आधार पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा की गई कार्यवाही इस बात के लिए पर्याप्त आधार नहीं प्रदान करती कि प्रतिवादी-अपीलार्थी को डिक्री के विरुद्ध अपील करने के उसके मूल्यवान कानूनी अधिकार से वंचित किया जाए। हमने पहले भी यह अभिनिर्धारित किया है कि किस्तों से सम्बन्धित उपबन्धों के विरुद्ध की गई 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 अक्षम थी और इस प्रकार अक्षम अपील फाइल करने या उसे वापस ले लेने से कोई भी विधिक परिणाम नहीं निकलता, जिससे कि प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा डिक्री के विरुद्ध समुचित अपील फाइल करने के उसके अधिकार पर कोई प्रतीकूल प्रभाव पड़े। अब जो प्रश्न विचार-विमर्श के लिए रह जाता है, वह यह है कि क्या प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा किस्तों से सम्बन्धित आदेश के विरुद्ध अपील फाइल किया जाना और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल न किया जाना जबकि उसे दोनों के विरुद्ध अपील फाइल करने की छूट थी, प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से किया गया ऐसा आचरण समझा जा सकता है, जिससे वह वर्तमान अपील फाइल करने का हकदार न रह गया हो। हमारी राय में, वकील की गलत सलाह पर अक्षम अपील फाइल करने से प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से ऐसा कोई आचरण प्रकट नहीं होता। ऐसी अपील, जो अक्षम है, निश्चित रूप से विफल हो जाएगी और इस प्रकार के मामले में अपीलार्थी के लिए उचित तरीका यह होगा कि वह एक वैध और सक्षम अपील फाइल करे। अक्षम अपील फाइल करने और उसे वापस ले लिए जाने से समुचित अपील फाइल करने के अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता और इसे प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से किया गया ऐसा आचरण नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता जिससे कि वह वैध अपील फाइल करने के अपने अधिकार से वंचित किया जा सके। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 को फाइल करने से प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से ऐसा कोई आशय प्रकट नहीं होता कि वह डिक्री के विरुद्ध कोई अपील नहीं फाइल करेगा और उसे इस प्रकार निरूपित नहीं किया जा सकता कि अन्यथा उसने डिक्री को स्वीकार कर लिया है। प्रतिवादी-अपीलार्थी के आचरण का निर्णय करने के लिए और यह विनिश्चत करने के लिए कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने डिक्री के विरुद्ध अपील करने के अधिकार को समाप्त, अधित्यजित या परित्याग कर दिया है या नहीं, उन समस्त सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना होगा जिनका इस प्रश्न से सम्बन्ध है। इस मामले के तथ्य और परिस्थितियां स्पष्टतः यह उपदर्शित करती हैं कि प्रतिवादी-अपीलार्थी डिक्री से व्यथित हुआ और उसने उसे स्वीकार करने और डिक्री के विरुद्ध अपील

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न करने का आशय कहीं भी प्रकट नहीं किया। जैसाकि हमने पहले देखा है, प्रतिवादी-अपीलार्थी ने न केवल वादी-प्रत्यर्थी के दावे से इनकार और उसका प्रतिवाद किया है बल्कि उसने वादी-प्रत्यर्थी के वाद और दावे का विरोध पूर्ण तत्परता के साथ किया है। प्रतिवादी-अपीलार्थी ने निर्णय उद्घोषित किए जाने के तुरन्त पश्चात् अपील फाइल किए जाने के लिए डिक्री और निर्णय की प्रमाणित प्रतियों की तत्काल अभ्यपेक्षा करते हुए, डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने के अपने आशय को प्रकट कर दिया है। प्रतिवादी-अपीलार्थी के वाद में अन्तर्ग्रस्त रकम बहुत मोटी रकम थी और वाद में निर्णय और डिक्री प्रतिवादी-अपीलार्थी के विरुद्ध पारित की गई। हमारी राय में, इस पृष्ठभूमि वकील की सलाह से फाइल की गई पूर्ववर्ती गलत अपील से हम विधिक रूप से इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने वर्तमान अपील फाइल करने के अपने अधिकार को विनष्ट या अधित्यजित कर दिया है और प्रतिवादी-अपीलार्थी उसे फाइल करने का हकदार नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त इस तथ्य से कि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 फाइल किए जाने के पश्चात् मंजूर किए जाने के प्रक्रम पर पहुंचकर अगले ही दिन वापस ले ली गई थी और वर्तमान अपील पूर्ववर्ती अपील को वापस लेने के एक सप्ताह के पश्चात् ही फाइल कर दी गई, यह बात स्पष्टतः स्थापित हो जाती है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी का डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने के अपने अधिकार को अधित्यजित करने या उसका परित्याग करने का कोई आशय नहीं था। 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 जो 20-1-1981 को फाइल की गई थी, मंजूर किए जाने के प्रक्रम पर 21-1-1981 को वापस ले ली गई इससे वादी-प्रत्यर्थी पर किसी प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की कोई संभावना नहीं प्रतीत होती। जिस तत्परता से वर्तमान अपील एक सप्ताह के पश्चात् ही 29-1-1981 को फाइल की गई उससे यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी अपीलार्थी ने डिक्री के विरुद्ध अपील करने के अपने अधिकार को छोड़ने का इरादा कभी भी नहीं बनाया और उन्होंने विधिक स्थिति और अपने विधिक अधिकारों के बारे में परामर्श करने के पश्चात् सम्यक् तत्परता और उत्साह से कार्यवाही की। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 का फाइल किया जाना प्रतिवादी अपीलार्थी की ओर से ऐसे किसी अभ्यावेदन या संकल्प के रूप में नहीं है कि उन्होंने डिक्री को गुणागुण के आधार पर स्वीकार कर लिया है और उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं फाइल करेंगे। प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से किस्तों से सम्बन्धित आदेश के विरुद्ध अपील फाइल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करने और गुणागुण के आधार पर डिक्री के विरुद्ध अपील न फाइल करने के चुनाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें किसी पक्षकार को ऐसी दशा में दो वैकल्पिक उपचारों में से किसी एक का चुनाव करना हो जबकि दोनों वैकल्पिक उपचारों में से एक का चयन कर लिए जाने पर उसे दूसरे अधिकार को खोना पड़ेगा। वर्तमान मामले में प्रतिवादी-अपीलार्थी को डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कानूनी अधिकार है और उसकी ओर से चुनाव करने का कोई प्रश्न नहीं उठता।

29. न्यायालय की इजाजत लिए बिना 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 को वापस लेने से इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में वर्तमान अपील के चालू होने पर किसी प्रकार से प्रभाव नहीं पड़ता। हमने पहले ही यह अभिनिर्धारित किया है कि 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 अक्षम अपील थी और अक्षम अपील को वापस ले लिए जाने से वर्तमान मामले पर किसी भी रीति में प्रतिवादी-अपीलार्थी के डिक्री के विरुद्ध समुचित अपील फाइल करने के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। मंजूरी के प्रक्रम पर पहुंचकर फाइल किए जाने के पश्चात् पूर्ववर्ती अपील को अगले ही दिन वापस लिया जाना और उसके एक सप्ताह के बाद ही वर्तमान अपील फाइल किया जाना प्रतिवाद-अपीलार्थी के आचरण का समर्थन करता है और इससे यह बात पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाती है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी डिक्री के विरुद्ध बराबर अपील फाइल करना चाहता था और यह कि डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने का अधिकार का परित्याग करने का उसका कोई आशय नहीं था।

30. वर्तमान मामले में हमारा यह समाधान नहीं हुआ है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने डिक्री के अधीन ऐसा कोई लाभ प्राप्त कर लिया है, जिससे उसे डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने से रोक दिया जाए। प्रतिवादी-अपीलार्थी ने डिक्री के अधीन किसी किस्त के संदेय होने से पूर्व ही किस्तों से सम्बन्धित उपबन्धों के विरुद्ध 1981 की पूर्ववर्ती अपील सं० 36 फाइल कर दी थी। यह बात उल्लेखनीय है कि प्रतिवादी-अपीयार्थी ने डिक्री के अधीन किस्तों से सम्बन्धित मामले में कोई लाभ उठाने या प्राप्त करने से पूर्व ही उसके अधीन प्राप्त होने वाले किसी लाभ के उद्भूत होने का प्रश्न उठने से पूर्व ही उसे चुनौती दे दी गई। जैसाकि हमने पहले भी उल्लेख किया है, प्रतिवादी-अपीलार्थी ने पूर्ववर्ती अपील को ठीक अगले ही दिन वापस ले लिया था और उसके आठ दिन के भीतर ही वर्तमान अपील फाइल कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दी थी। किसी समुचित मामले में कोई ऐसा पक्षकार जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन किसी आदेश या डिक्री के अधीन लाभ प्राप्त कर लेता है, अपने आपको उसके चुनौती के अधिकार से वंचित कर सकता है और वह उसके विरुद्ध अपील फाइल करने से रोका जा सकता है। यह बात भी ध्यान में रखी जानी चाहिए कि किसी वाद में मूल अधिकारिता पक्ष से पारित की गई किसी डिक्री का निष्पादन करने की अनुमति सामान्यतः तब तक नहीं दी जाती जब तक कि निष्पादन की कार्यवाही में अभिलेख पर डिक्री की प्रमाणित प्रति उपलब्ध न हो। डिक्री की प्रमाणित प्रति तब तक उपलब्ध नहीं की जा सकती जब तक उसे अभिलिखित न कर दिया जाए और फाइल न कर दिया जाए। वर्तमान अपील डिक्री के अभिलिखित किए जाने से बहुत पूर्व ही फाइल कर दी गई थी और इसलिए वर्तमान अपील फाइल किए जाने के समय किसी भी डिक्री के निष्पादन का प्रश्न नहीं उठ सकता। इसलिए प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा डिक्री के अधीन कोई लाभ प्राप्त करने का वस्तुतः कोई प्रश्न ही नहीं उठता। **भाऊ राम बनाम बैजनाथ**[1] वाले मामले में पृष्ठ 362 पर निम्नलिखित अवलोकन किया गया—

> "तथापि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कानूनी उपबन्ध या साम्या के मान्यता प्राप्त सिद्धान्त के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने विधिक अधिकार से, जिसके अन्तर्गत अपील करने का कानूनी अधिकार भी सम्मिलित है, वंचित नहीं किया जा सकता।"

इससे पूर्व हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि कोई भी कानूनी उपबन्ध प्रतिवादी-अपीलार्थी को वर्तमान अपील फाइल करने के उसके अधिकार से वंचित नहीं कर सकता। हमने इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर सावधानीपूर्वक विचार कर लिया है और इस मामले के तथ्यों में भी साम्या के मान्यताप्राप्त सिद्धान्तों का आश्रय नहीं लिया जा सकता जिससे कि अपीलार्थी को अपील फाइल करने के उसके अत्यन्त मूल्यवान कानूनी अधिकार से वंचित किया जा सके। हैल्सबरी के ग्रन्थ से उद्धृत विभिन्न अनुच्छेद, जिनका आश्रय श्री नारीमन ने लिया है और जो उपर उद्धृत किए गए हैं, इस मत का समर्थन करते हैं कि वर्तमान मामले में प्रतिवादी-अपीलार्थी अपने आचरण से या अन्यथा अपील फाइल करने से विबन्धित नहीं हुआ है या हकदार नहीं रह गया है।

---

[1] [1962] 1 एस० सी० आर० 358.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

31. परिणामतः, अपील मंजूर करनी होगी, इसलिए हम मुम्बई उच्च न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा दिए गए उस निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हैं, जिसके द्वारा चलाए जा सकने के आधार पर प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज कर दिया गया था। हम उच्च न्यायालय द्वारा गुणागुण के आधार पर विनिश्चय किए जाने के लिए अपील वापस भेजते हैं। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए हम खर्चे के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं करते।

अपील मंजूर की गई।

द्वि०/श्री०

———

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.